यह पुस्तक पाकिस्तान मे मेरे परिवार और दोस्तो को समर्पित है
जिन्हे मैंने पिछले 33 वर्षों से नही देखा। भगवान उन्हे बल दे।

एक कहानी मेरी भी

मुहम्मद यूनुस

अनुवादक

कमल कात

Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT LTD
Vikas House 20/4 Industrial Area
Sahibabad, Distt Ghaziabad
in the English language under the title
PERSONS PASSIONS & POLITICS

प्रथम हिंदी संस्करण 1980

मूल्य
40 रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
2 अंसारी रोड दरियागंज
नई दिल्ली-110002

मुद्रक
भारती प्रिंटस
दिल्ली 110032

भूमिका

ऐसी किताब कोई क्यो लिखे ? अपने अहम् की तुष्टि के लिए ? पिछले 50 वर्षों के घटना चक्र की एक नयी व्याख्या करने के लिए ? इस अवधि के बारे म बहुत कुछ लिखा गया है। और भी बहुत कुछ लिखा जायेगा। मैं वैसी कहानी नही कह रहा हूँ। यह तो एक कोशिश है हमारे समय के महान् स्त्री पुरुषो और उनकी नीतियो की कहानी की गभीर व्याख्या करने की जिसमे एक विनोदी स्वर भी मुखर है। कभी उन छोटी छोटी बातो का जिक्र है जिनका बडी-बडी बातो पर असर पडा, कही उन घटनाओ का हवाला है जो ऐतिहासिक तथ्यो के बजाय उनकी ओर एक रुख का उजागर करती है, फिर एसे तथ्यो का भी वणन है जिनकी ज्यादा लोगो को जानकारी नही है—इस सबसे इस युग की जानकारी मे, उसके ठोस पर रूखे अध्ययन म एक आयाम जोडने म शायद मदद मिले।

मैं इस मामले मे खुशकिस्मत था कि आधुनिक भारत के मुख्य निर्माताओं को उस समय जाना जब मैं उनसे बहुत छोटा था। वे जो कुछ कहते-करते थे उसके बारे मे उनके दृष्टिकोण से मेरी प्रतिक्रियाएँ भिन्न होती थी। एक बार पीछे मुड-कर देखा जा सकता है कि इन बडे लोगो के बारे म मेरे मूल्याकन से क्या उस युग-निर्माणकारी विगत के प्रति एक नयी दिलचस्पी पैदा हो सकती है ? उन दिनो की मेरी यादें एक ऐसी नाटकीय भावना स अभिभूत हैं जिससे वतमान की कटुता दूर होती है और भविष्य के प्रति विश्वास बढता है। इतिहास निर्माताओ की व्यक्तिगत मूखताओ या उनके सावजनिक रुख से इतिहास फिर साकार हो सकता है। मेरी कोशिश यह रही है कि गहरी गभीर बातो के परिप्रेक्ष्य मे विनोदी पहलू पेश किया जाये। इस प्रक्रिया म भारत का इतिहास गढने वालो, उनकी बनायी हुई राजनीतिक शलियो और उन आवेगो आवेशो की, जिनसे व प्रेरित हुए, मेरी यादें ताजी हुई हैं, मुझे उम्मीद है कि पाठक की यादें भी ताजी होगी। इसीलिए इस प्रयास का शीषक—'एक कहानी मेरी भी' रखा गया।

मैं डायरी नही लिखता। इसलिए कुछ तथ्यो के बारे मे उन लोगो से मशविरा करके उनकी जानकारी पक्की की गयी, जो उन गुजरे वर्षों की घटनाओ से परिचित थे। उस सामग्री को भी पढा गया जिसमे उन घटनाओं का हवाला था। यह मेहनत सायक हुई। मैंने कोशिश यह की है कि 'मैं' की भूमिका कम से-कम हो। लेकिन असलियत तो यह है ही कि इस तरह के वत्तात का औचित्य तभी

होता है जब या तो कोई उन घटनाओ को बहुत पास से देखता रहा हो और, या उनमे खुद हिस्सा लेता रहा हो, जो इस किताब की विषय वस्तु बनी। विगत मे मैंने अपनी राखो की भारी कीमत चुकायी है। जहा भी 'मैं' बहुत मुखर हो उठे, वहा पाठक कृपालु बने रहे, यही मेरा अनुरोध है।

यह किताब चार हिस्सा मे बँटी है। पहले मे गाधीवादी आचार शास्त्र, स्वतत्रता सग्राम और उसके कष्टो व यातनाओ का वणन है। दूसरा हिस्सा जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे भारत के एक स्वतत्र देश के रूप मे उदय के बारे मे है। उनकी भारत व विश्व मे शाति की उत्कट कामना, अतर्राष्ट्रीय समझ और गुटनिरपेक्षता की उनकी अवधारणा और भारत को एक आधुनिक देश बनाने की उनकी कोशिश का यहा जिक्र है। लालबहादुर शास्त्री के सक्षिप्त कायकाल का हवाला भी इसी हिस्से मे शामिल है। इसके बाद आते हैं श्रीमती इदिरा गाधी के प्रधान मत्रित्व के 11 साल। बँगला देश के सकट के समय उनका साहसपूण नेतृत्व, पाकिस्तान से युद्ध, देश के पूर्वाचल मे अलगाववादी प्रवृत्तियो की सफल समाप्ति और खेता व कारखानो मे अथ व्यवस्था का फिर से मजबूत किया जाना—इस सब पर एक नजर डाली गयी है, उसे फिर से जाचा परखा गया है। चौथे हिस्से म हैं आपातस्थिति, उसकी आवश्यकता, उसके फायदे, उसकी खामिया और माच 1977 की घटनाएँ जिन्होने भारत को एक ऐसे नैतिक गत मे डाल दिया जैसा उसने पहले कभी नही देखा था।

जो लोग उस भाषा के जानकार हैं, उन्हे अपने विषय को बेहतर ढँग से समझाने के लिए मैंने कही कही उर्दू शेरो का इस्तेमाल किया है। इसी तरह उर्दू मे हुई बातचीत मैंने उसी जुबान मे लिख दी है। मूल भाषा मे ये जुमले देने से उनकी प्रामाणिकता जरूर बढेगी। कुछ जगहा पर व्यक्तियो को अलग अलग ढँग से सबोधित किया गया है। महात्मा गाधी को गाधी भी कहा गया है, बापू भी। खान अब्दुल गफ्फार खा को बादशाह खाँ या फख्रे अफगान भी कहा गया है और सीधा साधा गफ्फार खा भी। पडित जवाहरलाल नेहरू को जवाहरलाल जी, पडितजी, नेहरू या 'भाई' भी कहा गया है।

मैं उन कुछ दोस्ता का कृतज्ञ हूँ जिन्होने इसम दिलचस्पी ली, मुझे प्रोत्साहित किया और कुछ घटनाओ के यहा शामिल किये जाने पर जोर दिया। एक ऐसे ही प्यारे दोस्त की हर बातचीत के बाद यही अड रहती थी—'इसे जरूर लिखियेगा।' मैं कुछ और लोगो का भी ऋणी हूँ जिन्होने ठीक ठीक तारीखें, नाम व ऐसे ब्योरे य छाँट निकालने मे बेशकीमत मदद दी जो इस तरह के वृत्तात को पठनीय व विश्वसनीय बनाते है, मेरी यही आशा है।

नयी दिल्ली, —मुहम्मद यूनुस

14 नवबर 1979

क्रम

राजनीतिक प्रशिक्षण

(1930 1947)

राजनीति मे मेरी दिलचस्पी मेरी पैदाइश से ही शुरू हो गयी थी। घर पर मुझे इसका लगातार अनुभव होता था, स्वाद मिलता था। यह पेशावर मे, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रात मे 1921 का साल था। वातावरण राष्ट्रीय आकाक्षाओ से ओत प्रोत था। खिलाफत और हिजरत आदोलनो ने भारत मे पठानो को दूसरे लोगो से ज्यादा झकझोरा था। सरकारी दमन, उत्पीडन के विरोध मे अपने घरो को छोडकर, त्यागकर जाने वाले मुहाजिर बडे बडे गिरोहो मे सीमात इलाके से गुजरकर अफगानिस्तान जाते थे। कुछ अफगानिस्तान के पार भी गये। हमारे घर मे भी इसकी गूज पहुँची, और नतीजे मे मेरा एक भाई 1912 मे डाक्टर एम० ए० असारी के लाल हिलाल मिशन के साथ तुर्की गया और युवा तुर्कों के साथ उसका घनिष्ठ सबध रहा। एक दूसरे भाई ने हिजरत आदोलन म भाग लिया और यातना से बचने के लिए वह भागकर 1921 मे सोवियत सघ पहुँचा। मैं उस वक्त सिफ पाच साल का था। यह स्थानीय राजनीति मे कुछ दूसरे रिश्तेदारो के शरीक होने से (मैंने बाद के पृष्ठो म उनका जिक्र किया है) बहुत पहले की बात नही है और इससे मेरे अदर भी आग सुलग उठी।

अँग्रेजो के खिलाफ लडाई के अगुआ दुबले पतले, छोटे कद के लेकिन अदम्य मोहनदास करमचद गाधी थे। हमारे लिए सीमात इलाके मे दीर्घाकार पठान-नता खान अब्दुल गफ्फार खा इस लडाई की रहनुमाई कर रहे थे। लबे चौडे शरीर वाला इसान दुश्मन के खिलाफ इस्तमाल किये जाने वाले तरीको मे छोटे शरीर वाले व्यक्ति का अनुकरण कर रहा था। उन्होंने भी खूख्वार, हथियार चलाने वाले पठानो के लिए अहिंसा का रास्ता तय कर दिया। और चूकि वे उनसे मोहब्बत करते थे, इसलिए उन्होन यह अजीब कानून तसलीम कर लिया। वे उन्ह 'फखू-अफगान' और 'बादशाह खा' कहते थे। मैं खुशकिस्मत था कि मेरा शुरू का राजनीतिक प्रशिक्षण ऐसे इसान की रहनुमाई मे हुआ। खुदाई खिदमतगार आदोलन मे मैं उनका सेक्रेटरी और दाहिना हाथ बन गया था। हमारे खानदान एक-दूसरे से परिचित थे और जब मेरे भाई मोहम्मद याहिया न उनकी पुत्री से शादी कर ली तो यह सबध और भी गहरा हो गया।

आजादी की लडाई मे सक्रिय भाग लेने के बहुत पहले दो घटनाओ ने मेरे

दिमाग पर गहरा असर डाला। ये भगतसिंह के बलिदान और पेशावर म अप्रैल 1930 मे पुलिस व फौज द्वारा अंधाधुंध गोली वर्षा के बारे म थी। मैं उस समय अलीगढ म मुस्लिम यूनिवर्सिटी स्कूल म पढ रहा था। कनल बशीर हुसन जदी[1] और जी०सी वुडस—दोनो 1928 और 1932 के बीच इस स्कूल के हेडमास्टर रहे।

एक शिशु स्कूल भी इससे सबद्ध था जिसकी प्रधानाचार्या कुमारी कमर जहाँ जाफर अली थी। उनकी माँ आइरिश थी, वह अपनी पुत्री के साथ रहती थी। वह मुझे पसद करने लगी और वह मुझे अपने देश के क्रातिकारियो और क्राति के हृदयस्पर्शी किस्से सुनाती थी। उस वक्त मेरी उम्र सिफ 14 साल की थी। मैं जब छुट्टियो म घर जाने लगा तो उन्होने रास्ते म रलवे स्टेशनो पर बाँटन के लिए छपे हुए पर्चों का एक बडल मुझे दिया। उनमे अंग्रेजी की एक कविता थी जो उन्होंने भगतसिंह के बारे मे लिखी थी। हममे से कई भगतसिंह के निडर व्यक्तित्व से पहले से ही प्रभावित थे। उनके शारीरिक साहस के बारे म एक कहानी ने मुझ पर बेहद गहरा असर डाला, यह कहानी क्रातिकारी आन्दोलन की दीक्षा लेने से पहले कष्ट सहन की सीमा की परीक्षा के बारे म थी। उन्होने भगत सिंह से पूछा कि हम यह कैसे मालूम हो कि तुमम दबाव या यातना सहन की क्षमता कितनी है? भगतसिंह का जवाब सीधा सादा था। उन्होंने एक मोमबत्ती जलायी और उसकी लौ के ऊपर बिना पलक झपकाये अपनी कलाई रख दी और रखे रहे। सवाल पूछने वाले स्तब्ध रह गये।

8 अप्रैल, 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त[2] ने दिल्ली मे केंद्रीय असेंबली मे बम फेंका। इसने पूरे देश को झकझोर दिया और वे राष्ट्रीय हीरो बन गये। उन्होंने कहा कि उनका किसी को नुकसान पहुँचाने का कोई इरादा नही था। वे तो सिर्फ शासकों को भारत की वास्तविकता के प्रति जगाना चाहते थे। भगतसिंह बाद मे एक पुलिस अफसर के कत्ल के सिलसिले म गिरफ्तार कर लिये गये, जिसे लाहौर षडयन्त्र काड के नाम से जाना जाता है। भारत की राष्ट्रवादी आकाक्षाओ का जायजा लेन के लिए 1928 में साइमन कमीशन नियुक्त किया गया। कांग्रेस ने इसका बाइकाट किया। जहाँ भी कमीशन गया, वहाँ उसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए। सर जॉन साइमन और उनका दल 30 अक्तूबर 1928 को लाहौर पहुँचा। पजाब के मशहूर राष्ट्रवादी नेता लाला लाजपतराय ने इसके खिलाफ प्रदर्शन और जुलूस का नेतृत्व किया। भीड पर लाठी चार्ज किया गया और लालाजी का जिन्हे एक अग्रेज पुलिस अफ़सर जे० ए० स्काट ने बुरी तरह मारा था, 17 नवबर को जख्मो से देहावसान हो गया। भूमिगत क्रातिकारियो ने धमकी दी कि इस निदयता का बदला लिया जायेगा। 17 दिसबर को एक अग्रेज पुलिस अफसर जे० पी० साडर्स गलती से अपने भारतीय अर्दली के साथ मार डाला गया। भगतसिंह व करीब 20 दूसरे लोगो पर क़त्ल का इल्ज़ाम लगाया गया।

---

1 वह 1930 म अलीगढ़ छोडकर रामपुर चले गये जहाँ वह कई साल तक चीफ मिनिस्टर रहे। 1956 मे वह अलीगढ लौट आये और 1962 तक अलीगढ विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। उनकी पत्नी बेगम कुदसिया जैदी कला और नाटक की महान सरक्षक थी। और बेहद लाजवाब मेजबान थी। 27 दिसबर 1960 को उनका असामयिक निधन हो गया।

2 मैं 1939 में कानपुर मैं बी० के० दत्त से मिला था। वह खराब स्वास्थ्य के कारण रिहा कर दिये गये थ और काफ़ी कमज़ोर थे।

इस मुक़दमे ने उनके व उनके साथियो के लिए और ज्यादा हमदर्दी व सहानुभूति पैदा कर दी।

लाहौर मे पुछ के महाराजा के महल मे मुकदमा चलाया गया। मैं अपनी बहन से मिलने वहा गया हुआ था, जिनकी हाल ही मे मियाँ सर फज़्ले हुसेन के बड़े लडके नसीम हुसेन से शादी हुई थी। मिया साहब वाइसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य थे और उन दिनो अपने वतन आये हुए थे। मैं मुकदमा सुनने के लिए इतना व्याकुल और बेचैन था कि उन्होंने मेरा अनुरोध मजूर कर लिया। उन्होंने यह इतजाम कर दिया कि मै एक दिन जाकर विशेष ट्रिब्यूनल की कार्यवाही देख सकू। पजाब हाईकोर्ट के जज इस ट्रिब्यूनल[1] के सदस्य थे। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, शिवराम, विजयकुमार सिन्हा, प्रेमचद व उनके कुछ साथी एक तरफ चुपचाप बैठे थे। बचाव और सबूत पक्ष के वकील[2] व कुछ दर्शक दूसरी तरफ बैठे थे।

तीन जजो का पैनल था। जस्टिस आगा हैदर, जिनका सबध सहारनपुर के एक मशहूर और प्रतिष्ठित खानदान से था, एक गवाह से जिरह कर रहे थे। उसने पिछले दिन यह गवाही दी थी कि जब भगतसिंह ने जे० पी० साडस पर पिस्तौल से गोली चलायी उस समय वह खाकी क़मीज़ पहने हुए थे। न्यायाधीश ने गवाह से कहा कि वह सोच ले कि वह जो कुछ कह रहा है, वह सच है? गवाह ने अपना बयान दोहरा दिया। न्यायाधीश न तब पूछा कि क्या उसे याद है कि न्यायाधीश की पिछले दिन की कमीज़ का रग क्या था? गवाह गडबडा गया और कुछ लम्हे हिचकिचान के बाद उसन कहा, "नीले रग की कमीज़ थी।" जस्टिस हैदर न उसे कडी निगाह से देखा और कहा, "ऐसा नही था। कमीज़ कल भी सफेद थी, आज भी सफेद है और जितने दिन मैं यहाँ बैठकर इसाफ करता रहूँगा, यह सफेद ही होगी।" जैसे गोया कडी जिरह ही काफी न हो, जस्टिस हैदर ने एक और अजीब काम किया। कार्यवाही खत्म होने पर वह भगतसिह के पास गये, उनकी पीठ थपथपायी और कहा, "मेरे बच्चे, वे तुम्हारे पीछे पडे हैं।" बहादुर क्रातिकारी उठकर खडा हुआ, मुसकराया और जवाब दिया, 'फिक्र न करें, फिक्र न करें।' उसे फौरन ही वहा से हटा ले जाया गया। वापस आने पर, मैंने इस दृश्य के बारे मे सर फज़्ले हुसेन को बताया। उन्होने बहुत गौर से मेरी बात सुनी और कहा, "वह कमबख्त पागल है।"

विशेष ट्रिब्यूनल, वाकई, एक पखवाडे के अदर ही भग कर दिया गया और दूसरा कायम कर दिया गया। जस्टिस हैदर की असहमति टिप्पणी और इसके अलावा भगतसिंह की तरफ उनकी हमदर्दी के रुख की वजह से यह परिवर्तन किया गया था। जस्टिस जी० सी० हिल्टन की अध्यक्षता म नये ट्रिब्यूनल ने तीन महीने तक मुकदमे की सुनवाई की। 7 अक्तूबर, 1930 को उसका फैसला सुनाया

---

1 विशष ट्रिब्यूनल मई 1930 में गठित हुआ था। जस्टिस जे० कोल्डस्ट्रीम जस्टिस आगा हैदर और जस्टिस जी० सी० हिल्टन इसके सदस्य थे। पुनगठित ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष जस्टिस हिल्टन थे और जस्टिस जे० के० टप और जस्टिस अब्दुल कादिर इसके सदस्य थे।

2 बचाव पक्ष की ओर से थे लाला अमरदास अमोनकराम कपूर और प्राणनाथ मेहता और सबूत पक्ष की ओर से रायबहादुर ज्वालाप्रसाद रायसाहब गोपाललाल और खानसाहब कलदर अली खाँ। सौभाग्य से मैंने इनमे से अधिकाश बातो की पुष्टि प्राणनाथ मेहता से करा ली है। वह अकेले ऐसे जीवित आदमी हैं जो भगतसिंह स उनको फाँसी लगाने के कुछ घटे पहले मिले थे।

गया। प्रिवी काउंसिल ने इस सजा को बहाल रखा। भगतसिंह और उनके दो साथियों को 20 मार्च, 1931 को फांसी दे दी गयी। उस समय उनकी उम्र सिर्फ साढे तेईस साल की थी। बाकी को उम्र कैद से लेकर सात साल की कैद तक की सजा दी गयी। पंजाब के वरिष्ठ राष्ट्रवादी नेता और मशहूर उर्दू दैनिक जमींदार के संपादक मौलाना जफर अली खां ने काव्यात्मक श्रद्धांजलि दी जिसका आखिरी शेर था

> शहीदाने वतन के खून का जो सत्त निकले,
> तो उसके जर्रे-जर्रे से भगतसिंह और दत्त निकले।

उन दिनों की कई असाधारण और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में पेशावर की निर्मम वहशियाना गोलीबारी थी। 23 अप्रैल, 1930 की यह घटना सीमांत इलाकों में दूसरी जगहों पर होने वाली कत्ले-आम की कई घटनाओं में पहली थी। शहर की मुख्य सड़क किस्सा ख्वानी बाजार में सैकड़ों शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारी मौत के घाट उतार दिये गये। इसी दिन एक गढ़वाल रेजिमेंट ने अपने निहत्थे देशवासियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया। चंद्रसिंह उन बहादुर लोगों के प्रतीक बनकर उभरे। उनमें से कई को लंबी कैद की सजाएँ भुगतनी पड़ीं। मैं जब कुछ महीने बाद अलीगढ़ से वापस लौटा तो मैंने इन घटनाओं के बारे में सुना और मैं उस अविस्मरणीय दिन घायल होने वाले कुछ लोगों से मिला। बर्बरता की कहानियों की ओर जो मुसीबतें उन लोगों को झेलनी पड़ी थीं, उनकी मेरे मन पर गहरी छाप पड़ी जिसने बाद के वर्षों में मेरे सोचने के तरीके को काफी प्रभावित किया। दूसरी चीजों के अलावा इसने मेरे मन में, हमारे समाज में ब्रिटिश समर्थक तत्वों के खिलाफ नफरत और घृणा पैदा कर दी। उनके दोरुखे चेहरों को देखकर ताज्जुब होता था। लेकिन पठानों पर ढायी गयी मुसीबतों ने उनके प्रति व्यापक सहानुभूति पैदा कर दी और उनके अहिंसात्मक स्वरूप ने सभी पिछले इल्जामों को झुठला दिया।

मैंने खान अब्दुल गफ्फार खां को शायद पेशावर में पहले देखा हो लेकिन उनसे पहली मुलाकात, जिसकी मुझे अच्छी तरह याद है 1928 के जाड़े में हुई थी। उस समय मेरी उम्र सिर्फ 12 साल की थी और मैं अलीगढ़ में मुस्लिम यूनिवर्सिटी स्कूल में पढ़ रहा था। मेरे बड़े भाई मुहम्मद याहिया का यूनिवर्सिटी में बहुत नाम था। वह एक अच्छे खिलाड़ी और यूनियन चुनावों के पीछे एक ताकत थे और छात्रों व शिक्षकों—दोनों में बेहद लोकप्रिय थे। उस जमाने में अफगानिस्तान के शाह अमानुल्लाह की किस्मत के फैसले के बारे में यूनिवर्सिटी में सहानुभूति का वातावरण था। अफगानिस्तान के अंदरूनी मामलों में ब्रिटिश दखलंदाजी का विरोध करने और 1921 में लड़ाई के मैदान में अंग्रेजों को हराने के लिए उनकी तारीफ की जाती थी। बहत्तर साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए अंग्रेजों ने शाह के प्रतिक्रियावादी विरोधियों को शाह की देश को आधुनिक बनाने की योजनाओं का विरोध करने के लिए उकसाया। वे गड़बड़ी और अराजकता फैलाने में सफल हो गये।

गफ्फार खां उत्साही शाह की मदद के लिए चिकित्सा-दल भेजना चाहते थे और इसके लिए भारत सरकार से इजाजत लेने के लिए वह दिल्ली गये। इसमें जान-बूझकर देर लगायी गयी और इसी बीच अमानुल्लाह को गद्दी छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। वह इसके बाद भागकर इटली चले गये, जिससे उनके दोस्तों

को बहुत आघात पहुँचा। शाह की मदद करने की कोशिशो मे नाकामयाब रहने के बाद गफ्फार खाँ अपने पुराने स्कूल गये जहा वह 1912 मे पढते थे। वह मेरे भाई के साथ ठहरे। सरहदी छात्रों मे उनकी मौजूदगी से बहुत उमग भर गयी और वह लगातार उनकी खिदमत में लगे रहे। मैं भी उनमे से एक था। उन्होंने मेरी आटोग्राफ बुक मे हस्ताक्षर किये और पश्तो मे लिखा "जा नीन देर कुशल येम वाह देह अल्लाहताला सुक्र वय ची ज्मुग प रतलून के नस्ल के दह अगपुलो खादिमानोन इज्जत प देह क्खिया वाह सब्बाब पैदा शोव देह, कौमी खिदमत वाह कौमी फरायज। खुदाई देह दा जज्बा पा मुग के रोवज पे ज्यातई लारा। आमीन, फकत अब्दुल गफ्फार।"

(मुझे बहुत खुशी है और मैं अल्लाह का शुक्रगुजार हूँ कि मेरी यात्रा से हमारे लोग राष्ट्रीय सेवा और राष्ट्रीय कर्तव्य पूरा करने की भावना से जनता के सेवको के प्रति आदर दिखाने लगे। अल्लाह करे कि यह भावना हममे हर रोज बढती रहे।—अब्दुल गफ्फार) इसे पढकर मेरी खुशी का पारावार न रहा। इससे मैं अपने फर्ज के बारे मे फौरन सजग हो गया और राजनीतिक बहसो मे मेरी दिलचस्पी पैदा हो गयी। सरकारी दमन और भारत-भर मे देशभक्तो द्वारा सरकार की अवज्ञा की कहानियो ने दृढ भावना पैदा की। हमने सर ऊँचा रखना और सरकारी सरपरस्ती को ठुकराना सीखा। इसके अलावा उस समय किसी तरह के स्वार्थ या आपसी झगडा का कोई निशान भी न था। नतीजा यह हुआ कि जिन लोगो के दिलो मे आजाद हिंदुस्तान की तसवीर बन गयी थी, उनमे भाईचारा पैदा हो गया।

गाधीजी से मेरी पहली मुलाकात बादशाह खाँ से मिलने के कुछ दिन बाद हुई। यह करीब-करीब उसी वक्त और उसी जगह, अलीगढ मे हुई। किस्मत की खूबी कि लगभग इसी समय मेरा परिचय जवाहरलाल नेहरू से कराया गया। आज मैं जो कुछ हूँ, वह विभिन्न मात्रा मे 'तीन बडो'—बापू, भाई और बादशाह खा—के प्रभाव की बदौलत हूँ। वे मेरी जिंदगी मे ऐसे वक्त दाखिल हुए जब मैं कम उम्र था और मेरे ऊपर दूसरो का असर पड सकता था। उनकी शख्सियत और उनके जीवन के मूल्यो ने मेरे ऊपर जादू कर दिया। हर एक का व्यक्तित्व अलग अलग था फिर भी एक सा, आपस मे मिलता जुलता। अगर एक की सादगी दूसरे की नफासत के विपरीत थी, या अगर एक का भारी भरकम जिस्म दूसरे के छोटे से दुबले पतले डीलडौल के विपरीत था, तो भी उनकी जिंदगी का बुनियादी मकसद एक सा था। मैंने हमेशा उनकी बेहद इज्जत की है और वे भी मुझसे कुछ ज्यादा ही स्नेह रखते थे। इन तीनो प्रमुख नेताओ की सार्थकता कभी खत्म नही हुई, और न उन नसीहतो की जो मैंने उनसे ली। इस पुस्तक मे विभिन्न स्थलो पर जिन घटनाओ का वर्णन किया गया है, वे मेरी मौजूदगी मे हुई। मेरे ऊपर उस समय भी उनका प्रभाव पडा था और आज भी वे मुझे प्रभावित करते हैं।

आने वाले वर्षों मे मैंने बादशाह खाँ से राजनीतिक दीक्षा ली और उनके योग्य नेतृत्व मे काफी लबे अरसे तक काम किया। उनकी मुहब्बत और स्नेह को भूलना या उनकी रहनुमाई की व्यापकता को कम करना नामुमकिन है। उनके साथ की मेरे दिमाग मे बहुत-सी तसवीरें हैं। सरहदी गाधी, जिस नाम से विदेशी शासको के साथ राजनीतिक लडाइयो मे वह पुकारे जाने लगे थे 1890 मे एक सपन्न मोहम्मदजई परिवार मे पैदा हुए थे। दुरानी शासक उनके परदादा उबै-

मुल्ला खाँ की इतनी इज्जत करते थे कि उन्हे हिफाजत के लिए हथियारबद सिपाही दिये गये थे। उनके दादा सफुल्लाह खा सिख शासन के दौरान महत्वपूर्ण व्यक्ति थे और उनका बहुत आदर किया जाता था। उनके पिता बहराम खाँ अपने जमाने के रईस जमीदार थे और अपने बच्चो को अच्छी शिक्षा देने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन थे। गफ्फार खा पेशावर के मिशन स्कूल मे पढते थे और खामोश अध्ययनशील जिंदगी बसर करते थे। उन्हे पढाई मे दिलचस्पी थी और किसी भी दूसरे लडके की तरह वह खेलते भी थे। उनके एक अध्यापक कैनन सी०एफ० विग्राम का उन पर बहुत असर पडा और वह हमेशा उनकी बहुत तारीफ करते थे। उनके बडे भाई डॉक्टर खान साहब डॉक्टरी पढने के लिए इग्लैंड भेजे गये थे। बादशाह खा ने भी, जैसाकि हम उन्हे बाद मे पुकारने लगे, इजीनियरिंग की शिक्षा के लिए वही जाने का इरादा किया था, लेकिन अपनी मा के इन दुख भरे शब्दो के कारण कि 'अगर तुम भी चले जाओगे, तो मैं क्या करूँगी ?'' उन्होने इरादा छोड दिया और खुशी की बात थी कि वह राजनीति मे हिस्सा लेने लगे।

गफ्फार खाँ इसके बाद एक क्रातिकारी सत हाजी अब्दुल वहीद के प्रभाव मे आये जो पठानो मे तुरगजई के हाजी साहब के नाम से मशहूर थे। यह 1912 के आस पास की बात है। रूढिवादी कट्टर मुल्ला अँग्रेजो द्वारा चलाये गये स्कूलो के खिलाफ आदोलन चला रहे थे, लेकिन वे यह नही बता पाते थे कि इसके बजाय क्या किया जाये, गफ्फार खाँ और हाजी साहब ने समझ लिया कि इस तरह की नीति का कितना घातक प्रभाव होगा। उन्होने तय किया कि सूबे भर मे 'आजाद स्कूलो' का जाल फैला दिया जाय और लोगो को उनका इस्तेमाल करने के लिए राजी किया जाय। वे सीधे सादे सरहदियो को सभाओ मे बताते कि उनकी मुसीबतें और पिछडापन किसी दैवी-कोप की वजह से नही है। उन्हे जिंदा रहने का हक है, लेकिन उनकी किस्मत सिर्फ कडी मेहनत से बदलेगी। हाजी साहब तेजी से प्रगति करती हुई दुनिया मे अपने लिए जगह बनाने के उद्देश्य से उचित प्रशिक्षण की जरूरत पर जोर देने के लिए अपने धार्मिक ज्ञान का इस्तेमाल करते थे। वह पैगबर मोहम्मद के इस कथन का हवाला देते कि रब्बे जिद्नी इल्मन (अल्लाह मेरा ज्ञान बढाय)। पठानो से अपनी जिम्मेदारी पूरी कराने के लिए इससे ज्यादा प्रभावकारी कोई चीज नही हो सकती कि उन्हे यह जानकारी करा दी जाय कि पैगबर ने इसकी हिदायत की है। इतिहास मे हम राजदर्शी सतो के बारे मे पढते हैं। यह सही है कि जब तक वह भावना जो सच्चे मजहब मे सचारित रहती है राजनीति मे एक निश्चित तत्व नही बनती, तब तक कमजोर लोगो पर निहित स्वार्थों का प्रभुत्व समाज की सर्वोत्तम उपलब्धियो का हमेशा मजाक उडाता रहेगा। गफ्फार खाँ राजनीति की नैतिकता मे यकीन करते थे। उन्होने साधारण इसान का परिवर्तन और बेहतर भविष्य के लिए कोशिश करना सिखाया। उन्होने अपनी ज्यादातर शक्ति उनकी शैक्षिक आवश्यकताओ को पूरा करने के सिलसिले मे लगा दी। 1912 से 1929 तक साक्षरता अभियान उनके कार्यकलापो का आधार रहा। विदेशी शासको ने उन्हे धमकी दी कि वह अपना यह काम छोड दें या फिर इसका परिणाम भुगतें। उनके वृद्ध पिता को भी चेतावनी दी गयी। लेकिन उन्हें कुछ भी न डिगा सका, क्योकि उन्हे 'साफ अतरात्मा और आत्मा की रक्षा के लिए' के साथ नाहा के ... अल्लाह के हुजूर मे पेश होना था। इसकी वजह से ... ... कर लिये गये क्योकि अँग्रेजो की उदारता के बारे मे उनका अपना ही एक विचार था। उनका हर काम सही था और जो कुछ हम

करें वह गलत और फिर भी हमसे आशा की जाती थी कि हम उनकी तारीफ मे कसीदे पढें और नारा लगायें "अल्लाह बादशाह की हिफ़ाजत करे।"

शायद ही कभी किसी की ऐसे व्यक्ति से मुलाकात होती हो जिसने अपने आदर्शों के पीछे इतने लबे अरसे तक मुसीबतें झेली हा। बादशाह खाँ ऐसे ही एक देशभक्त थे। उनकी उम्र अब 90 साल की हो रही है। उन्होने अपनी जिंदगी के 40 साल से अधिक किसी न-किसी तरह की नजरबदी मे काटे है उन्ह सबसे पहले 1914 मे अँग्रेजो ने गिरफ्तार किया था।

बीमार और बुढापे की ओर बढता हुआ यह इसान, उन लोगो को हिकारत की नजर से देखता हुआ चट्टान की तरह अटल खडा है जिन्होने उसे या शाति और मोहब्बत के उसके ध्येय को बर्बाद करन की कोशिश की। उनकी जिंदगी की कहानी लबी और दुख भरी लेकिन प्रेरणादायक है। इससे हर कदम पर अन्याय के खिलाफ लडने के उनके दृढ निश्चय का पता चलता है। जवाहरलाल नेहरू उनके छा जाने वाले, अभिभूत कर देने वाले व्यक्तित्व से चकित रह गये। उन्होन कई अवसरो पर उनके बारे म लिखा है और भाषण किये है। मेरी किताब द फ्रटियर स्पीक्स (सरहद की आवाज) के आमुख मे उन्होंने लिखा

'राष्ट्रीय आदोलन चौडे मदानो से पहाडी घाटियो मे फला और सँकरे खैबर दर्रे तक पहुँचा और आखिर म उस उल्लेखनीय इसान अब्दुल गफ्फार खा न, जिन्ह उनके लोग और हम 'बादशाह खा' और 'फख्रे अफगान' कहकर खुशी हासिल करते है, यह आड दूर कर दी। जब आज के जमान का इतिहास लिखा जायगा ता आज जो जनता की नजरा म चढे हुए हैं, उनम स कुछ ही का उस इतिहास म जिक्र हागा, लेकिन उन गिन चुने इसाना मे विलक्षण और प्रभावशाली बादशाह खा का भी जिक्र होगा। निष्कपट और सादे, निष्ठावान और सच्च, गढी हुई मूर्ति की तरह तराशा हुआ चेहरा, जो बरबस अपनी ओर ध्यान खीचता है नकी मुसीबता और त्रासदायक परीक्षा की आग मे तपा हुआ चरित्र, जिसम अपने उद्देश्य म भरोसा रखने वाले व्यक्ति की सख्ती और इसाना से बेपनाह मोहब्बत करन वाले व्यक्ति की कोमलता और नरमी है। उन्ह अपने लोगा के बीच देखिय जो उनके चारो तरफ इकट्ठे होते हैं और उन्ह स्नेह व इज्जत व तारीफ की नजरो से देखते है। वह उनसे अपनी प्रिय पश्तो जबान म बातें करत है और हालांकि वह उन्ह उनकी कमजोरियो या खामिया के लिए अकसर झिडकते भी हैं, लेकिन उस समय भी उनकी आवाज नरम, कोमल और मधुरता से भरी हुई होती है। फिर उन्हे छोटे बच्चो के साथ देखिये, जब वह उनक साथ खेलत हैं तो उनकी आँखें चमकने लगती हैं और उनका सख्त चेहरा हसी से खिल उठता है।"

गफ्फार खाँ क्या हैं? बुनियादी तौर पर वह वही सिखाते हैं जिस पर वह खुद अमल कर सकते है। उनके अदर व्यावहारिकता का जबरदस्त पुट है। रोज-मर्रा के मसलो पर उनक विचार ठोस धरातल के होते हैं और उन मूल्या के प्रति निष्ठा प्रदर्शित करते हैं जिनके लिए उन्हान काम किया है, मेहनत की है और इतनी मुसीबतें सही हैं जितनी कि किसी और ने नही सही हैं। उन्होंने जनता के धन के मामले मे हमेशा सावधानी बरती है। उनका कहना है कि "यही पसा कई राजनीतिक कार्यकर्ताओ के पतन की वजह रहा है।" उनके अनुसार, जो लोग थोडी-सी रकम दते है, वे आमतौर पर इसे बहुत बढा चढाकर बताते हैं। इससे

स्वाभाविक तौर पर सदेह पैदा होते है। वह ओहदो के पीछे भागने के विचार के भी खिलाफ थे। "इससे आदमी की इज्जत गिरती है। कौम की खिदमत करने के लिए किसी ओहदे की जरूरत नही है।" उन्होने भारत का विभाजन होने के पहले काग्रेस अध्यक्ष होने का दुलभ सम्मान स्वीकार न करके इसका सबूत दिया। लेकिन उन्हे इसके बारे मे कोई भ्रम नही था कि क्या चीज राजनीतिज्ञो, उनके दोस्तो और सहयोगियो को भी फैसला लेने में प्रेरित करती है। मिसाल के लिए, 1946 के शुरू मे कुछ वामपथी मुसलमान काग्रेस छोडकर मुस्लिम लीग मे शरीक हो गये। उनमे पजाब प्रातीय काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष मियाँ इफ्तिखारद्दीन भी थे। वह बादशाह खा के सामने अपने रुख को उचित ठहराना चाहते थे। उन्होने कहा, "मुस्लिम लीग मुसलमानो के लिए काग्रेस बन गयी है। इसमे शामिल होने के अलावा और कोई रास्ता नही है।" बादशाह खा ने थोडी देर तक उनकी लबी चौडी दलीलें सुनी और फिर जवाब दिया, "मिया साहब, तुम किसको धोखा देना चाहते हो? अब तक जवाहरलाल का दामन पकडा था। अब जिन्ना का सहारा ले रहे हो। सच-सच बोलो। इन गोल मोल बातो से क्या फायदा।" इफ्ती, जिस नाम से वह दोस्तो मे मशहूर थे, इस मुहफट जवाब के लिए तयार न थे। वह कुछ गडबडाये, हिचकिचाये और आखिर मे झेंपकर खामोश हो गये।

बादशाह खा धार्मिक या व्यक्तिगत तौर पर कठमुल्ला नही हैं। दूसरे का दृष्टिकोण समझने की क्षमता की वजह से वह अपने बेटो के समझने वाले पिता और साधारणत नौजवानो के लिए सहनशील पिता जसे बुजुर्ग हैं। एक बार वह अपने सबसे बडे बेटे गनी से बातें कर रहे थे। उन्होने कहा कि मैंने एक बहुत अच्छी लडकी देखी है जो तुम्हारे लिए एक बेहतरीन बीवी साबित होगी। गनी खामोश रहे। कुछ दिन बाद बादशाह खाँ ने फिर इसका जिक्र छेडा और वह इस मसले पर अपने बेटे की प्रतिक्रिया जानना चाहते थे। जीवन साथी चुनने के बारे मे गनी के विचार बिलकुल अलग थे। उन्होने जवाब दिया, "अगर वह लडकी इतनी अच्छी है और आप उसे इतना पसद करते हैं तो आप खुद उससे शादी क्यो नही कर लेते? मैं अपनी बीवी खुद चुन लूगा। मैं अपने व्यक्तिगत मामला मे दूसरो को परेशान नही करना चाहता।' बादशाह खा इस तरह का जवाब सुनकर भौचक्के रह गये। और इसके बाद उन्होने अपने बेटे को अपनी बीवी ढूढने के लिए आजाद छोड दिया। गनी ने 1939 मे एक सुसस्कृत पारसी लडकी रोशन से शादी कर ली।

अप्रल 1946 मे बादशाह खा लाहौर से गुजर रहे थे। काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच तनाव बढ रहा था। कुछ नौजवान ट्रेन मे उनके पास पहुँचे और मजाक उडाते हुए उनसे पूछा 'आप महात्मा गाधी के बहुत नजदीक हैं, आप उनसे मुसलमानो को कुछ गारटी देने के लिए क्यो नही कहते?' बादशाह खा ने गौर से उनकी बातें सुनी और बोले, "मैंने गारटी मांगना नही सीखा, मैं सिर्फ यह जानता हूँ कि अपने हक के लिए कसे लडा जाता है। आप लोग नौजवान हैं और आपको और ज्यादा यकीन के साथ बोलना चाहिए। आपको आजादी की लडाई की अगली कतार मे होना चाहिए। आजादी पाने के बाद अगर हिंदू लोगो ने मुसलमानो के साथ बेरहमी का बरताव किया तो मैं उस अत्याचार का उसी तरह विरोध करूँगा जसे कि आज मैं अँग्रेजो का करता हूँ। आप भी एसा ही कर सकते हैं लेकिन पहले हम एक होकर अपने को आजाद कराना चाहिए।"

वह साफगोई से काम लेते हैं। उनकी दो टूक बात तीखी होती है और एक

सच्चे पठान की तरह वह जो मन म होता है, कह देते हैं। यही बात उनके विनोद के बारे में भी सच है। काग्रेस वकिंग कमेटी की एक बठक बवई मे सितबर 1940 मे हुई। एक दिन प्रख्यात उद्योगपति घनश्यामदास बिडला ने सदस्यो से गाधीजी के साथ दोपहर का भोजन करन का अनुरोध किया। वे लोग एक वडे कमरे म पहुँचे और थालिया मे परोसे हुए शाकाहारी भोजन का स्वाद लेन के लिए जमीन पर बैठ गये। मौसमी फलो से भरी हुई एक बडी सी तश्तरी बीच मे रखी हुई थी। अतिथियो को नारगी की कुछ फाँकें, केले के कुछ टुकडे और कुछ अगूर दिये गये। नौकर जब बादशाह खा के पास फल लेकर पहुँचा तो उन्होने वडी तश्तरी को नजदीक लाने के लिए कहा ताकि वे जो चाह ले लें। इसके बाद उन्होन बिडला मे भी कुछ खान के लिए कहा और उन्हें एक नारगी दी। फौरन ही भोजन के कमरे म मँडरान वाला डाक्टर आया और उसने बिडला को थोडा सा लहसुन दिया। उद्योगपति ने नारगी की मुश्किल से कुछ ही फाकें खायी होगी कि डॉक्टर फल के अम्ल का असर दूर करने के लिए उन्ह गोली देने को फिर हाजिर हो गया। बादशाह खाँ काफी दिलचस्पी से उसकी हरकतो को देख रहे थे और उन्होन अपन साथियो का भी ध्यान इस ओर दिलाया। यकायक वह बिडला की ओर मुडे और कहा, "खुदा ने तुमको दौलत दिया है और हमको दिल। हम तो खा खाकर मरेगा और तुम देख देखकर मरेगा।" इस पर सभी लोग खूब जी खोलकर हँसे, लेकिन गाधीजी उनके इस तर्क से सोच मे पड गय और उन्होने बादशाह खा से अपने विचार कुछ और समझाने के लिए कहा। गाधीजी न उनकी टीका बहुत ध्यान से सुनी और आखिर मे अपने मेजबान से कहा कि वह हर रोज कुछ मिनट पठान नेता के साथ गुजारा करें और उनसे कुछ नसीहतें लिया करें।

बादशाह खाँ अहिसा के पुजारी हैं, लेकिन वह इतने व्यावहारिक और अमली इसान है कि किसी असाधारण परिस्थिति म सहज प्रवृत्ति का सहारा लेने की आवश्यकता की उपक्षा नही करते थे। हम लोग एवटाबाद जिले मे 'भारत छोडो' आदोलन के दौरान नजरबदी की मियाद काट रहे थे कि 1943 के विनाशकारी और भयकर बगाल के अकाल की खबर आयी। 30 लाख से अधिक लोगो की मौत की खबर से स्वाभाविक रूप से हम व्याकुल हो गये। वली अक्सर यह पूछते कि भूखे लोग अँग्रेजो के मुह से रोटी क्या नही छीन लेते? बादशाह खा ने हमारी विचारधारा की हिमायत की तो हम ताज्जुब हुआ। उन्होने कहा, इस तरह स मरने से अहिसा का मकसद पूरा नही होता। यह बुजदिली है। कौन एक पूरी कौम को बुजदिल बनाना चाहेगा? उनमे कुछ करन की हिम्मत की कमी है। कोई उन्हे रास्ता बताने वाला नही है। अँग्रेज सुभाष बाबू के बच निकलन के लिए इन गरीब लोगो को सजा दे रह है। व कितन निदयी और वरहम हैं! क्या खुदा इन पर इसानी हरकतो के लिए उन्ह माफ करेगा?"

पेशावर म ही दो विदेशी अतिथि हमारे साथ आकर ठहर। हमारा पूरा खानदान ही इन्ह चमत्कारी विभूतिया मानता था। इन्होंने मेरे दिमाग पर गहरा असर डाला। इनम से पहले मेहमान रउफ ओराब्वाय 1932 म आये थे, जो रउफ पाशा के नाम से मशहूर थे। तुर्की के फौजी जहाज 'हमीदिया' के साहसी कप्तान के रूप मे उन्होने काफी नाम कमाया था। पहले महायुद्ध मे उन्होने मित्र-राष्ट्रो के कई जहाज डुबो दिये थे। बाद म वह तुर्की के प्रधानमत्री बन। वह मेरे भाई अब्दुररहमान के दोस्त थे जो 1912 मे तुर्की चले गये थे और पहले विश्व युद्ध मे वहाँ की फ़ौज म भर्ती हो गये थे और बाद म क्राति के घटना प्रवल, उथल पुथल

वाले वर्षों मे उन्होंने अतातुर्क का साथ दिया था। मेरे भाई आखिर मे 1923 में अफगानिस्तान में तुर्की के पहले राजदूत बने। 1926 में इस्तांबोल में उनको कत्ल कर दिया गया। आमतौर पर यह कहा जाता था कि वह रउफ पाशा के धोखे मे मारे गये, जिनके साथ वह ठहरे हुए थे और जिनसे उनकी शक्ल बहुत मिलती जुलती थी।

स्वाभाविक था कि रउफ पाशा को अपने बीच पाकर सारा खानदान उमग और जोश से भर उठा था। उनकी देश भक्ति और अनोखी स्वार्थहीनता का कोई जवाब नही था। अतातुर्क से मतभेदो के कारण वह पेरिस म स्व निर्वासन का जीवन बिता रहे थे। छिपकर रहने वाले भूतपूर्व प्रधानमन्त्री की हैसियत से उन्ह अपनी गुजर बसर करने के लिए टैक्सी ड्राइवर की हैसियत से भी काम करना पडा, लेकिन उन्होने कभी शिकायत नही की। हममें से जो लोग उनसे जिंदगी के इस दौर के बारे मे सवाल पूछते तो उन्ह वह टका सा जवाब दे देत, "मैं यहाँ कीचड उछालने के लिए नही आया हूँ।" एक मौके पर उन्होने हम कौमी पोशाक पहने अतातुर्क का एक फोटो भी दिखाया। "इसी तरह से उन्होन हमारी जनता का नेतत्व करके उसे विजय दिलायी थी और अगर फिर कोई खतरा पदा हुआ तो वह एक बार फिर रहनुमाई करेंगे।" उन्होन फोटो को चूमा और फिर अपनी जेब मे रख लिया। एक ऐसे इसान के लिए इतनी निष्ठा देखना बहुत मम स्पर्शी था जिसकी वजह से उन्हे अपना घर परिवार छोड देना पडा था। वह यह मानते थे कि अतातुर्क बेजोड देश भक्त थे और वह उनके बारे मे कोई बुरी बात कहना या सुनना गवारा नही करते थे। उनकी ईमानदारी और स्वार्थहीनता इससे साबित होती है कि उन्होन अब्दुरहमान के हिस्से की जायदाद कबूल करन के हमारे खानदान के प्रस्ताव को नामजूर कर दिया, लेकिन इस प्रस्ताव से वह अभिभूत हो गये। उन्होंने मेरे बडे भाई हाजी मोहम्मद अमीन को गले लगा लिया, मरे जसे छोटे बच्चो को प्यार किया और कहा, 'रुपया आसानी से मिल सकता है लेकिन मैं उसका क्या करूँगा? अब्दुरहमान के भाइयो और बहनो की मुहब्बत ज्यादा कीमती चीज है। इसकी मुझे जरूरत होगी और मुझे यकीन है कि आप लोग मुझे हमेशा बेहद मुहब्बत देते रहेगे।"

अगले साल मशहूर तुर्की क्रांतिकारी लेखिका खालिदा अदीब खानम आयी। वह भी मेरे भाई की दोस्त रही थी। अपनी मशहूर किताब **टर्किश आरडियल** (तुर्की की अग्नि परीक्षा) मे उन्होन मेरे भाई के बारे में लिखा था, "जिस उद्देश्य म वह विश्वास रखते थे उसके प्रति इतनी आदर्शवादी निष्ठा रखने वाला इसान मैंने नही देखा।' अपन ज्यादातर वक्त मे वह हमे 'जिंदा रहने के तुर्की के सघर्ष" के दौरान अपने अनुभवो के बारे म बताती रहती थी। शुरू म वह अंग्रेजी म लिखती थी ताकि 'दुनिया को मालूम हो कि हम पर क्या गुजर रही है लेकिन अब वक्त आ गया है कि इन किताबो को तुर्की जुबान म छापा जाये ताकि मेरी जनता अपने अतीत को समझे। 1933 म भारत की स्थिति और आने वाली घटनाओ के बारे म उन्होंने जो लिखा उससे चीजो को समझने और देखन की उनकी विलक्षण प्रतिभा का पता चलता है। उन्होन अब्दुल गफ्फार खाँ को भारत के एक ही राष्ट्र होन के विचार का प्रतिपादक बताया था लेकिन साम्प्रदायिकता की लहर उठने और परिणामत भारत का विभाजन होन के बारे म आशकाएँ भी व्यक्त की थी।

इन दो तुर्की विभूतियो म सपर्क, जो अतातुर्क से सद्धांतिक तौर पर सहमत

न होते हुए भी उस 'महानतम तुर्क' के बारे मे कोई आलोचना सुनना गवारा नही करते थे, मेरे लिए बेशकीमती अमली सबक था। इससे मुझे हमेशा के लिए यह अदाजा हो गया कि क्रातिकारियो पर क्या गुजरती है उन्हे किन मुश्किलो से गुजरना पडता है और, उनकी कोशिशो के कामयाब होने के लिए कितने दृढ निश्चय की जरूरत होती है। बेशुमार भाषण और नसीहतें मुझे इतना सही निर्देशन नही दे सकती थी। यह मेरी खुशकिस्मती थी कि मुझे उनसे तुर्की मे एक बार फिर मिलने का मौका मिला, जहाँ मैं कई साल बाद अगस्त 1949 मे भारत का प्रभारी दूत बनकर गया था। मैं उनसे उनके घरो पर उनके दोस्तो और सबधियो से मिला और उनकी मेजबानी का आनद उठाया। उन्होने इतना अपना पन दिखाया कि मुझे लगा कि मैं भी उन्ही म स एक हूँ, कोई गैर नही हूँ।

महात्मा गाधी स मेरा पहला सपर्क, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, 1929 म अलीगढ मे हुआ। वह मुस्लिम यूनिवर्सिटी म पाँचवी बार आये थे। उन दिनो सर सैयद अहमद खा के पोते सर रास मसूद वहा के वाइस-चासलर थे। गाधीजी का इतना शानदार और जोश भरा स्वागत किया गया कि छात्र यूनियन का समारोह दरअसल बेकाबू सा हो गया। उमडती हुई भीड से उन्हे बचाने के लिए लबे-तडगे रास मसूद न उन्हे एक तरह से गोदी मे उठा लिया और मच तक इसी तरह ले गये। उन्होंने गाधीजी के लिए निश्चित कुर्सी पर उन्हे बिठा दिया। यह एक याद बन जाने वाला दृश्य था। छत से महात्मा गाधी पर गुलाब की पखुडिया बरसायी गयी। खचाखच भरा हुआ हॉल 'महात्मा गाधी जिदाबाद" के नारो से गूज रहा था। जस ही गाधीजी ने बोलना खत्म किया, मैं अपनी आटोग्राफ बुक लेकर उनके पास गया। उन्होने तेज नजरो से मुझे घूरा और पूछा, 'तुम खादी क्यो नही पहन हुए हो ?" मैंने जवाब दिया, "यह का यूनीफार्म नही है' और सोचा कि मैं मच बात कह रहा हूँ। लेकिन यह सच नही था क्योकि निर्धारित काली शेरवानी और बाकी पोशाक खादी से भी बन सकती थी। खैर, उन्होन हस्ताक्षर कर दिये और उर्दू मे कुछ शब्द लिखे। शायद इस खूबसूरत और जानदार भारतीय भाषा म उन्होन पहली बार कुछ लिखा था। गाधीजी न हमे नेतृत्व प्रदान किया था और विदेशी हुकूमत से दबी पीढी को नयी हिम्मत दी थी जिसकी उसे बेहद जरूरत थी। भारतीय उम्मीद और भरोसा छोड चुके थे और चाहते थे कि कोई उनम नयी जागति पदा करे। गाधीजी के बारे मे इतने लोगो ने इतना लिखा है कि उस भीड म शामिल होने मे हिचकिचाहट होती है। मुझे सबसे ज्यादा जिस बात ने प्रभावित किया वह यह थी कि शुरू से ही वह उन बातो के खिलाफ थे जिन पर अमल न हो। उन्होने जनता के सामने नये विचार रखे और अपने अनुयायियो को नरमी से, लेकिन दृढ निश्चय से बात करने की सलाह दी।

मैं अगली बार उनसे 1931 मे मिला। दिल्ली मे गाधी इरविन वार्ता[1] हो रही थी। कुछ काग्रेसी नेता दरियागज मे डाक्टर एम० ए० असारी के मकान मे ठहरे हुए थे। मैं अपने बडे भाई मोहम्मद याहिया के साथ डाक्टरी जाच के लिए वहाँ गया हुआ था। यही पर हम मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू से बात करने का मौका मिला। सरोजिनी नायडू भी वहा मौजूद थी, लेकिन उन्होने मुझे प्रभावित नही किया। उनके तौर तरीके स मुझ बाद म भी चिढ होती थी।

1 गाधी इरविन समझौते पर 5 मार्च 1931 को दस्तखत हुए थे।

वह बढिया खाना और गप लडाना पसद करती थी। कहा जाता है कि मोती लालजी उनकी बिना सोचे समझे बोलने की आदत से इतना तग आ चुके थे कि वह उन्हे अपनी वर्किंग कमेटी मे शामिल करना नही चाहते थे, लेकिन गाधीजी का खयाल दूसरा था। यही समय था जब मैं जे० एम० सेनगुप्त से मिला। उन्होंने मेरी आटोग्राफ बुक मे जो लिखा वह उस दौर के दिमागो मे छाये हुए खयालो का प्रतीक था जिसमे हम अधिकाधिक लीन होते जा रहे थे 'एक आजाद इसान की तरह सोचो और काम करो और तुम्हारे मुल्क को आजाद होने मे देर नही लगेगी।' डॉक्टर असारी ने ही गाधीजी से हमारा परिचय कराया और मेरे भाई अब्दुरहमान से अपनी दोस्ती के बारे मे उन्हे बताया। गाधीजी बडे ध्यान से सुनते रहे और उन्होंने मुझे अपनी सेहत का खयाल रखने की सलाह दी। जब हम लोग चलने लगे तो उन्होंने कहा, "अपने तुर्की भाई की तरह मजबूत इसान बनने की कोशिश करो।"

लेकिन भारत की राष्ट्रीय आकाक्षाओ से मेरा घनिष्ठ सबध 1936 मे जाकर स्थापित हुआ। मेरे सामने कई रास्ते थे, लेकिन मैं एक ही तरफ खिचता रहा। पहला आम चुनाव होने वाला था। सरहदी इलाके से अब्दुल गफ्फार खाँ की गैर मौजूदगी मे उनके बडे भाई डाक्टर खान साहब ने पार्टी का नेतृत्व सँभाल रखा था। गफ्फार खाँ को अपने वतन सरहदी इलाके मे घुसने की इजाजत नही थी। डॉक्टर खान साहब ने मुझसे कहा कि प्रात के चुनाव दौरो मे मैं उनके साथ रहूँ। यह एक ऐसा रोमाचक अनुभव था कि इसकी वजह से खुद-ब-खुद मेरा ताल्लुक और गहरा होता गया, लेकिन मैंने काग्रेस का चवन्नी वाला सदस्य बनने का लालच हमेशा रोका। इस रस्म के बिना भी कोई व्यक्ति पूरे दिल से सगठन का साथ दे सकता था। मेरे मन मे कही यह डर था कि यह छोटा सा कदम उठाने से आखिर कार सत्ता की सीढी पर चढने की आम होड मे शरीक होना पडेगा। मुझे कभी अपने इस फैसले पर या यह रास्ता चुनने पर पछतावा नही हुआ जिसमे एक अनजाने सघर्ष के खतरे मौजूद थे। इससे यह रास्ता और भी सतोष देने वाला और जोखिम भरा बन गया।

सरहद मे खुदाई खिदमतगार आदोलन के उभार से दो चीजें हुइ। इसने साप्रदायिकता की ताकतो का सामना किया और राष्ट्रीय फूट के बढते रुझान को रोका। इस बात ने कि यह आदोलन एक मुस्लिम प्रधान इलाके मे उभरा और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस से सबद्ध था, शासको के सारे मसूबे चकनाचूर कर दिए। स्वाभाविक तौर पर वे यह चाहते थे कि मुसलमान उनकी तरफ रहे। इसलिए उन्होंने यह एका तोडने की कोशिश की। पठानो के दिलो मे फूट के बीज बोये गये जबकि उत्तर के उन्मादियो के नापाक इरादा' की कहानियो से हिंदुओ के दिमागो मे जहर घोला गया। साप्रदायिकतावादी लोगो को विभिन्न तरीको से विरोध करने के लिए उत्साहित किया गया और उन्हे सरक्षण व दूसरे फायदो का लालच दिया गया। इसका एक उदाहरण पेशावर के एक सपन्न जमीदार का है। मेहरचद खन्ना को सरहदी इलाके मे ब्रिटिश साम्राज्य के हितो को आगे बढाने के लिए चुना गया। हिंदू महासभा का सदस्य होने के नाते वह पडित मदनमोहन मालवीय को जानते थे। मेहरचद उनके पास 1933 मे गये और उनके जरिए गाधीजी के सचिव और विश्वासपात्र महादेव देसाई से उनका परिचय हो गया। वह एक कहानी गढकर फैलाने मे कामयाब हो गये जिसे वह अब्दुल गफ्फार खाँ का असली चेहरा कहते थे। उन्होंने कहा कि पठानो के

दिलो मे भारत के लिए बिलकुल प्यार नही है और बताया कि वे जो नारे लगाते हैं वे धार्मिक हैं जसे नारा ए-तकबीर—अल्लाहो अकबर, या फखे-अफगान जिंदाबाद। और उनका सबसे बुरा नारा है इस्लाम बर्रो। अतत यह बात गाधीजी तक पहुँचायी गयी। उन्हान पहला नारा खिलाफत आदोलन के दौरान अक्सर सुना था और उसके मतलब जानते थे। 'सच्चाई की आवाज—अल्लाह महान है'। दूसरे नारे का मतलब बताने की जरूरत नही थी, लेकिन उन्होने तीसरा नारा कभी नही सुना था और वह उसका अथ जानना चाहते थे। जब उन्हे बताया गया कि इसका मतलब सिफ 'इस्लाम के लिए आजादी' है तो उनकी प्रतिक्रिया दृढ और सकारात्मक हुई। "यकीनन आप यह उम्मीद तो नही कर सकते कि पहाडो मे रहने वाले पठान गुजरात मे रहने वाले जनियो की आजादी की माँग करें। जब पूरा मुल्क दुश्मनो स छुटकारा पा लेगा, तभी भारत राहत की सास लेगा। पठाना को अपना फज अदा करने दो।" महात्मा गाधी का सोचने विचारने का जो स्पष्ट तरीका था उसी की वजह से पठान उनके जीवन-भर के साथी बन गये। भरोसे से भरोसा पदा होता है। मेहरचद भी 1945 मे नये मोर्चे मे शरीक हो गये। उस वक्त तक उन्हे यह यकीन हो गया था कि राष्ट्रवादी होने मे ही उनका फायदा है।

दिल्ली मे 1937 मे राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान मैं गाधीजी के और नजदीकी सपक मे आया। बादशाह खा को अभी तक सरहदी सूबे मे घुसने की इजाजत नही थी, इसलिए वह अपना ज्यादातर वक्त गाधीजी के साथ गुजारते थे। मैं दिल्ली मे था और बादशाह खा के साथ हर जगह जाता था। गाधीजी हमसे बहुत स्नेह रखते और हमेशा मुसकराकर और हाथ हिलाकर हमारा स्वागत करते, लेकिन जब कभी उन्होन मेरी पीठ थपथपायी तो मैंने महसूस किया कि उनके देखने म दुबले हाथ इतन कमजोर नही थे। उनके सवाल सीधे सादे होते, लेकिन इस तरह से पूछे जाते कि उनके जवाब से बहुत ज्यादा जानकारी मिल जाती।

उसके बाद आया 1938 और गाधीजी की उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रात की यात्रा। उन्होन सभी छ जिलो का व्यापक दौरा किया और कबायली प्रतिनिधि मडला से भी मिले। इन लडाकू लोगो का अहिंसा के सिद्धात को मजूर करना एक अभूतपूव घटना थी। गाधीजी चाहते थे कि जहा तक मुमकिन हो ज्यादा से ज्यादा पठानो से मिलें और इस अजनबी मूल्य-सहिता से उनक लगाव और उनकी प्रतिक्रिया को समझें। इसी मौके पर गाधीजी ने यह विश्वास प्रकट किया कि बहादुर पठानो के बीच ही अहिंसा सही मानो मे पनपेगी। उनके दिल मे पठाना के नेता के प्रति असीमित सम्मान था। सीमा प्रात से लौटने के बाद उन्होने लिखा "खुदाई खिदमतगार इस समय चाहे जो कुछ हो या आखिर मे चाहे जो कुछ बनकर निकलें लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि उनके नेता जिन्हे वे बेहद खुश होकर बादशाह खाँ कहते है, क्या है? इसम कोई सदेह नही कि वह खुदा के बदे हैं। उन्हे यकीन है कि खुदा उनके सामने मौजूद है और वह यह जानते हैं कि अगर खुदा चाहेगा तभी उनका आदोलन कामयाब होगा। अपन उद्देश्य के लिए तन मन सब कुछ निछावर कर देने के बाद भी उन्हे इसकी कोई चिंता नहीं है कि नतीजा क्या निकलेगा। उनके लिए इतना समझ लेना ही काफी है कि अहिंसा को पूरे तौर से मान लेने के अलावा और किसी तरीके से पठानो का उद्धार नही हो सकता। वह चाहते है कि पठान जितना बहादुर है उससे ज्यादा

बहादुर हो जाये और अपनी बहादुरी में सच्चे ज्ञान की वृद्धि करे।"[1]

पठानों के लिए गांधीजी एक महापुरुष थे जिन्हें वे स्नेह से मलंग बाबा या संत कहते थे। इस दुबले-पतले इंसान को वास्तव में पठानों के बीच रहते देखना एक असाधारण अनुभव था। उन्होंने डाकुओं और लुटेरों के खिलाफ अपने आवास की सुरक्षा पर आपत्ति की। उन्होंने कहा कि मुझे ईश्वर पर भरोसा है। उनकी ईमानदारी, सादगी और निर्भयता ने उनके लड़ाकू मेजबानों पर गहरा और स्थायी प्रभाव डाला। पठान उनके साहस और दृढ़ निश्चय पर रीझ गये और गांधीजी को पठानों का साफ दो-टूक जवाब देने का तरीका और उनकी हँसी मजाक की भावना पसंद आयी। गांधीजी एक गाँव में दो दिन रुके और वहाँ के एक बुजुर्ग उन्हें इतना चाहने लगे कि उन्होंने उनसे वहीं बस जाने का आग्रह किया। गांधीजी मुसकराये और वादा किया कि वह वहाँ फिर आयेंगे, लेकिन वह बुजुर्ग अपनी बात पर जिद करने लगे और अपनी बात पर जोर देने के लिए उन्होंने एक कहानी सुनायी "एक गांव में कोई जियारत की जगह नहीं थी। एक संत उधर से गुजरे तो गांव वालों ने जोर दिया कि वह उस गांव को ही अपना घर बना लें। उन्होंने इंकार किया। इस पर एक जोशीले आदमी ने उत्तेजित होकर कहा, 'अगर आप हमारे साथ रहने के लिए तैयार नहीं हैं तो हम आपको मार डालेंगे और यहीं दफन कर देंगे, जिससे हमारी जियारत मजार की जरूरत पूरी हो जायेगी'।" गांधीजी को यह मजाक बहुत पसंद आया और वह बोले, "खुदा का शुक्र है कि तुम लोगों ने अहिंसा को मान लिया है वरना आज मैं मर चुका होता।' एक बार एक नाई को उनके सिर के बाल बनाने के लिए बुलाया गया। उसने बहुत मुलायमियत और मुहब्बत से अपना काम किया, लेकिन वह अपने इस काम का विज्ञापन करने से अपने को नहीं रोक पाया और उसने एक बड़ा सा बोर्ड लगाया जिस पर लिखा था, मैंने महात्मा गांधी की हजामत बनायी है।" बोलचाल की भाषा में हजामत न सिर्फ दाढ़ी मूछ बनाने को कहते हैं बल्कि किसी इंसान को ठग लेने को भी कहते हैं। पशावर ही में मैंने महात्मा गांधी के प्रभावकारी व्यक्तित्व का असर महसूस किया। हम दोनों के बीच मैत्री और सदभाव के बंधन और मजबूत हो गये। वह मुझे पसंद करने लगे।

गांधीजी जब 19 अक्तूबर, 1939 को कमला नेहरू अस्पताल का उद्घाटन करने इलाहाबाद आये तो मैं आनंद भवन में ठहरा हुआ था। जवाहरलाल नेहरू ने अपने मकान के लंबे चौड़े अहाते में जो जमीन दी थी, उसी पर यह अस्पताल बनाया गया था। गांधीजी के वहां ठहरने के दौरान मैं एक बार बहुत उलझन में पड़ गया, जब मैंने देखा कि जब उनके कपड़े धोये जाते हैं तो परिवार के दो नौकर उन थोड़ी सी धोतियों और अँगोछे के सूख जाने तक उनकी हिफाजत करते हैं। बाद में जब मुझे किसी ने बताया कि इससे पहले एक बार ऐसा हुआ था कि किसी चालाक आदमी ने ये धोतियां चुराकर उनके टुकड़े टुकड़े कर डाले थे और 'इस पवित्र कपड़े की बिक्री से अच्छी खासी रकम कमा ली थी' तो मुझे बहुत हँसी आयी।

महात्मा गांधी के साथ कुछ व्यक्तिगत मुलाकातों में उस महान पुरुष की विनोदप्रियता का पता चला, लेकिन इस जाहिरा विनोदप्रियता के पीछे इंसानों और उनसे उत्पन्न घटनाक्रम की गहरी समझदारी होती थी। एक बार फरवरी

1 हरिजन 11 नवंबर 1938

1940 मे वह कलकत्ता से ट्रेन से लौट रहे थे। बादशाह खाँ और मैं उनके साथ थे। हमेशा की तरह एक थर्ड-क्लास का डिब्बा उनके और उनके दल के लिए आरक्षित कर दिया गया था। सुभाष बाबू के साथ उनके मतभेद अपनी चरम-सीमा पर थे। बगाल का नौजवान गाधीजी और उनकी नीतियो के विरुद्ध गुस्से से भरा हुआ था। ट्रेन जब सीरामपुर से चलने लगी तो बापू पर एक चप्पल फेंकी गयी। यह खुली खिडकी से अदर आयी। गाधीजी ने फौरन ही एक टिप्पणी लिख-कर उसे चप्पल के पासल के साथ सुभाष बाबू के पास भेज दिया। उन्होने लिखा कि इसे मेहरबानी करके इसके मालिक के पास भेज दिया जाये, क्योकि उसे इसके बिना असुविधा हो रही होगी। यह पकेट उनकी अगली मजिल से भेज दिया गया। गाधीजी की यह कारवाई राजनीति से प्रेरित थी। शायद वह चाहते थे कि सुभाष-चद्र बोस को शर्मिंदगी महसूस हो कि उनके समथक कसे है। गाधीजी की इस हरकत के पीछे महात्मावाद लेशमात्र भी नही था। दूसरे मायना मे भी इस यात्रा से बहुत से सबक मिले। रास्ते मे छोटे छोटे स्टेशनो पर इकट्ठी भीड न उदारता से चदा दिया। लोग पैसा डिब्बे मे फेंक दते थे। उनके हाथ म धन देकर लोगों को खुशी होती थी, क्योकि उन्ह भरासा होता था कि यह धन एक अच्छे काम मे इस्तेमाल होगा। उनके साथ के लोग इन छाटे छोटे स्टेशनो पर मिली एक एक पाई का हिसाब रखते थे।

मैंन उनके साथ सेवाग्राम मे जो समय व्यतीत किया उससे मुझे बहुत फायदा हुआ। वह हमेशा मेरा जरूरत से ज्यादा खयाल रखते थे। बादशाह खाँ जब कभी वर्किंग कमेटी की बैठको मे शरीक होते तो गाधीजी उन्ह अपने साथ ही ठहरात, जबकि बाकी सदस्य वर्धा म उन दो अतिथिगृहो मे ठहरते जिनकी व्यवस्था सेठ जमनालाल बजाज कर देते थे। यह बात आमतौर पर मशहूर थी कि जमनालाल मणिबेन पटेल, मदुला साराभाई और खुर्शीद नौरोजी जैसी राज-नीतिक जगत की पुरानी कुमारियो की शादी कराना चाहते थे, इसलिए गाधीजी ने उनका नाम शादीलाल रख दिया था। जमनालाल बजाज गाधीजी की बहुत दिल से सेवा करते थे लेकिन उसके फायदे भी थे। इसकी वजह से वह महात्मा गाधी के चारो ओर अपन भरोसे के आदमी रखने मे कामयाब हो गये थे। वामपथी क्षेत्रो मे सदेह था कि इन लोगो के जरिए बजाज को मालूम हो जाता था कि क्या हो रहा है और इन्ही लोगो की मदद से वह आश्रम मे कोई कहानी फैला देत थे और समय समय पर घटनाक्रम को प्रभावित करते रहते थे।

एक बार गाधीजी के जन्मदिन पर हमको रोज की तरह उबला हुआ कद्दू परोसा गया। मैंने धीरे से कहा, "आज हिंदुस्तान के बादशाह का जन्मदिन है और आज भी कद्दू!" गाधीजी ने अपनी पोपली हँसी हँसते हुए पूछा, "क्या चाहिए?" मैंन कहा, "बकरा या मुर्गा हो तो काम बने, कद्दू से क्या होता है?" बादशाह खाँ ने मेरी ओर गुस्से से दखा और बाद मे मुझे बताया, "अगर गाधीजी ने वर्धा रेलवे स्टेशन से कुछ मासाहारी भोजन मँगवाया होता तो आश्रमवासी भूख हडताल कर देते।'

आश्रमवासियो के बारे मे कुछ शब्द। इसानो का यह एक बेतरतीब समूह था। अपने समय के महानतम पुरुष के नजदीक रहते हुए भी वे ओछी प्रवृत्तियो और आदतो का प्रमाण दते थे। उनमे आपस मे स्नह भी नही था। राजकुमारी अमतकौर, जो बाद म मत्री बनी, गाधीजी की परिचारिका सुशीला नय्यर को जो बाद मे समाजी कायकर्ता बन गयी थी, फूटी आँखो नही देख सकती थी।

उनके शक्तिशाली निजी सचिव महादेव देसाई, जिनका अगस्त 1942 मे देहावसान हो गया, ज्यादातर आश्रमवासियो को नापसद करते थे। गाधीजी के भतीजे मनु गाधी का छोडकर बाकी सभी लोग गाधीजी की निष्ठावान पत्नी कस्तूरबा तक की उपेक्षा करते थे। कोई भी दो आश्रमवासी एक सा खाना नही खाते थे। उनमे से हर एक की कोई-न-कोई सनक थी, जिस पर उसे घमड था। उनम से अगर एक तश्तरी भरकर कच्ची भिडी खाता तो दूसरा एक प्याला दूध पीता जिसमे मुट्ठी भर मूगफली भिगोयी होती। अगर एक अनाज से बचता तो दूसरा विटा मिन के खिलाफ बातें करता। वे आपम म हिल मिलकर नही रहते थे, हालांकि मैंने सभी के साथ दोस्ताना ढँग से रहने की कोशिश की। सिवाय हिंदुस्तानी तालीमी सघ के ई०डब्ल० अरण्याकन और उनकी पत्नी आयशा के, जो सहृदय और अच्छे मेजवान थे तथा शाम को प्याले भर-भरकर कॉफी पिलाते थे, बाकी का बरताव ऐसा था कि महसूस होता कि यहा मेरी जरूरत नही है।

जापान के साथ लडाई के दौरान अनेक युद्ध-सवाददाता भारत मे इकट्ठे हो गये थे। इनमे से हरएक गाधीजी से मिलने के लिए उतावला रहता था, लेकिन गाधीजी को कुछ समय पहले एक विदेशी पत्रकार ने गलत ढँग से उद्धृत किया था और वह पत्रकारो से मिलन को तयार नहीं थे। बिलकुल मायूस होकर वे जवाहर लाल नेहरू से मिले और उनसे आग्रह किया कि पशे के लिहाज से उनके लिए यह बहुत बइज्जती और बदनामी की बात होगी कि वे भारत के महानतम पुरुष से मिले बिना चले जायें। उन्होने सुझाव दिया कि वे सब, जिनकी सख्या लगभग 60 थी, उनसे एकसाथ मिल लें। उन्होने यह भी वादा किया कि वे सिफ एक सवाल पूछेंगे। नेहरूजी ने इसे बहुत मुनासिब अनुरोध माना और गाधीजी को तयार कर लिया। इस काम के लिए एक तारीख तय की गयी। विदेशी पत्रकार 'इस चालाक लोमडी से अधिक स अधिक जानकारी हासिल करने के लिए एक व्यापक सवाल बनान के लिए जमा हुए। उन्होन काफी विस्तार से हर ऊँच-नीच पर विचार करने के बाद आखिर म तय किया कि सवाल युद्ध के परिणाम और भविष्य की तसवीर के बारे में उनके विचार के बारे मे पूछा जाय। यह सवाल उन्हे मजबूर कर देगा कि विशेष खबर के लिए जरूरी सभी जानकारी दे। वे बढिया सूझ बूझ की अपनी कामयाबी स खुश थे। उन्होन सब्र के साथ निर्धारित समय का इतजार किया और आखिरकार उन लोगो को एक कमरे मे लाया गया जहाँ गाधीजी एक कोने म पालथी मारे बैठे हुए थे। उन्होने हमेशा की तरह मुसकराकर उनका स्वागत किया और जमीन पर बठने का इशारा किया। यह औपचारिकता पूरी होन के बाद पत्रकारो के प्रवक्ता ने इस महान सम्मान के लिए उनका शुक्रिया अदा किया और पूछा गाधीजी, हम सब लोग जो यहाँ इकट्ठा हैं सीधे आपस यह जानना चाहते हैं कि आपका क्या खयाल है कि युद्ध के बाद क्या होगा? वह अभी ठीक स बठ भी नही पाय थे कि गाधीजी न जवाब दिया "शांति और मुसकराकर उन्हे विदा कर दिया। पत्रकार चक्कर मे पड गये। बाद में उन्होन दोस्तो के सामन यह माना कि इस एक शब्द म सीधे उत्तर के अलावा उन्होने जितने भी और उत्तर हो सकते थे उनका अनुमान लगा लिया था।

असली बात पर आ जायें। जसे जसे ज्यादा से ज्यादा लोग गुलामी की जेह नियत छोडन लग वसे वसे राष्ट्रीय भावना बदलती गयी। 1930 वाले दशक के प्रारभ में जो दो गोलमेज सम्मेलन हुए उनस कोई खास नतीजा नही निकला। उनमे सिर्फ़ उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात मे सुधार और 1935 के भारत सरकार

क़ानून के वायदे मिले। अँग्रेज़ों ने इसे भारत की जनता को सत्ता के हस्तातरण की दिशा मे एक कदम बताकर इसका प्रचार किया। यह बात सही नही थी। असली सत्ता जहाँ पहले थी, वहीं रही। विदेशी नियत्रण और निहित स्वार्थों की सुरक्षा पहले की तरह ही जारी रही। काग्रेस स्वाधीनता और स्वतत्र रूप से निर्वाचित सविधान सभा द्वारा भारत का सविधान बनाने का सकल्प ले चुकी थी। 1935 के कानून का यह उद्देश्य नही था। कुल आबादी के सिर्फ दस प्रतिशत लोगो को मतदान का अधिकार दिया गया था। फिर भी काग्रेस ने अपना यह निर्विवाद दावा साबित करने के लिए कि वह दबी-कुचली जनता का प्रतिनिधित्व करती है, चुनाव लडे। गाधीजी के चमत्कारी नेतृत्व में काग्रेस ने अनेक परीक्षाओ का सामना किया था। ये मुसीबतें झेलने से काग्रेस की प्रतिष्ठा बढी थी। 1921, 1930 और 1932 के आदोलनो और अत में 1942 के अहिंसात्मक 'भारत छोडो' आदोलन ने अनुशासन और साहस की भावना पैदा कर दी थी। गाधीवादी तरीके का यह लबा सघर्ष बीच-बीच में स्थगित भले ही कर दिया गया हो, लेकिन कभी खत्म नही किया गया। हर अतराल में जनता को मजबूत करने, उसमे नयी स्फूर्ति भरने और उनमे नयी शक्ति का सचार करने का प्रयास किया गया। वे देख रहे थे कि मजिल लगातार करीब आती जा रही है। यहाँ तक कि लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया गया। ऐसे लोग भी थे जो गाधीजी द्वारा अपनाये गये तरीको का मज़ाक उडाते थे और उनकी आलोचना करते थे, लेकिन उन्हे भी यह मानना पडा कि उनकी ये कोशिशें कामयाब हुई।

1930 1932 के असहयोग आदोलन के दौरान पठानो ने कडी परीक्षा दी और मुसीबतें झेली। उन्होने आजादी के लिए सघर्ष करने वालो के साथ अपना भाग्य जोड लिया था। वे मौत के साये मे रहे थे और कठोर जीवन की मुसीबतें झेली थी। उन्होने निर्दयी सत्ता का साहस के साथ सामना करने की ठान ली थी, उन्होंने एक साम्राज्य की शक्ति से टक्कर ली थी और वे सशस्त्र हमलावर के सामने मुसकराते हुए खडे रहे थे। सघर्षों के दौरान ही हमेशा जिंदगी का तरीका बदलता है और मुसीबत के वक्त ही इसान बहुमूल्य सबक सीखता है। पठानो ने इस दिशा मे उल्लेखनीय काम किया। वे अत्यत निडर और अहिंसात्मक सत्याग्रही बन गये। उनकी सहनशीलता की कहानिया गाथा बन गयी। शेष भारत मे दूसरे मुसलमानो ने, जो ब्रिटिश समर्थक और मुस्लिम लीग की राजनीति के हिमायती हो गये थे, पठानो की तकलीफो को अनसुना कर दिया। इससे स्वाभाविक रूप से उन्हे तकलीफ हुई। लेकिन इस कमी को काग्रेस ने दूर किया और खुलकर उनका समर्थन किया। उसने सरकारी दमन की घटनाओ को प्रकाश म लाने के लिए 1930 के दशक की केंद्रीय असेंबली के अध्यक्ष सरदार विट्ठलभाई पटेल की अध्यक्षता मे एक जाच समिति नियुक्त की। जनता की तकलीफो पर प्रकाश डाला गया और उनका प्रचार किया गया, मुसीबतज़दा लोगो के पुनर्वास का प्रबध करने की कोशिशें की गयी। उनकी कुर्बानियो का एक प्रत्यक्ष नतीजा यह निकला कि ब्रिटिश सरकार ने सरहदी इलाके को 'गवनर का प्रात बनाने का फसला किया, ताकि वह उन सुधारो का उपभोग कर सकें जो कि शेष भारत मे पहले ही लागू किय जा चुके थे। मुसलमान नेता 1930 के बाद से उनसे और उनकी समस्याओ से अलग रह थे। पठानो के ध्येय के साथ गद्दारी करने के बाद जब 1936 मे उन्होने पठानो से मुस्लिम लीग मे शामिल होने की अपील की तो स्वाभाविक रूप से उसका कोई असर नही हुआ।

चाय लाने का हुक्म दिया जिसके साथ केक का एक टुकडा भी आया। हम लोग एक घटे से ज्यादा देर तक बातें करते रहे। उन्होंने इसके बाद माफी मागी और कहा कि नवाबज़ादा लियाकत अली, जो बाद मे पाकिस्तान के प्रधानमत्री बने, और एक अन्य प्रमुख लीगी नेता सर मोहम्मद यामीन उनसे मिलने के लिए इतज़ार कर रहे हैं। उन्होने सुझाव दिया कि मैं फिर आऊँ। ये दोना साहबान बाहर बरामदे मे इतज़ार कर रहे थे। मुझे देखकर वे एक दूसरे से कुछ कानाफूसी करने लगे। एक आपसी दोस्त ने मुझे बाद मे बताया कि उन दोनो का इस बात पर हैरत हुई थी कि जिन्ना ने मुझे एक प्याला चाय पिलायी। यह उनकी आदत नही थी, क्योंकि वह कजूस थे और मेजबानी के लिए मशहूर नही थे। अविभाजित पजाब के मुख्यमत्री सर सिकदर हयात खा ने, जिनके सबसे बडे बेटे शौकत हयात स्कूल मे मेरे साथ पढते थे और आजीवन मेरे दोस्त रहे, एक बार मुझसे इसका ज़िक्र किया था। जब कभी वह लाहौर मे होते तो मैं उनसे मिलने जाता और कभी-कभी उनके यहां ठहरता भी था। सर सिकदर ने हिकारत से एक खोजा का ज़िक्र किया, उनका मतलब जिन्ना से था जो खोजा मुस्लिम थे। मालूम यह हुआ कि 1939 मे मुस्लिम लीग वकिंग कमेटी की बैठक बबई की मालाबार हिल पर माउट प्लेज़ेंट रोड पर जिन्ना की कोठी पर हुई थी। सर सिकदर ने सोचा कि बठक चूकि सबेरे और फिर तीसरे पहर होगी इसलिए उन्हे निश्चित रूप से दोपहर का भोजन दिया जायेगा। इसलिए उन्होंने ड्राइवर से शाम को पाच बजे आने के लिए कह दिया। सबेरे की बैठक दोपहर के करीब एक बजे खत्म हुई। जिन्ना उठकर खडे हुए और बोले, "जनाब हम साढे तीन बजे मिलेंगे।" इतना कहकर वह चले आये। दूसरे लोगो की कारें इतज़ार कर रही थीं और वे उनमे बठकर चले गये। सर सिकदर ने टक्सी ढूढी मगर नाकाम रहे और उन्हे दूसरी बैठक शुरु होने तक इधर-उधर घूमना पडा। उनके दिमाग मे यही वाकया था जब बाद मे उन्होने कहा कि "हर बार जब यह खोजा यहा आता है तो हम हद से ज्यादा उसकी खातिरदारी और खिदमत करते ह। लेकिन उसमे इतनी भी तमीज़ नही कि एक वक्त रोटी को पूछ ले।" जिन्ना ने वेस्टन कोट की पहली मज़िल के कमरे मे मुझे जो एक प्याला चाय पिलायी थी उसे इतना ज्यादा महत्व देना किसी के लिए भी स्वाभाविक था। यह कहने की ज़रूरत नही है कि मुझे उनसे दिल्ली या बबई मे इसके बाद की मुलाकाता मे फिर कभी एक प्याला चाय नसीब नही हुई।

पेशावर मे और बाद मे जिन्ना ने कई बार यह कहा कि वह गफ्फार खा को अपनी तरफ लाने की कोशिश करेंगे। मैं भी इसके लिए उत्सुक था कि वे दोनो स्वस्थ राष्ट्रवादी गुट बनाने के लिए मिलकर काम करें जिसमे सभी मुसलमान शरीक हो। लेकिन उन्होंने इस दिशा मे कोई कदम नही उठाया। अंग्रेज इस तरह की एकता के पक्ष मे नही थे। इसीलिए उन्होने फूट डालने वालो को सरक्षण दिया और मुट्ठी भर पिट्ठुओ को अपनी तरफ करने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्होने आम लोगो के हितो की कोई परवाह नही की। उनका रवया घमड भरा था और उन्हे शायद उम्मीद थी कि गफ्फार खां उनके दरवाज़े पर आकर गिडगिडायेंगे। उनकी अकड तो मशहूर थी ही। खैबर की यात्रा के दौरान, लडीकोतल से एक फोटोग्राफर हमारे साथ तूरखम की सीमात चौकी तक आया, उसने जब कुछ तसवीरें खीच ली तब जिन्ना ने सरपरस्ती के ढँग से उससे कहा, "तुम इनसे काफी पसा कमा सकते हो।"

खुदाई खिदमतगारो न बहुत कठिनाइयो और मुसीबतो का सामना करते

हुए पहले आम चुनाव मे हिस्सा लिया। पार्टी गैर-कानूनी करार दे दी गयी थी, इसलिए उसके रोजमर्रा के कामो पर हर तरह की पाबदियाँ लगा दी गयी थी। फिर भी बहुत से लोग उसकी ओर आकृष्ट हुए। सैकडो और हजारो की तादाद म जो लोग उसकी सार्वजनिक सभाओ म शरीक होते थ, उनकी याद मेरे दिमाग म अभी तक ताजा है। वे अपने साथियो के जोशीले शब्द व्यग्रता से सुनते थ और उद्देश्य के प्रति निष्ठा की शपथ लेते थे। उनके चेहरो पर वे आशाएँ और आकाक्षाएँ झलकती थी जो बहुत दिनो से दबी थी। जब उनके लिए वोट देने का वक्त आया तो उन्होंने बड़े जमींदारो और दूसरे ताकतवर व्यक्तियो की मुफ्त सवारी का लालच ठुकरा दिया। उन्होंने अधिकारियो की धमकियो की परवाह नही की और आजादी के लिए लड़ने वाले का समर्थन करने के लिए पैदल मतदान केंद्रो तक गये। वोट डालने जाना तीर्थयात्रा बन गया और जो लोग वोट डालते वे इस तरह गुलामी का जुआ अपने कधो से उतार फेंकने के दृढ संकल्प का परिचय देते थे। उन्होंने विदेशी हुकूमत के खिलाफ अपनी आवाज बुलद की, तुमने हमारा काफी शोषण किया है और हमारी मातृभूमि को काफी नुकसान पहुँचाया है तुमने हमे गरीबी और मुसीबत के गड्ढे म ढकेल दिया है। हम तुम्हें काफी भुगत चुके हैं। जाओ खुदा के वास्ते जाओ। लोगो ने अपना यह फैसला इस तरह सुनाया कि बहरा भी सुन सकता था।

चुनाव म जीतने के बाद कांग्रेसी क्षेत्रो मे मन्त्रिमडल बनाने और पद स्वीकार करने के बारे म जोरदार बहसें हुई। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, दिल्ली म अप्रैल 1937 म एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। बादशाह खाँ को सरहदी सूबे म वापस लौटने की इजाजत नही थी और उन्हें अप्रैल 1930 से ही वहाँ से बाहर रखा गया था। इसलिए सरहद के उनके अनेक अनुयायी उनसे मिलने और कार्रवाई म हिस्सा लेने के लिए आये। मैं भी उनम से एक था। सम्मेलन मे अतत तय किया गया कि अगर यह आश्वासन दे दिया जाय कि गवर्नर अपने विवेक और मरजी से अधिकारो का इस्तेमाल नही करेंगे तो कांग्रेस मौजूदा कठिनाइयो के होते हुए भी देश का शासन चलाने म शरीक होने के लिए राजी हो जायेगी, अगर इसका मतलब अतत स्वशासन की ओर एक कदम आगे बढना हो। लेकिन अंग्रेजो ने ये आश्वासन नही दिये इसलिए स्थायी अधिकारियो के जरिए या अफ़सरशाही द्वारा कायम किये गये कठपुतली मन्त्रिमडलो के जरिए स्वशासन चलाया गया। आखिरकार बाद म जब कांग्रेस की शर्तें मजूर कर ली गयी तो कांग्रेस ने अधिकाश प्रातो मे शासन सँभाल लिया।[1]

सत्रह वर्ष तक कांग्रेस ने आम तौर पर असहयोग की नीति अपनायी थी, हालांकि परिस्थिति के अनुसार इसका रूप बदलता रहा था—सविनय अवज्ञा से

1 इसी समय पेशावर मे इस्लामिया कालेज के अंग्रेज प्रिंसिपल आर० एल० होल्डवर्थ और छात्र जीवन के मेरे कुछ दोस्तों ने जो कालेज के छात्रावासो के खाने के इतजाम से ऊब चुके थ मुझे राजी किया कि मैं इतजाम अपने हाथ म ले लूँ और कायदे से उसका बदोबस्त करूँ। मैंने किया। लेकिन इसके भी नतीजे सामने आये। कालेज की मुस्लिम लीग बहुल प्रबध समिति ने महसूस किया कि कालेज में मेरी मौजूदगी से उसका फ़ायदा नही होगा। इसलिए उन्होने मेरे रास्ते में हर तरह की रुकावटें डाली जिससे कुछ मजबूर होकर मैंने यह काम छोड दिया। लेकिन छात्र और प्रिंसिपल चाहते थे कि मैं काम करता रहूँ। मेरे प्रति प्रबधको के बदला लेने के रवैये के विरोध में होल्डवर्थ ने तो इस्तीफ़ा तक दे दिया। उन्होने दून स्कूल में नौकरी कर ली और वहा कई साल रहे। मैंने इस काम में काफ़ी रकम गवा दी।

विधानमडलो म वैधानिक विरोध तक। 1937 मे चुनाव मे सफलता ने नयी समस्याएँ पैदा कर दी, लेकिन साथ ही काम करने के नये रास्ते भी खोल दिये। कांग्रेस मत्री उत्साह और आशा से भरे हुए थे। वे सामाजिक तत्र बदल देना चाहते थे। लेकिन भारत सरकार कानून द्वारा लगायी गयी बदिशें उनके रास्ते मे बाधक थी। मन्त्रिमडल के काम के हर क्षेत्र मे प्रगति मे यह कानून बाधा डालता था। बिना अधिकारा के जिम्मेदारी से निराशा पदा हुई। पार्टी और देश की खुशकिस्मती से 'मन्त्रिमडलवादियो' मे प्रथम श्रेणी के नेता शामिल नही थे। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य, जो हाई कमाड के नाम से मशहूर थे, किसी मन्त्रिमडल मे नही थे और वे असली सत्ता के केंद्र बन रहे। वे विद्रोह का झडा उठाये रहे। जैसे ही यह मालूम हुआ कि प्रयोग असफल रहा है, उन्होंने मन्त्रिया से इस्तीफा देने के लिए कहा।

कांग्रेस अधिवेशन मे भाग लेने का मेरा पहला अनुभव गुजरात के सूरत जिले म हरिपुरा का है। यह अधिवेशन फरवरी 1938 मे हुआ था। सुभाषचद्र बोस इस अधिवेशन के अध्यक्ष थ। मैं ज्यादा रुक नही सका और मुझ पहले ही दिन कार्यक्रम छोडकर जाना पडा। इसलिए अगले वर्ष जबलपुर के निकट त्रिपुरी मे मार्च मे मुझे पता चला कि असल मे चमक दमक वाला रग बिरगा यह अधिवेशन क्या होता है। बादशाह खा कुछ समय गाधीजी के साथ व्यतीत करने के लिए पहले ही से वर्धा गये हुए थे। लाहौर म कुछ दिन ठहरने के बाद मैं भी वहा चला गया। शुरू मे यह यात्रा एकाकी थी। लेकिन लाहौर से पजाब के नौजवान प्रतिनिधियो का एक दल यात्रा म साथ हो गया। इन सबम सबसे ज्यादा सजीले बी० पी० एल० बेदी थे। वह खाने के शौकीन थे और मस्त होकर बडे इतमीनान स बातें करने के आदी थे। रास्ते भर वह हम लोगो का मनोरजन करते रहे। हम लोग अपने लिए बैठने की जगह भी नहीं ढूढ पाये थे कि उन्होंने सामान रखने के पटरे पर जगह खाली की और किसी तरह वहा घुसकर खर्राटे लेने लगे।

त्रिपुरी मे मैं बादशाह खा के साथ टिक गया। नेता शिविर मे एक झोपडी उन्ह दे दी गयी थी। वर्किंग कमेटी के दूसरे सदस्यो को भी टिकने के लिए झोपडिया दी गयी थी। नजदीक ही कांग्रेस प्रेसिडेंट भी ठहरे हुए थे। जवाहरलाल नेहरू हम लोगो के ठीक सामने ठहरे हुए थे। उनकी पुत्री इदिरा और बहनें विजयलक्ष्मी पडित व कृष्णा हथीसिंह भी उनके साथ आयी थी। हम पहली बार वही मिले थे और नेता शिविर म अक्सर साथ खाना खाते थे। कृष्णा बहुत जल्दी दोस्त बना लेती थी और फिर हमेशा उन दोस्तो के बहुत निकट रहती थी और हमेशा उनकी मदद करती थी। मै खास तौर से उनका स्नेह भाजन हो गया और मैं उन्हे शब्बानो के नाम से पुकारने लगा। उन्ह देखकर मुझे पेशावर म अपनी बहन की याद आती थी जिन्ह परिवार प्यार से इसी नाम से पुकारता था। नेहरू-परिवार के दूसरे लोगो ने भी इस पर ध्यान दिया। मैं उनके स्नेह और प्यार का कभी भूल नही सकता।

वर्किंग कमेटी के सदस्यो और उनके अतिथियो को एक विशेष रसोई से मुफ्त खाना खिलाया जाता था, जबकि दूसरे प्रतिनिधियो को अपने खाने का पैसा देना पडता था। खादी की बिक्री और चरखे के इस्तेमाल को लोकप्रिय बनाने के लिए लगायी गयी खादी प्रदर्शनी अधिवेशन की मुख्य विशेषता थी। इससे दर्शका को भारत के गाँवो मे बनी रोजमर्रा की चीजो व हस्तकलाओ से परिचित होने का अवसर मिला।

कुछ खुदाई खिदमतगार भी बादशाह खाँ की झोपडी मे टिके हुए थे। वे
सीधे सादे लेकिन बडे डीलडौल वाले लोग थे। उनकी खुराक भी उनके जिस्म के
अनुसार ही बडी थी। वे गोश्त, मुर्गा और अडे खाने के न सिर्फ आदी थे बल्कि
इनमे से प्रत्येक की काफी बडी मात्रा मे उन्हे जरूरत थी। पहले कांग्रेसी खाने के
बारे मे उनकी प्रतिक्रिया की जब भी मुझे याद आती है तो मैं अपनी हँसी रोक
नही पाता। हर कोई जमीन पर अपने सामने थाली की जगह केले के पत्ते बिछाये
हुए बैठा था। स्वयसेवक एक बडे बरतन से निकालकर खाना परोसते और आगे
बढ जाते। खुदाई खिदमतगारो ने सोचा कि यह जो थोडा सा खाना परोसा गया
है यह चखने के लिए है इसलिए वे हाथ बढाकर उसी मे खाना ले लेते और सीधे
खा जाते और पश्तो मे कहते "खा द। बचवा नूर' (अच्छा है, और दो।) वे
इस इतजार मे ही बैठे रह जाते कि उनके सामने का पत्ता चावल, सब्जी और
दाल से भर दिया जाये लेकिन तब तक परोसने वाले दस कदम आगे बढ चुके
होते। तगडे पठान भूखे रह गये। बादशाह खा ने उनकी हालत देखी और उन्हे
सलाह दी कि भविष्य मे वे उनके सामने बैठें और उनका अनुकरण करें। उन्होंने
ऐसा ही किया लेकिन इससे उनका मसला हल नही हुआ। हर खाने के बाद वह
शिकायत करते 'आप और ज्यादा खाना क्यो नही लेते? हम यहाँ कांग्रेस के
अधिवेशन मे शामिल होने के लिए आये हैं, मरने के लिए नही।"

त्रिपुरी अधिवेशन कई मायनो मे घटना प्रधान था। सुभाष बाबू अंग्रेजो के
विरुद्ध कठोर रुख अपनाने के लिए जोर दे रहे थे, वह चाहते थे कि कांग्रेस स्व
राज्य पाने के लिए जन आदोलन छेड दे। उनके पुनर्निर्वाचन से उनके और
गाधीजी के बीच कटु झडपें हुई थी जिसके फलस्वरूप वर्किंग कमेटी के 15
सदस्यो मे से बारह ने इस्तीफे दे दिये थे। मनोनीत अध्यक्ष सुभाष बाबू की तबीयत
ठीक नही थी और उन्हे स्ट्रेचर पर बैठक मे लाया गया। बादशाह खाँ एक बार
उनसे मिलने गये और उन्हे पसीने मे शराबोर व बेहद बेचैन पाया। उनकी तीन
भतीजिया उन पर पखा झल रही थी और उनके माथे पर बरफ रख रही थी।
सुभाष बाबू ने बादशाह खाँ का हाथ पकड लिया और उनसे अनुरोध किया,
मेहरबानी करके सरदार और उनके गिरोह को अलग कर दो। वे ईमानदार
नही हैं। वे अपराधी है।' बादशाह खा ने उनसे कहा कि आप इन मामलो के बारे मे
परेशान न हो बल्कि अच्छे होने की कोशिश करें। वह उस झोपडी से बेहद मायूस
होकर निकले और उन्होने बहुत दुखी होकर कहा खुदा जाने कि हमारी किस्मत
मे क्या लिखा है। आजादी अभी बहुत दूर है लेकिन आदोलन के चोटी के नेताओ
को देखो उन्हे एक दूसरे से कितनी नफरत है। जब लडने का वक्त आयगा तो
देश का नेतृत्व कौन करेगा?" अतत पार्टी मे फूट पडी जिसके फलस्वरूप फॉरवर्ड
ब्लाक का निर्माण हुआ। भारत मे अपने उद्देश्य मे असफल होने की वजह से
सुभाष बाबू नाटकीय ढंग से लापता हो गये और जर्मनी और बाद मे दक्षिण पूर्वी
एशिया मे उन्होने अपनी भूमिका अदा की। दुर्भाग्य से उनका अत भी इतना ही
दुखद हुआ। मिस्र से वफ्द पार्टी के प्रतिनिधिमडल की मौजूदगी त्रिपुरी अधिवेशन
का एक और आकर्षण था। कुछ न टलने वाली परिस्थितियो के कारण नहासपाशा
अधिवेशन मे शरीक नही हो सके और उनकी ससद के अध्यक्ष के नेतृत्व मे चार सदस्यो
का एक शिष्टमडल आया था। उन्होने देश की यात्रा की और स्थानीय नेताओ
के साथ विचार विनिमय किया। वे सरहद की अपनी यात्रा से बहुत खुश थे। वे
खुदाई खिदमतगार आन्दोलन से बहुत प्रभावित होकर लौटे। त्रिपुरी अधिवेशन मे

एक मनोरजक घटना हुई। पजाब के एक मशहूर काग्रेसी कायकर्ता सरदार गोपालसिंह कौमी और मैं एक दिन मुख्य पडाल की ओर जा रहे थे। हमने श्री रविशकर शुक्ल को वडी तडक भडक और शान से कार में गुजरते देखा। वह उस समय उस प्रात के मुख्यमत्री थे जो अब मध्यप्रदेश बन गया है। कुछ काग्रेसी मत्रियो का अपना अलग ही एक वग बन गया था। कौमी जैसे कुछ लोग उन्हें देखकर अपनी ईर्ष्या और व्यग्य नही रोक पाते थे। जैसे ही उन्होंने पुलिस के एक सिपाही को बूढे शुक्ल को सलाम करते देखा तो पजाबी में बोले, "गल होई ना (यह बात हुई न)! इन्होंने अपने लिए झडेवाली कार हासिल कर ली है, इन्हे बँगला मिल गया है और घर पर एक पत्नी इतजार कर रही है। इन्होने तो अपना स्वराज्य पा लिया है इसलिए अब हम लोग रह गये है जिन्हे स्वराज्य के लिए लडना है। क्या मैं ठीक नही कह रहा हूँ?"

एल० डब्लू० जार्डीन ने, जो उस समय सरहद में ब्रिटिश राजस्व आयुक्त थे, एक बार व्यग्य में अँग्रेजो के एक पक्के और मशहूर चापलूस खान बहादुर कुली खा से पूछा, "अब तुम क्या करोगे? अब तो काग्रेस मन्त्रिमडल है और डॉक्टर खान साहब कर्ता धर्ता हैं।" कुली खा ने फौरन जवाब दिया, "जनाब, अगर आप मेरी गुस्ताखी माफ करें तो मैं आपको याद दिलाऊँगा कि आप सात हजार मील दूर से यहाँ आये थे। मैं आपकी जुबान नही जानता था, मैं आपके धम, आपके इतिहास, सस्कृति और रीति रिवाज नही जानता। लेकिन फिर भी मैंने इतनी लगन से आपकी खिदमत की, आप मुझे खास तौर पर वफादार समझने लगे और मैं आपको माई-बाप कहने लगा। डाक्टर खान साहब मेरे गाव से कुछ ही मील दूर रहते हैं, हमारा एक ही मजहब है और हम एक ही जुबान बोलते है। हमारे रीति रिवाज भी एक ही हैं। मुझे एक हफ्ते का मौका दीजिये और वह भी मुझ पर इतना ही भरोसा करने लगेंगे।" जार्डीन ने मुँह बनाया, लेकिन उन्हे अपनी किस्मत आजमाने की इजाजत दे दी।

अगली सुबह कुली खा डॉक्टर खान साहब के मकान पर गये। उन्होने धुएँ से अपनी आखें लाल कर ली थी और अपनी बगल मे एक कुरान दबाये हुए थे। डाक्टर खान साहब को अपने मकान से निकलते देखकर वह बहुत ही दयनीय ढँग से रोने और बिलखने लगे। 'मै कितना बडा नालायक और गुनहगार हूँ। मैंने रिश्वतें ली हैं और खुदा और उसकी मखलूक के खिलाफ गुनाह किये है। खुदा ही जानता है कि मेरे लिए नरक के किस कोने को गरम किया जा रहा है। मैं आपसे अपने तीन बेटो के बारे मे कुछ कहने आया हूँ। खुदा का शुक्र है कि आप मुख्यमत्री बन गये और चाहते है कि हर एक ईमानदार हो। मैं उम्मीद करता हूँ कि मेरे बच्चो को इतनी अकल होगी कि आपकी कायम की हुई आला मिसाल पर चल सकें।" डॉक्टरखानसाहब कुली खा के गुनाहो और उनकी काली करतूतो के बारे मे इतना ज्यादा जानते थे कि अभी तीन ही साल पहले दिल्ली म केंद्रीय असेंबली मे वह कुली खा को बुरी तरह लताड चुके थे, लेकिन इस वक्त वह इतने लाचार हो गये कि कुछ न कह सके और उनका गुस्सा उतर गया। वह उनके विलाप से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने उनकी पीठ थपथपायी और अपने सद्भाव का विश्वास दिलाया।

इस घटना के फौरन बाद पेशावर मे प्रातीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई। कई सदस्यो ने कुली खाँ के कुकृत्यो के बारे में बताया लेकिन डॉक्टर खान साहब ने, जिनका हृदय परिवतन हो गया था उन लोगो को झिडक दिया और कहा

कि कुली खाँ एक ईमानदार आदमी है अच्छा इसान है और वह किसी बेजा हरकत म शामिल नही है। बादशाह खाँ अपन भाई के मुह से एक जाने मान अपराधी की तरफदारी सुनकर इतना चकरा गये कि वह बैठक स यह कहते हुए चल आये "अगर कुली खाँ एक अच्छे और ईमानदार इसान हैं तो मैं इन गुणा को अपनी मा मे मौजूद नही मान सकता। मुझे उनका वणन करने के लिए दूसरे शब्द ढूढने पडेंगे।"

माच 1940 म रामगढ काग्रस हुई, जिससे मुझे वार्षिक काग्रेस अधिवेशन म शामिल होने का एक और अवसर मिला। मौलाना अबुल कलाम आजाद इसके अध्यक्ष थे। वह एक महान विद्वान और वक्ता थे, आजादी की लडाई मे उनका सम्मानजनक स्थान था। रामगढ मे बडी निष्ठा से उनकी खिदमत की गयी और बडी मोहब्बत से उनकी देखभाल की गयी। ताड के पत्ता स उनकी झोपडी बनायी गयी थी और खुद अरुणा आसफअली न आकषक ढँग से उसे सजाया था। उनके दस्तरख्वान पर जो लोग आमन्त्रित होते थे उनके लिए बतनो म विशेष खाना लाया जाता था। लेकिन फिर बारिश आ गयी और उसने इस सारी शान शौकत को देखते देखते धो दिया।

रामगढ म काग्रेसजन के एक उग्र वग न गाधीजी की कटु आलोचना की। उनका कहना था कि गाधीजी अँग्रेजा के प्रति नम हैं। उन्ह प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी एजेंट कहा गया। इससे उनके अनुयायियो को आघात पहुँचा, लकिन गाधीजी का जवाब अपन ढँग का अनोखा था। उनका तरीका अवश्य नम था, लेकिन अभिप्राय नही। जिस ढँग से वह बोले उसकी याद आज भी मेरे मन मे ताजा है। उन्हाने कहा, 'कुछ दोस्त मुझसे नाराज है। मैं उन्ह कसे खुश कर सकता हूँ? आप मुझे अपना सनापति, नता होने के लिए नही कह सकते, अगर आप साथ ही मुझे हुक्म भी देते रह। आप मुझे मरी मरजी के विरुद्ध आपका नतृत्व करने के लिए बाध्य नही कर सकते। जिन्ह मुझमे आस्था है उन्ह मेरा फसला मजूर करना चाहिए। मेरे पास कोई ताकत नही है। मरी ताकत सिफ प्रेम है। आप चाहे तो मेरे जिस्म के टुकडे टुकडे कर सकते हैं। फिर आप खुद देखेंगे कि मरे खन का हर एक कतरा भारत के गरीबा और उनकी आजादी के लिए समर्पित है। मैं उनके लिए जिंदा हूँ मैं उन्ही के लिए मरूँगा। लेकिन किसी कारवाई के लिए मुझे खुद उचित समय चुनने की आजादी होनी चाहिए।"

लगातार तीन काग्रस अधिवेशना म मरी मौजूदगी से मुझे कई प्रतिनिधिया के सपक म आने का अवसर मिला था। वे सब पठाना की बहुत तारीफ करत थे और उनस स्नेह करते थे और चाहते थे कि काग्रेस का अगला अधिवशन सरहदी सूबे म हो। बादशाह खा का खयाल था कि यह बोझ बहुत ज्यादा होगा। वह जवाब देते, "हम अच्छा बदोबस्त करने के लिए पसा कसे जुटायेंगे?" मैंन तब जवाहरलालजी से बातचीत की। वह उत्साहित नजर आये। लेकिन उन्ह शका थी कि वतमान अतर्राष्ट्रीय स्थिति के सदभ मे अगला अधिवेशन हो भी पायेगा या नहीं लेकिन पमे के मामले म उन्ह कोई डर नही था क्याकि उन्होने कहा, 'काग्रेस अधिवशन से काफी आय होती है। अधिवशन करन वाला राज्य आम-तौर पर मुनाफा कमा लेता है।' इस तरह की बातचीत कभी-कभी दूसरो की मौजूदगी म भी हुई। इसलिए यह बात फल गयी कि "सरहदी लोग अगला अधिवेशन करना चाहते हैं। बहुत स लागो न तो यह मान लिया कि ऐसा ही होगा और वे वहाँ की जलवायु और रहने की स्थिति के बारे मे पूछताछ करन लगे,

जैसे अधिवेशन तय हो गया हो। लेकिन जैसा कि उस महान द्रष्टा ने पूर्वानुमान लगा लिया था, कांग्रेस ने अगले पाच वष तक अपना कोई वार्षिक अधिवेशन नही किया। इसके बाद व्यक्तिगत सत्याग्रह और 'भारत छोडो' आदोलन राजनीतिक मच पर हावी हो गये। नतीजे मे सरहदी सूबे मे कांग्रेस का अधिवेशन कभी नही हुआ।

मैं पहले ही भगतसिह के बारे म लिख चुका हूँ लेकिन एक और ऐसा मौका आया जब उनकी वीर गाथा से मेरा नाता जुडा। यह उनकी मौत के बहुत बाद पेशावर मे 1938 की घटना है। भगतसिह को सजा दन के लिए अँग्रेजो न हसराज वोहरा को इकबाली गवाह की हैसियत से पेश किया था। जनता के क्रोध से बचाने के लिए उन्हे बाद मे इग्लैंड भेज दिया गया था। वह पत्रकार के रूप म बाद मे भारत लौटे और लाहौर से प्रकाशित अँग्रेज मालिका के अखबार द सिविल ऐंड मिलिटरी गज़ट के सवाददाता के रूप म पेशावर मे तैनात कर दिये गय। वोहरा मेरे एक दोस्त का परिचय-पत्र लेकर मुझसे मिलने आय और मर ज़रिए कई राजनीतिक कायकर्ताओ और अधिकारियो से मिले। लेकिन फौरन ही हमे उनकी असलियत मालूम हो गयी। इससे देशभक्त नाराज़ हो गये और उनमे स कुछ ने एक रात उनका घर घेर लिया। वोहरा घबरा गये और उन्हाने मुख्यमत्री को टेलीफोन किया। डॉक्टर खान साहब उनकी रक्षा के लिए दौडे। उन्हान क्रुद्ध नौजवानो से कहा कि कानून और व्यवस्था की शक्तिया को अपना काम करने दो। लोगो के चले जाने के बाद उन्हाने वोहरा को सलाह दी कि कार मे बैठकर उसी रात सीमा पार कर जायें। वोहरा रात ही म भाग गये। उसके बाद से वह अपनी गद्दारी के कारण विदेश म शम और ज़िल्लत की जिंदगी बसर करत रहे। मुझे समय रहते चेतावनी मिल गयी कि मैं लागा के मुखौटा का ही सच न मान लू। यह मेरे लिए समझदारी की बात नही थी कि अच्छी तरह जाच किये बिना मैं किसी की सिफारिश कर दू।

कांग्रेस मे मेरी दीक्षा और पार्टी के कायकलापा की धाराआ और उप धाराआ के बारे मे मेरी बढती हुई जानकारी की बदौलत मुझे हमारे सामने जो बुनियादी *समस्याएँ थी और बाद मे उनका जो रूप हुआ, उन्हे समझने मे मदद* मिली। यह स्पष्ट था कि पार्टी के अदर चलने वाले अनक विवादा की वजह से पार्टी अपने आपको जानदार तो बनाये रख सकी, लेकिन इसके साथ ही पार्टी म तनाव और झगडे भी पैदा हुए। उस समय भी मतभेद इतना जोर पकड जाता कि उससे पार्टी विभाजित हो जाती। आश्चर्य की बात है कि हर दस वष के बाद नियमित रूप से इस प्रकार का विभाजन होता। पहली फूट 1916 मे पडी थी जब गाधीजी ने कांग्रेस की बागडोर सँभाली थी। आतरिक झगडे इस हद तक बढ गये थे कि खुद गाधीजी भी राजनीतिक दबावो से मुक्त नही रह सके थे। इसस शुरू मे ही स्वराज्य पार्टी से और बाद मे चलकर सुभाष बाबू से उनका टकराव समझ मे आता है। जब उन्हाने 1937 मे बबई के मुख्यमत्री पद के लिए एफ० के० नरीमान के, जिन्हे ज्यादातर लोग पसद करते थे, मुकाबले म अनात बी० जी० खेर का खुलकर समथन किया तो उन्होने पक्षपात किया था। उन्हाने अपने उम्मीदवार को मुख्यमत्री बनवाकर ही दम लिया। जो लोग इस सदी म भारत के राजनीतिक घटनाक्रम से परिचित है वे इस तथ्य को प्रमाणित करेंगे कि कांग्रेस के अदर या बाहर कोई भी नेता, सत या राजनीतिज्ञ ऐसा नही था जो सगठन पर प्रभावकारी नियत्रण कायम करन या जनता का समथन पान के लिए

आवश्यक तिकडमो से अछूता बचा हो।

व्यक्तिगत तौर पर मैं कभी उन वामपथियो से मोहित नही हुआ जो देश के राजनीतिक मच पर छा रहे थे। फिर भी पट्टाभि सीतारमया, जे० बी० कृपालानी या हरेकृष्ण मेहताब के मुकाबले मे नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, यूसुफ मेहरअली अच्युत पटवधन,डॉक्टर राममनोहर लोहिया, डॉक्टर के०एम० अशरफ सज्जाद जहीर, डॉक्टर जेड० ए० अहमद, मियाँ इफ्तिखारुद्दीन और उनके जैसे लोगो ने मुझे ज्यादा आकृष्ट किया। जवाहरलाल नेहरू का अपना अलग ही वर्ग था। लेकिन इन अनेक वामपथियो और बादशाह खाँ, मौलाना आजाद, सरदार पटेल, राजाजी और राजेंद्रप्रसाद जसे गाधीवादियो म स्पष्ट अतर था। उनका बुद्धिमत्तापूर्ण और समर्पित रुख वामपथियो के उलझे हुए दावो और आडबरो और सतही रुख के बिलकुल विपरीत था।

डॉक्टर अशरफ इसका बहुत अच्छा उदाहरण हैं। वह अलीगढ मुस्लिम यूनिर्वासिटी म पढे और उग्र कम्युनिस्ट बन गये। वह इलाहाबाद मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के कार्यालय मे काम करते थे और 1938 मे नेहरूजी के साथ सरहदी इलाके के दौरे पर गये थे। एक बार जब उन्होंने मुझे नमाज पढते देखा तो बोले, 'गफ्फार खा का प्रतिक्रियावादी प्रभाव देखो, उन्होंने तुम्हे बाईस साल की उम्र म नमाज पढना सिखा दिया, जब तुम साठ या सत्तर साल के होगे तब क्या होगा ?" उनकी अपनी प्रगतिशीलता इतनी विकृत हो गयी थी कि वह उन ढोगियो मे जो नास्तिक होने का दिखावा तो करते लेकिन बाकी हर मामले मे जिनका रवैया विज्ञान तथा तर्क के सवथा प्रतिकूल होता था, और उन लोगो म जो परपरा के लिए दिल मे जगह रखने के बावजूद अधिक व्यावहारिक व आदशवादी थे फर्क नही कर पाते थे। हालाकि मैं कभी किसी विशेष आर्थिक सिद्धात का शिकार नही रहा, लेकिन साधारण इसान और उसकी भलाई मे मेरी बेहद आस्था थी और है। किसी भी कदम की कीमत आँकने मे यही मेरा मुख्य मापदड रहा है। मुझे अपनी नमाज और इबादत से निर्धारित माग पर चलने मे हमेशा सहायता मिली है। कोई चाहे तो रोजे नमाज की पाबदी न करने वाले वामपथियों की हरकतो के बारे म पूरी की पूरी किताब लिख सकता है। वे मेल जोल रखने के लिए बहुत खुशमिजाज लोग थे, लेकिन उनके राजनीतिक चिंतन मे भी भयकर अतर्विरोध थे। उदाहरण के लिए, 1940 के दशक मे ब्रिटिश प्रयासो का समथन करने और 'भारत छाडो' आदोलन से अलग रहने के कम्युनिस्टो के सामूहिक निर्णय को ही लीजिये। यह बात उनकी बरबादी का कारण बनी और देश म जन समथन प्राप्त करने मे उनकी विफलता का भी यही मुख्य कारण है।

इस सिलसिले मे द सिविल ऐंड मिलिटरी गजट के सपादक फ्रेडरिक विलियम बस्टिन से हुई बात याद आ गयी। गाधीजी और सुभाष बाबू के बीच 1939 के पूरे साल भर जोरदार विवाद चलता रहा। सुभाष बाबू की टीका से हाईकमान क्षुब्ध हो गया और उसने वर्किंग कमेटी स इस्तीफा दे दिया। मैं उस समय लाहौर म था। सर सिकदर हयात खा न मुझे दोपहर के खाने पर बुलाया था। सर छोटूराम[1] नवाब अल्लाह यार खाँ दौलताना, मनोहरलाल, नवाब मुश्ताक अहमद गुरमानी, खलीफा शुजाउद्दीन और बस्टिन दूसरे अतिथि थे। द सिविल

1 विभाजन के पूर्व पजाब की यूनियनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता। शेष चार भी उसी काल में यूनियनिस्ट पार्टी के सदस्य या मत्री थे।

ऐंड मिलिटरी गजट सुभाष बाबू को बहुत प्रमुखता देता था और उनका प्रचार करता था। मैंने बस्टिन से कहा कि कांग्रेस-खेमे मे मतभेदो के बावजूद, उसके नेताओ मे ब्रिटिश शाही हितो से नही बल्कि आपस मे अधिक समानता व सामजस्य है। फिर उनका अखबार एक कट्टरपंथी का पक्ष क्यो ले रहा है, जिसका गाधीजी के साथ झगडा सिर्फ स्वाधीनता प्राप्त करने के सघर्ष के समय के बारे मे है? बस्टिन ने मुसकराकर कहा, "नौजवान, हम जानते है कि कौन हमारा दुश्मन है? दुश्मन गाधी हैं। आज जो भी उनका विरोध करता है, वह हमारा दोस्त है। गाधीजी की छवि बिगाडनी होगी और उनका प्रभाव कम करना होगा। उनकी जगह लेने वाला कोई भी दूसरा व्यक्ति अगला निशाना होगा। और उनके विरोधियो को तलाश करके उनका इस्तेमाल किया जायेगा।"

कांग्रेस के मामलो के बारे मे किसी अँग्रेज की लगे-हाथ व्यक्त की गयी राय किसी राजनीतिक स्थिति मे कुछ बातो का महत्व तय करने की मेरी कसौटी बन गयी। बार-बार चालाकी से भरी इसी तरह की राजनीतिक तिकडमें की गयी हैं। अगर किसी की नजर पैनी है तो वह कुछ गठबधनो के उद्देश्य को समझ लेगा। किसी मसले को उलझाने के लिए बेढगे गठबधनो को हमेशा बढावा दिया गया है। राजनीतिक मोर्चे पर अजीब अजीब साथी सामने आये है। यह पहले भी हुआ है, आज भी होता है और कल भी होगा। फिर भी स्वाधीनता सग्राम के महान नेताओ के मतभेदो से हम सबको आघात पहुँचा और ताज्जुब हुआ। उनमे से कुछ अपने बाद आने वाले लोगो की तुलना मे बहुत बडे थे, फिर भी वे आपस मे लडते झगडते थे और एक दूसरे को गाली देते थे। इन महान व्यक्तियो के साथ भी छोटे आदमी थे जो स्वाभाविक रूप से हीन भावना से ग्रस्त थे। स्वाधीनता के प्रभात से और अधिक अवसर तथा प्रलोभन सामने आये। नि स्वार्थ कार्यकर्ता के लिए काम करने का क्षेत्र था, लेकिन साथ ही अवसरवादिता के फाटक भी खोल दिये गये थे। समय गुजरने के साथ ये परस्पर विरोधी रुझान और उभरकर सामने आये। 1969 से राजनीतिक उथल पुथल, कांग्रेस के अदर कटु प्रतिद्वद्विता और बाद मे फूट, दूसरी पार्टियो मे गुटबाजी, अतरदलीय गाली गलौज और इस नाटक के प्रमुख पात्रो तक का ओछा रवैया यह दिखाता है कि यह नया और निंदनीय तरीका है। ऐसा लगता है कि वाद और मसलो के अतिवादी रुख लेने से हालत बदतर हो गयी है। लेकिन ऐसा इसलिए है कि लालच बढ गया है और बडे दाव लगने लगे हैं। यही हालत तनाव की भी है। इसी वजह से सारा ध्यान प्रतिद्वद्वी गुटो द्वारा लगातार आलोचना और कुप्रचार पर केंद्रित है। तुलना मे विगत बहुत शानदार नजर आता है, लेकिन असलियत मे ऐसा है नही।

उस जमाने मे बीच मे जो बहुत ही आकृष्ट करने वाला और निर्देशात्मक अनुभव हुआ वह राष्ट्रीय योजना समिति के विचार विमर्श को देखने का अवसर था। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे इसकी बैठक बबई मे हुई थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 1938 मे, उस समय और बाद मे चलकर भारतीय साधनो और क्षमता के उपयोग की रूपरेखा तैयार करने के लिए यह समिति गठित की थी। उसकी विभिन्न समितियो मे पार्टी के बाहर के अनेक व्यक्ति विशेषज्ञो की हैसियत से शामिल किये गये थे। उस समिति के कार्य-सचालन के लिए कांग्रेस मत्रिमडलो हैदराबाद मे निजाम की सरकार और टाटा ने काफी वित्तीय सहायता दी थी। इसकी कारवाइयो और विचार विमर्श के स्वरूप से चिंतन के नये परिदृश्य दिखायी दिये और चीजो को उनकी पूर्णता मे देखने की आदत पडी।

मुझे इससे हमारे सामने मौजूद सामाजिक और आर्थिक जोखिमो की जटिलताओ को समझने मे सहायता मिली और हम इनकी मदद से यह भी समझ सके कि हम इनसे कैसे उबर पायें। इसने हमे भारत को एक इकाई और उसकी जनता को एक बडा परिवार मानना सिखाया। शुरू मे ही यह समझ म आ जाता था कि चाहे भूमि सरक्षण की समस्या हो, या बाढ नियत्रण, साक्षरता, स्वास्थ्य सुविधाओ अथवा औद्योगिक उत्पादन बढाने की समस्या हो, दृष्टिकोण सर्वांगीण अपनाना पडेगा। अधूरे उपायो से दुष्कर कार्यों से निपटना या उनके महत्व को कम करना मुमकिन नहो था। इस बहस मुबाहिसे से भविष्य की उपयोगी झलक मिली और चीजो को उनके वहत्तर प्रसग म उचित ढँग से देखना सभव हुआ, फिर भी मुझे एक मशहूर व्यक्ति द्वारा राष्ट्रीय योजना समिति के विचार विमश के बारे म अजीब सी निराशापूण टीका याद है "अभी आजादी कहा और जवाहरलाल को देखो कि आजाद हिंदुस्तान का इक्तिसादी (आर्थिक) नक्शा बनाने म लगा हुआ है।" इकबाल ने जब यह शेर कहा तो उनके दिमाग म जरूर नेहरू जैसी हस्तियाँ ही रही होगी—

'मुहब्बत मुझे उन जवानो से है,
सितारो प जो डालते हैं कमद।'

इससे मुझे प्रोफेसर के० टी० शाह की एक टिप्पणी याद आ गयी। वह योजना समिति के सदस्य सचिव थे। समिति की एक बैठक को सबोधित करते हुए उन्होने नये भारत की अपनी कल्पना का जिक्र करते हुए कहा, "हम एक एस समाज का निर्माण करना चाहते हैं जहा अगर एक शिक्षक अपनी कक्षा स पूछे कि कि अगर उसने एक रुपय के चार सेब खरीदे और उन्हे दुगने दाम पर बेचा तो उसे क्या मिलेगा तो सारी कक्षा एक स्वर से जवाब दे, दो साल की कडी कैद की सजा।' एक तरफ से जोरदार कहकहा सुनायी पडा, लेकिन दूसरी तरफ लोगो के माथे पर बल पड गये। नेहरू ने बाद म मुझे बताया कि के० टी० शाह जैसे लोग बहुत ज्यादा ऐसी कटुता पैदा कर देते है जिससे बचा जा सकता है। 'उनका वह मतलब नही था जो उन्होने कहा।' शाह के रुख के प्रभाव को कम करने का उनका यह अपना तरीका था।

दिसबर 1941 म बारदोली मे हुई काग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक न उस दिमागी पहेली पर रोशनी डाली जिसे सुलझान मे चोटी के नेता लगे हुए थे। एक सप्ताह स ज्यादा विचार होता रहा और हिंसा के मुकाबले अहिंसा की अच्छाइयां और बुराइया पर बातचीत और जाच पडताल होती रही। ब्रिटिश युद्ध प्रयासो को समथन देने की वाछनीयता या अवाछनीयता पर गौर हो रहा था। काग्रेस हाईकमान अँग्रेजो के समथन मे अथपूण भूमिका अदा करना चाहता था लेकिन चाहता था कि उसे युद्ध के उद्देश्यो की जानकारी दी जाये। सबसे पहले वे यह जानना चाहते थ कि ये बातें मे भारत पर कैसे लागू होगे? गाधीजी की राय भिन्न थी। समाचारपत्रा मे इस मतभेद की खबर छप गयी और आश्रम मे इससे बहुत परेशानी पैदा हो गयी। सरदार पटेल, जिनके जिम्मे सारा इतजाम था, बेहद परेशान हो गये। उन्होने सुना कि एक पत्रकार चमनलाल जो बाद मे बौद्ध भिक्षु बन गय, अक्सर आसफअली स (जो मशहूर वकील थे और बाद मे राजदूत बन थ) और सरोजिनी नायडू स (जो कवयित्री थी और राज्यपाल के रूप म जिनकी मृत्यु हुई) अक्सर मिलते थ। ये दोनों कमेटी के सदस्य थे। यह समझा

गया कि हो सकता है कि चमनलाल ने इन लोगो के पास जो कागजात थे उनम से कुछ चमनलाल ने अनजाने मे देख लिये हो। सरदार को इस पर इतना गुस्सा आया कि उन्होंने फौरन हुक्म दिया कि अपराधी को उठाकर आश्रम से बाहर फेंक दो। चमनलाल इस घटना की रिपोर्ट गाधीजी को देना चाहते थे, लेकिन "भारत के लौहपुरुष" पर उनकी गिडगिडाहट का जरा भी असर नही पडा।

कई सदस्यो ने जो राय जाहिर की उससे यह साफ पता चलता था कि काग्रेस के रवय्ये के बारे में उनके मन मे दुविधा थी। गाधीजी हमेशा अहिंसा के पक्षधर थे, जबकि कुछ दूसरे लोगो का खयाल था कि ब्रिटिश युद्ध प्रयासो का समर्थन करने का मतलब अहिंसात्मक विचारधारा को बिलकुल रद्द करना नही है। मौलाना आजाद सदर थे और उन्ह लबी कार्यवाही का निचोड पेश करना पडा। उन्होंने उर्दू के एक शेर से अपनी तकरीर शुरू की

इस फिक्र म बैठा हूँ, आखिर मुझे क्या करना
दिलबर से जुदा होना, या दिल से जुदा होना।

जवाहरलालजी इस शेर से अभिभूत हो गये और उन्होंने महसूस किया कि सदस्यो के दिमाग की उलझन को इस शेर से ज्यादा अच्छी तरह कोई दूसरी चीज नही समझा सकती थी। उनमे महात्मा गाधी के विचारो के लिए सम्मान और नाजी धुरी के खतरो के बारे म अपने डर के बीच कशमकश थी। नेहरू बैठक से निकलकर आय और मुझसे कहा कि रोमन अक्षरो में यह शेर लिख दो। अगले कुछ दिनो तक उन्होंन अपने दोस्तो को जो खत भेजे उनके साथ कागज के छोटे छोटे टुकडो पर यह शेर भी लिखा होता था।

वर्धा में जनवरी 1942 मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई जिसे बारदोली मे लिये गये फैसलो की पुष्टि करनी थी। पडित गोविंदवल्लभ पत ने मुख्य प्रस्ताव पेश किया। वह कई साल तक उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री और बाद म केंद्र म गहमत्री रहे। उन्होंने इतना जोरदार और कायल कर देने वाला भाषण दिया कि कई वामपथी और जोशीले सदस्यो ने उनके भाषण से सहमति प्रकट की, हालांकि व प्रस्ताव के मूल पाठ से असहमत थे। पतजी ने चतुराई से जवाब दिया, 'ऐसी हालत मे आप मेरे पूरे भाषण को मजूर कर लें और मैं प्रस्ताव को वापस ले लूगा।' यह उनकी वाद विवाद की कुशलता और ससदीय तरीको की दक्षता का नमूना था। सबसे ज्यादा चौंका देन वाली टक्कर डॉक्टर राजेंद्रप्रसाद की आदर्शवादी लेकिन असगत घोषणाओ और जवाहरलाल नेहरू के विवेकपूर्ण लेकिन जोशीले और उतावले भाषण के बीच हुई। राजेंद्रप्रसाद ने हिंसा पर भरोसा रखने के खतरे के बारे मे बताया और एक अस्पष्ट लेकिन स्वदेशी प्रणाली की तुलना मे दुनिया भर की राजनीतिक प्रणालियो को गलत बताया और उन्ह नकार दिया। जवाहरलालजी न बहुत ध्यानपूर्वक उनका भाषण सुना, लेकिन बाद म प्रतिक्रिया मे उन्हें बहुत गुस्सा आया और वह उत्तेजित हो गय। राजेंद्र बाबू न जो कुछ कहा था उसके लिए नेहरूजी न उन्ह बख्शा नही। उन्होने कहा "आज सवेरे जो कई भाषण दिये गये मैं उन्ह गौर से सुनता रहा हूँ। कुछ लोगो न छोटे मोटे मसलो पर जोर दिया है और खोखले नारे लगाये हैं। दूसरे लोग मुद्दा ही नही समझ पाये। जाहिर है कि वे अँधेरे मे टटोल रहे हैं। लेकिन राजेंद्र बाबू की सभी परिस्थितियो मे अहिसा के पालन और उस पर मुस्तैदी से जमे रहने की बात सुनकर मुझे ताज्जुब हुआ। यह बहुत अजीब बात है। मैं उन लोगो का रुख नही

समझ पाता जो सोलह आने अहिंसा की बात तो करते हैं, लेकिन हिंसा और अन्याय पर आधारित मौजूदा आर्थिक व सामाजिक ढाँचे को बरदाश्त करते हैं। यहाँ वह इस तरह का भाषण करते हैं और इसके साथ ही वह जमींदारों और मिल मालिकों की और उन लोगों की तरफदारी करते हैं जो इस ढाँचे को कायम रखने में मदद्गार होते हैं। वह कहते हैं कि यह उस तरीके की आजादी नहीं चाहते जैसी कि इंग्लैंड में है वह उस तरह की आजादी नहीं चाहते जैसी फ्रांस, अमरीका अथवा सोवियत संघ में है। फिर वह किस तरह की आजादी और स्वाधीनता चाहते हैं? स्वर्ग या नर्क की आजादी उन्हें मुबारक हो। मैं तो किसी भी तरह की आजादी का लपककर स्वागत करूँगा। मैं हमेशा उस तरह की आजादी को मंजूर कर लूँगा भले ही वह अपूर्ण हो और जो परिवर्तन मैं चाहता हूँ वह कर लूँगा, लेकिन मैं आजादी के इस तरह के वादे को रद्द नहीं करूँगा। खामियाँ दूर की जा सकती हैं और समय समय पर होने वाले युद्धों और हिंसा के इस्तेमाल को दूर करने और उनसे बचने के लिए समाज के नये ढाँचे का निर्माण किया जा सकता है। लेकिन राजेंद्र बाबू की बात भ्रामक है, उलटी हुई है। यह खतरनाक हो सकती है इसमें ढोंग झलकता है, यह जनता को धोखा देने के बराबर है। मैं इसके बिलकुल खिलाफ हूँ और ऐसे रुझानों के खिलाफ संघर्ष करूँगा।

इस तरीके की खुल्लमखुल्ला टक्करों से यह पता चलता था कि आजादी की लड़ाई के उन शुरू के दिनों में भी चोटी के कांग्रेसी नेताओं में कितने बड़े पैमाने पर मतभेद फैले थे और मिजाजों में गरमी भरी थी। जवाहरलाल ने अपना ओजस्वी भाषण खत्म किया और बादशाह खां के पास बैठ गये जिन्होंने उनके उतावलेपन में कहे गये सख्त शब्दों को अनुचित बताया। लेकिन वह कुछ भी मानने के लिए तैयार नहीं थे जबकि राजेंद्र बाबू उदास हो गये थे और यह नहीं समझ पा रहे थे कि उन्हें काहे से चोट पहुँची है। लेकिन इन घटनाओं के बीच मथुरा बाबू के नाम के एक इंसान की हरकतों से मजाकिया राहत मिली। वह राजेंद्र बाबू की छाया की तरह हर जगह उनके साथ रहते थे। उन्हें सभी मशहूर नेताओं के साथ खास तौर पर जवाहरलाल नेहरू के साथ, फोटो खिंचवाने की धुन सवार रहती थी। लेकिन इस मौके पर जब राजेंद्र बाबू दुखी बैठे हुए थे, उनकी छाया हरकतें करने और ढोंग रचने से बाज नहीं आयी। मथुरा बाबू की आंखों में एक क्षण में आंसू निकलते और दूसरे ही क्षण वह शरारत से आँख मारते। किसी भी गोष्ठी में ऐसे विल्पक मौजूद रहते हैं और लंबे भाषणों की नीरसता को दूर करने में मददगार साबित होते हैं। वे चोटी के नेताओं के बीच टकराव की कटुता को शांत कर देते हैं।

कांग्रेस मंत्रिमंडल के शासनकाल में सरहद आने वाले लोगों में दो सबसे महत्वपूर्ण महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू थे। पहले उन्हें वहां नहीं जाने दिया गया था और पठान वतन की यह उनकी पहली झलक थी। ऐसी घटना हर वक्त महत्वपूर्ण होती है लेकिन इस क्षेत्र में उस समय व्याप्त अजीब वातावरण की वजह से इसका महत्व बढ़ गया था। गांधीजी यह जानने के लिए उत्सुक थे कि औसत पठान अहिंसा को किस हद तक मानता है और किस हद तक उसने इसे अपना लिया है जबकि जवाहरलाल नेहरू कबायली इलाका के कुछ लोगों द्वारा किये गये अपहरणों के बारे में अंग्रेजों द्वारा पैदा किये गये रहस्य और अधिकारियों द्वारा प्रेरित अफवाहों के जरिए इसे दिये गये साम्प्रदायिक रूप का पर्दाफाश करना चाहते थे। सरहदी इलाके में इन दो महापुरुषों की मौजूदगी और 'मातृभूमि' के

इन बहादुर बेटों के उद्देश्य को उनके समर्थन से पठानों और शेष भारत के बीच नये संबंध कायम हुए। जवाहरलाल नेहरू ने कबायलियों की मुसीबतों और कठिनाइयों के बारे में बताया और कहा कि उन्हें चूंकि अंग्रेज लगातार परेशान और तंग करते रहे हैं इसलिए अगर कभी कभार पठानों से कोई गलत काम हो जाये तो उसे माफ किया जा सकता है। वह खास तौर पर खुदाई खिदमतगारों से और भारतीय आजादी के प्रति उनकी निष्ठा से बहुत प्रभावित हुए। लेकिन उन्हें यह देखकर ताज्जुब हुआ कि इस बहुत संगठन का काम चलाने के लिए कोई दफ्तर ही नहीं है। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि किसी एक आदमी को विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस के कार्य करने के तरीकों का अध्ययन करने के लिए भेजा जाये और वह वापस आकर सरहदी इलाके में भी वैसी ही व्यवस्था करे। बादशाह खां ने इस इस काम के लिए मुझे चुना। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी तरफ से आवश्यक कारवाई करने की जिम्मेदारी ली।

तब से ऐसा साथ शुरू हुआ जिसने न सिर्फ मेरी जिंदगी बल्कि मेरे विचारों पर भी बेहद प्रभाव डाला। अगले तीन वर्षों तक मैं जवाहरलाल नेहरू के साथ देश भर में घूमा। यह इरादा था कि मैं कांग्रेस के कार्य करने के तरीके से अच्छी तरह से परिचित हो जाऊं। हालांकि मैं दूसरे कई राज्यों की राजधानी में भी गया, लेकिन मेरे वक्त का ज्यादातर हिस्सा इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय और लखनऊ में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में गुजरा। मैं कई जानने योग्य लोगों से मिला और पार्टी का काम चलाने के बारे में उनसे बहुत उपयोगी सबक सीखे। मद्रास में दफ्तर बहुत शानदार या सुव्यवस्थित नहीं था, लेकिन सी० राजगोपालाचारी जो राजाजी के नाम से मशहूर थे, एक कुशल वक्ता एस० एस० सत्यमूर्ति और आंध्र के वरिष्ठ नेता टी० प्रकाशम बहुत दिलचस्प लोग थे। वे इस बात से बहुत खुश हुए कि उनका काम देखने और समझने के लिए मैं इतनी दूर से आया था। उन्होंने अपने दोस्तों से मेरा हर तरह से खयाल रखने के लिए कहा और मैं जितने दिन वहाँ रहा वह समय बहुत मजे से कटा। बाद में जब मैं बंबई में कृष्णा हथीसिंह के फ्लैट में ट्रावनकोर के महाराजा चित्राथिरुनाल रामवर्मा से मिला तो उन्होंने जानना चाहा कि क्या मैं दक्षिण गया हूँ? मैंने जवाब दिया हां, और मद्रास की अपनी यात्रा के बारे में बताया। "लेकिन वह तो हमारे उत्तर में है," उन्होंने कहा, जबकि उनकी आंखों में शरारत की चमक थी। वह छोटे कद के थे। उन्होंने मुसकराकर मुझे बताया कि कुर्गी दक्षिण के पठान हैं।

मैं लीग के कुछ नेताओं से भी परिचित हो गया। महमूदाबाद के राजा अमीर अहमद एक आदर्शवादी और परोपकारी आदमी थे। बहुत से लीगी उनके चंदे पर जिंदगी बसर कर रहे थे। इनमें से कुछ लोगों के सवालों से झुंझलाहट होती थी और यह पता चलता था कि आम तौर पर वे कितने अज्ञानी और मगरूर हैं। खास तौर पर सरहद की स्थिति के बारे में तो उन्हें कुछ भी नहीं मालूम था। मैंने अलीगढ़ में भी एक महीना गुजारा। वहां के ज्यादातर शिक्षक और छात्र लीगी राजनीति के भंवर में फँस गये थे। उनमें से कुछ उत्साही लोगों ने काफी लंबे अरसे तक इस मसले को तय करने के लिए विचार किया कि क्या सरहदी कांग्रेस के साथ रहें? दूसरों ने बेदिली से माना कि भारत में मुसलमानों ने चूंकि पठानों का मुसीबत के वक्त साथ छोड़ दिया था इसलिए उन्हें इसकी कीमत अदा करनी पड़ेगी और पठान कांग्रेस के साथ रहेंगे। यूनिवर्सिटी में शैक्षिक माहौल का

नितात अभाव था। मैंने जब इस जाहिरा हकीकत के बारे मे दोस्तो से बातचीत की तो उन्होने यह ख्वाहिश जाहिर की कि मैं इसके बारे मे अधिकारियो को बताऊँ। लेकिन वे खुद अपन हालात से सतुष्ट थे।

मैं पटना और कलकत्ता भी गया। सुभाष बाबू ने जनवरी 1940 मे दिल्ली मे स्टूडेंटस फेडरेशन के पाचवें वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता की थी। वह मुझे वामपथियो और दक्षिणपथियो के बीच गैर जानिबदार मानते थे। उन्हें आम तौर पर मास्को या वर्धा के इशारो पर चलने वाला कहा जाता था। मेरी हम दर्दी आम तौर पर आजादी पाने के लिए सघष करने के इच्छुक वामपथी गुटो के साथ थी, लेकिन वह गाधीजी और उनके अनुयायियो की जो निंदा करते थे वह बहुत असयमित थी। इसे समझना मुश्किल था, जबकि वह खुद इसे समझने स इकार करते थे। लेकिन कलकत्ता में जब सुभाष बाबू ने मुझे सलाह दी कि मैं "सरदार पटेल के नेतृत्व मे काम करन वाले प्रतिक्रियावादियो के बुरे इरादा' के बारे मे बादशाह खा को सजग कर दू तो उनके एक साथी निहारेंद्र दत्त मजूम दार ने समझा कि उन्होने मुझे अपनी तरफ कर लिया है।

दूसरी बातो के अलावा, इन यात्राओ से कई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएँ मेरे सामने आयी। काग्रेस सम्मेलनो मे अदा की जाने वाली कुछ रस्मा पर विवाद पैदा हो गया, क्योकि उनके सिलसिले मे सगठन के खिलाफ प्रचार किया जाता था और इनके गलत अर्थ लगाये जाते थे। मुस्लिम लीगियो ने इस्लाम का हिंदूकरण' करने की हिंदू योजनाओ के बारे मे बातचीत करने के लिए इनका (रस्मा का) बहाना बनाया। राष्ट्रीय मुख्यधारा से मुसलमानो के अलग हो जाने को ध्यान म रखकर अध हिंदूवादियो के एक वग ने राजनीतिक कायकलापो को निश्चित रूप से धम का पुट देने की कोशिश की। काग्रेस की बठको पर भी इसका असर पड़ा। यह बुरी बात थी और इसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही अवाछनीय थी। धार्मिक रुख से लडने मे सास्कृतिक परपरा भी उनके गुस्से का शिकार बनी। जरूरत थी यथार्थवाद की भावना और सतुलन की मात्रा की। भारतीयता की भावना आनी चाहिए थी लेकिन इसके राष्ट्रीय स्वरूप को समझाने की कोई चेष्टा नही की गयी और न कभी सप्रदायो की राय जानने की कोशिश की गयी। मुसलमानो को खास तौर पर ऐसे शालीन तौर तरीके अपनाने के लिए प्रोत्साहित नही किया गया जिनका स्वरूप लाजिमी तौर पर धार्मिक नही था, जस कि हाथ जोड कर नमस्ते करना। इडोनेशिया म भी अभिवादन करने का यही तरीका है। भारत म पश्चिम के रग म रँगे हुए मुसलमानो को शराब पीते और अँग्रजो की तरह 'गुड मॉर्निंग या गुड ईवनिंग से एक दूसरे का अभिवादन करते देखा जा सकता है, लेकिन अगर व अपने किसी सहधर्मी को यही भावना व्यक्त करने के लिए हाथ जोडते देखत तो बौखला जाते। इसस इस्लाम को खतरा पदा हो जाता!

उस समय भी यह महसूस किया गया कि मुसलमानो के नुमाइदा न ठीक से उनकी रहनुमाई नही की। मौलाना मुहम्मद अली जसे उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को ही लीजिए। दस साल के छोटे से अरसे म गाधीजी के बारे मे उनकी राय पूण प्रशसा स बेहद हिकारत तक रही। राष्ट्र के बार मे उनके अपन विचार और राष्ट्र के प्रति दायित्वा के बारे मे उनके खयाल विवकपूण नही थे। वह अपनी राजनीतिक भूमिका और धार्मिक विश्वासो मे तालमेल बठाने म बहुत मुश्किल महसूस कर रह थे। इसलिए इस्लाम और भारत के प्रति उनकी निष्ठा मे अतर-विरोध पदा हो गया और यह इस हकीकत के बावजूद हुआ कि इस्लाम मे वतन

से प्यार अकीदत का आधा हिस्सा माना गया है। फिर भी मौलाना ने कहा, "जहा तक इस्लाम का ताल्लुक है, मुझे भारत स कुछ लेना-देना नही है।" कोई भी अरब या इडोनेशियावासी इस राय को नही मानगा। क्या किसी बच्चे से यह पूछा जा सकता है कि वह अपनी मा का है या पिता का, यानी अपने देश का है या धम का ? जाहिर है कि यह बात बिलकुल बेतुकी है, लेकिन दो राष्ट्र के सिद्धात के समथक ऐसे ही सवाल उठाते हैं और सचमुच बहुत से लोग इन नारो से गुमराह हो गये और इसीलिए सारी उलझन पदा हुई।

मद्रास मे राजाजी से मुलाकात का जिक्र आया है। बाद के वर्षों मे मेरी उनसे अच्छी-खासी जान पहचान हो गयी थी और मैं उन्हें बहुत पसद करने लगा था। वह विलक्षण बुद्धि वाले आदमी थे। उनका सोचने का ढंग बहुत जटिल था। इसकी वजह से पडित मोतीलाल नेहरू ने एक बार टीका की कि "अगर उनके सिर म एक लकडी घुमेडी जाये तो वह पेंच बनकर निकलेगी।" लेकिन मैंने उन्हे बहुत ही खुशमिजाज और दिलचस्प साथी पाया। दिल्ली म एक बार मैंने अपने एक भाई मुहम्मद यूसुफ को उनसे मिलाया। वह कई साल बाद 1941 मे बर्मा से वापस आये थे। राजाजी हम लोगो के नामो—यूसुफ और यूनुस—की एक सी ध्वनि से बहुत ही उलझन मे पड गये। इसके बाद स हमेशा वह मुझे पहले यूसुफ कहकर पुकारते और फिर यह कहकर अपने को ठीक करते, 'मेरा मतलब है यूनुस।" फिर वह बच्चा की तरह खिलखिलाकर हँस पडते। जवाहरलाल एक बार उन्हें अँग्रेजी फिल्म दिखाने ले गये। यह उनकी पहली और आखिरी फिल्म थी। राजाजी कई दिन तक सो नही पाये क्योकि "कुछ सीन मेरे दिमाग पर हर वक्त छाये रहते।" वह दश के कुछ अत्यधिक प्रतिष्ठित पदो पर रह। वह अविभाजित मद्रास के मुख्यमत्री, भारत के आखिरी गवनर जनरल और बाद म गृह-मत्री रहे। मेरा अत तक उनसे सबध रहा।

उस जमाने की कई दूसरी यादो के साथ मुझे एक सवाल याद आता है जो 1937 की गरमी म एक अँग्रेज ने मुझसे पूछा था। मैं श्रीनगर मे नीडोज के होटल म ठहरा हुआ था। एक अवकाश-प्राप्त अँग्रज अधिकारी भोजन के कमरे मे मेरे पास ही बैठता था। वह मुझे होटल के सामने वाले लॉन मे पढते हुए भी देखता था। हम लोगा ने एक दूसरे को देखकर मुसकराना और फिर अभिवादन करना शुरू कर दिया। एक दिन उसने मुझसे पूछा, "भारतीय अपन कुत्तो से हमेशा अँग्रेजी म क्या बात करते हैं ? उनकी अपनी भी तो कोई जुबान होगी ?" मैंने शरारत से जवाब दिया, "लेकिन कुत्ते की मातृभाषा तो अँग्रेजी है।' वह इतन अँग्रेज थे कि उन्होने इसे विनोद ही माना। लेकिन यह सही है कि बिना पढे लिखे भारतीय भी अपने कुत्तो से अँग्रेजी मे ही बात करते है और टामी, टाइगर या ब्राउनी जस उनके नाम रखते हैं।

1938 म सरहद के अपने पहले दौरे म जवाहरलाल नेहरू काग्रेसी कायकताओ मे एकता और दूसरो को अपने ही जैसा समझने की भावना से बहुत प्रभावित हुए। उन्हें नेताओ और साधारण कायकर्ताओ के बीच प्रतिद्वद्विता नजर नहा आयी और उन्होंने इसे खुदाई खिदमतगार शिविरो द्वारा कायम किये बधनो की देन माना। पूरे सगठन के प्रति वफादारी की भावना पैदा करन के लिए यह शिविर नियमित समय पर होते थे। इसलिए उन्होंन भी तय किया कि इलाहाबाद के निकट नैनी मे इसी तरह का नताओ का एक शिविर किया जाये। उत्तर प्रदश के प्रमुख नेताओ ने बहुत उत्साह से इसम भाग लिया। तडके प्रभात-

फेरियाँ निकलती, दिन मे जवाहरलाल व अन्य नेता बहस मुबाहिसे का नेतृत्व करते। कई अन्य जगहो पर इसी उदाहरण का अनुकरण किया गया। जिला स्तर के कई शिविरो मे मुझे कई स्थानीय कार्यकर्ताओ को जानने का मौका मिला।

इस तरह जो भाई चारा कायम हो गया था उसकी चरम सीमा मथुरा मे प्रातीय काग्रेस कमेटी के वार्षिक अधिवेशन मे दिखायी दी। मुझे एक मनोरजक घटना की याद आ रही है। इससे पता चलता है कि आपस मे अगर घनिष्ठता है तो स्वाधीनता सग्राम मे भाग लेने वाले सजीदा नेता भी मजाक और विनोद मे हिस्सा ले सकते हैं। मैं एक खेमे मे ठहरा हुआ था। एक दिन सवेरे जागने पर मैंने देखा कि मैं बग़ल वाले पलँग से निकाली गयी निवाड से पलँग से बँधा हुआ हूँ। मैं हिल डुल भी नही सकता था। यह हरकत डॉक्टर राममनोहर लोहिया की थी और उन्होने मुझे बाधने के बाद फौरन जाकर जवाहरलाल को इसकी सूचना दे दी थी। डाक्टर लोहिया सोशलिस्ट नेता थे जिन्होने भारतीय राजनीतिक जगत मे हलचल मचा दी थी। वे सब मेरे पास इकट्ठे हो गये और हँसी रुक जाने के बाद ही मेरी गाठें खोली गयी। लोहिया और उनके गुट के कुछ लोग समाजी तौर पर मेरे बहुत करीब आ गये। उन्होने एक बार मुझसे कहा, "अगर सरहद बुलाना है तो हमे अकेले बुलाना। जवाहरलालजी के साथ आने मे हमारी खातिर कम होगी और यह बात हमको पसन्द नही।"[1] मथुरा का यह अधिवेशन बहुत कामयाब रहा। इसमे बहुत से लोगो ने भाग लिया। विशाल पडाल पर इकबाल के कई शेर प्रमुखता से लिखे हुए थे। जवाहरलाल को खास तौर पर यह शेर बहुत पसद आया

> जिस खेत से दहकां को मयस्सर न हो रोटी,
> उस खेत के हर खोश ए गदुम को जला दो।

सीमाप्रात के बारे मे अखबारो मे छपी झूठी या निदात्मक खबरो को देखते हुए जवाहरलाल ने मुझे सलाह दी कि उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात की घटनाओ के बारे मे मैं अखबारो मे लेख लिखूं। कुछ आरोपो का जवाब देने के लिए उन्होने मुझसे एक किताब भी लिखने को कहा। उनकी सलाह और लगातार प्रोत्साहन ने मुझे पठानो का इतिहास लिखने के लिए प्रेरित किया जिसमे कबालो की स्थिति और खान अब्दुल गफ्फारखाँ की जीवनी पर भी अध्याय थे। 1941 और 1942 के पूर्वार्द्ध मे बादशाह खा के अहिंसा पर अडे रहने व काग्रेस वकिंग कमेटी से उनके इस्तीफे और डाक्टर खान साहब व पठान विधायको मे उनके कुछ दोस्तो द्वारा इस दृष्टिकोण से मतभेद प्रकट करने के कारण राजनीतिक क्षेत्र मे कुछ तनाव पैदा हो गये थे। यह विवाद एक तरह से किताबी था और उसमे पक्ष लेकर अनावश्यक उलझाव पैदा करने की कोई तुक नही थी। किंतु, मुझे जवाहरलाल का

---

1 मुझे मीनू मसानी द्वारा इस लोहिया काम्प्लेक्स (फितूर) का जिक्र पढ़कर मेरा थोड़ा मनोरजन हुआ जसाकि उन्होने अपनी किताब 'लिस बाज इट हन दट डान' मे लिया है। मसानी ने 1946 मे विधानसभा में भूमिगत कार्यकर्ताओ के बारे मे एक भाषण दिया था। लोहिया इससे बहुत नाराज हुए कि जहाँ मैंने उनका (लोहिया का) नाम सिर्फ एक बार लिया था और बाक़ी वक्त मैं ज०पी० के बारे मे बोलता रहा था। इसके नतीजे में लोहिया न सिर्फ मेरे (मसानी) बल्कि ज० पी० के भी खिलाफ़ हो गये। लोहिया अपना हसद और नाराजी को पालते पोसते रहे। (पृ० 195)

एक खत[1] मिला जिसमे उस समय के राजनीतिक घटनाचक्र का इतना स्पष्ट विश्लेषण किया गया था कि इसे पूरा-का-पूरा यहाँ दे देना उचित होगा।

आनद भवन,
इलाहाबाद,
6 अगस्त, 1940

प्रिय यूनुस,

मुझे तुम्हारा श्रीनगर से भेजा गया 31 जुलाई का खत मिला। मेरा खयाल है कि अब तुम पेशावर वापस लौट गये होगे और रणजीत से मिल लिये होगे।[2]

मैं समझ सकता हूँ कि काग्रेस महासमिति की कारवाई तुम्हे उलझी हुई या चकरा देने वाली लगी होगी। हिंदुस्तान मे ही नहीं, सारी दुनिया म परिस्थिति बहुत उलझी हुई है। साथ ही, गाधीजी के लेखो न और भी उलझाव पैदा कर दिया है। असलियत यह है कि हम सब परिवतन या बदलाव के बहुत बडे युग से गुज़र रहे हैं और इन परिवतनो के अनुरूप अपने को ढालना बहुत कठिन है। मैं समझता हूँ कि परिस्थिति बहुत तेजी से बदल रही है और अगले कुछ ही हफ्तो मे, कम से-कम हिंदुस्तान मे, काम करने के बारे मे कुछ स्पष्टता आ जायेगी। इसलिए हमे बौद्धिक तर्कों मे ज्यादा नही पडना चाहिए और उस अनिवाय कदम के लिए तयारी करनी चाहिए। असलियत यह है कि पिछले कुछ हफ्तो म जो कुछ भी यहा हुआ है, वह एक तरह से जरूरी तैयारी ही है। अगर दूसरे कदम उठाये गये होते तो डर यह था कि काग्रेस मे ही तरह तरह के भीतरी झगडे शुरू हो जाते। हमने उन झगडो से बचने की कोशिश की है।

बादशाह खा के वक्तव्य, जहा तक खुद उनका सबध है, ठीक थे। लेकिन मैं चाहता था कि वह जल्दी मे इस्तीफा न दें, क्योंकि हमे किसी भी हालत मे मुकाबले पर आना है और हम बेशक मिलकर इस टकराव का सामना करेंगे।

भारत सरकार का नया ऑर्डिनेंस, जो स्वयसेवको पर भी लागू होता है, बहुत ही महत्वपूर्ण और आक्रामक कदम है, जिससे मसले बहुत ही जल्दी पक जायेंगे। इस आर्डिनेंस का असर खुदाई खिदमतगारो पर भी पडेगा और हमे बहुत सावधानी से सोचना पडेगा कि हम क्या करें? इस वक्त यू० पी० (उत्तर प्रदेश, तब सयुक्त प्रात) मे कई जगह काग्रेस के स्वयसेवको के शिविर चल रहे है। मैंने उन्हें सलाह दी है कि वे अपना काम बदस्तूर जारी रखे, सिफ कुछ दिन तक शहरो मे जुलूस न निकालें। अगले इतवार को मैं एक बडी स्वयसेवक रली के सिलसिले म कानपुर जा रहा हूँ। जहा तक हमारा सबध है, यह रली पहले के प्रोग्राम के मुताबिक बदस्तूर होगी। सरकारी कारवाई की वजह से हम अपने स्वयसेवक सगठन भग नहीं होने दे सकते। मुझे इसम कोई शक नही है कि काग्रेस वकिंग कमटी इस सबध मे निर्देश जारी करेगी। पर अगले कुछ दिनो तक हम अपना काम बदस्तूर जारी रखते हुए घटनाओ पर नजर रखेंगे।

बादशाह खा यह सोच रहे होगे कि खुदाई खिदमतगारो के बारे म क्या किया

1 दूसरे और खतो के साथ यह खत भी जवाहरलाल नेहरू स्मारक पुस्तकालय के अभिलेखागार में मौजूद है।

2 रणजीत एस० पडित नेहरूजी के बहनोई जो उस नये आर्डिनेंस से किस तरह निपटा जाये (जिसका जिक्र खत मे है) इस पर खुदाई खिदमतगारो को सलाह देने आये थे।

जाये। अगर मैं सुझाव दूँ, तो वह यही होगा कि वह पहले की तरह चुपचाप अपना काम जारी रखें और खुदाई खिदमतगारों के काम में कोई रुकावट न हो। फिलहाल, कोई बड़े लड़ाकू प्रदर्शन की जरूरत नहीं है, पर और कामों में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। ज्यादा जरूरी और अहम बात यह है कि बादशाह खाँ खुदाई खिदमतगारों में अपने साथियों और अनुयायियों को आज की हालत समझायें और बतायें कि टकराव सारे हिंदुस्तान में होने वाला है। हम इसके लिए तैयारी रखनी चाहिए और सबको एक साथ मिलकर काम करना चाहिए।

इस हालत में तुम्हें जरूर ही बादशाह खाँ के साथ होना चाहिए। मुझे खुशी है कि कश्मीर में रहकर तुम्हें फायदा हुआ है। तुम चाहो तो यह खत बादशाह खाँ और रणजीत को दिखा देना।

प्यार,

सस्नेह तुम्हारा
जवाहरलाल नेहरू

तो मैं ज्यादातर वक्त द फ्रंटियर स्पीक्स लिखने और ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी जमा करने में लगाता रहा। लाहौर व श्रीनगर में कई हफ्ते लग गये, जहाँ मेहमाननवाज और हँसोड़ नवाबजादा अमीनुल्लाह खाँ और हमेशा हँसते मुसकराते रहने वाले आगा परिवार के लोग बहुत मददगार साबित हुए। सन 1941 में बारदोली में जवाहरलाल ने अपनी बेटी इंदिरा को सुझाव दिया था कि वह मेरी किताब की पांडुलिपि पढ़ लें, क्योंकि वह उसकी भूमिका लिखने वाले थे। मैंने इंदिराजी द्वारा बताये गये कई संशोधन व सुझाव किताब में शामिल किये। इंदिरा नेहरू—तब वह यही थीं—इंग्लैंड से कुछ महीने पहले ही लौटी थीं। कुछ दिनों बाद ही, 26 मार्च 1942 को, उनकी फीरोज गांधी से शादी हुई थी और फिर 'भारत छोड़ो' आंदोलन में वह फीरोज के साथ ही जेल की सजा काटने लगी थीं। किताब का पहला मसौदा मैं देहरादून जिला जेल में जवाहरलालजी तक पहुँचाने में कामयाब हो गया था। भूमिका में उन्होंने लिखा था

> यूनुस ने जवानी के उल्लास, अपनी परम्पराओं पर गर्व और अपने लोगों के लिए भरपूर प्यार के साथ लिखा है। कभी कभी उन्होंने सख्त जुबान का इस्तेमाल किया है और विगत व वर्तमान (की घटनाओं) पर उनके फैसले एक तरफ झुके हुए हो सकते हैं और उनकी आलोचना हो सकती है। मैं उन सबसे सहमत भी नहीं हूँ। लेकिन मैं समझता हूँ कि यह ठीक ही है कि वह अपने गहरे विश्वासों को अपनी भाषा में व्यक्त करें, क्योंकि उनके ये विश्वास फ्रंटियर की जनता के विशाल बहुमत के भी विश्वास हैं।

आमुख में अब्दुल गफ्फार खाँ ने अपनी राय दी थी

> यूनुस ने सीमा प्रांत की जनता की कुछ समस्याओं के बारे में ब्योरे से लिखा है। असली हालत की जानकारी कम लोगों को ही थी और इसलिए यूनुस की राय कुछ जगहों पर लोगों को सख्त लग सकती है पर उनकी विशेषता यह है कि उनकी राय आम जनता की राय है। अपने असंख्य साथियों को

सच्ची भावनाओं का वह प्रतिनिधित्व करते हैं और मैं उनकी राय से इत्तिफाक करता हूँ। आखिर मे, मैं यूनुस के काम मे उनकी पूरी कामयाबी की ख्वाहिश करता हू और उनके लिए शानदार भविष्य की कामना करता हूँ ताकि वह उस काम को पूरा कर सकें जो उन्होंने बहुत निष्ठा से चुना है और जिसमे वह अभी तक लगे रहे हैं।

सन् 1942 मे मेरी गिरफ्तारी के फौरन बाद ही द फ्रंटियर स्पीकस प्रकाशित हो गयी थी। इसकी ओर फौरन ध्यान गया और अँग्रेज सरकार ने इसे जब्त कर लिया। इस तरह मैं उन थोडे-से लोगो की श्रेणी म पहुँच गया जिनके लेखन को विदेशी शासक खतरनाक मानते थे। जून 1945 मे जेल से रिहाई के बाद जवाहरलाल ने अपने खास लहजे मे बडे कृपालु ढँग से अचभा सा जाहिर करते हुए कहा, "मैंने कई किताबें लिखी, पर कुछ नही हुआ। तुमने एक लिखी तो सरकार हिल गयी। मुझे बहुत ईर्ष्या होती है।'

उन दिनो मैं अपने-आप भी बहुत सफर करता रहा। एक बार मैं जब शिलांग जाने के लिए जवाहरलाल की इजाजत लेने पहुँचा तो मेरे घुमक्कडपन पर जिज्ञासु भाव से पूछने लगे कि यह सब सैर-सपाटा क्यो है? मैंने हँसकर जवाब दिया, "मैं उस मुल्क को ही देख लू जिसके लिए शायद मुझे कभी अपनी जान देनी पडे।" उन पर इस विचार का कुछ ऐसा असर पडा कि वह औरो से मेरा परिचय कराते वक्त कहने लगे, "यह एक ऐसे नौजवान हैं जो हिंदुस्तान का सफर कर रहे हैं। यह देखने के लिए कि यह उसके लिए जो कुरबानी करने के लिए तैयार है, वह उसके योग्य है भी कि नही!" जयप्रकाशजी ने सुना तो बोले, 'हम ता बगैर देखे ही चिमट गये हैं।" आचाय नरेंद्र देव, जो एक मशहूर सोशलिस्ट और हीरा शख्सियत वाले इसान थे, मेरे जोश के कायल हुए और इसकी तारीफ की वह चाहते थे कि सगठन ज्यादा से ज्यादा काग्रेस कायकर्ताओ को देश के चारो कोनो में जाने के लिए प्रोत्साहित करे और उन्हें स्थानीय समस्याएँ समझने में मदद दे। उन्होंने मुझसे अपने साथ बनारस चलन को कहा जहाँ मैं 80-वर्षीय विद्वान, डॉक्टर भगवानदास के साथ ठहरा। वह बडे प्यारे इसान थे जो दुनिया के भिन्न-भिन्न धर्मों में समानताएँ समझाने में बहुत निपुण थे। उनके सबसे बडे बेटे श्रीप्रकाश, जो बाद में राज्यपाल बने, एक सस्था के समान व्यक्ति थे, जिनसे परिचय बढाना अच्छा था। वह चाय के शौकीन थे और इस बात का खास खयाल रखते थे कि वह कैसे बनायी जाये। मुझे उनका खुलकर हँसना बहुत पसद था। यहा मुझे बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी से परिचित होने का जो मौका मिला उसकी बदौलत मैं उसकी तुलना अलीगढ के बारे में अपनी जानकारी से कर सका। कश्मीर के एक छात्र, रामजी काक, मेरे गाइड या मागदशक बने। वहाँ की कठोर सादगी और पढाई में लगा छात्र समुदाय अलीगढ में तशरीफ लाने वाले नौजवानो से बहुत भिन्न था।

जो थोडे से दिन शाति निकेतन म गुजरे उनकी याद भी हमेशा ताजा रहेगी। मैं गुरुदेव से लाहौर मे मिल चुका था, फिर कश्मीर मे मिला था और अब खुद उनक राज मे। उनके बारे मे बहुत कुछ लिखा गया है और उसमे कुछ जोडने का मुझे हक नही है। लेकिन उनका एक छोटा सा जुमला आज भी मेरे दिमाग मे ताजा है। एक बगाली नौजवान, जो बाद मे वरिष्ठ सरकारी हाकिम बना, तभी इग्लैंड म छ साल रहकर लौटा था। कविवर ने उससे पूछा कि वह बगला क्या

नहीं बोलता? नौजवान ने कहा कि वह इंग्लैंड में यह भाषा भूल गया था। गुरुदेव का जुमला था, "कितने अफसोस की बात है, तुम अपनी मातृभाषा भूल गये और अंग्रेजी भी सीख नहीं पाये।"

जवाहरलाल नेहरू के नजदीक रहकर उनसे जो रिश्ते बने वे मेरे लिए सबसे ज्यादा फायदेमंद साबित हुए। मेरी खुशकिस्मती सिर्फ यही नहीं थी कि बरसों तक उनके साथ रहा और काम किया, बल्कि वह इतने उदार स्वभाव के थे कि उन्होंने मुझे यह कभी महसूस नहीं होने दिया कि मैं उनसे बहुत छोटा हूँ, बहुत ही नातजुर्बेकार हूँ और उनका बहुत वक्त ले लेता हूँ, हालांकि मैं उनसे 26 साल छोटा था। मुझे याद है कि तीन साल तक उनके घर मेहमान रहने और उनकी देख-रेख का लाभ उठाने के लिए जब मैंने उनका शुक्रिया अदा किया तो वह बहुत बड़प्पन के साथ खुद उलटे मेरा शुक्रिया अदा करने लगे कि मैंने उन्हें साथ दिया। वह बोले "बहुत लोग आते हैं और चले जाते हैं। कभी गांधीजी किसी को भेज देते हैं और कभी कोई और। वह रिश्ते अक्सर टूट जाते हैं। मगर तुमने आकर इस घर में हर किसी के दिल में एक खास जगह पैदा कर ली है। मैंने भी तुमसे बहुत कुछ सीखा और तुम्हारी बातें अच्छी लगने लगी हैं। अब तुम इस घर को अपना ही घर समझो।' और यही मैंने किया भी, उनकी पूरी उम्र भर। किसी ऐसे इंसान का ठीक-ठीक और निष्पक्ष मूल्यांकन मुमकिन नहीं है जो दिल के इतने करीब हो। लेकिन, तब भी आजादी की लड़ाई में उनकी गतिशील भूमिका और आजादी के बाद 17 साल तक राष्ट्र के कुशल संचालन से न तो कोई इंकार कर सकता है और न उसे अनदेखा ही कर सकता है। उन्होंने एक आधुनिक और लोकतांत्रिक राज्य की मजबूत और टिकाऊ नींव डाली और उसका ढांचा खड़ा किया।

जब भी मुझे नेहरूजी की याद आती है या मुझे उनके बारे में लिखने का मौका मिलता है—और ऐसे मौके बहुत आये हैं—मैं उनकी शख्सियत के किसी नये पहलू तक पहुँच जाता हूँ किसी ऐसे भिन्न और शानदार तथ्य तक जिससे उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। ऐसा शायद ही कभी होता हो कि आप ऐसे व्यक्ति से मिलें जो सिर्फ अच्छी बात सुनना पसंद करता हो, अपने दुश्मनों के बारे में भी अच्छी बातें ही जानना चाहता हो और उन लोगों की बुराई भी सुनने से नफरत करता हो जिनमें उसकी कोई दिलचस्पी न हो। जवाहरलाल नेहरू ऐसे ही इंसान थे। एक बार मैंने पाकिस्तान के उस समय के प्रधानमंत्री हुसैन शहीद सुहरवर्दी के बारे में एक दिलचस्प किस्सा उन्हें सुनाया, जो मैंने सुना था। और उन्होंने कहा 'यह गंदा क्यारा तुम्हें किसने सुनाया? मुझे यकीन है कि यह सच नहीं है।' इसी तरह वह किसी का भी राज़ देना पसंद नहीं करते थे, और इसके कभी-कभी गलत मानी लगाये जाते थे। वह बहुत ही नरमदिल, सहज स्वाभाविक और मज़ाकपसंद इंसान थे। उन्हें मज़ाक पसंद थे, हालांकि वह सुथरे मज़ाक ही पसंद करते थे गंदे नहीं। डॉक्टर खान साहब ने मुझे बताया था कि जब वह 1912 से 1916 तक नेहरूजी के साथ लंदन में थे तब कॉलेज में पढ़ते वक्त भी नेहरूजी को अश्लील मज़ाक बुरे लगते थे। ईश्वर उन पर कृपालु थे और उन्हें एक सुंदर पुरुष बनाया था। अपनी तरफ से नेहरू खुद अपने कपड़ों का और साफ-सुथरे दीख आने पर अपनी सज-धज का बहुत खयाल रखते थे। गांधी टोपी तो उन पर ऐसी फबती थी मानो उन्हीं के लिए ईजाद की गयी हो। लाल गुलाब हमेशा अपनी जगह पर होता, जिससे वह सुंदरता के उपासक की हैसियत से सबसे

अलग दिखायी पडते। वह अच्छे खाने के शौकीन थे, पर वह मानते थे कि भरपेट खाने पर बडी मेहनत का काम नही हो सकता। वह मिच मसाचा खाने से बचते थे, पर जब कभी खा लेते थे तो उनके गजे सिर पर पसीना झलकने लगता था और वह मुसकराकर उसे पोंछ डालते थे। पर वह अपनी खीझ भी प्रकट कर देते थे अगर खाना भोंडेपन से परोसा जाता, मेहमाननवाजी मे लापरवाही होती, या दावत मे शरीक लोग शऊर से काम न लेते।

उन्हे चाहे जिस भूमिका मे देखा जाये—राजनयिक, आजादी की लडाई के योद्धा, लेखक, दार्शनिक, प्रशासक, दोस्त, भाई, बेटा, पति, पिता या पितामह—उनकी एक विशिष्टता थी जो उनकी सारी प्रवृत्तियो को बाधे रहती थी। यह उनकी मर्यादा की भावना थी। काम करने की उनकी धुन और क्षमता उसी टक्कर की थी, जिस भरपूर तरह से वह अपने खाली वक्त का आनद लेते थे। जो कुछ भी वह कहते, करते या लिखते उस सब मे उनकी अपनी अनोखी शैली होती थी, जिसस जो भी उनके सपक मे आता, मोहित हो जाता। छोटी और मामूली लगने वाली बातो को भी वह जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे इस तरह रख देते थे कि वे इतिहास के सबक लगन लगती थीं। मेरे लिए वह भाई थे और यही कहकर मैं उनको पुकारता था। लेकिन यह रिश्ता इस शब्द मे प्रकट भावनात्मक स्तर से बहुत ऊँचा साबित हुआ। वह दोस्त थे, गुरु थे, राजनीतिक सहयोगी थे और मेरे हाकिम भी थे और सभी एक ही साथ, एक ही वक्त। हमारे आपसी रिश्ते की गरमी पर अपने सावजनिक जीवन की छाप उन्होने कभी नही पडने दी। एक व्यक्ति की हैसियत से उनके लिए मेरे मन में अगाध प्रशसा थी और उनमे मेरा जो विश्वास था उससे मुझे उन बातो की आलोचना करने की आजादी मिली हुई थी जिन्हें मैं गलत समझता था। ऐसे असख्य अवसर आय जब मेरी उनसे असहमति हुई, पर मैं किसी भी डर या हिचक के बिना अपने मतभेद प्रकट कर देता था। वह आलोचना को—कम-से-कम मेरे द्वारा की गयी आलोचना को—विनोद और गहर लगाव, दोनो से स्वीकार करते थे। मेरे लिए उनकी यादें उनके घटनाओ भरे जीवन के एक बहुत लबे अर्से से बँधी हुई है और उनसे शायद इस बात पर कुछ रोशनी पडे कि उनका दिमाग कैसे काम करता था। ये घटनाएँ मुख्यत 1947 से 1964 तक की अवधि की है, कुछ ही घटनाएँ विभाजन के पहले की हैं। मैंने जान-बूझकर इन्ह अलग-अलग जगहो पर उनके उचित सदभ मे रखा है

तुम्हारी याद के जब जख्म भरन लगते है,
किसी बहाने तुम्ह याद करन लगते हैं।

सामती राजे रजवाडा की उस व्यवस्था से अपनी अरुचि के कारण, जो आजादी तक भारत को एक बीमारी की तरह लगी हुई थी, मैं बखूबी समझ सकता था कि जवाहरलाल नेहरू इन राजाओ स मिलन से कितने विमुख रहते थे। एक दोस्त के बार बार जोर देने पर ही वह 1940 मे इदौर के अपदस्थ महाराजा तुकोजी राव होलकर तृतीय से मिलने के लिए राजी हुए थे।[1] नेहरूजी न मुझे मुलाकात के वक्त कमरे मे मौजूद रहन के लिए कहा ताकि लोगो और मामला से निपटन की मेरी राजनीतिक दीक्षा का जो सिलसिला चल रहा था वह

1 सन 1926 में उन्हें गद्दी छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया गया था। वह 22 मई 1978 को 88 साल की उम्र में मरे।

जारी रह सके। महाराजा कुछ अजीब सा लिबास पहने हुए थे और एक अनोखी सी भगवा टोपी पहने हुए थे। उनका इस भेंट म एक उद्देश्य था। वह चाहते थे कि नेहरूजी हिटलर को बुरा भला कहना वद कर दें। वह वडी मेहनत से यह समझाने की कोशिश कर रह थे कि महान नाजी तानाशाह आर्यों की श्रेष्ठता म विश्वास करता था। "वह हिंदुओ की तरह स्वास्तिक के चिह्न का सम्मान करते हैं। वह स्नान करने के बाद ही भोजन करते है और जनऊ धारण करते हैं। अगर आप चाह तो इन बातो का खुद पता लगा सकते ह।' वह कह रहे थे और नेहरूजी लगातार बेचन और अधीर होते जा रहे थे। जब महाराजा ने यह कह कर अपनी बात खत्म की कि "मैं सिफ यह चाहता हूँ कि आप भारत की भलाई के लिए उनसे सपक स्थापित करें," तब नेहरूजी बरस पडे। उन्होंने महाराजा को खरी खरी सुनायी और उन्हें बता दिया कि उनकी किस्म के लोगो की राजनीतिक समझ के बारे मे उनकी क्या राय है। महाराजा खडे खडे कापते रह और फिर घबराहट म आनद भवन से विदा हो गये।

जब 1939 मे सर स्टैफड क्रिप्स पहली बार निजी यात्रा पर भारत आये थे, तब वह नेहरूजी के साथ ही ठहरे थे। आचाय नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, श्रीप्रकाश और कुछ दूसरे काग्रेसी नेताओ को उनसे बात करने की दावत दी गयी। मैं उस वक्त नेहरुजी के साथ ही ठहरा हुआ था और उनके विचार विनिमय मे शामिल होता था। विश्व स्थिति का क्रिप्स ने जो विश्लेषण किया और उनके दूसरे मूल्याकन मुझे बिलकुल अजीब लगे। उनके बारे म मैंने जो राय कायम की थी, उसे मैंने छिपाया भी नही। एक बार मैंने जवाहरलाल से कहा, 'यह तो बिलकुल पागल लगता है।" मुझे स्पष्ट लगा कि मेरी राय पसद नही की गयी। फिर 1942 आया और क्रिप्स भारतीय नताओ से बाकायदा बातचीत करने के लिए यहा फिर आये। वह अपनी बात बार-बार बदलते गये और बातचीत बुरी तरह असफल हुई। नेहरू ने दिल्ली मे सवाददाता सम्मेलन करके काग्रेस का दृष्टिकोण समझाया। एक सवाददाता ने उनसे क्रिप्स के बारे म उनकी राय पूछी। उन्होने क्रिप्स को एक 'उलझे विचारो वाला राजनीतिज्ञ" बताया। भारतीय व विदेशी पत्रकारो के उस भारी जमाव से हम लोग जब कार से वापस लौट रहे थ मैंने नेहरूजी को कुछ बरस पहले क्रिप्स के बारे मे दी गयी अपनी राय की याद दिलायी और पूछा, क्या मैं पागल और उलझे विचार वाले का फक जान सकता हूँ ?" वह मुसकराये और बोले,' तुम्हारे क्या कहन !' उसी दिन बाद म उन्होने यह बात गाधीजी को बतायी और वह बहुत भद्रता क साथ बोले, 'यह ऐसा था तो मुझको क्यो नही बताया ?" मैंने कधे चिटकाये राहत की सांस ली और अल्लाह का शुक्रिया अदा किया कि हमन उस पागल से समझौता नही किया था। सीमा प्रात के एक काग्रेस कायकता को भी बातचीत की असफलता से इसी तरह की राहत मिली थी। उसन ज्यादा साफगोई से अपनी राय दी थी और बहुत सटीक भाषा का इस्तेमाल किया था। उसके चुने हुए शब्दो व वाक्याशो को यहा दोहराना सभव नही है, पर उसका मतलब यह था कि क्रिप्स पहले मास्को भेजे गये थे ताकि रूसी नताओ को नाजी जमनी के खिलाफ भडका सकें। वहाँ कामयाबी मिलने पर उन्ह अपनी चालें खेलन के लिए भारत भेजा गया। लेकिन महात्मा गाधी न समझौता नहा किया और क्रिप्स शम से भाग गय।

क्रिप्स-वार्ता अनिणय की स्थिति म और कभी कभी झुझलाहट पैदा करने की हद तक खिचती ही चली गयी थी। हर शख्स उसके नतीजे के बारे म उत्सुक था।
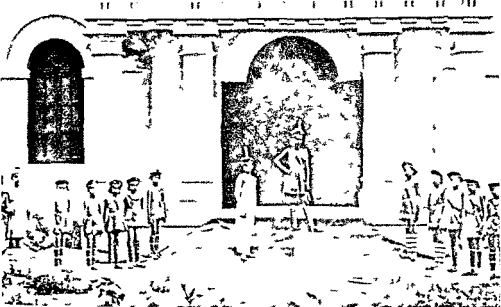
सिकंदर के जीवन पर आधारित नाटक। लेखक बीच में सफेद पोशाक में।
मुस्लिम यूनिवर्सिटी स्कूल, अलीगढ़, 1930
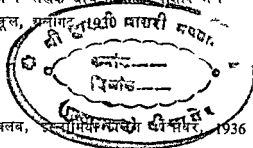
लेखक, बैठे हुए बायें से तीसरे। सीनियर क्लब, ... 1936

लखक की वहन क साथ नसीम हुसन की शादी। चित्र म अन्य लोगा म ह सर फजल हुसैन, सर जैफरी माटमोरेंसी सर शादी लाल और सर शहाबुद्दीन। लेखक क भाई मुहम्मद याहिया दाय सिरे पर बैठे है। लाहार, दिसम्बर 1929।

लेखक सीमा पर तूरखाम के पास मुहम्मद अली जिन्ना के साथ। अप्रैल, 1936।

अब्दुल अजीज़ तुर्की के युद्धकालीन प्रधान मंत्री रऊफ पाशा क साथ। अन्य लोगा म ह डा० जाकिर हुसैन, एच० एस० सुहरवर्दी, आसफ अली सर हरिसिंह गौड, सर मुहम्मद यामीन तसद्दुक हुसैन शरवानी, मुतजा बहादुर एम० काया दुर्गादास और हकीम जग। दिल्ली 1932।

लेखक की बहन के साथ नसीम हुसैन की शादी। चित्र में अन्य लोगों में हैं सर फज्ले हुसैन, सर जैफ्री माटमारेंसी, सर शादी लाल और सर शहाबुद्दीन। लेखक के भाई मुहम्मद याहिया खाँ सिर पर बैठे हैं। लाहौर, दिसम्बर 1929।

लेखक सीमा पर तूरखाम के पास मुहम्मद अली जिन्ना के साथ। अप्रैल, 1936।

अब्दुल अज़ीज तुर्की के युद्धकालीन प्रधान मन्त्री रउफ पाशा के साथ। अन्य लोगों में हैं डा॰ जाकिर हुसैन, एच॰ एस॰ सुहरवर्दी, आसफ अली, सर हरिसिंह गौड, सर मुहम्मद यामीन, तसद्दुक हुसैन शेरवानी, मुर्तजा बहादुर, एम॰ काया, दुर्गादास और हलीम जंग। दिल्ली 1932।

लेखक की भतीजी के साथ इकराम की शादी। चित्र में सर सिकन्दर हयात खाँ, नवाब मुजफ्फर खाँ और लेखक के कुछ भाई देखे जा सकते हैं। लेखक खड़े हुए लोगों में बायें से पाँचवें हैं। पेशावर, मार्च, 1938।

जवाहरलाल नेहरू कबाइलियों की एक बड़ी सी रोटी लिये हुए। उनके साथ हैं बादशाह खाँ और डा० खान साहब खैबर जाते हुए। 1938।

गाग श्र दुरना क साथ बादशाह खा ।
एबटाबाद 1938 ।

नवक जवाहरलाल नेहरू क साथ ।
रामगढ़ 1939 ।

वर्दी पहन हए जवाहरलाल नेहरू सयुक्त प्रात क अन्य नताओ क साथ । ननी 1939 ।

लेखक जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा के साथ । वर्धा 1940 ।

नेहरू, बादशाह खाँ, शेख अब्दुल्ला, बख्शी गुलाम मुहम्मद तथा अन्य लोग कोलाहाई ग्लेशियर जाते हुए । सभी एक रस्सी में बंधे हैं । कश्मीर 1940 ।

बादशाह खाँ ओवरकोट पहने हुए। कोलाहाई 1940।
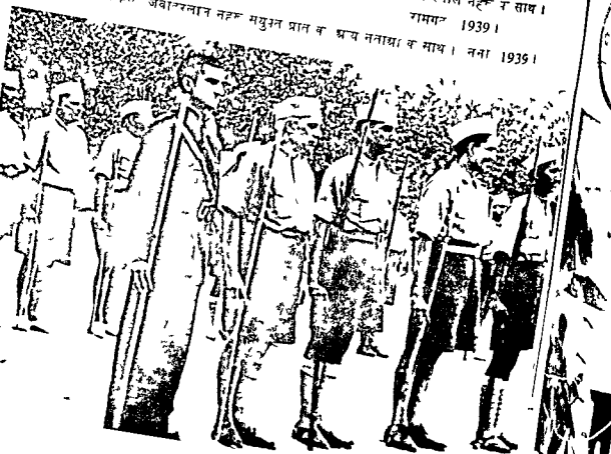
भूलाभाई देसाई, आसफ अली, अली गुल खाँ, अरबाब अब्दुर्रहमान और लेखक। पेशावर, मई, 1942।

लेखक हरिपुर जेल से रिहाई पर। पेशावर, अप्रैल 1942।

जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी और रोएरिक दम्पति के साथ। कुलू, जून 1942।

एक दिन जब जवाहरलाल वार्ता के एक लंबे दौर के बाद वापस आ रहे थे तो मैं उनके साथ कार में था। उन्होंने सोचा था कि मैं सवालों की झड़ी लगा दूंगा। लेकिन मैंने ठान रखा था कि चुप ही रहूँगा और अगर बताने लायक कोई बात होगी तो वह खुद ही बता देंगे। उनके मन में जो बोझ था, वह उसे किसी से बात करके उतारना चाहते थे और बड़ी बेताबी से मुझ पर फट-से पड़े, "तुम मुझसे कुछ पूछते क्यों नहीं ?" मैं कुछ झिझका। उन्होंने मेरे कंधे झिंझोड़ते हुए फिर कहा, "पूछते क्यों नहीं हो ?" मैंने कंधे झिटककर कहा, "मुझे कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं है। मैं कल अखबारों में इसके बारे में पढ़ लूंगा। मैं अभी कुछ पूछूं और कल के अखबारों में वह बात छप जाये तो आप यही सोचेंगे कि मैंने ही अखबारवालों को बताया होगा।" वह मुसकराये। बाद में उन्होंने यह बात गांधीजी को भी बतायी तो वह बुजुर्ग बहुत ही खुश हुए और मेरी "बादशाह खां से सीखी हुई अनुशासन की भावना" की तारीफ की।

नेहरूजी के पास डाक से हर रोज ढेरों खत आते थे और वह इस बात पर खास ध्यान देते थे कि इनकी प्राप्ति स्वीकार की जाये। मुझे इन पत्रों में से कुछ जवाब देने के लिए दे दिये जाते थे, मेरी ट्रेनिंग के लिए। कानपुर के एक तौलिया बनाने वाले एक कारखाने ने अपने एक नये किस्म के तौलियों का नाम नेहरूजी के नाम पर रखने की इजाजत माँगी थी। मैंने नेहरूजी से पूछा कि क्या जवाब दिया जाये ? वह कुछ चौंके, फिर बोले कि कारखाने वाले को बता दो कि व्यावसायिक चीजों पर अपना नाम देना मुझे पसंद नहीं है, पर मेरे नाम का कोई पेटेंट या कॉपीराइट तो है नहीं और वह अकसर ही इस तरह इस्तेमाल होता रहता है। मुझे यह जवाब मनोरंजक लगा, मैंने कहा, 'आप उसे मनचाही करने की इजाजत दे रहे हैं।" उनकी आंखों में एक चमक-सी आयी और उन्होंने मजाकिया अंदाज में कहा, "तुम्हें यह कैसे मालूम कि उसने अभी ही मेरे नाम के बिल्ले तौलियों पर टांकना शुरू नहीं कर दिये हैं और यह पत्र एक औपचारिकता मात्र नहीं है ?" वह मुसकराये और मैं जवाब लिखने चला आया। इस तरह के अनुरोध अनेक बार होते थे और इस तरह के जवाब भी अनेक। मिसाल के लिए, एक प्रौढ़ महिला थी, वह अक्सर बड़े लंबे लंबे खत लिखती थी और नेहरूजी से अनुरोध विनय करती थी कि उनकी शादी में वह जरूर आयें। हर बार वह बहुत जोर से दिल खोलकर हँसते और मुझसे पूछते कि क्या मैं इस नायाब मौके का फायदा उठाना चाहूँगा ?

इकबाल का पयामे मशरिक पढ़ते-पढ़ते मैं जवाहरलालजी से पूछ बैठा कि क्या आपने फारसी का फलां शेर सुना है ? ताज्जुब से मेरी ओर देखकर वह बोले, "क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं एक अनपढ़ इंसान हूँ ? मैंने सिर्फ अँग्रेजी की कुछ किताबें पढ़ी हैं। मैं अरबी, चीनी, फारसी, जापानी, रूसी फ्रांसीसी, जर्मन, स्पेनी भाषाओं के बारे में कुछ भी नहीं जानता।" यह उनकी विनम्रता ही थी, क्योंकि वह दिन भर दफ्तर में कड़ी मेहनत करने के बाद सफर में या दूसरे कामों में व्यस्त रह चुकने के बाद भी तब तक सोते नहीं थे, जब तक किसी नयी हासिल की हुई किताब को न पढ़ लें। जानकारी बढ़ाने की यही इच्छा उनके जिस्म और दिमाग को सतर्क और तरोताजा रखती थी और उन्हें वक्त के साथ चलने में मदद देती थी। उनकी इस बात से मुझे तुर्की के प्रोफेसर जकी वी तोगन के एक कथन की याद आ गयी जो उन्होंने 1950 में हिंदुस्तान के पुस्तकालयों के बारे में कही थी। अंकारा में बुद्धिजीवियों की एक गोष्ठी में भारत के अपने अनुभव बताते हुए उन्होंने कहा था कि भारतीय पुस्तकालयों में साज सामान कम

होता है। जब उनसे पूछा गया कि इसका मतलब क्या है, तो वह बोले, "वे अंग्रेजी की किताबें ही रखते हैं। मुझे कहीं फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी या अरबी की एक भी किताब उनके संग्रह में नहीं दिखायी दी।"

इलाहाबाद में आनंद भवन में मैं कई बार लंबे अरसे तक रहा था। उस दौरान मुझे नेहरू खानदान के दिलचस्प विदेशी मेहमानों से मिलने का मौका मिलता था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स उनमें से ही एक थे। आंग सान और उनके तरुण बर्मी कामरेड कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में शामिल होने के लिए गये थे। वे कुछ दिनों तक जवाहरलाल के साथ भी ठहरे। आंग सान और उनके दोस्त उनके सामने खुलकर और इत्मीनान से बातें करते थे और बड़े उत्साह से भविष्य के बारे में चर्चा करते थे व भारत बर्मा संबंध सुधारने की संभावनाओं पर विचार करते थे। उनमें से तीन रंगून में मेरे भाई से परिचित थे और उनका मुझसे गहरा लगाव हो गया था। बाद में वे पेशावर भी गये और वहां कुछ लोगों से मिले। कुछ दिनों बाद, 1945 में, उन्होंने बड़े नाटकीय ढंग से सत्ता हथिया ली। लेकिन जुलाई 1947 में बड़े दुखद ढंग से सत्ता उनसे छिन भी गयी और उन्हें अपने प्राणों से भी हाथ धोने पड़े। जे० आर० जयवर्धने भी जो बहुत दिनों तक श्रीलंका में विरोध-पक्ष के प्रमुख नेता रहे और फिर 1977 में राष्ट्रपति बने, लगभग उसी वक्त यहां आये थे। जवाहरलाल उन्हें पसंद करते थे और उन्होंने जयवर्धन के लिए हिंदुस्तान को थोड़ा-बहुत देखने का इंतजाम भी कर दिया था। हमारी उनसे खूब अच्छी पटी पर उस पहली मुलाकात के बाद हम लोगों का संपर्क टूट गया। बहुत वर्षों बाद सन् 1967 में ऐल्जियर्स में हम लोग फिर संयोग से मिल गये। च्यांग काई शेक व उनकी पत्नी का बाद में आगमन हुआ और मैडम च्यांग हिंदुस्तान की आजादी में गहरी दिलचस्पी लेने लगीं। वापस लौटने पर मैडम च्यांग ने जवाहरलाल को कई खत लिखे जिनमें चीन का भारत के साथ भाईचारा प्रकट किया गया था और वादा किया गया था कि उत्तरदायी अंतर्राष्ट्रीय बैठकों में वह भारत की आजादी की बात उठायेंगी। नेहरूजी ने वहां ठहरे हम कुछ लोगों को वे पत्र पढ़कर सुनाये। उन्होंने च्यांग परिवार से अपने संबंध तब तक बराबर कायम रखे जब तक वह चीन से निकाल नहीं दिया गया।

सन् 1939 में कांग्रेस मन्त्रिमंडलों के इस्तीफे और यूरोप में युद्ध की स्थिति गम्भीर हो उठने से पार्टी के कार्यकर्ताओं का राजनीतिक रुख भी कड़ा हो गया था। उनमें से अनेक निडर हो गये थे और भविष्य की कारवाई के संबंध में आक्रामक ढंग से बात करने लगे थे। पूरे 1942 भर अंग्रेजों से टकराव की संभावना बनी रही थी। मेरा राजनीतिक प्रशिक्षण बदस्तूर जारी था। कुछ दिनों तक मेरा नेशनल हेरॅल्ड से संबंध रहा, जो लखनऊ में जवाहरलाल द्वारा स्थापित किया गया एक अंग्रेज़ी दैनिक पत्र था। वह चाहते थे कि मैं समाचारपत्र प्रकाशन के कामकाज को अच्छी तरह समझ लूं। यह बड़ा लाभदायक अनुभव था और मेरे मन में विचार उठा कि सीमा प्रांत का सच्चा-अच्छा स्वरूप जनता के सामने पेश करने के लिए इस माध्यम का इस्तेमाल किया जाये। व्यक्तिगत सत्याग्रह के पहले और फिर 'भारत छोड़ो' आंदोलन से पहले भी इस तरह की कोशिश की गयी। मेरे एक सहपाठी और दोस्त अब्दुल खालिक कुरैशी के बारे में एक घटना उल्लेखनीय है। वह एसोसिएटेड प्रेस आफ इंडिया के स्थानीय प्रतिनिधि थे और उन्होंने मुझे अपना नाम व डाक सुविधा इस्तेमाल करने की इजाजत दे दी थी, ताकि मैं जो भी खबरें भेजना चाहूं, भेज सकूं। इससे बादशाह खां

के एक दौरे की खबरें राष्ट्रीय समाचारपत्रों मे बहुत बढिया ढँग से छपी। राष्ट्रीय आदोलन के पक्ष की खबरो से अहलकारी समाज के डाकिया को स्वाभाविक रूप से परेशानी हुई। उन्होंने कुरैशी का तबादला करवा कर वहा मलिक ताजद्दीन को तैनात करवा दिया। मलिक ने आते ही मुझे मिली सहूलियत खत्म कर दी और काग्रेस के पक्ष म भविष्य म कोई खबर नही जाने दी।

गाधी-युग मे राजनीति और आध्यात्मिकता का मिश्रण इतना मजबूत था कि एक जगह राष्ट्रीय रणनीति तय होती थी, तभी दूसरी जगह मोक्ष की बातें हुआ करती थी। इन दोनो का अनुभव मेरी कुल ट्रेनिंग का हिस्सा बना। बबई के पास मलाड मे एक आश्रम था जिसका नाम था अहिंसक व्यायाम सघ, इस आश्रम मे मुझे यह समझने के लिए बढिया अवसर मिला कि राजनीतिक प्रभाव हर स्तर पर किस तरह काम करते थे।

तीसरे दशक के अत म पजाब के एक क्रातिकारी पृथ्वीसिंह फरार हुए और 1939 म उन्होंने गाधीजी के समक्ष आत्म समपण कर दिया व सेवाग्राम मे आश्रम मे ही रहने लगे। महात्माजी की एक वयप्राप्त शिष्या, मिस मैडेलीन स्लेड जिन्हे आम तौर पर मीरा बेन कहा जाता था, उनसे प्यार करने लगी और उनसे शादी करना चाहती थी। पृथ्वीसिंह इस शादी की बात से ऐसे घबराय कि उन्होंने आश्रम छोड दिया। निराश होकर वह शिष्या भी आश्रम छोडकर चली गयी।

इसके कुछ दिन बाद ही पथ्वीसिंह ने पूण स्वराज्य के लिए एक अहिंसक सेना बनाने की योजना तैयार की। इस योजना के पक्ष मे उनकी दलीलो का गाधीजी और जवाहरलाल नेहरू पर गहरा असर हुआ। अपनी साख कायम करने के बाद पथ्वीसिंह ने कुछ मिल मालिको से इस योजना के लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त कर ली। इसके अधीन जो आश्रम कायम हुआ वह श्रेष्ठतम राजनीतिक कायकर्ताओ का केंद्र बन गया। उसमे भरती होने के लिए भी भीड लग गयी। पथ्वीसिंह ने बादशाह खा से कुछ खुदाई खिदमतगारो को वहाँ भेजने के लिए कहा। सालार-ए-आजम अमीन जान और मैं वहाँ भेजे गय।

उस आश्रम म हमारा प्रवास एक दहला देने वाला तजुरबा साबित हुआ। सुबह तडके हमारा दिन शुरु हो जाता। दिन भर कवायद, माच ड्रिल और क्लास चलत। पर रहने और खान का कोई माकूल इतजाम नही था। इसके विपरीत, पथ्वीसिंह खुद बडे ठाठ से रहते थे। वह बढिया पौष्टिक खाना खात, ढेरो मेवा चबाते रहते और घटो मालिश करवाते रहते—और मालिश भी कसी! उनकी दूसरी हरकतो मे भी दाल म काला नजर आता था। रहन सहन के उस ढँग से अमीन जान और मेरी सहत पर बहुत बुरा असर पडा, लेकिन पहला शिकार मैं ही हुआ। कृष्णा हथीसिंह के घर मैं अक्सर जाता था और एक बार मैं बेहोश सा होकर गिर पडा। वह बहुत परशान हुइ और जवाहरलालजी को तार भेजा। उन्होंने तार से ही जवाब दिया कि मैं बबई म ही स्वामी कृवल्यानद से मिलू। स्वामीजी पडित मोतीलाल नेहरू के गुरु रह थे और बहुत बढिया इसान थे और उनका डीलडौल बडा शानदार था। उन्होंने मेरे लिए बहुत मेहनत की और मेरे लिए विशेष खूराक, मालिश व आराम का जो इतजाम किया उससे मैं जल्दी ही चगा हो गया।

ठीक हाने पर मैं सेवाग्राम गया और वहा मैंने जवाहरलालजी को पृथ्वीसिंह के बारे मे अपनी राय बतायी। वह भी परेशान हुए और उन्होंने गाधीजी से बात

की। सरदार पटेल ने जब इस सबध में सुना तो उन्होंने मलाड म उनके आश्रम का ब्योरा जानना चाहा। मुझसे कहा गया था कि पूरा कच्चा चिटठा सुनाने की जरूरत नही है, पर सरदार पटेल पहले से ही बहुत कुछ जानते थे। मुझसे बात करने के बाद उन्हे यकीन हो गया कि वहाँ बडा घोटाला है। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं गाधीजी से इस बदमाश के बारे म बात करूँ। मैं झिझक रहा था, पर सरदार अपना फैसला कर चुके थे। उन्होंने पृथ्वीसिंह को न केवल मलाड मे उनके आश्रम से ही निकाला बल्कि बिल्कुल ही खदेड दिया। लेकिन मलाड मे रहने से एक अच्छाई भी हुई। मशहूर अभिनेता अशोककुमार आश्रम के बहुत पास रहते थे। मैं उनसे लाहौर मे मिल चुका था और कभी कभी उनके यहा जाकर मैंने दोस्ती बढा ली। मैं पृथ्वीराज कपूर को भी पहले से जानता था। वह पेशावर के एड वड स कॉलेज म मेरे भाई मुहम्मद याहिया के साथ थे। उनके और अशोक के जरिए मैं बहुत सारे एक्टरो को जान गया और फिल्म उद्योग के बारे म, उसकी बुराइया, उसकी सभावनाओ और किस तरह थोडी-सी कोशिश भर स इस माध्यम से राष्ट्रीय परिस्थिति बदली जा सकती है, इस पर ब्योरे से लबा विचार विनिमय हुआ। वे सोचते थे कि साप्रदायिक कटुता फिल्म के जादू से बहुत जल्दी खत्म की जा सकती है।

मई 1940 मे मैं जवाहरलालजी का स्वागत करने कुछ दिनो के लिए पेशावर वापस गया। सीमा प्रात का उनका यह दूसरा दौरा था। पिछले दो साल में उनकी मेहमाननवाजी का मैंने फायदा उठाया था और बादशाह खा का खयाल था कि नेहरूजी मेरे ही मेहमान हो। इसलिए वह हमारे घर ही ठहरे। हम लोगो की खुशी का ठिकाना नही था। उन्होंने परिवार के ढेर सारे लोगो से दोस्ती कर ली और परिवार के ही एक सदस्य जैसा व्यवहार करते रहे। मेरे भाई ने, जो अपनी शाहाना आदतो की वजह से अपने दोस्तो मे 'लॉड हसन' के नाम से जाने जाते थे, असहयोग आदोलन से अपने सबध के बारे मे और मौलाना मुहम्मद अली के निकट होने के बारे मे उन्हे बताया। मेरे कई रिश्तेदारो ने उनका शुक्रिया अदा किया कि उन्होंने मेरे साथ बहुत अपनेपन और मुहब्बत का बरताव किया था। इस्लामिया कॉलेज के कई प्रोफेसर एक शाम उनसे दुनिया की हालत और सामाजिक समस्याओ के बारे मे बहुत देर तक बातें करते रहे और इस मुलाकात से बेहद रोमाचित हुए। बच्चे तो उनकी ओर बहुत आकर्षित थे, क्योंकि वह उनमे गहरी दिलचस्पी लेते थे। जवाहरलालजी को यह जानकर खुशी भरा ताज्जुब हुआ कि मेरे कई दोस्त फौज या वायु सेना मे अफसर थे। सरकारी अफसर एक राष्ट्रीय नेता से मिलने जुलने मे डरते थे, या वे बहुत काइया थे।

जो कुछ दिन नेहरूजी पेशावर मे रहे, उनमे उन्होंने पार्टी के कार्यकर्ताओ स लबा सलाह मशविरा किया। उन्होंने सलाह दी कि हालत तेजी से बदलने से सकट आने वाला है और उसका सामना करने के लिए सबको एक होकर काम करना चाहिए। बाद मे मैं उन्हे व बादशाह खा को कार से एबटाबाद ले गया। वहाँ से मैं उन लोगो के साथ कश्मीर गया। राष्ट्रीय नेता होने के बाद नेहरूजी की अपने पुरखो की भूमि म यह पहली यात्रा थी। स्थानीय जनता ने उनका व बादशाह खाँ का बहुत शानदार स्वागत किया। वहा से मैं नेहरूजी को भारत और उसके लोगो की व्यावहारिक खोज पर उनके साथ निकला। मैं इस हद तक उनके साथ हो गया कि स्थानीय समस्याओ के बारे म उनसे व दूसरे लोगो से इतमीनान से साथ बात कर सकता था और उन पर टिप्पणी कर सकता था।

एक साल बाद नेहरू जेल मे थे। जनवरी 1941 मे उनसे मुलाकात के लिए देहरादून जाने पर मुझे अनेक इतालवी युद्धबंदी दिखायी दिये। वे बढ़िया बंगलो मे रखे गये थे, बढ़िया खाना उनको मिलता था और सडको पर टहलने की उन्हे इजाजत थी, उन्हे राहगीरो से बात करने तक की छूट थी। मैंने कुछ दढ़ियल अफसरो के एक गुट से खुद बात करने की कोशिश की, पर उनकी अंग्रेजी इतनी कमजोर थी कि कोई समझदारी की बातचीत का सिलसिला जम नही सकता था। जो भी हो, यह अजब ही था कि हिंसक युद्ध मे पकडे गये दुश्मनो को इतनी सहूलियतें दी गयी थी जबकि एक राष्ट्रीय संघर्ष मे अहिंसात्मक प्रतिरोध करने वाला के साथ बहुत सख्ती का बरताव होता था। जो लोग हिंदुस्तान की आजादी के लिए बंदूक उठाये बिना लड रहे थे उनके लिए कोई जेनीवा कनवेंशन (घोषणा) नही था, हालांकि वे खुशी-खुशी गोलियो का सामना करते थे। पेशावर के इस्लामिया कॉलेज के मेरे भूतपूर्व प्रिंसिपल आर० एम० होल्डसवर्थ एक सच्चे उदार अंग्रेज थे और उनकी प्रतिक्रिया आक्रोशपूर्ण थी। उन्होने यह भी सोचा कि वह इस मसले पर लंदन टाइम्स के संपादक के नाम एक पत्र रवाना कर दें।

यह तो हुआ मेरे सैलानीपन के बाबत। उस अध्ययन-यात्रा का मुख्य उद्देश्य यह था कि मैं पार्टी के काम को ठीक से समझ लू ताकि सीमा प्रांत मे उसके केंद्रीय दफ्तर के काम की निगरानी कर सकू और जिससे जिलो के कार्यकर्त्ताओ से प्रभावकारी संपर्क कायम हो सके। यह काम बहुत दिलचस्प होता, पर घटनाओ ने दूसरा मोड ले लिया। दफ्तर मे काम करने की जगह मुझसे सीमा प्रांत का व्यापक दौरा करके लोगो को व्यक्तिगत सत्याग्रह का अर्थ समझाने के लिए कहा गया। यह सत्याग्रह अक्तूबर 1940 मे शुरू हुआ था। डॉक्टर खान साहब और उनके साथी मंत्रियो ने सत्याग्रह किया था और गिरफ्तार होने गये थे, लेकिन अंग्रेज ने दूरदेशी इसी मे समझी कि उन्हे गिरफ्तार न किया जाये। उसकी योजना यह थी कि पठानो को आदोलन से अलग रखा जाये और इस तरह यह दिखाया जाये कि मुसलमान इस सत्याग्रह आदोलन मे शामिल नही थे। अंग्रेज यह दिखाना चाहता था कि समाज के विभिन्न समुदायो या हिस्सो का प्रतिनिधित्व यह आदोलन नही करता। चूंकि इस सत्याग्रह का दायरा बहुत तंग था सीमा प्रांत मे वह फिस हो गया, बल्कि ऐसा लगा कि वहा आदोलन हुआ ही नही। दूसरी जगहो पर भी यह कोई बहुत बडा आदोलन तो था नही। गाधीजी ने आचार्य विनोबा भावे को पहला सत्याग्रही चुना था। पर अंग्रेज का गुस्सा तो नेहरूजी व उन लोगो पर था जिनका वह प्रतिनिधित्व करते थे। वह 31 अक्तूबर को गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हे चार साल की कैद की सजा दी गयी। यह चुनौती स्वीकार कर ली गयी और अंतिम विजय भारत की जनता की ही हुई।

सुदूर पूर्व व यूरोप मे महायुद्ध की स्थिति मित्र राष्ट्रो के खिलाफ हो गयी थी और चिंताजनक रूप धारण कर चुकी थी। ब्रिटिश सरकार भारतीय नेताओ से समझौता वार्ता चलाने के लिए मजबूर हुई। उसने 3 दिसबर, 1941 को एक साल से कुछ ज्यादा दिनो की कैद के बाद नेहरू को रिहा कर दिया। उसे तो लडाई के मोर्चो पर हार से बचने के लिए तोप के चारे की तरह भारतीयो की जरूरत थी। इसलिए जल्दी से सर स्टफर्ड क्रिप्स को बातचीत के लिए प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया गया। उन्होंने बडे उत्साह से काम शुरू किया, लबे लबे वादे किये, लबी लबी वार्ताएँ की और फिर किसी ठोस वादे से बच निकलने की कोशिश करने लगे। अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष दूत, कर्नल लुई जानसन

गतिरोध तोडना चाहते थे। उन्होंने पहल करके एक कामचलाऊ फार्मूला पेश किया। ब्रिटिश सरकार को यह भी मंजूर नहीं हुआ और क्रिप्स अपने उद्देश्य में बुरी तरह असफल हुए। गांधीजी समझौते के लिए उत्सुक थे लेकिन जो आवश्यक कदम थे उन्हें उठाने में अंग्रेज हुकूमत की आनाकानी से वह बहुत निराश हुए। उन्होंने अपनी अंतरात्मा की आवाज को *हरिजन* में भड़काने वाले लेख लिखकर अभिव्यक्ति दी।

मई 1942 में जवाहरलाल कुल्लू में छुट्टियाँ मना रहे थे।[1] मैं उनके साथ था और उन्होंने गांधीजी का भेजा हुआ एक खत मुझे दिखाया। इससे आभास मिलता था कि भविष्य की घटनाओं के बारे में उनका अनुमान क्या था। जवाहरलाल ने इसके उत्तर में गांधीजी से जोरदार अनुरोध किया कि वह किसी ऐसी कारवाई से विरत रहें जिससे हिंदुस्तान अप्रत्यक्ष रूप से भी फासिस्ट खेमे में माना जाये। आजादी और जनतंत्र के लिए उनकी प्रतिबद्धता इतनी जबरदस्त थी कि वह देश की आजादी तक के लिए उस (फासिस्ट) गुट में शामिल होने तक के लिए तैयार नहीं थे। वह उन लोगों के खिलाफ थे जो तर्क देते थे कि दुश्मन का दुश्मन दोस्त हो जाता है। उनके लिए दोस्त का दुश्मन उनका सबसे बड़ा दुश्मन था। जापान चीन से लड़ रहा था और चीन से भारत के गहरे दोस्ताना संबंध थे। तो जापान दुश्मन हो गया। और इसी तर्क से जर्मनी व इटली भी दुश्मन हुए। लेकिन हिंदुस्तान में हुई बाद की घटनाओं और ब्रिटिश सरकार के शत्रुतापूर्ण रवैये ने सभी विचारों के कांग्रेसजनों को एक ही शिविर में ला खड़ा किया। गांधीजी कड़ा रवैया अपनाने को मजबूर हुए और नेहरूजी को इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नजर नहीं आया। बादशाह खाँ कुछ दिन पहले वर्किंग कमेटी से इस्तीफा दे चुके थे। लेकिन उनके लिए भी आजादी के नारे का समर्थन करने के सिवा कोई चारा न था।

'भारत छोड़ो' आंदोलन 9 अगस्त, 1942 को शुरू हुआ। यह एक ऐसा आक्रोशपूर्ण विस्फोट था जैसा जनता ने कभी देखा न था। चोटी के सभी नेता एकदम गिरफ्तार कर लिये गये। अकेले बंबई में एक ही दिन में 79 बार गोली चली। आजादी के सिपाहियों ने बड़े साहस और संकल्प से इसका सामना किया। शासन की उनकी अवज्ञा से हमारे दिल खुश हो गये और इसी अवज्ञा ने आजादी का रास्ता पक्का किया। मैं भी एक महान ऐतिहासिक उद्वेलन का हिस्सा बन गया। इसकी विभिन्न मंजिलों और उतार-चढ़ावों को देखना अच्छा लगता था। पेशावर, डेरा इस्माइल खाँ, एबटाबाद व हरीपुर की जेलों में मैंने कई साल का जो समय बिताया उससे विजय की ओर अपनी प्रगति का मूल्यांकन करने का अवसर भी मिला और ऐसा कर सकने की समझ भी बड़ा उत्साह था, अहिंसात्मक आंदोलनों में भी एक प्रचंडता होती है। लेकिन शोक व निराशा के क्षण भी आये।

जेल के मेरे अनुभव मेरी किताब *क़ैदी के खत* में लिखे गये हैं। उस किताब से प्रकट है कि हमारी आत्मा अजेय रही हमारी हिम्मत और हौसले बुलंद रहे, कैद में कटा वक्त एक इम्तिहान था और जेल जिंदगी के प्रयोग करने की एक

---

1 प्रसिद्ध रूसी कलाकार निकोलस रोरिक उनकी अध्यात्मवादी पत्नी और उनके दो बेटे—जार्ज व स्वेतोस्लाव ने कुल्लू को ही अपना घर बना लिया था। इसी परिवार ने नेहरूजी को अपना मेहमान बनाने की दावत दी थी। स्वेतोस्लाव ने प्रसिद्ध भारतीय कलाकार व अभिनेत्री देविका रानी से शादी की थी। अब ये दोनों बंगलौर के पास अपने फार्म पर रहते हैं।

प्रयोगशाला है। अगर मुझे कद न हुई होती तो मेरा राजनीतिक प्रशिक्षण अधूरा रह जाता। इन अनुभवों का फिर से जिक्र जरूरी नहीं है। लेकिन अंग्रेज की जेल मे रहने से मेरा जिस्म चौपट हो गया। मुझे तपेदिक हो गयी, वजन घट गया और मैं खून थूकने लगा। अप्रल 1945 मे जेल से रिहा हुआ तो बहुत बीमार था और मुझे कुछ महीने कश्मीर मे आराम करने की सलाह दी गयी। यह वही वक्त था जब सीमा प्रात की काग्रेस ने एक चालाक तिकडमबाज मेहरचद खन्ना के असर मे आकर मन्त्रिमडल बनाने का असाधारण कदम उठा लिया। अंग्रेजों के साथ रहकर वह हमारे साथ आये थे और पार्टी को सवैधानिक रास्ते पर ले जाने के लिए ललचा रहे थे। इस कदम की मूखता तत्काल ही स्पष्ट हो गयी। सारे देश मे सगठन सरकार के बाहर था, लेकिन पठानो के वतन म उसे एक अजब हालत मे धकेल दिया गया था। कई महीनो तक कायकर्ताओ को उन रुकावटो और असगतियो को भुगतना पडा जो इससे पदा हो गयी थी।

लेकिन, काग्रेस वकिंग कमेटी के सदस्य व दूसरे बडे नेता जल्दी ही रिहा कर दिये गये थे। विभिन्न पार्टियो के चोटी के नेता शिमला मे एक सम्मेलन मे भाग लेने के लिए बुलाये गये। जून के महीने मे लॉर्ड वैवल उनम सहमति पैदा करने की कोशिश करते रहे। लेकिन चूकि जिन्ना इस बात पर अडे हुए थे कि मुसलमानो के वह ही एकमात्र प्रतिनिधि है, इसलिए वैवल की कोशिश बेकार साबित हुई। शिमला सम्मेलन मे डॉक्टर खान साहब भी शामिल हुए थे और एक बार उन्होने ऊँची आवाज मे जिन्ना से पूछा, 'मुझे यहाँ किसने भेजा है? मैं भी एक सूबे का प्रतिनिधित्व करता हूँ जहाँ की 99 फीसदी जनता मुसलमान है!" समझौता-वार्ता का यह निराशाजनक नतीजा निकलने के बाद नेहरूजी जरा लबी छुट्टी मनाने कश्मीर चले गये, वह पैदल चलकर कोहलाहाय पहुँचे और कुछ वक्त गुलमर्ग मे आराम किया। यह 1945 की जुलाई व अगस्त की बात है। पहलगाम म वह कुछ दिन तक मेरे साथ रहे, जहाँ इंदिरा गाधी और उनके बडे बेटे राजीव भी उनके पास आ गये। डेनमार्क की एक बूढी औरत, जो नेहरू-परिवार मे पहले भी काम कर चुकी थी, राजीव की देखभाल कर रही थी। वह और श्रीमती गाधी के परिवार का रसोइया तुलसी मिलकर हम कुछ लोगो की गहस्थी के लिए बहुत काफी थे। इसका मतलब यह भी था कि तरह-तरह के जायकेदार खाने मिल रहे थे।

मैं अपने साथ अपने पठान नौकर शरीफुल्लाह को ले गया था जिसकी मदद दो स्थानीय लोग करते थे और घर का कामकाज चलाते थे। एक दिन श्रीमती गाधी ने, जो सोच रही थीं कि इस सयुक्त छुट्टी के खर्च मे उन्ह भी हिस्सा बँटाना चाहिए, शरीफुल्लाह को सौ रुपये का नोट कुछ जरूरी सामान लाने के लिए दिया। मैं वहा था नही। जब मैं वापस लौटा तो श्रीमती गाधी ने बताया कि शरीफुल्लाह इस बात पर किस तरह बिगडा था। उसने श्रीमती गाधी से कहा था, "हम को पूरा पता है कि तुमारा बाप बहुत बडा सेठ है। मगर आप हमारे खान की बेइज्जती मत करो। इस जगह खर्चा उसी का होगा। और किसी का मजाल नहीं।" जो बात श्रीमती गाधी को सबसे ज्यादा मजेदार लगी वह थी मेरे नौकर का उनके पिता का जिक्र करने का ढँग। उन्होंने हँसते हुए कहा, "किसी ने कभी पहले पापू को सेठ नही कहा।"

इसी बीच कुछ वक्त के लिए मौलाना आजाद और बादशाह खा भी कश्मीर आये हुए थे। वे लगातार मिलते थे और राजनीतिक गतिरोध को खत्म करने के

लिए नयी रणनीति ढूढ निकालने की कोशिश करते थे। उन्होंने कुछ सार्वजनिक सभाओ मे भी भाग लिया और शेख अब्दुल्ला व नेशनल कान्फ्रेंस के दूसरे नेताओं से भी सलाह-मशविरा किया। कश्मीर के नेता उस वक्त महाराजा से मोर्चा लेने के लिए उतावले हो रहे थे।

आजाद हिंद फौज के बारे मे भी एक शब्द। जनवरी 1942 मे हिंदुस्तान से बडे नाटकीय ढंग से निकल जाने के बाद सुभाष बाबू पेशावर व काबुल से होकर गुजरे, फिर हवाई जहाज से जर्मनी पहुँच गये और वहा से एक पनडुब्बी मे जापान चले गये। उन्हे अँग्रेजो की उस हिंदुस्तानी फौज मे बडी विस्फोटक सामग्री मिली जिसने जापानियो के सामने हथियार डाल दिये थे। उनमे से अधिकाश जुलाई 1943 के आस पास फौज मे भरती किये गये थे। वे बहुत हिम्मत से लडे, पर उससे भी ज्यादा बडी बात यह थी कि उनमे एक नयी भावना व चेतना आ गयी थी और भाईचारे की एक नयी धारणा बनी थी। अराकान के मोर्चे पर उनकी मुठभेडो कर्तव्य के प्रति उनकी निष्ठा, एक दूसरे से मिलने पर उनका 'जय हिंद' का सबोधन, 'दिल्ली चलो' का उनका नारा—इन सबकी उडती उडती खबरें मिलती तो हिंदुस्तानियो के मन मे उनके प्रति प्यार तथा प्रशसा का भाव उमड पडता। सुभाष बाबू, जिन्हे उनके लोग 'नेताजी' कहते थे, 18 अगस्त, 1945 को एक विमान दुर्घटना मे मारे गये। मित्र राष्ट्रो की विजय ने सुभाष बाबू के साथियो के भाग्य का निपटारा कर दिया। जो लोग आजाद हिंद फौज मे थे उन पर देशद्रोह व तरह तरह के दूसरे अपराधो का अभियोग लगा।

सितबर 1945 मे दिल्ली के लालकिले मे इस फौज के तीन युवा अफसरो पर—ढिल्लो, सहगल व शाहनवाज पर—मुकदमा शुरू हुआ। सारे देश का ध्यान इधर केंद्रित हो गया। कुछ मशहूर वकील उनकी तरफ से पैरवी करने के लिए आये। जवाहरलाल नेहरू भी बैरिस्टर का चोगा पहनकर और वकीलो के साथ अदालत मे पहुँचे जिससे साबित हो कि इन तीन अफसरो को राष्ट्र का व्यापक समर्थन प्राप्त है। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भाप लिया था कि अंग्रेज सुभाष बाबू और आजाद हिंद फौज को जापान के हाथ की कठपुतली बतायेंगे और इन अफसरो को इसाफ नहीं देंगे। इसीलिए नेहरू ने इन अफसरो के भाग्य के साथ खुद अपने आप को व काग्रेस को भी जोड दिया और उनके बचाव मे बडी दृढता और निर्भीकता से बयान दिया। यही काग्रेस के अन्य नेताओ ने भी किया। नेहरूजी व काग्रेस ने जो स्थिति अपनायी मुख्यत उसी से अँग्रेज को अपनी नीति बदलनी पडी। उसे सावधान रहने के लिए वक्त से चेतावनी मिल गयी। ब्रिटिश सरकार पहले ही चिंतित और चौकन्नी हो चुकी थी जब 1930 मे गढवाल रेजिमेंट ने पेशावर मे निहत्थी भीड पर गोली चलाने से इकार कर दिया था, जब फरवरी 1946 मे बबई मे नौ सेना के कर्मचारियो का व्यापक विद्रोह हुआ था और जब उसे फौजियो मे राष्ट्रीयता की बढती हुई भावना का पता चला था। उसे डर था कि इस प्रवृत्ति के बढने से सेना मे खुले विरोध की भावना पैदा हो जायेगी। इससे बचना जरूरी था। इसलिए 3 जनवरी, 1946 को देशद्रोह के मुकदमे मे फँसे तीनो अफसर रिहा कर दिये गये। शाहनवाज राजनीति मे आ गये और फरवरी 1946 मे पेशावर आये। वह हम लोगो के साथ ही ठहरे और हमारे चुनाव आदोलन मे भी शरीक हुए। वह भारतीय नागरिक रहे और मार्च 1977 तक भारत सरकार मे मत्री रहे।

ब्रिटिश पार्लियामेंट का एक दस-सदस्यीय प्रतिनिधि-मडल दिसबर 1945

मे भारत आया जिसमे वहा की लेबर पार्टी के छ, कजरवेटिव पार्टी के तीन और लिबरल पार्टी का एक मेबर था।[1] अगली जनवरी मे यह दल सीमाप्रात आया। उसके नेता प्रोफेसर रॉबर्ट रिचड स और लेबर पार्टी के प्रमुख सदस्य रेवरेंड आर० डब्लू० सोरेंसन पेशावर म मेरे मेहमान की हैसियत से रहे। बाकी लोग गवर्नमेंट-हाउस मे ठहरे। गवनर, सर जॉज कनिघम, इस बात से खुश नही थे कि प्रतिनिधिमडल के नेता मेरे मेहमान बनें। इसमे कोई शक नही कि यह कुछ अजीब सा लग सकता था। मडल के दो कजरवेटिव सदस्य, अल ऑफ मुस्टर और लॉड कोर्ले भी ज्यादातर वक्त हमारे साथ ही रहते थे। नौशेरा में एक सावजनिक सभा में वे बादशाह खाँ के साथ ही शामिल भी हुए। बादशाह खाँ का उन पर बहुत असर पडा और उन्होने खुद देखा कि आम जनता पर उनका (बादशाह खाँ का) कितना ज्यादा प्रभाव है। गैर रस्मी ढंग से जो बातचीत हुई और शाम के खाने के बाद जो विचार-विनिमय होते थे, उनसे हमे कोई शक नही रह गया कि विदेशी राज के खात्मे को कोई रोक नही सकता। लेकिन अँग्रेज ने तय कर लिया था कि वह हिंदुस्तान छोड तो देगा पर हमे तोडताड कर चकनाचूर करके ही। प्रतिनिधि मडल के मेंबर बाद मे देश मे विभिन्न पार्टियो के नेताओ से मिले। उन नेताओ से भी उन्होने इसी तरह बातचीत की और शायद इसी तरह का असर उन नेताओ पर भी पडा। उनम से एक—रेवरेंड सोरेंसन—ने एक किताब मे इन वार्ताओ और प्रभावो का हवाला दिया और इस तरह अपनी नेकनीयती साबित की।

दूसरा आम चुनाव फरवरी 1946 मे हुआ। चूकि मुस्लिम लीग को बाकी हिंदुस्तान मे अपनी जीत का भरोसा था, इसलिए सीमा प्रात के चुनाव को उसने अपनी इज्जत का सवाल बना लिया? उसके बडे बडे नेता वहा जाकर जम गये और उस मुस्लिम प्रात से काग्रेस को उखाडने की कोशिश मे जी जान से लग गये। उन्होने ढेरो रुपये खच किये और पठान जनता को बहकाने के लिए गाली गलौज भरी भाषा का इस्तेमाल किया। दूसरे सूबो म नतीजा क्या होगा, यह पहले से ही मालम था। चुनाव से सिफ काग्रेस और लीग के असर पर बाकायदा मुहर लग गयी। इसलिए सीमा प्रात म लीग की हार से उसके नेताओ मे गहरी निराशा व गुस्सा पैदा हुआ और उनका विद्वेष बढ गया। इससे विभिन्न मसलो पर उनकी जो स्थिति थी, उस पर वे और भी सख्ती से अड गये।

चुनाव के दौरान, हिंदुस्तान के दूसरे हिस्सो मे भी काग्रेस की मदद के लिए खुदाई खिदमतगारो को बुलाया गया था। तीस ऐसे खिदमतगारो के एक जत्थे पर क्या बीती, इस का जिक्र जरूरी है। वे यू० पी० मे काग्रेस के उम्मीदवारो के लिए वोट माँग रहे थे और उनका चुनाव प्रचार कर रहे थे। मैं भी कभी-कभी उनके साथ जाता था। एक दिन वे इलाहाबाद जिले के गावो मे प्रचार कर रहे थे। एक गाव मे उनकी मौजूदगी से जनता की हमदर्दी बहुत बढ गयी। जत्था जोश के साथ कुछ कौमी गीत गाते हुए गुजर रहा था और गाव की जनता सडक के किनारे बहुत द्रवित खडी थी। इससे लीग के कायकर्ताओ को बहुत परेशानी हुई और उन्होने जत्थे को सबक सिखाने का फसला कर लिया। शाम को जब यह जत्था एक बस मे वापस इलाहाबाद आ रहा था, तो लीगियो ने बस रोक ली

---

1 प्रतिनिधिमडल म मेजर डब्लू० ब्याट श्रीमती बालहेड निकोल ए० जी० बौटमली ब्रिगेडियर ए० आर० डब्लू० लो, निकलसन व हापकिन मॉरिस भी शामिल थे।

और सुदाई खिदमतगारों की पिटाई शुरू कर दी। ये लोग हर हालत में अहिंसात्मक रहने का संकल्प ले चुके थे, इसलिए मारपीट बिलकुल एकतरफा रही। मैं और राधेश्याम पाठक (इलाहाबाद के एक कांग्रेसी कार्यकर्ता) जब वहां पहुंचे तो लोगी वापस लौट रहे थे। उन गुंडों ने हमारी कार घेर ली, उसकी छत तोड डाली खिडकियों के शीशे तोड डाले और संगीनों से दरवाजे तोड दिये। मुझे भी कुछ चोटें लगीं और मेरे बालों मे शीशे के टुकडे भर गये। शहर के दो अस्पतालों में इन घायल साथियों को मरहम-पट्टी के लिए दाखिल करवाने के बाद आधी रात को मैं आनंद भवन पहुँचा। जवाहरलाल को इस घटना की खबर मिल चुकी थी। वह बहुत बेताबी से बाहर बरसाती में खडे इंतजार कर रहे थे कि कहीं मैं तो घायल नहीं हो गया। जैसे ही मैंने अपने बालों में हाथ डाला, शीशे के एक टुकडे से मेरी उँगलियाँ कट गयी और खून बहने लगा। इससे हंगामा सा हो गया। फौरन मरहम पट्टी हुई। इस सबके बीच श्रीमती इंदिरा गांधी मेरे पास आयीं और फुसफुसाहट में कहा, "मुझे आप पर गर्व है।" मैंने लापरवाही से कहा, "किस बात पर?" पर उन्होंने जो कुछ कहा उससे मैं अपने को दस गुना ऊँचा महसूस करने लगा। उन दिनों की तकलीफें और खुशियाँ ऐसी थी।

1946 47 के दौरान मुझे गांधीजी को ज्यादा देखने का मौका मिला। उन दिनों वह दिल्ली की भंगी बस्ती में टिके हुए थे। ब्रिटिश सरकार से वार्ता बहुत लंबी खिंच रही थी और गांधीजी का दिल्ली प्रवास अपेक्षा से अधिक लंबा हो गया था। एक बार उन्होंने मुझसे अगले दिन साढे तीन बजे मिलने को कहा। मैं समझा दिन के तीसरे पहर, पर मैं गलत था। मुझे मिलना था साढे तीन बजे सबेरे। उन दिनों मैं अपने बहनोई नसीमहुसैन के साथ साउथ एंड लेन में टिका हुआ था। यह नयी दिल्ली का दूसरा छोर था। ड्राइवर छुट्टी पर था और उन दिनों रात के तीन बजे टैक्सी मिलने का सवाल ही नहीं उठता था। मैंने तय किया कि जल्दी उठकर भंगी बस्ती तक पैदल चला जाऊँगा। पर दस किलोमीटर चलने में मुझे कितनी देर लगेगी इसका मुझे ठीक अंदाज़ा नहीं था। इसलिए रास्ते के आखिरी हिस्से को मैंने दौडकर पार किया। मैं जब पहुँचा तो बुरी तरह हाँफ रहा था और तब भी मुझे देर हो चुकी थी। गांधीजी वक्त के बहुत पाबंद थे उन्होंने उस दिन का अपना कार्यक्रम शुरू कर दिया था और सबेरे की प्रार्थना की तैयारी कर रहे थे। मुझसे कहा गया कि अगले दिन इसी वक्त मिलूं। और ज्यादा शरम व परेशानी से बचने का एक ही रास्ता था और वह यह कि मैं उस रात भंगी बस्ती में ही सो जाऊँ। इस तरह अगले दिन भोर में बिलकुल ठीक वक्त पर मुलाकात के लिए जा पहुँचा।

गांधीजी सीमा प्रांत की घटनाओं की उन्हें जो खबरें मिली थीं—खास कर खान भाइयों के आपसी मतभेद की खबरें—उनके बारे में बात करना चाहते थे। मैंने बताया कि ये मतभेद सिर्फ स्वभाव के हैं मैंने सुझाव दिया कि गांधीजी बादशाह खां और डाक्टर खान साहब से ऐसे वक्त बात कर लें जब वे दोनों साथ हों। अगर कोई गलतफहमी है तो वह इस तरह दूर हो जायेगी। स्थिति के मेरे आकलन को उन्होंने स्वीकार कर लिया और मेरे सुझाव को भी उन दोनों भाइयों से उन्होंने बात भी की। बादशाह खां की जो इज्जत गांधीजी करते थे और उनसे उन्हें जो लगाव था वह मुझे मालूम था। उन निर्णायक दिनों में तो यह कई गुनी बढ गयी थी खास कर जब विभाजन के सवाल पर बादशाह खाँ की बात नहीं मानी जा रही थी और वह निराश से हो रहे थे। गांधीजी ने बादशाह

खा की कठिन सत्य परीक्षा के बारे म लिखा भी और उनके साहस व उनकी अतिम विजय मे अपना गहरा विश्वास प्रकट किया। पर ऐसे कम ही लोग होगे जिन्होंने अपने प्रिय उद्देश्य के लिए इतना कष्ट, पीडा और दुख सहे हो।

एशिया के देशो के आपसी सबधो के लिए मार्च 1947 मे नयी दिल्ली मे सम्मेलन हुआ था। अपनी तरह का यह पहला सम्मेलन था और लगभग सभी एशियाई देशो से प्रतिनिधि इसमे भाग लेने के लिए आये थे। विभिन्न क्षेत्रो मे इन देशो के एक दूसरे के साथ सहयोग करने के बारे म स्वाभाविक रूप से बडी आशा बँधी। इस सम्मेलन मे जो बुनियाद पडी, कुछ वर्षों बाद बाडुग मे उस पर इमारत बनी। मैं किस्मतवर था कि इन दोनो सम्मेलनो मे शरीक होने और उनमे भाग लेने वाले प्रतिनिधियो से प्रेरणा प्राप्त करने का अवसर मुझे मिला। चीन, अफ़गानिस्तान, ईरान, इडोनेशिया व कई अरब देशो के अग्र नेताओ से मेरा परिचय हुआ। व्यापक परिप्रेक्ष्य मे देखने से हमारी समस्याएँ कितनी समान थी, यह देखकर ताज्जुब होता था। मुस्लिम प्रतिनिधियो के बारे मे मुस्लिम लीग ने अनोखा रवैया अपनाया था। भारत के राष्ट्रीयतावादियो के निमत्रण पर सम्मलन मे आने के लिए लीग इन प्रतिनिधियो से नफरत का व्यवहार कर रही थी और उनसे मेल मिलाप बढाने से कतरा रही थी। लीग की तगदिली और तग नज़रिये से मेहमान हैरत मे थे।

सम्मेलन के पहले दिन गाधीजी उसमे बोलने वाले थे। जवाहरलाल ने मुझसे कहा कि भगी बस्ती जाकर उन्हे ले आऊँ। गाधीजी बादशाह खा को अपने साथ लाये। जसे ही कार रवाना हुइ गाधीजी ने मुझसे कुरान व बाइबिल की कई घटनाओ के बारे म अनेक सवाल पूछने शुरू कर दिये। खास तौर पर वह मूसा, यूसुफ व उनके भाइयो और यीशु मसीह के बारे मे ब्योरा जानना चाहते थे। मैंने बता दिया। सम्मेलन पुराने किले के भीतर मैदान मे हुआ था जहाँ शामियाने लगाये गये थे। गाधीजी बहुत खूबसूरती से सजाये गये मच पर पहुँचे और उनसे सम्मानित अभ्यागतो को सबोधित करने के लिए कहा गया। उन्होने अपना भाषण उन्ही कहानियो से शुरू किया जो मैने कार मे उन्हे तभी सुनायी थी।[1] उनकी कमज़ोर आवाज़ और असबद्ध जुमलो से यह समझना कठिन था कि उनका आशय क्या है। जैसे ही उन्होने मेरा नाम लिया, जवाहरलाल एकदम उठ खडे हुए और आवेश म मुझसे पूछने लगे, "तुमने उन्हे क्या बताया है? वह क्या कह रहे है? प्रतिनिधियो को देखो। वे सभी चकराये हुए लगते है।' मैंने कहा कि *मैं खुद नही समझ पाया कि उन्होने बाइबिल और कुरान के बारे मे अचानक* ये सवाल क्यो पूछे थे। खैर, भाषण के अत मे श्रोताओ को पता चला कि वह इस बात की ओर इशारा कर रहे थे कि दुनिया के सभी धर्म एशिया म पैदा हुए थे। वह एशिया की कौमो के जो बिरादराना रिश्ते थे, उनकी मदद से एक दूसरे को पहचानने और हमेशा एकताबद्ध रहने के लिए कह रहे थे।

ब्रिटन से कबिनेट मिशन (मत्रिमडल का शिष्टमडल) तभी भारत आया। हमारी ओर से बुद्धिमानी व अधिक परिपक्वता से बात होती तो भारत की एकता कायम रह जाती। लेकिन सत्ता और प्रभाव के प्रतिस्पर्धी दावदारो के भीतरी मतभेद इतने बढ गये थे कि यह खाई पाटी नही जा सकती थी। अँग्रेज ने डेढ सौ साल तक 'फूट डालो और राज करो' की जो नीति चलायी थी, उसका यह फल

1 गांधीजी के पूरे भाषण का टेप ऑल इंडिया रेडियो के अभिलेखागार मे सुरक्षित है।

तो होना ही था। देश का बँटवारा पूरी तरह न हो, इसके लिए पार्टियों ने कई प्रस्ताव पेश किये—केंद्र कमजोर रखा जाये, क्षेत्रों को अधिक आजादी हो, आदि। लेकिन जिन्ना ने जिद ठान रखी थी और वह अकेले ही चलने पर उतारू थे। मैंने जान बूझकर जिन्ना का नाम लिया है, क्योंकि वह अपने बाकी साथियों पर छाये रहते थे और मनमानी करते थे। उन साथियों में से अनेक तो इस पर भी शक करने लगे थे कि पाकिस्तान टिकाऊ हो भी पायेगा या नहीं। ये लोग भौचक्के रह गये थे जब अंग्रेज ने बँटवारे की योजना पेश की। जिन्ना के इन साथियों की सबसे अच्छी मिसाल लियाकत अली खां हैं। यू० पी० के एक दोस्त ने उन्हें मुबारकबाद दी तो वह चिंता में डूबे बैठे रहे, फिर बोले, "मेरा घर मुजफ्फरनगर में है। अल्लाह ही जानता है कि कराची कैसी जगह है। मैं वहाँ जाने के लिए उत्सुक नहीं हूँ।" लियाकत पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री बने, पर कुछ दिन बाद ही रावलपिंडी में उनका कत्ल कर दिया गया। दो राष्ट्र के सिद्धांत के कुछ दूसरे उत्साही समर्थक भी इसी तरह अपनी जिंदगी में ही खामोश कर दिये गये।

कैबिनेट मिशन से समझौता वार्ता जारी ही थी जब कश्मीर में मुक्ति-आंदोलन छिड़ गया। जवाहरलाल अपने साथी और दोस्त शेख अब्दुल्ला के साथ खड़े होना चाहते थे। वह फौरन उपद्रवग्रस्त इलाके के लिए रवाना हो गये। कश्मीर के गवर्नर पंडित महाराजकृष्ण धर को महाराजा का निर्देश था कि नेहरू के नाम नोटिस तामील करके कश्मीर में उनका प्रवेश रोक दिया जाय। इस पर नेहरू को गुस्सा आ गया और उन्होंने गवर्नर से कहा, "जाकर अपने बेवकूफ राजा से कह दो कि वह मुझे गिरफ्तार तो कर सकता है पर मुझ पर हुक्म नहीं चला सकता। जल्दी ही वह मेरे कदमों में पड़ा होगा।" कांपते थरथराते धर को भारत के भावी प्रधानमंत्री नेहरू के प्रवेश के लिए इजाजत लेने में कई घंटे लग गये। इस तरह हम लोगों को देर शाम तक झेलम के किनारे ठहरना पड़ा।

जैसे ही यह खबर मरी पहुँची, जो वहां से कुछ ही मील के फासले पर था, भीड़ इकट्ठी होने लगी और उनमें से अनेक नारे लगाने लगे। जैसे ही हम लोग संगीनधारी सिपाहियों की घेरेबंदी तोड़कर आगे बढ़ने के लिए खड़े हुए धर नजरबंदी का आदेश लेकर आ गये। यह 20 जून, 1946 की बात है जगह का नाम था कोहाला। हम लोग डोमल ले जाये गये जहाँ हमें खाना मिला। और फिर हम लोग डाकबँगले में सोने चले गये। लेकिन सवेरे तीन बजे धर ने हम लोगों को जगा दिया, उड़ी के डाकबँगले ले चलने के लिए।

ऐसे नाजुक मौके पर नेहरूजी की गिरफ्तारी और दिल्ली में उनके मौजूद न रहने से समझौते की बातचीत में विघ्न पड़ गया। मौलाना आजाद चाहते थे कि वह जल्दी से जल्दी दिल्ली वापस लौट आयें, वह बात भी करना चाहते थे। पर जहाँ हम नजरबंद थे, वहाँ से टेलीफोन कई मील दूर जंगल की एक झोपड़ी में था। राज के अफसरों को रातोरात उस स्थानीय टेलीफोन का ट्रंक लाइन से जोड़ना पड़ा ताकि मौलाना नेहरू से बात कर सकें। मौलाना ने उनसे फौरन दिल्ली लौटने को कहा। नेहरू राजी नहीं हुए। नेहरू कायदे कानून का लिहाज करते थे और मौलाना ने यह जानकर वही अकेला तर्क इस्तेमाल किया जिससे नेहरूजी डिग सकते थे "मैं कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से आपको हुक्म देता हूँ कि फ़ौरन वापस आ जायें।" नेहरू मन मारकर लौट पड़े, पर यह वचन देकर कि जल्दी-से जल्दी फिर कश्मीर वापस आयेंगे।

जब मैंने पेशावर में यह बात बादशाह खाँ को बतायी तो उन्होंने जुलाई के

मध्य मे खुद कश्मीर जाकर शेख साहब का समर्थन करने और नेहरूजी का सम्मान बढाने का फसला कर लिया। बादशाह खा के दूसरे बेटे वली, जो बाद मे पाकिस्तान की राजनीति मे ऊँचे उठे, और मैं उनके साथ गये। पहले तो बादशाह खा को भी रोका गया, लेकिन आखिरकार उन्हे इजाजत मिल गयी। वह कुछ दिन श्रीनगर रुके और उन जगहो को देखने गये जहा पुलिस ने गोलिया चलायी थी। गोलिया का शिकार होने वाले लोगा के परिवारो के साथ उन्होने हमदर्दी जाहिर की और नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ताओ से छोटी छोटी टोलियो मे मिलकर उनसे बात की। तभी दिल्ली से सदेश आया कि हम लोग जवाहर-लाल के आने का इतजार करें। और वह 24 जुलाई को फिर वहा पहुँच गये। वह शेख साहब से नजरबदी मे मिले और आसफ अली से मशविरा किया, जो शेख साहब के मुकदमे की परवी कर रह थे। उन्होने छिप हुए कार्यकर्ताओ स भी सपक बनाया जो अब भी फरार थे।

अपनी वापसी मे नेहरूजी ने दो दिन डॉक्टर खान साहब के साथ गुजारे जो उस वक्त सीमा प्रात की गरमियो की राजधानी नथियागली म थे।

2 सितम्बर का अतरिम सरकार कायम हुई। पहले तो मुस्लिम लीग उसमे शामिल होन म आनाकानी करती रही, पर फिर 26 नवबर को वह अँग्रेज के प्रेरक प्रोत्साहन पर शामिल हो गयी।

जवाहरलाल नेहरू, जिन्होने सीमा प्रात के कबायली इलाको म गहरी दिल-चस्पी ली थी वहा के लिए नयी नीति लागू करन के लिए बहुत उत्सुक थे। प्रधानमत्री और आदिवासी मामलो के मत्री होन के नाते वह खुद जाकर हालत देखना चाहते थे। लेकिन जिन लोगो न उस इलाके की राजनीति एक सौ साल स खराब कर रखी थी, वे इस बात को पसद नही कर रहे थे कि नेहरू खुद आकर हालत देखें समझें। ब्रिटिश सरकार के पोलिटिकल एजेंट (आदिवासी या कबायली क्षेत्र मे अँग्रेज सरकार ये राजनीतिक एजेंट ही रखती थी) इस बात के लिए राजी नही थे कि कोई लोकप्रिय राष्ट्रीय नेता उनक सुरक्षित क्षेत्र मे प्रवेश करे। इसलिए उन्होन दिल्ली म बैठे अपन आकाओ के जरिए नेहरू को इस बात के लिए राजी करने की कोशिश की कि वह कबायली इलाके का दौरा न करें। चूकि वह राजी नही हुए, इसलिए इन एजेंटो ने अपन गुर्गों से उपद्रव कराने की योजना बनायी। बादशाह खा को इसका सुराग लग गया। उन्होन मुझसे कहा कि नेहरूजी के दौरे में जो जो जगहें शामिल है वहा जाकर मैं देखू कि क्या हो रहा है। मैं कबायली सरदारो से मिला, सरकारी व फौजी अफसरो[1], पालिटिकल एजेंटो और आम लोगो से मिला। राष्ट्रीय विचारो के लोग यही सोच रहे थे कि क्या अतरिम सरकार गडबड करने वाला के खिलाफ कार्रवाई कर सकेगी ? उनका अदेशा सही था। इस बात का जल्दी ही पता लग गया कि सबसे ऊँचे दरजे के अँग्रेज अफसरो के हस्तक्षेप से सबसे खराब अपराधी सरक्षण पाये हुए थे। जिस शरारत की साजिश यहा हो रही थी, उसका ब्यौरा नेहरूजी को दिल्ली म टेलीफोन से दे दिया गया।

1 के० एम० करिअप्पा जो बाद में भारतीय फौज के सेनापति बने उन दिनो बन्नू में ब्रिगडियर के पद पर तनात थे। वह मशहूर कबायली सरदार इप्पी के फकीर से मिलना चाहते थे, पर उनके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया था। इसलिए मैं उनसे मिलकर पूछना चाहता था कि ये लोग क्या करना चाहते थे ?

नेहरू 16 अक्तूबर को पेशावर आये और मलाकद, खैबर, हगू, वाना, मीरन शाह, रजमाक व वजीरिस्तान म जडोला गये। कुछ जगहो पर उन्ह शरारती लोगो द्वारा की गयी गडवड का सामना करना पडा। मोटरो के उनके काफिले पर लडी गोतल मे *गोलियाँ चलायी गयी और जिस कार म वह डॉक्टर खान* साहब व वादशाह खा के साथ-साथ सफर कर रहे थे, उस पर एक गोली लगी थी। मलाकद मे पत्थर फेंके गये। यह सचमुच वडी अजीव घटना थी। जो लोग कवायली मामला की असलियत से वाकिफ थे वे जानते थे कि पोलिटिकल एजेंट की अनुमति के विना भाडे पर लिया गया मालिक किसी मे हाथ भी नही मिला सकता। एजेंट की मौजूदगी मे सरकार के सर्वोच्च नेता की हुक्म उदूली हो, एक ऐसी वात थी जिस पर हँसे विना नही रहा जा सकता। इस इलाके का नेहरू का हगामा भरा दौरा पाच दिन चला। इसके वाद उन्होंने खुदाई खिदमतगार आदोलन के केंद्र सरदरियाव म एक सावजनिक सभा को सवोधित किया। एक वहुत वडी भीड न वडी गमजोशी स उनका स्वागत किया और उनकी यह घोषणा सुनी, "मैं सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से नही, एक पुराने साथी और दोस्त की हैसियत से आया हूँ। मैं आपके लिए भाई चारे और मुहब्बत का पैगाम लेकर आया हूँ और फिर आऊँगा जब मैं कुछ खिदमत कर सकूगा। वहुत से लोगो को मेरा यहा आना नापसद था, लेकिन मुझे खुशी है कि मैं अपन कवायली भाइयो से मिलन आया। कुछ जगहो पर गडवड हुई और एक जगह हमे चोट भी लगी। आपकी इस पाक जमीन पर मेरे खून की भी कुछ वूँदें गिरी। जरूर इससे फल निकलेगा। इसमे हम और आप और भी ज्यादा करीव आये हैं और मुझे फख्र है कि मेरा थोडा सा खून आपसे मिल गया है। इससे आपको गुस्सा नही होना चाहिए। आपको खुले दिमाग से वडप्पन से काम लेना है क्योकि आप लोग खुदाई खिदमतगार है। जिस तरह आप लोग लवे तगडे है उसी तरह आपके दिल दिमाग को भी होना है।" लेकिन पठान बहुत नाराज थे। 'जलमई पख्तून' के नाम स लडाकू सगठन कायम हो गया। वदूकें-राइफिलें लिये इसके मजवूत काठी के लोगो को अफसरो हाकिमो का मजाक उडाते देखकर वादशाह खाँ को चिंता हुई। उन्ह लगा कि इसस उनकी सारी जिंदगी का ध्येय पठानो को हिंसा से विरत करने का ध्येय ही फेल हो जायगा।

विभाजन से ठीक पहले दिल्ली मे साप्रदायिक दगे के वक्त मैं जवाहरलाल के साथ ठहरा हुआ था। एक रात, डाक्टर जाकिर हुसेन का, जो बाद म राष्ट्रपति हुए घवराहट भरा बुलावा आया। उस समय वह दिल्ली के पास ओखला म जामिया मिलिया इस्लामिया के प्रिंसिपल थे। वहुत परेशानी भरे लहजे मे उन्होने मुझे बताया कि कॉलेज की चहारदीवारी के बाहर उपद्रवी भीड जमा हो रही है और कॉलेज के लोगो की जान का खतरा है। यह करीब 11 वजे रात की बात है। मैं भागा हुआ जवाहरलाल के पास गया जो ऊपर की मजिल म अपने दफ्तर म वैठे काम कर रहे थे और उन्ह खबर दी। वह फौरन उठ खडे हुए कार मँगायी और मुझसे झटपट बैठ जाने को कहा। वह इस बात से बिलकुल वेखवर थे कि उनके साथ कोई रक्षक नहीं था और वह शायद गभीर खतरे का सामना करने जा रहे थे। कार रवाना हो गयी। जामिया पहुँचकर हमने देखा कि वहा के मास्टरो व कुछ लडको न कॉलेज की इमारत मे शरण ले रखी है और वलवाई लोग सस्था को चारो ओर से खतरनाक ढग म घेरे हुए हैं। भीड न फौरन नेहरू को पहचान लिया और उनके आसपास इकट्ठी हो गयी। उन्होन फौरन भीड को उसके वरताव पर डाँटना फटकारना शुरू कर दिया। लोग एकदम शर्मिंदा हो

गये और माफी मांगनी शुरू कर दी , उन्होंने वादा किया कि उन बेचारे लोगों का बाल भी बांका नहीं होगा जो इमारत के भीतर डरे बैठे हैं। जब वह इमारत में घुसे तो उनकी मुलाकात जाकिर साहब व उनके सहयोगियों से हुई। उनकी हिफाजत का जो खयाल नेहरू के मन में था, उसमें वे लोग बहुत द्रवित हुए। उनमें एक ने उठकर रुंधे गले से कहा, "पंडितजी ! आपने शान से जिन्दा रहने का सबक भी दिया और अब इज्जत से मरने का रास्ता भी दिखा दिया। अब हम अपनी किस्मत आजमाने दीजिये।"

लौटने वक्त शरणार्थियों का एक झुंड, जिसने नेहरू को पहले उधर से गुजरते देखा था, वहीं रास्ते पर उनके पास से देखने के लिए इन्तजार में खड़ा था। नेहरू कार रुकवाकर बोनेट पर खड़े हो गये और उत्सुक भीड़ से बोले, "मैं अभी जामिया से लौट रहा हूँ। जाकिर हुसैन और उनके साथी दोस्त सच्चे देशभक्त रहे हैं और बहुत लम्बे अरसे से मुल्क की खिदमत कर रहे हैं। आज के पागलपन भरे वातावरण में वे भी अपने को अरक्षित अनुभव करते हैं। हम लोग किधर जा रहे हैं? क्या यह सही है?" बहुत सी आवाजें आयीं, "नहीं, नहीं।" और फिर लगातार प्रण किये जाने लगे कि वे हर कीमत पर मुसलमानों की रक्षा करेंगे। इसी बीच लार्ड माउंटबेटन, जो तभी वाइसराय व गवर्नर जनरल तैनात हुए थे, कुछ जीपों में सिपाही भरे वहां पहुँच गये। उन्हें इत्तिला मिली थी कि प्रधानमंत्री एक क्रुद्ध भीड़ का सामना करने के लिए कोई भी रक्षक लिये बिना ही चले गये हैं। उन्होंने कुछ जीपें इकट्ठी कीं, उनमें अपने बॉडीगार्ड्स (अंगरक्षकों) को भरा, जीपों पर मशीनगनें लगवायीं और घटना स्थल की ओर चल पड़े। उन्हें पहले तो यह लगा कि विरोधियों की भीड़ ने नेहरू को घेर लिया है। पर फौरन बाद ही उन्हें सच्चाई मालूम हो गयी, जब भीड़ ने 'जवाहरलाल नेहरू जिंदाबाद' के नारे लगाने शुरू कर दिये, कुछ नारे 'माउंटबेटन जिंदाबाद' के भी लगे।

इस घटना के बाद ही एक दूसरी घटना हुई जिससे प्रकट था कि मुसलमानों की हिफाजत की उन्हें कितनी फिक्र रहती थी। एक दिन तीसरे पहर उन्हें खबर मिली कि भालों, चाकुओं और कुछ बन्दूकों से लैस कई हजार लोगों की एक भीड़ सोनीपत के पास एक कैंप पर हमला करने जा रही है, जहां पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों को इकट्ठा किया जा रहा है। वह जल्दी में अपनी कार में बैठे और घटनास्थल पर जा पहुँचे। दंगाइयों ने उन्हें फौरन देख लिया, उनकी कार के चारों ओर इकट्ठे हो गये और 'इन्कलाब जिंदाबाद' व 'जवाहरलाल नेहरू की जय' के नारे लगाने लगे। वह कार की छत पर चढ़ गये ताकि लोग उन्हें देख सकें और भीड़ को संबोधित करने लगे। यह अविस्मरणीय दृश्य था। उनके सामने एक ऐसी भीड़ थी जो कत्ल, लूटमार व आगजनी करके आ रही थी जिसके हथियारों पर तब भी खून लगा हुआ था, जिसका इरादा उस शिविर में फँसे शिकारों को भी खून की नदी में डुबो देने का था। नेहरू ने उन्हें आजादी की लड़ाई की याद दिलायी कि किस तरह जवान लड़के लड़कियों ने यही नारे अँग्रेजों का विरोध करने के लिए लगाये थे। "आज मैं ये नारे उन लोगों से सुन रहा हूँ जो अपने ही देशवासियों को मार डालना चाहते हैं।" उनके इस एक जुमले का जादू-जैसा असर हुआ। दूसरे ही क्षण हिंदू मुस्लिम एकता के नारे लगने लगे और अभी किये गये गुनाहों के लिए पश्चात्ताप प्रकट किया जाने लगा। भीड़ के नेताओं ने नेहरूजी से अनुनय विनय की कि वे उन्हें शिविर तक ले चलें और वहां टिके लोगों की रक्षा की जिम्मेदारी उन्हें सौंप दें। उन्होंने वादा किया कि वे इन शिविरवासियों

को सीमा तक सुरक्षित पहुँचा आयेंगे। और उन्होने यह किया भी, जिस पर हर किसी को ताज्जुब हुआ।

दिल्ली लौटने पर नेहरू सीधे गाधीजी के पास गये और पूरी घटना के बारे म उन्ह बताया। बाद म, उन्होंने रेडियो से एक भाषण प्रसारित किया जो उस भाषण से ही मिलता-जुलता था, जो उन्होन सोनीपत के दगाइयो के सामने दिया था। उन्होने देशवासियो से अपील की कि वे नफरत को भुलाकर विवेक और सयम से काम लें। उनके साहस और सच्चे उद्देश्य की तारीफ करने की जगह पाकिस्तान के प्रचार साधनो ने इस भाषण का इस्तेमाल भारत को सयुक्त राष्ट्र सघ म बदनाम करने के लिए किया। उनका कहना था कि मुसलमान हिंदुस्तान मे सुरक्षित नही हैं और इसका सबूत खुद जवाहरलाल नहरू का भाषण है। इस तोहमत से उन्ह कोई परेशानी नहीं हुइ और वह बराबर घोषणा करते रहे "मैं हिंदू भारत का प्रधानमत्री नही बनूगा। मैं उन सबकी सेवा करना चाहता हूं जो यहा पदा हुए, जिनका लालन पालन यहा हुआ और जो यहा रहना चाहते है। उन्ह यहा शाति और इज्जत के साथ रहन की इजाजत होनी चाहिए। मैं इस तरह के हिंदुस्तान के लिए जिंदा रहना चाहता हूँ ऐसे ही हिंदुस्तान के लिए मरना चाहता हूँ।'

यहा मुझे विभाजन से पहले के दिना की एक घटना का यह दिखाने के लिए मोह है कि काग्रेस के भीतर ही परस्पर विरोधी विचारा की धाराएँ विभिन्न नेताओ द्वारा चलायी जाती थी और किस तरह चालाकी के दाव पचो से दिशा बदल दी जाती थी। 1946 के चुनाव के समय आचाय कृपालानी का नाम इस तरह उछाला गया मानो गाधीजी उन्ह काग्रेस का अध्यक्ष बनवाना चाहत हो। अक्तूबर के शुरु म बादशाह खा भगी बस्ती म गाधी जी के साथ ठहरे हुए थे। मैं भी ज्यादा वक्त वही रहता था। बहुत स काग्रेसजन यह सोचकर चिंतित थे कि कृपालानीजी काग्रेस की इस ऊँची गद्दी पर बैठेंगे। मैंने गाधीजी से इसके बारे मे बात की और अपनी तीव्र भावना बतायी। मेरे आक्षेप सुनकर उन्ह अचभा हुआ और उन्हाने बादशाह खा से पूछा। मेरे 'तरुण आकलन' से उनकी सहमति से उन्ह और भी ज्यादा ताज्जुब हुआ। बादशाह खाँ न उनसे कहा, "मेरी राय भी वही है जो यूनुस की राय है। लेकिन अगर मैंन मुह खोला, तो इसका नतीजा बुरा होगा। सब खुदाई खिदमतगार इस इतखाब (चयन) पर नाराज हैं।'

बादशाह खाँ की टिप्पणी का बापू पर बहुत गहरा असर हुआ। इसलिए मैंन उनस कहा कि वह आने वाले चुनाव के बारे म कम से कम इतना तो कर ही सकते हैं कि अपन को उससे अलग कर लें ताकि औसत काग्रेस कायकर्ता को यह गलतफहमी न रहे कि आचायजी को उनका आशीर्वाद मिला हुआ है। उन्हान पूछा, 'तुम लोग किसे चाहते हो ?' मैंने जयप्रकाश नारायण का नाम लिया। वह कुछ ताज्जुब से बोल, "पर वह तो काग्रेस के मेबर नही है।" मैंन जवाब दिया कि हम उन्हें काग्रेस म ले आयेंग। तब गाधीजी न मुझे यह घोषणा करन की इजाजत दे दी कि वह इस चुनाव म कोई स्थिति नही अपना रहे और कोई भी उम्मीदवार किसी भी तरह उनके नाम का इस्तेमाल न करे।

मैंन इसी के मुताबिक एक वक्तव्य तयार किया। वह भगी बस्ती मे रहनेवाले एक व्यक्ति को अखबारा म भेजने के लिए दे दिया गया। यह तीसरे पहर की बात है। जवाहरलाल शाम को गाधीजी स मिलने गय और उन्हाने इस मामले के बारे म सुना। उन्ह यह पसद नही आया और जब वह यार्क रोड पर अपने घर

वापस आ रहे थे,[1] जहाँ मैं उनके साथ ठहरा था, उन्होंने पूछा, "ऐसी कार्रवाई से क्या फायदा ? इससे और भी ज्यादा गलतफहमियाँ पैदा होंगी।" मैंने उनसे कहा कि यह खयाल भी बरदाश्त के काबिल नहीं है कि कांग्रेस कृपालानीजी के रास्ते पर चले। मैंने फिर जोर देकर कहा, 'अगर वह कांग्रेस के अध्यक्ष बन गये तो मैं इस दुखद दृश्य को देखने मेरठ अधिवेशन नहीं जाऊँगा।"

बयान के बाद वाली सुबह मैं उत्साह से भरी पूर्वाशा में सो कर उठा। मुझे उम्मीद थी कि वह बयान बड़ी सुर्खियों में हर अखबार में छपा होगा। कहीं कुछ नहीं था और निराशा से मैं रुआँसा हो गया। मुझे थोड़ी देर में पता चला कि सरदार वल्लभभाई पटेल ने, जो सूचना व प्रसारण के मंत्री भी थे, उस बयान को न छापने के निर्देश दिये थे। बादशाह खाँ बहुत दुखी हुए। उदास लहजे में मुझसे बोले, "तुमने अपना फर्ज पूरा किया। अगर वे लोग ही जो कांग्रेस का काम काज चलाने के लिए जिम्मेदार हैं, उसे बरबाद करना चाहते हैं तो तुम क्या कर सकते हो ?" लेकिन मैं तब भी गांधीजी के पास गया और उनसे सरदार पटेल की इस धाँधली की शिकायत की। यह साफ हो गया था कि आचार्यजी असल में सरदार पटेल के उम्मीदवार थे। इससे भी ज्यादा, सरदार पटेल जयप्रकाशनारायण को नापसंद करते थे और मेरे-जैसे मामूली आदमी द्वारा भी उनका नाम प्रस्तावित किया जाना बरदाश्त नहीं कर सकते थे। आचार्य कृपालानी ने अपनी किताब **गांधी—हिज लाइफ ऐंड थॉट** में लिखा है "डॉक्टर सैयद महमूद और मुहम्मद यूनुस, जो अब विदेश मंत्रालय में काम करते हैं और तब जवाहरलाल के साथ ठहरे हुए थे, गांधीजी के पास भी गये और उनसे अनुरोध किया कि कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए मेरी उम्मीदवारी का वह समर्थन न करें, क्योंकि मेरा रुझान सांप्रदायिक है। उनसे भी कहा गया कि जवाहरलाल से मिल लें।" मुझे नहीं मालूम था कि डाक्टर सैयद महमूद ने भी हस्तक्षेप किया था और इसलिए आचार्य कृपालानी ने जो कुछ कहा था वह मेरे लिए एक रहस्योद्घाटन जैसा था। और इसीलिए मैंने इस घटना का अपना विवरण यहाँ लिख देना जरूरी समझा।

स्पष्ट है कि कुछ ही महीनों में सरदार पटेल ने अपनी राय बदल दी। एक दिन उन्होंने औरंगजेब रोड के अपने मकान पर मुझे बुलाया और कहा, "तुम ठीक थे। यह कृपालानी अच्छा आदमी नहीं। देखो, क्या-क्या बकता है।" सरदार पटेल ने इसके आगे मुझे अपने विश्वास में लेकर कहा कि कृपालानी अपने को बहुत बड़ा आदमी समझने लगा है 'जैसे मुस्लिम लीग में जिन्ना है, उसी तरह वह चाहता है कि कैबिनेट मिशन से बातचीत में कांग्रेस का वह अकेला प्रतिनिधि हो।' मैंने सरदार से कहा कि पहले उनका समर्थन करके उन्होंने सच्चे कांग्रेसजन का भला नहीं किया। वह मेरी बात मान गये और मेरे कंधे पर हाथ रख कर कुछ खोये खोये स्वर में बोले "मुझे यकीन है कि तुम ऐसी गलती नहीं करोगे।" बाद में कृपालानी से सरदार बहुत नाराज हो गये और उनका पत्ता बिलकुल साफ करने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई। इसमें उन्होंने कुछ सख्त लफ्जों का भी इस्तेमाल किया जो उनकी बाद की पत्रावली में शामिल हैं।

मेरे आचार्य कृपालानी के विरोध की वजह वे बातें थीं जो मैं बरमा से

---

1 अब यार्क रोड का नाम मोतीलाल नेहरू मार्ग है।

2 पब्लिकेशन डिवीजन 1970, पृष्ठ 250-51

सुनता आ रहा था। चौथे दशक के शुरू में डॉक्टर खान साहब सीमा प्रांत में उनके बारे में बातें करते थे और नेहरूजी का लेकर उनका नैनी जेल में उनसे जो टकराव हुआ था, उसका जिक्र करते थे। लगता है कि कृपालानी ने नेहरूजी के बारे में भाषा का संयम रखे बिना व्यंग्य में कुछ कह दिया था। डॉक्टर खान साहब इतना नाराज हुए कि एक बार तो उन्होंने उनका गला घोंट देने की सोची। बादशाह खां भी जब उनका जिक्र करते थे तो कुछ उपेक्षा से जबकि दूसरे कांग्रेसी नेताओं के बारे में वह बहुत तारीफ और प्यार की भाषा बोलते थे। मैंने आचार्य की आलोचना करते हुए डॉक्टर राममनोहर लोहिया, डॉक्टर कुंवर मुहम्मद अशरफ, सज्जाद जहीर, और डॉक्टर जैनुल आबदीन अहमद को भी सुना था। उस वक्त ये सब लोग कांग्रेस महासमिति के दफ्तर में इलाहाबाद में काम करते थे और आचार्य जी से पूरी तरह ऊबे हुए थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि मेरी तरह वे लोग उन्हें राष्ट्रीय मंच पर एक नासूर जैसा ही समझते थे।

आजाद भारत के लिए संविधान बनाने के लिए 9 दिसंबर को विधान निर्मात्री परिषद अस्तित्व में आयी। अंग्रेजों ने 20 फरवरी, 1947 को अपनी ऐतिहासिक घोषणा की। ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ने का फैसला किया था, पर देश का बँटवारा करने के बाद। लेकिन ब्रिटेन की लेबर पार्टी की सरकार के बारे में यह मानना ही पड़ेगा कि उसने कम से-कम दूसरी एकता बनाये रखने की एक कमजोर कोशिश तो की ही थी। लेकिन विघटन की ताकतें बहुत आगे तक बढ़ चुकी थीं और पैबंद लगाकर कोई नतीजा नहीं निकल सकता था। आखिरी वक्त पर लंदन में एक सम्मेलन बुलाकर मतभेद कम करने की कोशिश की गयी पर उससे कुछ हासिल नहीं हुआ।

दिसंबर 1946 से मार्च 1947 तक और फिर अगस्त में समझदारी और विवेक राष्ट्र से गायब हो गये थे। इंसान के स्वभाव में जो सबसे नीच ओछी, गर्हित भावनाएँ थीं उन्होंने राजनीतिक हिंसा से मिलकर वह सब-कुछ बरबाद कर डालने की ठान ली जिससे जिंदगी जिंदा रहने के काबिल बनती है। इन लोगों ने जो शर्मनाक भूमिका अदा की उसमें लूट आगजनी, बलात्कार और हत्या—सभी चीजें शामिल थीं और गुनहगार और बेगुनाह सभी लोग एक ही तरह से इनके शिकार हुए। भीड़ का जो पागलपन इन जघन्य अपराधों के लिए जिम्मेदार था, उसने ऐसे घाव छोड़ दिये जो बरसों बाद तक रिसते रहे उसके कृत्य ऐसे वीभत्स और घिनौने थे कि उन पर यकीन करना भी मुश्किल था। यह कोई आदर्शों या सिद्धांतों के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई नहीं थी, जिसमें बहादुरी दिखाकर किसी को गर्व हो। यह तो नफरत का दिखावा था, औरतों, बच्चों व ऐसे लोगों पर कायरतापूर्ण हमले थे जो हमले का जवाब नहीं दे सकते थे। बाद में, लोगों ने शर्म से सिर झुकाये। मुझे आज तक ऐसा एक भी आदमी नहीं मिला जो उन शर्मनाक दिनों की अपनी कारगुजारी का बखान करता हो। यह बहादुरी और अभिमान की उन भावनाओं से कितना भिन्न है जो किसी महान उद्देश्य से छेड़े गये युद्ध में मरने और जीने वालों की होती है। इस कत्लेआम के बीच तर्क और विवेक के दो ही समझदार और बहादुर इंसान नजर आते थे—महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू। वे दुखी और पीड़ित लोगों को दिलासा और तसल्ली देते थे और इसके लिए दंगाइयों बलवाइयों की अनजानी मनमानी का खतरा मोल लेते थे। बादशाह खां भी कुछ दिनों बापू के साथ बिहार में रहे और

बहुसख्यक समुदाय मे समनदारी और अल्पसख्यक सप्रदाय मे विश्वास पैदा करने की कोशिश की।

रावलपिंडी, दिल्ली व बिहार मे खून खराबे के नजारा को कौन भूल सकता है? जवाहरलाल ने पजाब म कत्ल और बरबादी की अमानवीय कहानिया सुनी तो माच के शुरू मे भागे हुए वहा गये। हमने बहुत बडे इलाके के ऊपर हवाई जहाज से चक्कर लगाया और अनगिनत गावो को जलते देखा। रावलपिंडी के बाहर हजारो लोग एक शिविर म ठुसे हुए थे, जिनकी रक्षा के लिए सिफ कँटीले तारो की एक बाड लगी हुई थी। वहा रह रहे लोग डर के मारे मर जा रहे थे, क्योकि उन्हे नयी सीमा तक जाना था और रास्ते मे हिफाजत के सिफ अस्पष्ट आश्वासन ही मिल रहे थे। स्थानीय मुस्लिम लीग का एक प्रतिनिधिमडल जवाहरलाल से मिलना चाहता था। ऐसे वक्त उनकी नीयत पर भरोसा मुश्किल था। आजादी की लडाई के पुरान साथी और प्रसिद्ध सासद दीवान चमनलाल और मैं भरी रिवॉल्वरें जेब मे डाले जवाहरलाल की हिफाजत के लिए खडे थे। पर यह प्रतिनिधिमडल पछतावा जाहिर करने वाला निकला, जिसके लोग अपने अपने इलाको म हो रही घटनाओ पर अफसोस और नफरत जाहिर कर रहे थ। उनम से कुछ लोग सचमुच रो रहे थे। व रुँधे गले से कह रहे थे 'जो हम चाहते थे, वह यह नही था। हमे शाति से रहन दिया जाये। मेहरबानी करके ऐसा कुछ जल्दी से ही करिये जिससे यह खून खराबा और पागलपन दूर हो। हम इससे तग आ चुके है।"

दिल्ली मे और उसके आसपास जो दगे हुए उनसे जीवन अस्त व्यस्त हो गया था—न सिफ आम आदमी के लिए बल्कि बडे से-बडे लोगो के लिए भी। जवाहरलाल न अपन घर के बरामदो व मदान म तबू लगाकर बहुत से ऐसे लोगो को शरण दे रखी थी जो सुरक्षा चाहते थे। उन्ह खिलाना एक समस्या थी क्योकि चीजो का अभाव था। एक बार हम सडक पार एक कब्रिस्तान म भेडे दिखायी दी। और हमने उनके मालिक से दो भेडो का सौदा कर लिया दूध, प्याज और रोटी के बदले मे। कुछ मौको पर हमने एक दोस्त से, जो फौजी ठेकेदार था रोटी मक्खन, मुरब्बा, चाय, घी वगैरह ले लिये, छावनी म कटीन म यह सप्लाई होती थी और दोस्त की उदारता से हमे कई बार सामान मिल गया। एक बार पेशावर की जान पहचान वाले शरणार्थी ने हम कई खोरे भरकर ताजे फल दे दिये। अभाव के दरय और शरणार्थियो का हमेशा बढता जा रहा आगमन देखकर जवाहरलाल न राष्ट्र से अपील की कि एक वक्त का खाना छोडा जाय। उन्होने घर पर अनाज खाने पर पाबदी लगा दी। वह केले के आटे की बनी चपातियो से सतुष्ट थे। मैं एक वक्त का खाना छोडने का विदेशो म भी इतना आदी रहा कि अब दो वक्त का खाना तकलीफ देता है।

22 माच, 1947 को बर्मा के अल लुई माउटबटेन न हिंदुस्तान के 36वें वाइसराय और आखिरी अँग्रेज गवनर-जनरल का पद सँभाला। उन्ह काम सौंपा गया था ब्रिटिश साम्राज्य को एक भूभाग से समाप्त करना, दश का बँटवारा करना और देश की जनता को शासन सत्ता सौंपना। उनका इरादा नक था, पर वह हडबडी म थे जिससे उनकी भूमिका के बारे मे शक पैदा हुए। मैं न इस पहलू पर बात करना चाहता हूँ और न उनके शानदार जीवन पर, न उनके अहकार पर, न उनके दिल दिमाग की खूबियो पर। कुछ लोगो ने यह किया और उन्होने तथ्यो से ज्यादा मनगढत मिथक कायम कर दिये। मेरी बात बहुत निजी है। वह

और उनकी सौम्य पत्नी, एडविना, हिंदुस्तान व हिंदुस्तानियों से ज्यादा-से ज्यादा दोस्ती करने की कोशिश करते रहे। यह उन्होंने तब भी किया जब वे सरकारी हाकिम थे और उसके बाद भी। वे खुलकर सबसे मिलते थे आसानी से दोस्त बना लेते थे और ये संपर्क व औपचारिक या सरकारी दायरे के बाहर भी कायम रखते थे। उनकी बेटी पमला और उसके पति डेविड इस कोशिश में किसी से भी पीछे नहीं थे और अपने बच्चे तक का नाम उन्होंने 'इन्डिया' रखा था। उनसे संपर्क की मेरी यादें बहुत साफ हैं। डिक—जैसा कि माउंटबैटेन को उनके दोस्त व रिश्तेदार कहते थे—दिखावा पसंद करते थे और औपचारिकताएँ निभाते थे। एडविना, जो एक यहूदी सेठ की बेटी थी बिलकुल दूसरी तरह की इंसान थी। वह बहुत मिलनसार और गर्मजोशी के साथ मिलने वाली औरत थी जो अपनी जान पहचान वालों से बहुत मुहब्बत और खुलूस से पेश आती थी। अपने दोस्तों के बारे में वह जो कुछ छोटी मोटी बातें सुनती, उन्हें बड़े मजाकिया अंदाज में उन्हें बता देती थी। एक बार सेंट जांस ऐंबुलेंस के एक अफसर से बड़े जोश से हुई बात वह दोहरा रही थी। उन्होंने बातों बातों के बीच माचिस की एक तीली जलायी और उसे मेजपोश पर ही डाल दिया। यह चिनगारी बढ़कर लपट बन गयी। लेकिन इससे उस प्रौढ़ महिला को कोई परेशानी नहीं हुई उन्होंने चाय की प्याली उस आग पर उलट दी और अपनी बात बदस्तूर जारी रखी।

मास्को लंदन व यूरोप की दूसरी जगहों के दरबारों के बारे में ऐडविना के मजाकिया किस्सों से हम लोग हँसते हँसते लोटपोट हो जाते थे। विक्टोरिया से संबंध के फलस्वरूप यूरोप के करीब आधे राजे रजवाड़ों से उनकी रिश्तेदारी थी। एक बार उन्होंने रूस के जार की कहानी सुनायी जिसने अपने सभी रिश्तेदारों, चचेरे ममेरे फुफेरे भाई बहिनों व भतीजा भानजा भतीजियों को मास्को आने की दावत दी थी। वहाँ एक बड़ा जश्न हो रहा था। इंतजाम यह था कि जार के तख्त के सामने से सभी पुरुष संबंधी सफेद घोड़ों पर बैठकर गुजरेंगे, जहां जार सलामी लेंगे। ऐन वक्त पर जश्न का इंतजाम करनेवालों को पता चला कि एक सफेद घोड़ा कम है। उन्होंने सरकस से घोड़ा माग लिया। जार बैठे हुए वह शानदार जुलूस देख रहे थे जबकि सभी मेहमान एकाएक घबराकर खड़े हो गये। एक अँग्रेज युवराज सलामी-तख्त के सामने ही घोड़े से गिर पड़े थे। असल में सरकस के घोड़े को ट्रेनिंग दी गयी थी कि जब भी रूसी राष्ट्रगीत बजे वह अगला दाहिना पैर उठाकर सलामी दे। इस मौके पर भी घोड़े ने तख्त के सामने जाकर सलामी दी और नतीजा यह हुआ कि बेचारे युवराज धड़ाम से जमीन पर आ रहे और शर्म व अपमान के शिकार हुए, उन्हें तो पता नहीं था कि घोड़ा क्या करतब करेगा।

रूस के शाही जमाने का एक किस्सा वह और सुनाती थीं। जार ने दावत दी थी और महल के बड़े हॉल को इस मौके के लिए सजाया जा रहा था। उनकी मलिका—जारीना—सिगरेट का धुआँ बरदाश्त नहीं कर सकती थीं और सभी नौकर चाकर घबराये हुए थे कि कहीं कोई मेहमान गलती से सिगरेट पीते हुए न पकड़ा जाय। उनमें से एक अपनी तलब पर काबू न पा सका और उसने एक तरीका ढूढ़ निकाला। उसने हाल से धुआँ निकालने वाली चिमनी के भीतर मुंह करके सिगरेट पीनी शुरू कर दी। बाहर से सिर्फ उसके पैर दिखायी पड़ते थे। उन्होंने 1929 में अपनी स्पेन-यात्रा के समय की एक घटना भी बतायी। माउंटबैटेन की रिश्ते की बहन एना की शादी शाह एलफौंसो 13वें से हुई थी।

तब ऐडविना अपनी दूसरी बेटी पैमेला की मा बनन वाली थी और मेड्रिड दरबार ने बार्सीलोना के फौजी गवनर को हिदायत दी थी कि उन्ह सभी सभव मदद दी जाये। प्रसव अपेक्षा से कुछ पहले ही हो गया। फौजी गवनर को इत्तिला दी गयी। पर माउटबटेन-दपत्ति तब हैरत मे पड गये जब देखा कि डाक्टर या नस की जगह उनके घर के सामन सुरक्षा के लिए एक फौजी टुकडी आकर खडी हो गयी, जो शायद जरूरत पडने पर सलामी देन के लिए थी।

बचपन मे माउटबैटेन एक गुडिया से बडे चाव से खेला करते थे और उसका नाम उन्होन 'चिकेन बेला' रखा था। उनकी यह शोहरत ओस्बोन के रायल नौ सेना कॉलेज तक पहुँच गयी, जहा वह मई 1913 म भरती हुए थे। उनके चाचा बादशाह जॉज पचम कालेज के मुआयने के लिए आय। फौजी सलामी लेने के बाद वह कैडेटो से बात करने के लिए उनकी कतार तक पहुँचे। वहा उन्होने माउटबटेन को देखा और उन्ह 'डिक' कहकर पुकारते हुए जोर से पूछा, "चिकेन बेला कसी है ?" माउटबटेन को काटो तो खून नही। दूसरे कैडेटो का जिज्ञासा हुई कि यह 'बेला' कौन है ? नाविक माउटबैटेन न झेंपते हुए कहा, "मेरी बचपन की दोस्त।"

माउटबैटेन को अपनी शाही रिश्तेदारी पर नाज था और वह जान पहचान वालो को बडी मेहनत से ये रिश्ते समझाते थे, और उनका महत्व बताते थे। वह मई 1948 मे भारत स गये लेकिन उनका मेल मिलाप का सिलसिला बीच बीच मे उनके दिल्ली आते रहने से लगातार कायम रहा। वह शान-शौकत के शौकीन थे और रीतियो व शिष्टाचार के सस्कारा की बारीकियो पर जोर देते थे। 1968 से ही उन्ह यह धुन सवार थी कि उनका अतिम सस्कार एक बडी ऐतिहासिक घटना बन जाये। उन्होन भारत सरकार को लिखा कि इस मौके पर वह जल, थल व नभ सेनाओ की बडी-बडी टुकडिया व उनके बड बाजे भेजने की मजूरी दे दे। सरकार ने इस सवाल पर खामोश रहना ही ठीक समझा। इस खामोशी से उनके अभिमान को कोई ठेस तो नही पहुँची किन्तु भारत से लदन गये एक विशिष्ट सज्जन से उन्होने शिकायत की कि भारत सरकार न उनके खत का तब तक जवाब नही दिया था और वह इतजार मे थे। इसके बाद, अतत उनको एक शिष्ट उत्तर दे दिया गया कि 'हम भारतवासी मौत आदि जैसे विषयो पर व्यक्ति के जीवन-काल मे विचार नही करते।'[1] राजकीय सम्मान के साथ अत्येष्टि की उनकी इस इच्छा के बिलकुल विपरीत ऐडविना अपन लिए बहुत शात जल समाधि चाहती थी फरवरी 1960 म उनकी मृत्यु हुई और उन्ह जल-समाधि मिली।

बँटवारे की ब्रिटिश योजना विभिन्न राज्य विधानसभाओ के अनुमोदन के लिए भेजी गयी। लेकिन सीमा प्रात मे, जहा काग्रेस स्पष्ट बहुमत में थी, यह आशका थी कि योजना का अनुमोदन नही हो पायेगा। इससे मुस्लिम लीग की साख और महत्वाकाक्षाओ पर बुरा असर पडता। इसलिए बडी धूतता से जनमन-सग्रह का स्वाग रचा गया। जनता की राय जानने की यह योजना एक बहुत बडा धोखा थी, क्योकि किसी मामूली चुनाव म जालसाजी के बारे मे उम्मीदवार जानता है कि यह दडनीय है और इसमे चुनाव रद्द भी हो सकता है। लेकिन जन-

---

1 27 अगस्त 1979 को एक बम विस्फोट मे माउटबटन की हो गयी। उन की इच्छा के अनुरूप उनके अतिम सस्कार के लिए जल थल व नभ सनाओ की टुकडियाँ 5 सितबर को भारत स भेजी गयी।

मत-संग्रह ईमानदारी से हो और उसमें जालसाजी न हो, इसकी व्यवस्था नहीं की गयी थी। जनरल सर रावर्ट लाकहार्ट ने, जो कुछ दिनों के लिए गवर्नर भी रह चुके थे, जुलाई के पहले हफ्ते में राजनीतिक पार्टियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें जनमत संग्रह के इंतजाम पर विचार होना था। मैं वहां कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से मौजूद था और मैंने पूछा कि क्या सरकार को यह उम्मीद है कि यह जनमत-संग्रह ईमानदारी से होगा? गवर्नर का जवाब आश्चर्यजनक था "हम पार्टियों व उनके नेताओं की ईमानदारी पर निर्भर रहेंगे। उन्हें अपने अनुयायियों को भ्रष्ट आचरण या बेईमानी करने से रोकना चाहिए।" इस सिपाही प्रशासक को शायद यह नहीं मालूम था कि उसके नीचे जो कर्मचारी कार्यरत हैं वे कितनी गड़बड़ कर सकते हैं। लगता था कि उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि ये कर्मचारी लीग की मदद करने के लिए कितने उतावले थे।

इस बात ने और इस डर ने कि पठानों की प्रतिक्रिया कहीं हिंसात्मक न हो जाय, बादशाह खां को प्रेरित किया कि जनमत संग्रह का बहिष्कार कर दिया जाये। यह निर्णय गलत था, क्योंकि इससे मुस्लिम लीग को मतदान में घपले और बेईमानी करने का मुंह मांगा मौका मिल गया। एक उत्साही लीगी कार्यकर्ता ने डींग मारी कि मैंने 37 बार मतदान किया। और बहुत सारे लोगों ने ऐसा ही किया होगा। नतीजा पहले से ही मालूम था। लेकिन यह तथ्य आज भी मौजूद है कि जनमत-संग्रह में जितने लोगों को मत देने का अधिकार था उनमें से आधे से कम ने ही मत संग्रह में अपनी राय दी। और यह छोटी संख्या ही—जो कई जगहों पर बहुत बढ़ा चढ़ाकर बतायी गयी थी—विभाजन के पक्ष में थी। बहुमत ने अब्दुल गफ्फार खां के निर्देश पर मतदान नहीं किया था। लेकिन इसका नतीजा बहुत दुर्भाग्यपूर्ण निकला। जो खुदाई खिदमतगार एक साल से कम पहले बड़े निश्चित बहुमत से चुनाव जीते थे, उनकी उस पाकिस्तान में दुर्गति हो गयी जो इस मत संग्रह के बाद बना। आमतौर पर यह बात स्वीकार की गयी कि मत संग्रह के समय जो खून खराबा होता, बाद में उससे कई गुना ज्यादा हुआ।

आजादी की लड़ाई का खात्मा कई अरुचिकर, व्यक्तिगत और राजनीतिक घटनाक्रमों के कारण हुआ था। हिंदुस्तान का बंटवारा हो गया था और मेरा भी। विभाजन योजना से पठानों को बड़ी परेशानी और धर्मसंकट का सामना करना पड़ गया। उन्होंने हिंदुस्तान की आजादी के लिए काम किया था, मेहनत की थी, कष्ट झेले थे। इस प्रक्रिया में वे सारे मुल्क के ऊंचे तबके के मुसलमानों से अलग हो गये थे। उन्हें काफिर और हिंदुओं का एजेंट कहा जाता था। बंटवारे की उम्मीद से मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता एकदम शेखी बघारने लगे थे क्योंकि उनका पाया ऊंचा हो गया था, फरवरी 1947 के बाद से ही उन्होंने खुदाई खिदमतगारों को ताने मारना और धमकी देना शुरू कर दिया था। बादशाह खां ने इस हालत का बहुत सही बयान यह कहकर किया था कि मुझे और मेरे साथियों को बांधकर भेड़ियों की मांद में डाल दिया गया है। पुराने रिश्ते टूट गये थे और बाहर से किसी मदद की उम्मीद नहीं थी। इस पर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने यह राय बनायी कि पाकिस्तान को स्वीकार कर लेने के सिवा कोई चारा नहीं है। किंतु उन्होंने यह संकल्प किया कि एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली बनायी जाये जिसमें जनता की आवाज सबसे ऊपर हो। वह यह नहीं समझे कि मुल्क मुस्लिम लीग की निजी जागीर या मिल्कियत या उसके निहित स्वार्थों के खेल का

मदान बन जायेगा। मैं इस मामले मे बादशाह खाँ से सहमत नही था। मेरे लिए पाकिस्तान की धारणा तक एक लानत थी। मेरे लिए पाकिस्तान को या साम्प्रदायिक नताओ के प्रभुत्व को स्वीकार करन का सवाल ही नही उठता था। मेरा विश्वास भारत की एकता मे था। चूकि यह एकता समाप्त हो रही थी, मैं बहुत जोर के साथ इस पक्ष मे था कि ब्रिटिश साजिश, राष्ट्रीय खेमे की घबराहट और मुस्लिम साप्रदायिकता का जो अपवित्र गठजोड बनान की कोशिश चल रही थी, उसके खिलाफ विद्रोह कर दिया जाये और उसे सफल न होने दिया जाये। उन महीना म मैं सीमा प्रात मे बहुत दौरा करता रहा था और हिंदुस्तान का अपमानित करने की साम्राज्यवादी साजिश के बारे म अपन विचार खुलकर बताता रहा था। मैं लोगो को सख्त रवया अपनान के लिए समझाता रहा था और बँटवारे के विचार के लागू होन के खिलाफ जन समथन प्राप्त करने की कोशिश करता रहा था। पार्टी के कुछ दूसरे लोगो ने तो और भी सख्त रवैया अपनाया था। उन्होने पख्तूनिस्तान का झडा फहराकर अपने को आजाद पख्तूनिस्तान का नागरिक कहना शुरू कर दिया था।

मेरी इन सरगमियो की खबर बादशाह खा तक पहुँची। उन्हान बडे दद से मुझे समझाया कि मेरे भाषणो से पाकिस्तान के अधिकारियो को यह कहन का मौका मिल जायेगा कि 'गफ्फार खा अपने असली इरादा को छिपाकर होशियारी से बात करते हैं। यूनुस उनके बहुत नजदीक है। पर अभी नौजवान है और सच्चाई छिपाना नही जानता।" इसलिए उन्होन मुझे सीमा प्रात छोड देने की सलाह दी। इस तरह मैंने स्वेच्छा से देशनिकाला स्वीकार कर लिया और जुलाई 1947 म पेशावर छोड दिया। मेरे लिए एक अप्रिय वास्तविकता का आदी होना मुश्किल था। तब स मैं वहा नही गया और न किसी दोस्त या रिश्तेदार को लिखा ही। यह बडा तकलीफदेह फैसला था। पर मुझे इसका अफसोस नही है। मैंने भविष्य की ओर देखा था और अब भी मैं ज्यादा विश्वास और निष्ठा के साथ भविष्य की ही ओर देखता हूँ। जिन लोगा के साथ रहने का मैंने निणय किया उन्होंने मेरे निणय को सही साबित कर दिया।

लेकिन सीमा पार की घटनाएँ मेरी जिंदगी म दखल देती रही। 1947 के अगस्त के शुरू म मैं श्रीनगर मे था। पेशावर व लाहौर के कुछ दोस्त भी जो उस वक्त की सरकार के मुलाजिम थे और लीग मे भी ऊँचे ओहदा पर थे वहा थे। वे श्रीनगर के जीसस एँड मेरी कॉन्वेंट व बारामूला के बन हाल से अपने बच्चा को निकालन की हडबडी मे लग रहे थे। उन्हाने मुझसे भी कश्मीर घाटी छोड कर चले जान को कहा। जब मैंने उन पर असलियत बताने के लिए जोर डाला तो उन्हान बडी राजदारी से बताया कि तयारिया इस बात की है कि सशस्त्र चढाई करके रियासत पर कब्जा कर लिया जाये। इस बात की ताईद काजी अताउल्लाह ने की, जो सीमा प्रात मे काग्रेसी मत्री रहे थे और कुछ दिन की छुट्टी पर कश्मीर आये हुए थे। उन्होने मुझे यह भी बताया कि गवनर, सर जाज कनिंघम ने बादशाह खा के पास पैगाम भेजा था कि जिन्ना की निगाह म अपने को चढाने के लिए एक रास्ता यह भी है कि वह कश्मीर पर कबायली लश्कर लेकर धावा बोल दें। पठान नेता न यह कहकर प्रस्ताव ठुकरा दिया था कि मैं दूसरे लोगो की जमीन हथियान और लूट मार करने वाला छापामार हमलावर नही हूँ।" खबर इतनी चोका देने वाली थी कि मैं रियासत के एक ऊँचे अफसर के पास भागा हुआ गया और शेख अब्दुल्ला से मिलने की इजाजत मागी। महाराजा ने

उन्हें बादामीबाग छावनी में नजरबंद कर रखा था। मैंने उनसे पूछा कि अगर मैं यह खबर महाराजा हरिसिंह को दे दूं तो उन्हें कोई एतराज तो नहीं होगा। वह राजी हो गये, पर इस बात पर शुब्हा जाहिर किया कि "वह बेवकूफ तुमसे मिलना भी चाहेगा? वह तो गांधीजी से भी मिलने के लिए तैयार नहीं हुआ था।'

यह पक्का करने के लिए कि कोई कारवाई हो मैंने अप्रत्यक्ष ढंग अपनाने का फैसला किया। महाराजा के बेटे कर्णसिंह के एक अध्यापक थे पंडित ब्रज कृष्ण मदान। मैंने उनसे कहा कि वह महारानी को सावधान कर दें कि उनके परिवार की जान खतरे में है लेकिन इस दारुण विपत्ति से बचने के लिए कुछ कदम उठाये जा सकते हैं। तरकीब काम कर गयी। अगले दिन मुझे आधी रात को जगाकर राजमहल ले जाया गया। मैंने साजिश के बारे में कुछ बातें जल्दी जल्दी बतायीं, महाराजा ने सुनकर कहा 'मुझे उम्मीद है कि खान साहब मेरा बचाव करेंगे। उनका मतलब बादशाह खां से था। मैंने जवाब दिया कि पाकिस्तान सरकार रात दिन उनको परेशान किये रहती है, ऐसी हालत में वह क्या कर सकेंगे? बाद में मालूम हुआ कि महाराजा को उनके मुसाहिबों ने, खासतौर पर मुख्यमंत्री आर० सी० काक ने, समझाया था कि मेरी चेतावनी का उद्देश्य महाराजा को डराकर शेख अब्दुल्ला को रिहा करा लेना था। असल में वे दोनों मिलकर पाकिस्तानी नेताओं से बात कर रहे थे और अपने लिए कुछ विशेषाधिकार और सुरक्षा के आश्वासन पाने की साजिश रच रहे थे। इसीलिए हरीसिंह ने भारत में शामिल होने के करारपत्र पर दस्तखत करने में देर की थी और भारत व पाकिस्तान दोनों से यथास्थिति समझौता करने का आग्रह किया था। इस हीले हवाले से खीझकर जिन्ना ने रियासत पर जबरदस्ती कब्जा करने का फैसला किया था। महाराजा से हुई मेरी बातचीत का खुलासा जवाहरलालजी को बताया जा चुका था। यह बहुत सामयिक चेतावनी थी और इसके (आक्रमण के) सबूत कुछ अन्य सूत्रों से सितंबर के अंत में मिले थे। कबायलियों का हमला 29 अक्तूबर को शुरू हुआ। रियासत के अधिकारी इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं थे प्रशासन एकदम चरमराकर ढह गया था। हरीसिंह अपनी जान बचाने के लिए जम्मू भाग खड़े हुए थे और उनका सामान बीसियों बसों व ट्रकों में लाद कर वहीं पहुँचा दिया गया था। महाराजा की सहायता के लिए घबराहट भरी प्रार्थना पर भारतीय फौज के फौरन कारवाई करने से ही कश्मीर घाटी की रक्षा संभव हो सकी। स्थानीय जनता के पूरे सहयोग और हमलावरों के लालच ने भी कश्मीर की रक्षा की, क्योंकि हमलावर बारामूला में लूटमार और आगजनी करने लगे थे। इस लूटमार की वजह से उन्हें घाटी तक पहुँचने में दो दिन की देर हो गयी थी और भारतीय फौज को घाटी में पहुँचकर उन्हें खदेड़ने का मौका मिल गया था। बाद में कश्मीर के मसले पर जो घोटाला हुआ, जान,माल का जो नुकसान हुआ, भारत को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जिस परेशानी का सामना करना पड़ा, उन सबकी वजह हरीसिंह व उसके बीच विद्वेषपूर्ण गिरोह की शुरू की हठधर्मी ही थी। इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि उनके लिए जनता के मन में सिर्फ नफरत थी। उसे भारत सरकार से 1949 में अनुरोध करना पड़ा कि उन्हें गद्दी से उतार दिया जाये।

दो स्वतंत्र राज्यों में भारत का बँटवारा विलगाव की उस प्रक्रिया की पूर्णाहुति थी जो तीसरे दशक में शुरू हुई थी। हिंदुओं और मुसलमानों के मतभेदों का

फायदा उठाया गया। इन मतभेदो की जितनी अधिक अमोचनीय अभिव्यक्ति होती थी, उतना ही ज्यादा इसका फायदा वे शक्तियाँ उठाती थी जो 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाये हुए थी।

हिंदुस्तान मे अंग्रेजी शासन आने से जो परिवतन हुए, मुस्लिम सामती वर्गों ने उनका प्रतिरोध किया, इन वर्गों को अंग्रेज शक की निगाह से देखते थे और उन्हें परेशान करते थे। अंग्रेजो के खिलाफ मोर्चा लेने की जगह वे अपने खोल मे घुस गये। इससे इस पूरे समुदाय मे निराशा और असमजस फैला और उसके सोचने व कामकाज करने के ढँग को जैसे लकवा मार गया, इससे जिंदगी के हर क्षेत्र मे यह समुदाय पिछड गया। वह सामाजिक पराश्रयी बन गया।

दूसरी तरफ, हिंदुओ ने अंग्रेजो को उन्ही के खेल मे हराने के लिए उन्ही के शस्त्रो का प्रयोग किया। इस असन्तोषजनक आर्थिक और शैक्षणिक दशा को उलटने के लिए सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानो से वस्तुत भीख माँगी कि वे आधुनिक शिक्षा ग्रहण करें। यह 1875 मे हुआ। अन्य वर्गों की तुलना मे मुसलमानो के लिए बराबरी का स्तर प्राप्त करना कठिन साबित हुआ और इसकी उनको मँहगी कीमत चुकानी पडी। आने वाले वर्षों मे मुसलमानो की वास्तविक समस्याएँ इस कारण उभरी कि उन्होने अपना सही दुश्मन नही पहचाना था, जो विदेशी शासक वग था।

19वी शताब्दी के अत मे राष्ट्रीयता का विकास अंग्रेजो के लिए नयी चुनौती थी। इस धारा को रोकने का सबसे आसान तरीका था देश को अलग-अलग परस्पर युद्धरत खेमो मे बाँटना और अल्पमत मुसलमानो मे पृथकत्व की भावना को प्रोत्साहन देना। अंग्रेज मुसलमानो के आर्थिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन से परिचित थे। उनको मुसलमानो के हिजरत और खिलाफत आदोलनो के असफल होने से पैदा होने वाले दद का भी एहसास था। बहुत से मुसलमानो ने तुर्की के सुल्तान की छत्रछाया मे खिलाफत को सुरक्षित रखने के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया था। 1922 मे अन्य देशो म बसे सहधर्मी मुसलमानो स बिना मशविरा किये जब युवा तुर्कों ने खिलाफत का उन्मूलन किया तब भारतीय मुसलमानो का दद और भी बढ गया।

हिंदू मुस्लिम एकता को सुदृढ करने की क्षीण आशा में गाधीजी न अली बधुओ को पूण सहयोग दिया था। यद्यपि यह सभव न हो पाया पर इस सघर्ष से सामान्य काग्रेसजन मे कुर्बानी की भावना फली थी। खिलाफत को लेकर मुसलमान अत्यत भावुक थे, पर यह मसला यद्यपि केवल उन्ही से सम्बद्ध नही था फिर भी सभावित उग्र और सशक्त विद्रोह को सही मोड नही दिया गया। इस आदोलन का नेतृत्व मध्यकालीन विचारधारा रखने वाले मुल्लाओ के हाथ आ गया था जो कट्टरपन से ग्रस्त थे। यह दशा बहुत समय तक बनी रही। शकाओ के बावजद मुसलमानो मे इस नेतृत्व के प्रति अनास्था फैलने लगी। असलियत मे उनका विश्वास राजनीतिक आदोलनो से उठ गया।

अंग्रेजो ने मुसलमानो के रुख को पहचाना और उनकी तरफ ज्यादा ध्यान देना शुरू किया। यह फसला किया गया कि केंद्रीय सरकार की नौकरियो मे और अधिक मुसलमान भर दिये जायें और इनमे से कुछ को शासन मे ऊँचे स्थानो पर नियुक्त किया गया। सारे देश मे मुसलमान शैक्षणिक सस्थाओ की शृखला फलायी गयी। इन सस्थाओ को प्रत्यक्ष रूप से सरकारी सहायता दी गयी। इन सस्थाओ के जो प्रबधक थे उन्होने सरकारी नीतियो का समथन किया और इन

सस्थाओ से शिक्षित होकर जो युवा-युवती विद्यार्थी निकले उनका रवैया औप निवेशिक हो गया। इस प्रकार शिक्षित मुसलमानो म अधिकाश राष्ट्रीय शिविर से अलग-थलग थे।

सवैधानिक सुधारो के बाद जो नयी विधानसभाएँ बनी उनके फलस्वरूप भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को नये ओहदो के फायदे मिलने लगे। इस क्षेत्र मे भी अँग्रेजो ने जान-बूझकर पृथक चुनावो की प्रणाली अपनायी जिससे कि हिंदुओं और मुसलमानो के बीच की खाई और बढ जाये। हिंदू और मुसलमान केवल अपने सहधर्मियो को ही चुन सकते थे। जाहिर है कि धार्मिक और जातिगत चिप्पिया लगी हुई पार्टियाँ बनने लगी। भारत जैसे बहुधर्मी देश म "इस्लाम खतरे में" जैसे नारो ने देश का नाजुक सतुलन बिगाड दिया। हिंदू धर्मांधता की प्रतिक्रिया मुसलमानो मे अकसर बहुत तीव्र होती थी, सामती और उच्च मध्य वर्ग के मुसलमानो को अँग्रेजो ने पाला पोसा और इनके इस विचार को भडकाया कि उनकी सारी मुसीबतें बहुमत सम्प्रदाय की तिकडमो के कारण हैं। इस खाई को जान बूझकर बढाया गया। भारत के बँटवारे का मूल अँग्रेजो की इसी नीति म निहित था।

धार्मिक आधारो पर बने राजनीतिक दलो को—जैसे हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग खाकसार और सिक्खो मे अकाली दल को प्रोत्साहित किया गया। इन दलो म अँग्रेजो ने बडी चलाकी स अँग्रेजो पर निर्भर रहने की भावना पैदा की जिससे कि व अँग्रेजो को अपना सरक्षक मानते रहे। इन सभी दलो मे एक चीज सामान्य थी—ये सभी प्रगति और विदेशी राज्य की समाप्ति के भय स ग्रस्त थे। कट्टर-पथी मुसलमान यदा कदा हिंदू कट्टरपथियो से मिल जाते थे। मुसलमानो को यह कहकर भडकाया जाता रहा कि जैसे ही अँग्रेज भारत छोडेंगे वैसे ही बहुमत रखने वाले हिंदू उन्हे अपने ढँग की पोशाक पहनने और अपने तरह के अभिवादन के तरीको को अपनाने के लिए मजबूर कर देंगे। यही कट्टरपथी मुसलमान बिना झिझक के अँग्रेजी पोशाक पहनते थे, अँग्रेजी ढँग स एक-दूसरे से मिलते थे और जिस खान पान को अल्लाह ने हराम ठहराया है उसके सेवन म भी सकोच नही करते थे। अँग्रेजो की नकल इनके लिए शायद खुदा का हुक्म था। ये लोग भूल गये थे कि समसामयिक भारतीय जनजीवन का विकास लंबे अरसे मे हुआ था जो दोनो जातियो की सामान्य धरोहर था और इसको और अधिक सजाने सँवारने की आवश्यकता थी।

निहित स्वार्थों वाले मुसलमान इस्लाम की अलग पहचान की बात तो जरूर करते थ, लेकिन वास्तव म य लोग विदेशी सभ्यता को अगीकार कर रहे थे। इस्लामी मोहर क्या है? हर मुस्लिम राज्य का अपना अलग स्वरूप है, हर एक का अपना इतिहास है, अपनी सस्कृति है और अपना विशिष्ट सामाजिक लक्षण है। हर देश को अपनी शख्सियत पर नाज था। यहाँ तक कि अरब लोग जिनकी एक ही भाषा और एक ही परपरा है अपने पृथक कुवैती, सऊदी, लीबियाई या अल्जीरियाई स्वरूप की बात करते हैं। सबसे बड़े मुस्लिम राज्य इडोनेशिया के लोगो का हिंदू मिथको से प्राप्त हुई प्रेरणा पर गर्व है। इस ढोग के बारे मे इतना ही कहना काफी है।

भारत म अँग्रेजो न खास तौर पर मुस्लिम लीग के प्रभाव को बढ़ा-चढाकर दिखाया। इस दल के शीर्षस्थ नेताओ को यदि हम जानने का प्रयत्न करें तो यह पता चलेगा कि इनकी विचारधारा और पृष्ठभूमि बहुत हद तक समान थी।

इनमे से अधिकतर विदेशी शासन द्वारा बनाये गये थे। इनको खिताबो और उपाधियो से लादा गया था, इनाम और जागीरें दी गयी थी।[1] महत्वपूर्ण अवसरो पर इस कडी का महत्व प्रत्यक्ष हो जाता है। जो लोग इन नेताओ से अलग विचार रखते थे उनकी सरकारी तत्र मे और उसके प्रचार के माध्यमो आदि मे उपेक्षा की जाती थी। इसके फलस्वरूप यह भ्रम फैला कि मुसलमानो का प्रतिनिधित्व केवल मुस्लिम लीग करती है। परन्तु यदि हम 1936 से 1946 तक के आम चुनावो की मतदान प्रक्रिया का सर्वेक्षण करें तो एकदम उलटी तसवीर उभरेगी। उस समय के मतदाता पूरी जनसख्या के दस प्रतिशत के आस-पास थे। इस दस प्रतिशत मे से केवल दस या पद्रह प्रतिशत ने 1936 से 1946 के आम चुनावो मे मुस्लिम लीग के पक्ष मे वोट दिया था। इस बात को नजर-अदाज किया जाता रहा है और इसके नतीजे की भी उपेक्षा की जाती रही है। इन चुनावो से न केवल हिंदुओ और मुसलमानो के बीच दरार पडी, बल्कि मुसलमान भी आपस मे बँट गये। मुस्लिम लीग के नेता राष्ट्रीय मुसलमानो के कट्टर दुश्मन हो गये और उनको डराने धमकाने के हिंसक तरीके इस्तेमाल करने लगे। फिर भी यह प्रचार मुस्लिम-बहुमत वाले प्रदेशो म, जैसे कि उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेश या कश्मीर मे, असफल रहा। इसका कारण यह था कि इन दो इलाको मे लोकप्रिय और विकसित राष्ट्रीय आदोलन ने जडें जमा ली थी। खान अब्दुल गफ्फार खा और शेख अब्दुल्ला ने उस धार्मिक प्रलाप का सहारा नही लिया था जो देश के दूसरे हिस्सो मे फैलाया गया था।

इस पृष्ठभूमि से यह साफ हो जाता है कि असहयोग आदोलन मुसलमान जनता मे क्यो लोकप्रिय नही हो पाया। 1930 और 1932 के राष्ट्रीय सघर्ष म केवल इने गिने प्रमुख मुसलमानो न हिस्सा लिया, अधिकतर मुसलमान बुद्धि-जीवियो ने अलग रहना ही बेहतर समझा। जिन्ना इस वर्ग को अपने साथ लेकर चल सकते थे, उनका 1924-25 मे बबई प्रेसीडेंसी के गवर्नर लार्ड विलिंगडन से झगडा हो गया था। विलिंगडन प्रतिरोध की भावना और भौंडे तरीको को इस्तेमाल करने के लिए बदनाम था। 1932 म यही आदमी वाइसराय बनकर लौटा। विलिंगडन के डर से और दो गोलमेज सम्मेलनो की असफलता से खिन्न होकर जिन्ना ने बौखलाकर भारत छोड दिया और अपनी वकालत लदन मे शुरू कर दी। वहा के कुछ कजरवेटिव पार्टी के लोगो न उनको अँग्रेज-परस्तो का नेतृत्व करने के लिए आदर्श आदमी समझा। उन्होने जिन्ना को समझाया कि 1935 के भारत शासन अधिनियम से उनको नया मच मिल सकता था और केवल वह ही उसका फायदा उठा सकते थे। जिन्ना ने सलाह मान ली। उस समय के मुस्लिम लीग के अध्यक्ष बरिस्टर अब्दुल अजीज[2] को भारत सरकार के गह-सचिव ने अपने पद से त्यागपत्र दे देन का सुझाव दिया। इस सलाह के पीछे उद्देश्य

---

1 नवाबजादा लियाकत अली खान नवाब इस्माइल सर मोहम्मद यासमीन सर सिकन्दर हयात खान सर फिरोज खान नून सर मोहम्मद जफरउल्लाह ममदोत के नवाब इफ्तिकार सर अब्दुल्ला हसन सर गुलाम हुसन हिदायततुल्लाह सर शाहनवाज भट्टो होती के नवाब सर अकबर खान खानबहादुर सदरउल्लाह खान मद्रास से सर मोहम्मद उस्मान सर ख्वाजा नाजिमद्दीन आसाम स सर मोहम्मद सादुल्लाह बिहार से सर सुलतान अहमद और सी० पी० (अब मध्य प्रदेश) से नवाब अब्दुल रऊफ शाह।

2 लेखक के भाई। 1934 मे अब्दुल अजीज अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थ। जिस तरह से उन पर जिन्ना के पक्ष में इस्तीफा देने के लिए दबाव डाला गया उसके बारे म वह बडी कटुता से बातें करते थे। लीग के अदरूनी मामलों का बहुत कुछ जान

था जिन्ना के लिए रास्ता साफ करना। भारतीय मुसलमानों के विशिष्ट वर्ग से कहा गया कि वे जिन्ना को अपना कायदे-आजम स्वीकार करें।

ऐसी ही एक घटना से मुस्लिम राजनीति के बदलते पहलू स्पष्ट हो जाते हैं। मैं 1936 में जिन्ना के पहली बार पेशावर आने का जिक्र कर चुका हूँ। वह अपने उद्देश्यों के लिए पठानों को संगठित करना चाहते थे, लेकिन इसमें वह असफल रहे। पठानों ने गफ्फार खाँ की गैर मौजूदगी में उनके साथ कोई सौदा करने से इंकार कर दिया। बहुत-से लोगों ने जिन्ना से कहा था कि वह कोई एक ऐसी तरकीब निकालें जिससे सब मुसलमान एक मंच पर जमा हो सकें। इस काम के लिए वह मेरा भी सहयोग चाहते थे लेकिन मैं उनसे बराबर कहता रहा कि उन्होंने मुसलमानों को संगठित करने के लिए बहुत ही बदनाम लोगों का सहारा लिया है और उन लोगों में वह नयी जान डाल रहे हैं। मेरे इस दृष्टिकोण से जिन्ना सहमत थे और अपने अनुयायियों के बारे में उनकी भी ऐसी ही राय थी। उन्होंने एक बार कहा, "इन गुंडे बदमाशों को देखो जो मेरे अनुयायी हैं। क्या मेरे साथ कोई नेहरू या पटेल या राजेन्द्रप्रसाद हैं? फिर भी मैं गांधी से टक्कर ले रहा हूँ।" मेरा जवाब था कि उन्होंने अच्छे लोगों को आकर्षित करने के लिए प्रयत्न नहीं किया है। उस समय उन्होंने न केवल गफ्फार खाँ और उनके साथियों के दिलों को जीतने का वादा किया था बल्कि यह भी कहा था कि वह सीमांत प्रदेश के सवाल पर किसी और दल का समर्थन नहीं करेंगे, क्योंकि इससे 'पठानों की एकता छिन्न भिन्न हो जायेगी। पठानों की कौम बहादुर है उनके खून में मुझसे ज्यादा जान है। उन्होंने बहुत मुसीबतें झेली हैं और वे भारत के दूसरे मुसलमानों से बेहतर हैं।' दुख की बात है कि बाद में जिन्ना ने इन पवित्र शब्दों को भुला दिया और अपनी पूरी ताकत प्रतिक्रियावादियों को उठाने में लगा दी। ये लोग खुदाई खिदमतगार संगठन को, जो बहुत से शहीदों के खून और अस्थियों से बना था, नेस्तोनाबूद करने में जुट गये

एक और घटना जिन्ना की अदूरदर्शिता और हठधर्मी को प्रत्यक्ष करती है। 1936 में ब्रिटिश सरकार ने जिन्ना को सीमान्त प्रदेश के हर इलाके का दौरा करने के लिए प्रोत्साहित किया था। वह खैबर दर्रे जाना चाहते थे जहाँ के आफरीदी। अपने विरुद्ध की गयी आर्थिक नाकेबंदी से बहुत पीड़ित थे। मैंने एक मित्र से रास्ते में मिलने को कहा था। एक स्थान पर जिन्ना सिगरेट जलाना चाहते थे। मेरा दोस्त अमीनुल्लाह, जो जाखाखेल जिरगे के सरदार मलिक जब्बार खान का बेटा था जिन्ना को खुश करना चाहता था। लेकिन उसके पास माचिस नहीं थी। उसने जिन्ना से कहा कि बाहर से माल आने पर पाबंदी की वजह से उसके पास माचिस नहीं है। जिन्ना ने अपनी माचिस से सिगरेट जला ली। वापसी में उन्होंने मुझसे कहा, "मैं तुम्हारे दोस्त को अपनी माचिस देना चाहता था, लेकिन कानून का उल्लंघन होने के कारण मैं झिझक गया।' यह बात सुनकर मैं मन ही मन मुसकरा दिया। लेकिन इससे जिन्ना के मौलिक जीवन दर्शन के बारे में संकेत मिलता है। यह उनके आम रवैये के अनुकूल था। वह

कारी मैंने इन्हा से प्राप्त की। जिन्ना अब्दुल अजीज का सराहना करते थे। उनके अनुसार अब्दुल अजीज ने अध्यक्ष-पद स्वेच्छा से छोड़ा था ताकि जिन्ना पार्टी में नया जीवन फूँक सकें।

1 अंग्रेजों ने आफरीदियों पर 1936 में इसलिए नाकेबंदी लागू कर दी थी कि 1930 32 को उथल पुथल में उन्होंने पेशावर में सत्याग्रहियों का समर्थन किया था।

दोस्तों को छोड़ सकते थे, देश छोड़कर भाग सकते थे, लेकिन कानून नहीं तोड़ सकते थे। क्योंकि आजादी की लड़ाई में मान बहुतेरे अंग्रेजी कानूनों का उल्लंघन करना था, यह बात जिन्ना को ग्रनई मजूर नहीं थी।

1937 में जब काग्रेस ने प्रांतों में शासन सभाला तो मुस्लिम लीग से उसका टकराव हुआ। अगले ढाई वर्षों में लीग ने बेकार के मसलों को लेकर तरह-तरह से झगड़े कराने की कोशिश की। डाक्टर जाकिर हुसैन की चलायी हुई बेसिक शिक्षा योजना को लेकर बहस छिड़ी जिसे बाद में वर्धा योजना कहा जाने लगा। लीगी क्षेत्रों में इसे बहुत धिक्कारा गया। लेकिन जिन्ना कितने छिछले थे, इसका पता इस बात से चलता है कि जब यह एक पार्टी में डॉक्टर जाकिर हुसैन से दिल्ली में मिले तो उन्होंने तुरत ही जाकिर साहब पर मुस्लिम विरोधी शिक्षा-योजना बनाने का आरोप लगाया। डाक्टर जाकिर हुसैन शात रहे और उन्होंने पूछा कि इस योजना के वह कौन-से विशिष्ट पक्ष हैं जिनसे जिन्ना को एतराज है? जिन्ना ने हिकारत भरे स्वर में जवाब दिया 'क्या आप समझते हैं कि मुझे इस दो कौड़ी की योजना को पढ़ने के अलावा कोई और अच्छा काम नहीं है? उस पर एक नजर डालना भी बेकार है। यह एकदम बकवास है।'

कई अन्य मुस्लिम लीगियों ने इस योजना को समझने की कोशिश किये बिना ही इसे ठुकरा दिया। साथ ही इन लोगों ने पीरपुर कमेटी रिपोर्ट आदि के द्वारा काग्रेस मत्रिमडलों के विरुद्ध अनगल आरोप लगाये। इन आरोपों में से एक को भी साबित नहीं किया जा सका, क्योंकि पीरपुर रिपोर्ट हड़बड़ी में और जान-बूझ कर इस उद्देश्य से तैयार की गयी थी कि वातावरण को दूषित किया जाय। काग्रेस मत्रिमडलों ने केवल ढाई वर्ष काम किया और नवंबर 1939 में इस्तीफा दे दिया। मुस्लिम लीग ने इस दिन को मुक्ति दिवस के रूप में मनाया। लेकिन ताज्जुब यह है कि जब दो सौ वर्ष के शासन के बाद अंग्रेजों ने भारत छोड़ा तब इन लोगों ने ऐसी खुशी का इजहार नहीं किया।

ब्रिटिश सरकार ने काग्रेस के राजनीतिक मच से हट जाने और इस शून्य की स्थिति का फायदा मुस्लिम लीग के मनोबल को बढ़ावा देने के लिए उठाया। लीगियों ने स्वाधीनता सघर्ष का मजाक उड़ाया जिससे उनके विदेशी सरक्षक उन्हें मालामाल कर दें। कई लीगी नेताओं को ऊँचे ओहदे दिये गये ताकि वे अपना दम-खम जाहिर कर सकें। गाधीजी ने जिन्ना को खुश करने के कई प्रयत्न किये। लेकिन दोस्ती के बढ़े हुए हाथ को ठुकराकर जिन्ना का रवैया और सख्त हो गया। अब मुस्लिम प्रतिनिधित्व की जगह मुसलमानों के लिए पृथक देश का नारा लगाया गया। इस माँग को जिन्ना सौदेबाजी का बेहतरीन अवसर मानते थे। इससे प्रोत्साहित होकर सिन्ध ने भी अपने लिए अलग एक स्वतत्र राज्य की माग की जिसमें सभावित पाकिस्तान के इलाके भी शामिल थे। पजाब बगाल और देश के अन्य क्षेत्रों में खतरनाक तनाव फैल गया। बिहार, नोआखाली पजाब के कई हिस्सों में साप्रदायिक दगे शुरू हो गये। दिल्ली और अन्य नगरों में हिंसा की बाढ़ आ गयी, जिसमें हजारों हिंदुओं मुसलमानों और सिखों की जानें गयी। बहुत से लोग बेघर हो गये। लाखों लोगों को अकथनीय कठिनाइयाँ तथा अपमान सहन करने पड़े। भारत के विभाजन की सभावित कीमत से उसके समर्थक भी डर गये। यह दुख की बात है कि सकट की उस घड़ी में बँटवारे की आग को बुझाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। गाधीजी विभाजन के खिलाफ थे, प्रयत्न लेकिन उनकी आवाज क्षीण हो गयी थी। नये तथ्य और नयी शक्तियां सबल

होकर सामने आयी थी। दोना ही पक्षो म सहिष्णुता और उदारता कही दिखायी नही दी। काग्रेसी नेता प्रत्यक्ष रूप मे इतना थक गये थे कि उनमे विदेशी शासन को समाप्त करने के लिए नये अभियान चलाने की क्षमता नही रह गयी थी। लीगिया को अपना निर्वाण सामने नजर आ रहा था।

विभाजन के उन्माद की छाया आन वाले कई वर्षों पर बनी रही। 1949, 1951 1958 1963, और 1966 म मुझे कट्टरपथी और दो राष्ट्रो वाले सिद्धात के समर्थक कई मुसलमाना से मिलने का मौका मिला। इनम से कई का निधन हो गया है और उनका नाम लेना उचित नही होगा। इनके दिल टूट चुके थे और वे अपनी हठधर्मी के लिए स्वय शर्मिदा थे। उन्ह मालूम था कि दोना देशा म किस तरह लोगा के घर उजडे थे और आसू भरी आखो से उन्होने स्वीकार किया "यह हमारे सपना का पाकिस्तान नही है। यह वह नही है जो हम चाहते थे। काश जवाहरलाल नेहरू ने और अधिक साहस और धीरज दिखाया होता जिससे बँटवारा रुक जाता। उस स्थिति म कही कम खून-खराबा होता। इसके अलावा आज भी अल्पसख्यको के क्षेत्रो की समस्या सुलझी नही है। हम सब मिल कर एक समान योजना बना सकते थे तब हम अतर्राष्ट्रीय मामलो म बहुत बडी शक्ति सिद्ध होते और मुस्लिम देशा की सहायता कर सकते।

दिसबर 1971 मे पाकिस्तान के टुकडे होन से ऐसे लोगो के दिला म बँटवारे के तक के बारे मे और अधिक शका पदा हुई हागी। दो राष्ट्रो वाला सिद्धात अपना अथ खो चुका है। पाकिस्तान म भी इसके खिलाफ यदा-कदा आवाजें उठी हैं। ऐसी भावना बढ रही है कि उपमहाद्वीप के मुसलमान अब तीन अलग टुकडा म बँट गये हैं और उनकी कडियाँ टूट गयी है इस सदभ म शेख मुजीबुरहमान ने जो कहा था मुझे याद है। मई 1972 म मैं ढाका गया था। शेख मुजीब न अपन कई मत्रियो को आमत्रित किया था और उनका मुझसे परिचय कराया था। उन्होने मेरे मित्र और भाई वली खान की बहुत तारीफ की और मेरी तरफ मुड कर कहा आप हम सबसे ज्यादा समझदार निकले। आपन 1947 म ही ठीक निणय लिया। हमको उस बेवकूफी के दलदल से निकलन के लिए बहुत लडना पडा बहुत कुछ सहना पडा।

जा बातें पहले मेरे काना म चुपके से कही जाती थी अब उन्ह पाकिस्तान के पुराने नता ज्यादा खुलकर कह रहे है। पाकिस्तान के जाने मान पत्रकार एम० बी० नकवी न चौधरी खलीकुज्जमाँ के विचारो को एक समालोचना म उजागर किया है। कराची से प्रकाशित पाकिस्तान इकानोमिस्ट के माच 1978 के अक म एक लेख म यह जोर दकर कहा गया है कि खलीक साहब न अपन पुराने विचारो को बहुत हद तक छोड दिया था। इसम कोई ताज्जुब नही है। मैं खलीक साहब को काफी निकट से जानता था और कई बार उनसे परिस्थितिया को लेकर पक्ष विपक्ष की बातचीत हुई थी। मेरी आखिरी मुलाकात उनस तब हुई जब वह इडोनेशिया म पाकिस्तान के राजदूत थ। मैं वहाँ बादुग सम्मलन म भाग लेन गया था। उन्होने मुझे खिन्न मन स बताया "जवाहरलाल नेहरू जिन्ना और उनके अनुयायिया के मुकाबले मे मरे साथ कही बेहतर सुलूक करते। मैं दिशाहीन हो चका हूँ और जो मैं कर रहा हूँ वह दिल से नही कर रहा। तुम भाग्यशाली हो। तुम जो कर रहे हो वही करत रहो।

खलीक साहब स इस घटना स पहले की मुलाकाता स यह साबित होता है कि उनका रुख समयानुसार बदल रहा था। काग्रेस-लीग विवाद के उग्रतम दिना

मे वह कहते थे, "मेरा इक्के वाला जवाहरलाल नेहरू से अच्छी राजनीति जानता है।" बाद मे जब वह संविधान सभा म चुने गये और भारत के प्रति निष्ठा की उन्होने शपथ ली तो उस अवसर पर उन्होने अपने भारत प्रेम को भावभीनी भाषा मे दोहराया। बाद मे वह रफी अहमद किदवई के पास गये और उनसे कहा, 'मैं जिन्ना को जाकर बतलाना चाहता हूँ कि वह भारतीय मुसलमानो के प्रति अधिक सावधानी से बात करें। वह हमे हमारे हाल पर छोड दें।" अगले दिन नेहरू ने चौधरी साहब को खाने पर बुलाया। उस समय उन्होने बडे लबे चौडे वादे किये कि दोनो देशो के बीच तनाव खत्म करने के लिए वह अपनी जान भी दे सकते हैं। डॉक्टर सयद हुसेन, जो बाद म काहिरा मे हमारे राजदूत नियुक्त हुए रेडियो पर एक वार्ता प्रसारित करने के बाद हमारे बीच आ गये। खलीकुज्जमा को नेहरू न साथ खाना खाते देखकर वह भडक उठे, और चुने शब्दो म अपनी कुछ खास गालिया देकर नेहरू से अपना रोष व्यक्त किया, क्योकि ' जिस शख्श ने आपकी (नेहरूजी) मा, बहनो और बेटी को गालिया दी हा उसे आज आप दावत खिला रहे हैं।" मैंने यह दृश्य अपनी आखो स देखा और मुझे डॉ० सैयद हुसेन को शात करके दिल्ली म उनके होटल तक पहुँचाना पडा। इस घटना के अगले ही दिन खलीक साहब बुर्के म छिपकर हवाई जहाज से पाकिस्तान उड गये। नेहरू के साथ उनका भोजन ' अतिम भोज ' था, क्योकि जिस समय वह दावत मे शरीक थे शायद उसी समय वह धोखा देने की योजना बना रहे थ। 1949 मे मैंने उन्ह तुर्की म देखा जहा वह इस्लामिस्तान के तमाशे के लिए महायता मागने पहुँचे थे। जो व्यक्ति भी उनकी आस्थाओ से परिचित था उसके लिए उनके शब्दो पर यकीन करना मुश्किल है। वह अपने को मुसलमाना के लिए अलग देश बनाने की योजना का दावेदार जताते थे। बाद म बहुत से पाकिस्तानियो ने उनकी राजनीतिक कलाबाजिया की आदत को करीब से पहचाना होगा।

मैंने ये विचार पाकिस्तान की जनता की भावनाओ को ठेस पहुँचाने के लिए नही व्यक्त किये है। मेरे कई प्रिय स्वजन वहा रहते हैं और मैं दिल से उनकी भलाई चाहता हूँ। मुझे उनका कई बार ध्यान आता है और मै सोचता हूँ कि क्या हम कभी फिर मिलेंगे ? मेरा मतलब है अपने सगे भाइया बहना म, भतीजा से, कॉलेज मे साथ पढने वाले पुरान दोस्ता से, जिन सभी ने भारत की आजादी के लिए जेला म कष्ट सहे थे। व सब बडे आकर्षक और प्रेमी जन हैं। खुदा उन पर हमेशा मेहरबान रहे। इसके अलावा लाखो और लोग हैं जिन्ह हम अपना मित्र मानते हैं और वे अपने दिलो मे भी हमारे लिए ऐसी ही भावना रखते है। इसी आस्था से इस उपमहाद्वीप मे रहने वालो के लिए आशा जागत होती है। सुना जाता है कि पाकिस्तान मे ऐसे लोग भी हैं जो आपस मे भारत और बँगलादेश स अच्छे और अर्थपूर्ण सबध पैदा करने के बारे म गभीरता से सोच रहे हैं। यह सहयोग तभी उपयोगी होगा जब सभी लोगो का उत्थान इसम जुडा हो। अब अलग-अलग दडबो मे रहना सभव नही है। साथ मिलकर काम करने के अवसर मौजूद है। मानवीय और भौतिक निधि को हम सब आपस म मिल-बाटकर इस क्षेत्र मे नया जीवन ला सकते है। ऐसी अवस्था मे हम सभी बेहतर समझ बूझ, बेहतर जिन्दगी का स्वप्न देख सकते हैं। इसलिए हम निश्चय करें कि हम अपना जीवन और सुखी तथा अपना भविष्य और गौरवमय बनायेंगे, अपने लिए न सही, पर कम स-कम अपने बच्चो के लिए अवश्य।

एक नयी लगन

(1947 1970)

आजादी के प्रभात से कई नयी चीजों की शुरुआत हुई। मेरी जिंदगी तो उसने निश्चित रूप से बदल दी। आजादी से देश का विभाजन हुआ और बिना अपनी किसी गलती से मैं अपने ही मुल्क में शरणार्थी बन गया। उत्तर पश्चिमी सरहद से हमारी जड़ें उखाड़ दी गयीं, मजबूरी में दिल्ली मेरा निवास बना और उसी तरह चार से मेरा राजनीतिक विगत मुझसे कटकर अलग हो गया। खुदाई खिदमतगार की जगह मैं आजाद हिंदुस्तान की विदेश सेवा में तनख्वाह पाने वाला सरकारी नौकर बन गया। राजनीति की जगह मुझे राजनय अपनाना पड़ा, लेकिन राजनीतिक पृष्ठभूमि की वजह से आजादी के बाद किये जाने वाले कामों के बारे में भिन्न परिप्रेक्ष्य बना। इसके कारण मेरा उन लोगों के साथ लगातार टकराव हुआ जिन्हें औपनिवेशिक साम्राज्य के उत्साही कर्मचारी बनाने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। अहिंसक क्रांति का मतलब सह अस्तित्व और सहिष्णुता के मूल्यों का पालन करना था। इसकी वजह से अजीब असंगतियाँ पैदा हो गयीं। जिन लोगों की स्वाधीनता संघर्ष में आस्था थी, जिन्होंने इसके लिए मुसीबतें झेली थीं, उन्हें उन लोगों के साथ काम करना पड़ा जो इसे बिलकुल बेकार समझते थे। कुछ तो औसत सत्याग्रही को हिकारत की नजर से देखते थे।

भारतीय सिविल सर्विस के साम्राज्य हितैषी सदस्यों की तिकड़मों की बदौलत मैं सीढ़ी के सबसे निचले डंडे पर—यानी अताशे (मंत्रालय से सम्बद्ध) नियुक्त कर दिया गया। ये कर्मचारी भारतीय विदेश सेवा के नियंत्रण के लिए जिम्मेदार बन गये थे और अपने विशेष अधिकार क्षेत्र में राजनीतिक जानवर के भेजे जाने से नाराज थे। लेकिन राजनीतिक पृष्ठभूमि, नेहरूजी के भरोसे और नयी व्यवस्था की जरूरत की वजह से मैं इंडोनेशियाई गणतंत्र में भारत का प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया गया।

मुझे कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया और न मुझे काम के बारे में कुछ बताया गया। मुझे सीधे उस काम पर भेज दिया गया जो रोमांचक दायित्व साबित हुआ। उस जमाने में राजनयिक की हैसियत से काम करने के लिए इससे ज्यादा दिलचस्प और शिक्षाप्रद जगह नहीं ढूँढी जा सकती थी। इंडोनेशिया आजादी पाने के लिए डच शासकों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था। अपने देश में अहिंसक क्रांति

में हिस्सा लेने के बाद हिंद महासागर के पार होने वाले सशस्त्र संघर्ष के साथ मेरा संबंध जुड़ गया। हम इंडोनेशिया की आजादी के समर्थक थे और इस नीति को जितना मुमकिन हो उतने प्रभावकारी तरीके से लागू करना था। इंडोनेशिया-वासियों ने इसे सराहा। अपने प्रधानमंत्री और प्रेसीडेंट सुकार्नो—दोनों के साथ मेरा सीधा संपर्क था। मेरे आने के कुछ ही दिनों के अंदर प्रेसीडेंट सुकार्नो ने मुझसे एक 'विशेष समारोह' में अपने साथ चलने के लिए कहा। मालूम पड़ा कि वह मन्त्रिमंडल की बैठक थी। उसका व्यापक पुनर्गठन किया गया था और मुस्लिम धार्मिक पार्टी—मसजूमी पहली बार सरकार में शरीक हुई थी। मैं पूरे विचार विमर्श के दौरान वहां बैठा रहा, पूरे मन्त्रिमंडल के साथ मेरी तसवीर खींची गयी और बाद में 'बुग यूनुस दारी इंडिया' (भारत के भाई यूनुस) कहकर मेरा अभिवादन किया गया।

इंडोनेशी देशभक्तों के साथ मेरी बढ़ती दोस्ती देखकर जकार्ता में डच उपनिवेशवादियों से मान्यता प्राप्त हमारे महावाणिज्य दूत राघवन के मन में ईर्ष्या और घबराहट पैदा हो गयी। उन्होंने मुझे चेतावनी दी, "होशियार रहो, क्योंकि डच तुम्हें अवांछनीय व्यक्ति करार देकर तुम्हारी वापसी की मांग कर सकते हैं।" उन्होंने समझा होगा कि इस धमकी से मैं डर जाऊंगा और अपना रुख बदलूंगा। लेकिन मुझे दूसरे ढंग से सोचने की शिक्षा मिली थी। मैंने फौरन ही गुप्त भाषा में प्रधानमंत्री को संदेश भेजकर बताया कि राघवन ने क्या कहा है और सुझाव दिया कि अगर इंडोनेशी नेताओं के साथ मेरे सौहार्दपूर्ण संबंध गलत माने जाते हैं तो डचों के मेरी वापसी की मांग करने से पहले ही मुझे वापस बुला लिया जाये। उनके दबाव में रहकर काम करने से स्थानीय जनता की निगाह में हम झेंप मालूम होगी। मुझे फौरन ही जवाब मिला कि भारत-सरकार इंडोनेशी नेताओं के साथ मेरी दोस्ती से बहुत संतुष्ट है और मेरी वापसी की संभावित मांग का मंजूर करने की जगह वह वाणिज्य-दूतावास बंद करना ज्यादा बेहतर समझेगी। यही संदेश जकार्ता में महावाणिज्य-दूत के पास भेज दिया गया। क्योंकि वह यह अंदाजा नहीं लगा पाये थे कि मैं यह कदम उठाऊंगा, इसलिए वह अचानक उलझन में पड़ गये और उन्होंने यह सफाई देनी चाही कि मैं उन्हें गलत समझा था। लेकिन उस दिन के बाद से उनका रुख बदल गया और उनके एक साल के अंदर चले जाने तक हम मिल जुलकर काम करते रहे।

इंडोनेशी स्वाधीनता संग्राम और डच आक्रमण के प्रतिरोध ने संपूर्ण विश्व का ध्यान आकृष्ट कर लिया था और उसे अंतर्राष्ट्रीय समर्थन मिला था। एक संयुक्त राष्ट्र सद्भाव आयोग बनाया गया और अमरीका के डॉक्टर फ्रैंक ग्राहम, आस्ट्रेलिया के जस्टिस कर्बी, बेल्जियम के वानजीलंड इसके सदस्य और भारत के टी० जी० नारायणन् इसके महासचिव नियुक्त किये गये। इस आयोग ने आकर मसले का हल ढूंढने के लिए जोगजकार्ता और जकार्ता के बीच चक्कर लगाने शुरू किये। इसके सदस्य मेरी मौजूदगी उपयोगी समझते थे। वे अक्सर मुझ पर भरोसा करके अपनी बातचीत के बारे में मुझे बताते और किसी प्रासंगिक मुद्दे पर प्रतिक्रिया जानने के लिए मेरा हस्तक्षेप चाहते, या रिपब्लिकनों को मेरे जरिए कोई सूचना पहुंचाना चाहते। इंडोनेशी भी ऐसा ही करते। एमी भूमिका अदा करने का मौका कभी-कभी ही किसी को मिलता है। अपनी पहली ही नियुक्ति पर ऐसा मौका पाकर मैं अपने को स्वाभाविक रूप से खुशकिस्मत समझता था। खुली शत्रुता, युद्ध की स्थिति, छापेमार लड़ाई और असुरक्षित जीवन

सहित लबी समझौता वार्ता का अतत परिणाम निकला। मजबूर होकर डचो को भी अपनी हठधर्मी की निरथक्ता माननी पडी और उन्हें अतर्राष्ट्रीय दबाव के आगे झुकना पडा। कुछ भी हो जिस दृढ निश्चय के साथ इडोनेशियावासियो न मर्देका (आजादी) क लिए सघप किया, उसकी कोई भी उपेक्षा नही कर सकता।

जोगजकार्ता म जिंदगी उत्तेजना उत्कठा और नीरसता का मिश्रण थी—राजनीतिक घटनाक्रम की वजह से उत्तेजना तथा उत्कठा, और बाहरी दुनिया से बिलकुल अलगाव के कारण नीरसता। रिपब्लिकन प्रदेश की डच नाकेबदी इतनी सख्त थी कि उसे बयान नही किया जा सकता। जकार्ता और उसके जरिए दिल्ली से मेरा सपक एक सयुक्त राष्ट्रसघ का विमान था जो तीन हफ्ते मे एक बार जोगजकार्ता आता था। यह राजनयिक डाक लाता था। खबरो के आदान प्रदान का दूसरा माध्यम तार द्वारा सपक था जिसकी सुविधा हमने पूना म रिपब्लिकनो को दी थी। इसका उद्देश्य यह था कि डच लोग सदेश को बीच म रोक न सकें और इडोनेशी अपने सदश बाहर भेज सकें। दिल्ली म उनके आदमी खबरें इकट्ठी करके कुछ दूसरे देशा की राजधानिया म अपने सहयोगिया को भेजते थे। मैंन भी इस सुविधा का इस्तेमाल किया। इसके अलावा मैं जिस मत्री या अधिकारी से चाहूँ मिल सकता था और उससे खुले दिल से बातचीत कर सकता था, जब तबीयत चाहे रिपब्लिकना के कब्जे वाले कुछ शहरो म घूम सकता था और सभाओ म सुकार्नो के ओजस्वी और ममस्पर्शी भापणो को सुन सकता था। जनता जितना स्नेह दिखाती और नेता जितना खयाल रखते थ, उससे ज्यादा मुमकिन ही नही था। प्रेसीडेंट खातिरदारी के शौकीन थे और आस्ताना (राष्ट्रपति भवन) म भाज दने का काई मौका नही चूकते थ। व्यक्तिगत स्तर पर कई इडोनेशी नताओ से मेरी जान पहचान हो गयी। इन भोजा म जो सास्कृतिक कायक्रम हाते उनस भारतीय और इडोनशी पुराणो के बीच घनिष्ठ सबध का पता चलता था। नत्या मे भी इन्ही की झलक मिलती। मैं अक्तूबर 1947 म दिल्ली से के० एल० एम० के विमान से जकाता पहुँचा था। उस शहर का नाम तब बटाविया था। इडोनेशी ध्येय स हमदर्दी जाहिर करन के लिए भारत-सरकार न कुछ अर्से के लिए डच विमानो के भारत के ऊपर होकर उडन पर पाबदी लगा दी थी। मैं एक मशहूर होटल म टिका। उस बाद मे ढा दिया गया है। मैंने नासीगोरग, गाडू गाडू स्टेट अयाम रडग और क्रूपक जसे स्थानीय मजेदार खानो को चखा। मैंने डुरयान नही खाया, इसकी महक कुछ अजीब सी है हालांकि यह इस इलाक के फलो का राजा माना जाता है। सुकार्नो न बाद म कसम खायी कि वह मुझे इस फल का शौकीन बनाकर ही भारत भेजेंगे। मैं इस फल के बारे मे नही जानता, लेकिन इडोनशी चीजो का मैं शौकीन बन गया। इडोनेशियावासिया स जान पहचान का मरा दायरा बहुत बडा हो गया, जिनम सभी सजीदा और शिष्ट थे। मैं उनके आतरिक झगडो स अपन को अलग रखता था, लेकिन हर एक स खुले दिल स मिलता था। व जानत थे कि मैं उन्हें और उनके मुल्क को प्यार करता हूँ। बदले म उनकी भी एसी ही भावनाएँ थी। अत्यत विवकपूण जनता के बीच मुझे बिलकुल भी अजनबीपन महसूस नही होता था। मुझे यहाँ घर जसा ही लगता था। व बहुत चचल और चुलबुले लेकिन बेहद विवकपूण थे। उनकी देशभक्ति म

सकीर्ण द्वेष[1] का कोई स्थान नही था।

इडोनेशिया मे मेरा प्रवास खेल-तमाशा ही नही था। बहुत से कठिन क्षण भी आये। 18 सितबर, 1948 को कम्युनिस्टो द्वारा मदीउन मे सत्ता पर कब्जा ऐसा ही एक भयावह अनुभव था। मास्को मे प्रशिक्षित मूसो इसके नेता थे जो सोवियत सघ मे काफी दिन रहने के बाद लौटे थे। भूतपूव प्रधानमन्त्री अमीर शरीफुद्दीन उनका समथन कर रहे थे। इन दोनो और पार्टी के आला दिमाग सुरिप्पो न इस सघष के कुछ दिन पहले ही मेरे साथ खाना खाया था। मूसो का शरीर भारी भरकम और चेहरा मोहरा खुरदरा था। वह पार्टी की रणनीति तय करने वाले के बजाय किसान या कारखाने के मजदूर जैसे ज्यादा लगते थे। उन्होन मुझे तो प्रभावित नही किया लेकिन अमीर को मोहित कर लिया, जो पूरे भोज के दौरान मुग्ध से बठे रह। उन्होने अपने सिद्धातो का बखान किया और कहा कि सुकार्नो "बुज़दिल प्रतिक्रियावादियो की कठपुतली हैं और लड नही सकते।" मैंने यथास्थिति कायम रखने पर ज़ोर दिया और सयुक्त मोर्चा बनाने का अनुरोध किया। मुझे यह नही मालूम था कि उन्होने गह युद्ध की योजनाएँ तैयार कर ली ह। सुकार्नो न मुझसे उनके साथ हुई बातचीत के बारे मे पूछा और लगता था कि उन्हे गणतन्त्र मे जीवन अस्त व्यस्त कर देने की उनकी योजनाओ के बारे मे पता है। उपद्रव सिफ दो हफ्ते हुआ। कम्युनिस्टो को जनता का समथन प्राप्त नही था और उनका पूरे तौर पर सफाया हो गया, लेकिन इस विफल षडयन्त्र स निजी और सावजनिक सपत्ति नष्ट हुई, आम लोगो ने मुसीबतें झेली, इसके अलावा बहुत स लोगो की जानें गयी और ढेरो हथियार व गोला बारूद बरबाद हो गया जिसकी समान शत्रु डच साम्राज्यवादियों स लडने के लिए इडोनेशिया को बेहद जरूरत थी। इस लडाई न हर एक को झकझोर दिया। मुझे खासतौर पर अमीर की भूमिका और उन्हे मौत की सजा मिलने पर दुख हुआ। वह काबिल और धम भीरू आदमी थे। कोई भी यह नही सोच सकता था कि वह कम्युनिस्ट हैं।

मदीउन विद्रोह के दौरान हमारे महावाणिज्य दूत न एक बहुत दुभाग्यपूण कदम उठाया। उन्होन बार-बार मुझे सदेश भेजे कि मैं प्रेसीडेंट स पूछू कि कम्युनिस्टो से लडने के लिए क्या वह डच सहायता स्वीकार करेंगे? मैं स्थानीय जनता का मिज़ाज जानता था और ऐसा करने मे हिचक रहा था, लेकिन उनकी ज़िद पर मैंन इस सदेश को सुकार्नो तक पहुँचा दिया। वह एकदम से नाराज हो गये और बोले, 'अपनी जनता को मारने के लिए डच गोलिया का इस्तेमाल करन से पहले मैं मर जाना पसद करूँगा।' मुझे प्रधानमन्त्री को इसकी सूचना देनी पडी। वह बेहद नाराज हुए और उन्होंने दिल्ली से अनुमति लिये बिना एसा नाजुक कदम उठाने के लिए राघवन को झिडका। जल्दी से एक नया महावाणिज्यदूत भेजा गया और प्रधानमन्त्री न इस परिवतन के बारे में सुकार्नो को लिखा। अन्य

---

1 जनरल सुहार्तो जिन्होने माच 1967 में सुकार्नो को अपदस्थ कर दिया था 17 अगस्त 1973 को अपनी रजत-जयती पर कुछ विदेशी दोस्तों का शुक्रिया अदा करना चाहत थ। दो व्यक्तियो को 'इडोनेशी गणतन्त्र की सरकार को सहायता और सहयोग देने के लिए सराहना पत्र जारी किय गये—एक बीजू पटनायक क इडोनेशिया की आजादी के सघष के दौरान विमान के जरिए चिकित्सा का सामान पहुँचाने के लिए और दूसरा भारत क पहले दूत की हैसियत से किये गये काम के लिए मुझ। इससे जाहिर होता है कि नया शासन कितना उदार हृदय था जिसने अपने राजनीतिक विरोधियों के साथ सहयोग करने वालो की भी सराहना की। यह जाहिर है कि वे अपने देशों को व्यक्तिगत और दलगत प्रतिद्वद्विता से परे समझते थे।

यात्रा के साथ उन्होंने यह आशा प्रकट की कि एस० सी० अलगप्पन स्वीकार किये जायेंगे। सुकार्नो का शिष्ट जवाब अपने ढंग का अनोखा था "भारत के किसी भी आदमी का हमेशा स्वागत है, सिर्फ उनसे इतना कह दीजिये कि हमसे ज्यादा संपर्क रखें।" अलगप्पन बिलकुल नाकाम रहे। उन्हें गुप्त भाषा में दिल्ली को लंबे संदेश भेजने और उनकी चर्चा करने की धुन सवार रहती थी। उन्हें इसके लिए बार बार टोका गया और आखिर में वापस बुला लिया गया।

आज़ादी के बाद हमारे देश में राष्ट्रीय भाषा के सवाल पर विवाद को देखते हुए जिस ढंग से इंडोनेशिया ने भाषा और लिपि का सवाल हल किया है वह विशेष रूप से बहुत प्रभावकारी है। जावा इंडोनेशी द्वीपसमूह का सबसे घना बसा द्वीप था और है। देश की लगभग आधी आबादी जावा में रहती है, इसलिए अगर संख्या एकमात्र मानदंड होता तो जावानी भाषा को राष्ट्रीय भाषा बना दिया जाना चाहिए था। बोलचाल की जावानी भाषा बहुत जटिल है और कई लिपियों के इस्तेमाल से मसला और भी टेढ़ा हो गया था। डचों ने अपनी 400 साल की हुकूमत के दौरान अरबी लिपि लाद दी थी। सुकार्नो ने देशवासियों की तमाम कठिनाइयां और मुश्किलें बतायीं और बहुत ही प्रशंसनीय ढंग से मसले को हल करना शुरू किया। उन्होंने 1945 में ही दूरदेशी का फैसला लेने की हिम्मत थी हालांकि उस ज़माने में एक बहुत ही सीमित क्षेत्र में उनका अधिकार था। उन्होंने इलाके की बोलचाल की भाषा बाज़ार मलय को चुना और उस भाषा इंडोनेशिया का नाम दिया। उन्होंने रोमन लिपि अपनाने का भी फैसला किया। यह तय करने के बाद उन्होंने तीन हज़ार द्वीपों की आबादी के सभी वर्गों में इस लोकप्रिय बनाने का अभियान चलाया। मैं एक बार ऐसी ही एक यात्रा में सुकार्नो के साथ गया था। एक जगह उन्होंने हज़ारों लोगों की भीड़ से जो वह सिखाना चाहते थे उसे दोहराने को कहा। सुकार्नो कहते 'सातू दुआ, तिगा' और भीड़ चिल्लाकर यही दोहराती। उस शुरुआती दौर में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता था। परिणाम यह हुआ कि 12 करोड़ का राष्ट्र यह दावा करने में सफल हुआ कि वहां के 85 प्रतिशत निवासी साक्षर हैं।

दो दशकों से ऊपर के अर्से तक सुकार्नो इंडोनेशिया आज जो कुछ है उसके प्रतीक बने रहे। वह एक केंद्र बिंदु थे जिसके चारों ओर देश की आज़ादी की लड़ाई लड़ने के इच्छुक सभी देशभक्त इकट्ठा होते थे। एक उथल-पुथल वाले दौर में उन्होंने उनका नेतृत्व किया और उन्हीं की बदौलत आधुनिक एकताबद्ध और धर्मनिरपेक्ष राज्य कायम हुआ। उन्होंने अपने आदर्शों के लिए मुसीबतें झेलीं और पूरे दिल से इंडोनेशिया को प्यार किया। सुकार्नो के लिए मेरे व्यक्तिगत आदर का आंशिक कारण 1948 की फरवरी के शुरू की एक मामूली सी घटना है। उन्होंने मुझे पिकनिक मनाने के लिए आमंत्रित किया। वह बहुत मस्ती और उमंग में थे। एक वक्त वह जूते उतारकर गांव में एक झोंपड़ी की ज़मीन पर बैठ गये। जब वह गांववालों के साथ चाय पीते हुए बातचीत कर रहे थे और डच-नाकेबंदी की वजह से पैदा हुई तकलीफों और मुश्किलों के बारे में पूछ रहे थे मेरी निगाह उनके फटे मोज़ों पर पड़ गयी। कुछ ही दिनों में मुझे जकार्ता जाना पड़ा और वहां मैंने सुकार्नो के लिए खाकी मोज़े, कुछ कमीज़ें और टाइयां खरीदीं। उन्होंने जब पैकेट खोला तो हँसने लगे और बोले, "तो तुम्हें मेरे फटे मोज़े याद हैं। मैंने कसम खायी थी कि पुराने जूतों में इन्हीं मोज़ों को पहनकर डचों को लात मारकर निकाल दूंगा और अब तुम यह नया सामान ले आये

हो। तुम मेरे भाई हो और मैं तुम्हारी खातिर अपने कपडे बदलने का वादा करता हूँ, लेकिन किसी पवित्र मौके के लिए मैं इस पुराने जोडे को रख छोड़ूगा।" हमने गाधीजी के नेतृत्व मे जिस चीज़ की कद्र करना सीखा था उससे सुकार्नो का नज़रिया बहुत मिलता-जुलता था। भारत के पहले प्रधानमन्त्री के लिए सुकार्नो के दिल मे स्नेह था। वह विवेकानद के प्रशसक थे और उन्होंने दूसरे भारतीय लेखकों की कृतियां पढने की मनोयोग से कोशिश की, जिन्हे वह बहुधा उद्धृत करते।

सुकार्नो जावा मे पैदा हुए थे। उनके पिता जावा के और मा बाली की थी। उन्होंने पहले सुमात्रा की एक लडकी के साथ शादी की थी। वह अकसर कहते, "मैं चाहता हूँ कि मेरे बच्चे भिन्न भिन्न द्वीपो मे शादी करें ताकि मेरा परिवार सही माना मे इडोनेशी बन जाये।" वह अफ्रो एशियाई सकल्पना और गुट निरपेक्ष आदोलन के निर्माताओ मे से एक थे। वह कट्टर राष्ट्रवादी, सुधारक, महान वक्ता आदशवादी और बहुत उम्दा इसान थे। वह कला और सगीत के शौकीन थे और जिंदगी की सभी अच्छी चीज़ो के प्रेमी थे। 1960 के दशक के प्रारभ मे जब उन्होंने हार्टिनी से शादी की तो वह बिलकुल बदल गये। वह उन पर हावी होने मे कामयाब हो गयी और उसने इस ढँग से चापलूसी करके उनका मिथ्याभिमान बढाया कि व्यक्तिगत और राजनीतिक मसलो का उनका परिप्रेक्ष्य गडबडा गया। उदाहरण के लिए, वह हमेशा उनसे कहती, 'मैं उन औरतो को दोष नही देती जो आप पर मरती हैं। आप देवता की तरह हैं। वे आपके चरणो की पूजा करना चाहती हैं। आपकी पुजारिन, आपकी भक्त बनने मे ही मुझे सतोष है। यही मेरा स्वर्ग है।" वह सोचने लगे कि वह सचमुच देवता हैं और कोई गलती कर ही नही सकते। इसी से अतत उनका पतन हुआ। मैं जब इडोनेशिया मे था तो स्थानीय भारतीय समाज मे दो तरह के लोग थे—दूकानदार और भूतपूर्व फौजी। फौजी अँग्रेज़ो के साथ भारतीय टुकडी के रूप में जापानियो को खदेडने के लिए आये थे जिन्होंने 1942 तक अधिकाश दक्षिण पूर्वी एशिया पर कब्ज़ा कर लिया था, हालाकि अगस्त 1945 मे उन्होंने अतत आत्मसमर्पण कर दिया। अँग्रेज़ो ने मदद देकर डचो को इडोनेशियावासियो से लडने के लिए तयार किया। इडोनेशिया ने 17 अगस्त, 1945 को अपने गणतन्त्र की स्थापना की घोषणा कर दी थी। सकडो भारतीय फौजियो को, जो इडोनेशिया की तरफ से लडने के लिए फौज से भाग खडे हुए थे भारत वापस भेजने के लिए इकट्ठा करना था। पाकिस्तान के भी कुछ लोगो ने मेरी मदद मागी। हमारे लगभग एक दजन व्यक्तियों ने वही रहने की इच्छा जाहिर की। आखिर म सभी को जाना पडा, क्योंकि उन्होंने बेहूदगी करना शुरू कर दी थी और परेशानी का कारण बन गये थे।

अगली समस्या एक भारतीय स्कूल की स्थापना की थी। भारतीय समाज की यही ख्वाहिश थी। मैंने इसके बारे म प्रेसीडेंट से बातचीत की, जिन्होंने इसके लिए फौरन ही हम एक इमारत और दो शिक्षक दे दिये। जोगजकार्ता और उसके आसपास रहने वाले भारतीयो का सहयोग पाने और भर्ती होने वाले बच्चो की ठीक सख्या मालूम करने के लिए एक बैठक बुलायी गयी। बैठक मे मुझे एक अजीब बात का पता चला। मैंने अपनी दाहिनी तरफ देखा तो एक पजाबी ने बच्चो की सख्या सत्ताईस बतायी। मैंने बायी तरफ देखा तो एक बुजुर्ग न चिल्लाकर कहा, "इक्यावन'। मुझे थोडी उलझन हुई और मैंने सामने बठे हुए एक दाढी

वाले सज्जन की ओर देखा। उन्होंने कहा, "उन्नीस"। मुझे यह जानकर परेशानी हुई कि हर एक केवल अपने संप्रदाय के बच्चों की ठीक संख्या बता रहा था। पंजाबी अपनी, सिंधी अपनी और दक्षिण के कुछ तमिल अपनी, लेकिन इन सबमें भारत का खयाल कहां था जिसकी मैं नुमाइंदगी कर रहा था? मुझे गुस्सा आ गया। मैंने उनसे कहा कि वक्त आ गया है कि वे अपने संकीर्ण अस्तित्वों को भूलकर अपने को भारतीय समझना शुरू कर दें।

इंडोनेशी गणतंत्र के अधिकारियों ने विशिष्ट अतिथियों के इस्तेमाल के लिए तरबन तावान मार्ग पर मेरे मकान के सामने एक बंगला ले लिया था। यहां ठहरने वाले आगंतुकों के साथ घनिष्ठ संपर्क कायम करने के लिए यह अच्छा स्थान साबित हुआ। मैं जब वहां रहने लगा तो सबसे पहले आने वाले बर्मा के एक मंत्री थाकिन थे। वह भारतीय मूल के थे, लेकिन वह अपने पिता से बहुत नाराज थे, जिन्होंने जाहिर है कि उनके साथ और उनकी बर्मी मां के साथ इतना बुरा बरताव किया था कि वह सभी भारतीयों के बारे में उसी ढंग से सोचने लगे थे। वह यहां पर एक महीने से ज्यादा ठहरे। हम लोगों की अच्छी निभी। मैं समझता हूं कि वह इस नतीजे पर पहुंच गये कि शायद सभी भारतीय बदमाश नहीं होते हैं। मैं 1953 में उनसे रंगून में फिर मिला। उन्होंने हद से ज्यादा मेरी मदद की। ब्रिटिश विदेश विभाग के पॉल ग्रे और जकार्ता में उनके महावाणिज्य दूत सर फ्रांसिस शेपर्ड 'स्थानीय नेताओं के साथ व्यक्तिगत संपर्क कायम करने और स्थिति का जायजा लेने' के लिए वहां आये। ग्रे ने जोगजकार्ता में जो कुछ देखा उससे वह बहुत प्रभावित हुए लेकिन अंग्रेजों के मजाक करने के खास अंदाज में उन्होंने भारतीय उदाहरण का हवाला देते हुए कहा, 'डचों को चाहिए कि एक माउंटबेटन ढूंढकर उन्हें तमाशा खत्म करने की जिम्मेदारी सौंप दें। वे अब ज्यादा दिन टिक नहीं सकते।'

जकार्ता की एक यात्रा के दौरान सर फ्रांसिस शेपर्ड ने मुझे दोपहर के भोजन पर बुलाया और दूसरी बातों के साथ-साथ मुझे सलाह दी कि उष्ण कटिबंधीय देशों में आपको दोपहर में जरूर सोना चाहिए। कम से कम दो घंटे की नींद जरूरी है। उन्होंने जब तीसरी बार अपना सुझाव दिया तो मैं थोड़ा सा चिढ़ गया और मैंने जवाब दिया, 'आपके लोगों ने बहलाकर मुझे 200 साल तक सुलाया है और मेरे देश को लूटा है। अब सोने की आपकी बारी है ताकि मैं खोये हुए समय की कमी पूरी कर सकूं।' सर फ्रांसिस ने मेरे इस जवाब का बुरा नहीं माना और भारत में अपने देशवासियों की भूमिका के बारे में बातचीत की। हम 1951 में तेहरान में फिर मिले, जहां वह राजदूत थे।

तरह-तरह के लोग आये और गये, उन्होंने मेजबान देश पर भिन्न प्रभाव छोड़े, या अपनी मनोवस्था के अनुसार उसके बारे में सही या विकृत धारणाएं अपने साथ ले गये। मिस्र के डाक्टर जलालुद्दीन, जो शाह फारूक के विशेष दूत की हैसियत से आये थे, चकमेबाज निकले। एक नौजवान अमरीकी विद्वान जार्ज कैहिन, जो जॉन फोस्टर डलेस के बेटे के दोस्त थे, अध्ययन-यात्रा पर आये थे और मेरे प्रवास के अंत तक जोगजकार्ता में थे। हातिम अलवी के नेतृत्व में, जो कराची के मेयर रह चुके थे, एक पाकिस्तानी सद्भाव दल आया और बिना किसी खास कार गुजारी के वापस लौट गया। लेकिन बाद में हेग में जारी किये गये और समाचार पत्रों में छपे उनके वक्तव्यों से इंडोनेशिया में बहुत आश्चर्य और क्षोभ हुआ। बताया जाता है कि उन्होंने कहा "इंडोनेशिया को आजादी देने से पहले डचों को

उन्हें अच्छी तरह से प्रशिक्षित करना चाहिए। भारत को जल्दबाज़ी मे छोडकर चले जाने और अव्यवस्था का फाटक खोल देने की जो गलती अँग्रेजो न की थी वह उन्हे दोहराना नही चाहिए।"

गाधीजी की मौत की खबर जब आयी तो मैं जोगजकार्ता मे था। इसने हम लोगो को पूरी तौर से झकझोर दिया। प्रेसीडेंट सुकार्नो और उनकी पत्नी फातिमावती फौरन ही श्रद्धाजलि देने के लिए आय। मुझे याद है कि सुकार्नो ने मुझसे कितने दुखी होकर कहा था, "गाधीजी अकेले तुम्हारे नही थे। हम सबन उनसे प्रेरणा ली है। मानवता उन्हें कभी नही भूलेगी।" वाइस प्रेसीडेंट डॉक्टर हट्टा, प्रधानमन्त्री अमीर शरीफुद्दीन, अन्य मन्त्री, भारी सख्या म अधिकारी व साधारण लोग दिन भर आते रहे। कई रो रहे थे। इडोनेशी अधिकारियो न अगली शाम एक शोक सभा का आयोजन किया था जिसमे गणतन्त्र के सारे सम्भ्रात वग ने भाग लिया। भारी भीड इकट्ठी थी। सुकार्नो बहुत भावुक हो उठे। उन्होने गाधीजी को "एशिया का गौरव और दबे कुचले इसानो का दोस्त' बताया।

सुकार्नो जसे महान वक्ता के बाद बोलना कठिन था, लेकिन इससे बचा नही जा सकता था। मुझे कुछ शब्द बोलने ही थे।

शायद यह राजनयिक बन जाने का शाप था कि अनजाने लोगो की विशाल भीड के सामने, वह चाहे जितनी हमदद क्यो न हो, मुझे एक ऐसे व्यक्ति के बारे में विचार प्रकट करने पड रहे थे जो मेरे लिए सावजनिक नेता से कही ज्यादा थे। गाधीजी ने एक देश, जनता और मेरी अपनी जिंदगी को गढा था, सजाया सँवारा था। इसे कोई शख्स कसे उपयुक्त ढँग से समझा सकता है? मेरे दिमाग मे जवाहर-लाल के वे शब्द गूज रहे थे जिनमे उन्होने विपद ढँग से हमारी और मानवता की हानि का वणन किया था "हमारी जिंदगी से रोशनी चली गयी है और चारो तरफ अँधेरा है। मैं नही जानता कि आपसे क्या कहूँ और कैसे कहूँ। हमारे प्यारे नेता आप जैसाकि हम उन्हें पुकारते थे, राष्ट्र के पिता अब नही रहे। मैंने कहा था, रोशनी चली गयी। लेकिन मैं गलत था, क्योकि इस देश मे जो रोशनी चमकी वह मामूली रोशनी नही थी। वह रोशनी, जिसने इस देश को कई कई सालो तक प्रकाशमान किया है, आगे के कई वर्षों मे इस देश को रोशन रखेगी, और एक हजार साल बाद भी वह रोशनी इस देश मे दिखायी देती रहेगी, और दुनिया इसे देखेगी और यह रोशनी अनगिनत लोगो को सहारा देगी।' काश, मैं भी अपने विचार इसी तरह से प्रकट कर सकता।

जोगजकार्ता मे अपन कायकाल के दौरान दिसबर 1948 म मेरे सामन एक बडा सकट आया। प्रेसीडेंट भारत की यात्रा करना चाहते थे। इसलिए उनके और उनके दल के लिए एक विमान भेजा गया। मैं भी इस दल के साथ जान वाला था। डचो ने इस सारे मामले को सदेह की दृष्टि से देखा। उन्ह डर था कि इडोनेशी नता भाग निकलने और निर्वासन मे अस्थायी सरकार कायम करने की कोशिश कर सकते है। यह डर बेबुनियाद था। इडोनशी नेता सिफ भारतीय नेताओ के साथ व्यक्तिगत सपक स्थापित करना चाहते थे और कुछ दूसरे देशा की यात्रा करने के लिए इस मौके का फायदा उठाना चाहते थे। शायद इससे उनका मनोबल ऊँचा होने मे मदद मिलती। शायद इससे उन्हें और अधिक विश्वास के साथ कठिनाइयो का सामना करन मे सहायता मिलती। उस वक्त तो हालत यह थी कि गणतन्त्र म आतरिक राजनीतिक झगडो और मदीउन विद्रोह मे डचा को, जो कुछ बचा था उसे भी खत्म करने के लिए प्रोत्साहन मिला।

इसलिए उन्होंने न सिर्फ विमान की उड़ान के लिए अनुमति देने मे देर लगायी, बल्कि साथ ही तेहरा हमला किया। उन्होने 19 दिसबर को जोगजकार्ता पर बमबारी की, कई जगहो स फौजें भेजी और उनके फौजी जहाज तटवर्ती नगरों के बाहर सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानो पर तनात हो गये। यह शक्तिशाली हमला था और रिपब्लिकन नताओ के पास इसका मुकाबला करन का कोई साधन नही था।

इडोनेशी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। मैंने उनम से कई को अपन मकान के बाहर सडक के किनारे बैठे देखा। सुकार्नो को भी बदूक के बल पर ले जाया गया, लेकिन फौजी अधिकारी अपन जवानो और सामान क साथ छिपकर निकल भागे और उन्होंने बहुत से डच मार डाले और उनके फौजी साज-सामान को बहुत नुकसान पहुँचाया। जब जोगजकार्ता पर जोरदार बमबारी हो रही थी, मैंने दिल्ली से इजाजत लिये बिना अपने-आप तय किया कि गुप्त सकेतों की किताबें और दिल्ली व जकाता के बीच गुप्त भाषा मे भेजे गये सदेशों को नष्ट कर दिया जाये। तब तक इसके बारे मे कोई कार्यप्रणाली तय नही की गयी थी। हम लोग बिलकुल नौसिखिये और कम उम्र थे। लेकिन मुझे बाद मे यह जानकर खुशी हुई कि विदेश मत्रालय म निर्देश जारी कर दिये हैं कि किसी भी युद्ध स्थिति म ऐसे ही कदम उठाये जायें।

डचों ने अपने मिटते हुए साम्राज्य को फिर से कायम करने की जिस बेरहमी से कोशिश की वह देखने वाला था, लेकिन यह दिन की रोशनी की तरह साफ था कि वे एक ऐसी लडाई लड रहे हैं जो हारी जा चुकी थी। वक्त उनके खिलाफ था। यह उनकी खुशकिस्मती थी कि जल्दी ही यह बात उनकी समझ म आ गयी। जोगजकार्ता मे मैं उस समय एकमात्र राजनयिक प्रतिनिधि था, इसलिए मुझे सयुक्त राष्ट्र सद्भाव समिति के साथ फौजी विमान म जकार्ता भेजा गया। हमारी सवारी के तरीके से हमे उलझन हुई, क्योकि डच उसी हवाई जहाज स वे पर्चे फेंक रहे थे जिनमे रिपब्लिकनो से हथियार डाल दने के लिए कहा गया था। जकार्ता पहुँचने पर मैंने इस ममले के बारे में दिल्ली रिपोर्ट भेज दी और भारत सरकार ने 'अपने राजनयिक प्रतिनिधि को इडोनेशियाइया के विरुद्ध फौजी कारवाई म इस तरह साझीदार बनाने" पर डच सरकार से जोरदार विरोध प्रकट किया।

डच सरकार न अपने विदेश विभाग के कानूनी सलाहकार शुरमान के जरिए मुझे अपन प्रधानमत्री ड्रीस से मिलन के लिए बुलाया। वह असलियत जानन के लिए जकाता आये थे। मुझसे यह भी अनुरोध किया गया कि मैं बगका मे रिपब्लिकन नताओ से सपर्क करूँ। गणतत्र के नेता बगका म कद किये गये थे।

यह कोशिश थी कि सघीय अतरिम सरकार कायम करन के डच प्रस्ताव पर इडोनेशिया के रिपब्लिकन नताओ की प्रतिक्रिया का पता लगाया जाये। मैंन प्रधानमत्री को इसकी सूचना दी और कहा कि डच तत्वावधान म ड्रीस और इडोनेशी नेताओ से मेरी मुलाकातो के बहुत गलत मतलब लगाये जायेंगे, इसलिए मैंने सुझाव दिया कि मुझे फौरन ही दिल्ली बुला लिया जाये। एसा ही किया गया। मैंन भारी मन स इडोनेशिया छोडा। मैं जानता था कि वहाँ के अपने दोस्तो के लिए इससे ज्यादा कुछ नही किया जा सकता। लेकिन फिर भी जब मैं लोग जकार्ता मे गिरफ्तार कर लिय गय एक वरिष्ठ अधिकारी के परिवार से विदा लेने के लिए गया तो वे लोग रोने लगे और बोले, "तुम हमारे अकेले दोस्त हो,

अब हम लोगो की देखभाल कौन करेगा ?"

लेकिन इसके फौरन बाद घटनाओ ने अच्छा रुख अख्तियार किया। भारत सरकार ने इडोनेशिया की स्थिति पर गौर करने के लिए जनवरी 1949 मे एशियाई नेताओ का जो सम्मेलन बुलाया था उसमे मैं मौजूद था। इस सम्मानित सम्मेलन की आवाज़ का अतर्राष्ट्रीय समाज पर, विशेषकर सयुक्त राष्ट्रसघ पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। स्वतत्र इडोनेशिया के पक्ष मे आवाज़ और ज़ोरदार तथा प्रभावकारी होने लगी और मेरी पहली राजनयिक पसद का देश 1949 के अत से पहले आज़ाद हो गया। इस तरह अपने देश की ओर से लाभप्रद कारवाई की सतोषजनक परिणति का मुझे पहला आनद प्राप्त हुआ।

स्वदेश वापस आने पर मैंने देखा कि विदेश सेवा की स्थापना हो गयी है। यह आज़ादी की स्वाभाविक देन थी। शुरू मे इसमे आई० सी० एस० अधिकारियो का बोलबाला था। वे औपनिवेशिक विचारधारा से प्रेरणा लेते थे और कानून-व्यवस्था कायम रखने के अलावा उन्हे कुछ नज़र नही आता था। जब भी शका की कोई स्थिति होती तो वे अपने आप यह पता लगाते कि अंग्रेज़ ऐसी हालत म क्या करते ? उन्हे अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करने की तालीम ही नही मिली थी। इसके नतीजे मे वे अकसर स्थानीय स्थिति मे बेकार, बेमानी, पुरानी व अनुपयुक्त अंग्रेज़ी नज़ीरें लागू करते। 1940 के बाद के भारत मे इन नज़ीरो की और उन पर अमल करने वालो की कोई सार्थकता नही रह गयी थी। हमने जो कार्य-प्रणाली, राजनयिक शिष्टाचार के जो नियम, रहन सहन के जो ढँग और सोचने-समझने व काम करने के जो तरीके अपनाये उनसे यह बात स्पष्ट हो गयी थी। इसके विपरीत बाडुग का एक दृश्य याद आ जाता है। इडोनेशी नेताओ ने बाडुग के विख्यात सम्मेलन मे भाग लेने वालो के लिए एक प्रीतिभोज दिया जिसमे लगभग एक हज़ार विदेशी प्रतिनिधि और करीब 500 स्थानीय अतिथि, इडोनेशी मत्री, अधिकारी एव उनकी पत्निया मौजूद थी। सारे मेज भरे हुए थे। खाना बढिया था और परोसने का ढँग बेहतरीन था। सुबिमल दत्त, जो बाद मे विदेश सचिव बने, और मैं एक ही मेज़ पर बैठे हुए थे। वे उस भोज से प्रभावित हुए थे। "देखो, खाने वालो की कितनी बडी भीड है और उन्हें कितने सलीके और बढिया ढँग से खाना परोसा जा रहा है" उन्होने कहा, 'मैं भारत मे प्रीतिभोजो मे शरीक होता हूँ। मेहमानो की सख्या कभी सौ से ज्यादा नही होती। लेकिन फिर भी बहुत सी कुर्सियाँ खाली रहती है। खाना अच्छा नही होता और परोसने का ढँग बहुत भद्दा। क्या तुम इसका एक भी तुक का कारण बता सकते हो ?" मैंने फौरन जवाब दिया, "यहा आई० सी० एस० नही है। यहा इडोनेशिया मे वे अपने तरीक से काम करते हैं। उन्होने डचो के जिम्मे यह काम नही छोडा है कि वे उन्हें सिखायें, जिस तरह हमने यह काम अंग्रेज़ो के लिए छोड दिया है।[1] हम बिना यह सोचे

---

1 अगले दिन मुझे मालूम हुआ कि इडोनेशी कैसे काम करते हैं। एक महत्वपूर्ण अधिकारी ने हमे बताया कि जब वह मुझे खाना खाते देख रहा था उस वक्त वह उत्सुकता से इस बात का इतज़ार कर रहा था कि खाना खाने की उसकी बारी आयेगी या नही। मुझे यह मालूम हुआ कि कई वरिष्ठ अधिकारियो और पार्टी के कार्यकर्ताओं से कह दिया गया था कि वे अपनी पत्नियो के साथ वहाँ मौजूद रहें ताकि अगर जगहें खाली हों तो उसे भरा जा सके। मैंने उस समय सोचा और अब भी सोचता हूँ कि क्या हमारे देश के विशिष्ट लोग राष्ट्रीय औचित्य के हित म इस तरह की क़वायद करने के लिए राजी होग ?

हुए महमानो की और भोजन की सूची तैयार करते हैं कि नये भारत से उनका क्या सबध है। नतीजा यह होता है कि ये तथाकथित 'विशिष्ट अतिथि' आते ही नही है, जबकि जिन लोगों को इन मसलो मे वाकई दिलचस्पी होती है उन्हें अपने विशिष्ट क्षेत्रो के अतिथियो से मिलने का मौका नही मिलता।" दत्त खुद भी इसी बिरादरी के उल्लेखनीय सदस्य थे। वह मेरी बात सुनकर एकदम से चौंक गये, सिर हिलाने लगे और आखिर म बोले, "हो सकता है कि तुम ठीक कहते हो। तुमने बहुत पते की मिसाल दी है।"

विदेश सेवा के ऐसे 'अगुआ बुजुर्गो' के साथ जल्दी ही लगभग सौ रँगरूटो का जत्था लगा दिया गया। इन लोगो की सरकारी नौकरी मे शामिल होन की उम्र गुजर चुकी थी और ये जीवन के विभिन्न वर्गों मे आये थे। वे ससद के कानून द्वारा स्थापित किये गये विशेष बाड के जरिए चुन गये थे। हालांकि उनकी पृष्ठ भूमि अलग-अलग थी, लेकिन वे पश्चिमी रग मे रँगी हुई माहिर अफसरशाही से प्रभावित हुए और करीब करीब उन्ही के रग मे रँग गये। मसलो का स्थानीय नजर से देखने वाले ऐसे अफसरा का दल बनाने मे बिना जरूरत देर लगायी गयी, जो भारत की जरूरतों और स्वधीनता के बाद उठने वाली समस्याओ के बारे मे सजग रहते। सेवा स्थिति, वेतन और भत्तो के सिलसिले मे भेदभाव के मसले पर दोना गुटा के बीच खीचातानी रहने लगी। इसके बाद प्रतियोगिता के जरिए चुन गये नये लोग आये। अक्तूबर 1956 मे एक दूसरा जत्था आया जिसे आई० एफ० एस० (बी) कहा जाता है। इससे गुत्थी और उलझ गयी। इन लोगो को विदेश मत्रालय से सबद्ध सूचना अधिकारियो और क्लर्कों म से चुना गया था। शुरुआती दौर मे वरिष्ठता तय करने की ही तरह 'बी' श्रेणी म लिये गये लोगो को बहुत ही मनमाने और उलझे हुए तरीके से मुख्य सूची म शामिल कर दिया गया। स्वाभाविक रूप से इससे क्षोभ हुआ और यह लोगो को बुरा लगा। जिन लोगो को सीधे भरती किया गया था वे धीरे धीरे हावी हो गये और आज उनकी सख्या दूसरो के मुकाबले बहुत ज्यादा है। यह आशा की जाती है कि वे नये मानदड तयार करेंगे और राष्ट्रीय आकाक्षाओ के अनुरूप ज्यादा हिलमिलकर काम करेंगे।

इडोनेशिया से लौटकर 1949 मे जनवरी से अगस्त तक दिल्ली म मेरा प्रवास अत्यधिक दिलचस्प और एकाग्रता का था। अधिकाश समय मैं प्रधानमत्री के साथ रहा। नेहरूजी तीनमूर्ति मे रहने के लिए चले गये थे। मुझे उनके काम करने के तरीके, दूसरे मत्रियो के साथ उनके सबधो और भारत आने वाले विश्व नेताओं के साथ उनकी बातचीत की झलक पाने के नायाब मौके मिले। विश्व नेताओ से बातचीत के फौरन बाद वह सबधित लोगो के पास उसका साराश भिजवा देते। मैं घर पर और बाहर उनके काम करने के तरीके से परिचित हो गया। यह एक ऐसा सबक था जिससे मुझे और अधिक आसानी के साथ व अच्छे ढंग से लोगो से निपटने म सहायता मिली। नेहरूजी ने कई राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ की स्थापना के लिए गभीर प्रयास किया। उन्होंने कहा कि विकसित टेक्नालॉजी का बढावा होना चाहिए क्योंकि यह किसानो को विज्ञान से परिचित कराने का साधन है। इससे वैज्ञानिक रवैया पैदा होने म प्रोत्साहन मिलता है जो आधुनिक जानकारी से प्राकृतिक सपदा की कमी को पूरा करने म गरीब किसान की मदद करता है। इससे भारत की सेवा करने के लिए जानकारी रखने वाले लोगों का समुदाय बन गया।

नेहरूजी एक महानदर्शी थे और इसी के अनुरूप उ होने कटुतापूण विभाजित दुनिया मे अतर्राष्ट्रीय विवादो को शात करने और स्थिति को सामा य बनाने के लिए योगदान किया। वह गुट निरपेक्ष आदोलन के सिरमौर थे और "बिना शत सहायता" के विचार के प्रणेता थे। उन्होने एशिया और अफ्रीका के नवोदित नेतृत्व और यूरोप व अमरीका के हमखयाल नेताओ के साथ तादात्म्य स्थापित करन की कोशिश की। यह उनके विचारो की पूणता का परिचय देता है। इसके कारण सयुक्त राष्ट्रसघ ने कोरिया, हिंद चीन, पश्चिमी एशिया, कागो और साइप्रस जैसे विविध क्षेत्रो म शाति कायम करने की हमारी योग्यता पर भरोसा किया। नेहरूजी न अकेले अपने कधो पर जो बोझ ढोया उसी की बदौलत आज भी दुनिया मे हमारी विशिष्ट हैसियत बनी हुई है।

स्वाधीनता के सघष की वजह से बहुत सी राजनीतिक आथिक और सामाजिक समस्याएँ उभरकर सामने आ गयी। सामाजिक लोकाचार पर इसका असाधारण प्रभाव पडा। सादगी पर गाधीजी ने ज़ोर दिया और रहन, खाने और कपडे पहनने के अपने तरीके के बारे म उन्होंने जो प्रयोग किये उनकी वजह से राजनीतिज्ञो मे उनकी तरह लगने या ऐसे काम करन की, जिन पर नजर पडे, हास्यास्पद होड मच गयी। भारत मे किसी राष्ट्रवादी सम्मेलन मे ढोगियो और नौसिखिया का अजीब जमघट होता है, जिनकी हरकतें कभी कभी तो बिलकुल ऊल जलूल होती हैं। नेहरूजी मानदड तय कर सकते थे लेकिन वह बहुत उदार-हृदय थे।

खुदा जानता है कि हम कभी भी इस स्थिति मे होंगे या नही कि दूसरे को बिना परेशानी मे डाले सादा जिदगी बसर कर सकें, या सभ्य समाज के उपहास का पात्र न बनें। औपचारिक अवसरा पर हमारे कुछ प्रमुख नागरिक असह्य हो उठत ह। जिन लोगा पर ऐसे समारोहो को आयोजित करने की जिम्मेदारी हाती है वे बिलकुल भौचक्के हो जात हैं। कई आमन्त्रित लोग प्रीतिभोज के सरकारी आमत्रणो के मिलने की पुष्टि नही करते। इससे आखिरी मिनट तक बठने का इतजाम और उसका नक्शा नही बन पाता। बहुतो के लिए देशभक्ति का मतलब सिलवटें पडा धोती कुरता पहन लेना भर है। अगर उनकी इज्जत नही हो पाती तो उनकी धाती की वजह से नही बल्कि उसके बेहद गदे होन की वजह से। सरदार पटेल धोती और कुरता पहनते थे, लेकिन वह हमेशा साफ सुथरे कपडे पहनत थे और रोमन बादशाह जसे दिखते थे। यही शालीनता की कमी है जो चिताजनक है। एक बहुत ही विशिष्ट व्यक्ति को भोज की मेज पर फला के साथ लायी गयी उँगलिया धोन की प्याली मे अपने नकली दात धोने का शौक था। एक और बहुत विशिष्ट व्यक्ति की पत्नी विदेशी मेहमानो के साथ खास मेज पर नही बठ सकती थी क्योकि वह अपने चारो ओर गोश्त और मछली की महक बरदाश्त नही कर सकती थी। कई साल बाद जब एक प्रधानमत्री ने देश और विदेश मे मूत्र पान के बारे म डीग हाकी तो यह चरम सीमा थी। इससे एक निजी सनक सावजनिक मजाक बन गयी।

सुकार्नो के साथ नेहरू की दोस्ती, जो वास्तव मे खतोकिताबत के जरिए शुरू हुई थी 1949 मे निजी मुलाकात से और गहरी हुई। दोनो के बीच बहुत सौहाद हो गया। मैं इसका गवाह था और थोडी-बहुत हद तक इसके लिए जिम्मेदार भी था। मैं जब जोगजकाता मे था तो मेरे जरिए ऐसे कई मौके बन जिनमे उन्होने एक दूसरे को खत और छोटे मोटे उपहार भेजे। इसलिए 1961 के बाद

के वर्षों में उनके संबंधों में परिवर्तन से मुझे और भी ज्यादा दुख हुआ। इस तनाव या गलतफहमी की शुरुआत बेलग्राद में 1961 में सितंबर में होने वाले गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन से हुई। एक लाइटर की लौ जैसी तुच्छ चीज से इसकी बुनियाद पड़ी। विभिन्न देशों के शासनाध्यक्ष महान बैठक के लिए मेज पर बैठे हुए थे। नेहरू सिगरेट पीना चाहते थे। उन्होंने सिगरेट निकाली। सुकार्नो ने, जो उनकी बगल में बैठे हुए थे, फौरन अपना लाइटर निकाला। यह देखने वाला दृश्य था। हर व्यक्ति नेहरू को सिगरेट हाथ में लिये उससे खेलते देख रहा था जबकि सुकार्नो हाथ में अपना जलता हुआ लाइटर लिये हुए थे। लेकिन सुकार्नो के स्नेह पूर्ण अंदाज पर नेहरू की नजर ही नहीं पड़ी। उन्होंने अपना लाइटर निकालकर बड़े इत्मीनान से अपनी सिगरेट सुलगा ली। सुकार्नो को लगा कि जान-बूझकर उनकी बेइज्जती की गयी है।

शायद इसने उस आग में, जो पहले ही सुलगा दी गयी थी, घी डालने का काम किया। सुकार्नो के दिल में पहले ही से हसद पैदा हो चुकी थी। कुछ समय बाद इसकी वजह से नेहरू के साथ उनके संबंध खत्म हो गये। लेकिन यह संयोग नहीं था कि इस मामूली सी घटना के बाद चीन के साथ हमारे विवाद में इंडोनेशिया हमारे विरुद्ध अपने पुराने दुश्मन का साथ दे, हालांकि चीन के साथ इंडोनेशिया की मुहब्बत सिर्फ 1961 से 1964 तक ही रही।

चीन के प्रति भारत की नीति सद्भावना कायम करने के लिए काम करने और अपने महान पड़ोसी के साथ अत्यधिक मैत्री की स्थापना की थी। 1949 50 के दौरान प्रारंभिक ठंडे रुख के बाद अच्छे पड़ोसी की भावना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गयी। दोनों देशों में 'हिंदी चीनी भाई भाई' के नारे गूंजने लगे। नेहरू ईमानदारी से इस रुख के सही होने व उसकी सार्थकता में यकीन करते थे और उन्होंने हर कदम को मजबूत करने की कोशिश की। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र में चीन को प्रवेश दिलाने के लिए कोई कोशिश उठा नहीं रखी। बांडुंग में उन्होंने हद से बाहर जाकर चाऊ एन लाई से दोस्ती करने की कोशिश की और इस कोशिश में उन्होंने कुछ शासनाध्यक्षों को नाराज भी कर दिया। कुछ नेताओं की चीन विरोधी भावना की उग्रता को उन्हें कम करना पड़ा। उन्होंने उनसे चाऊ एन लाई को एक एशियाई पड़ोसी के रूप में स्वीकार करने का अनुरोध किया। उन्होंने तुर्की शिष्टमंडल के नेता रुस्तो जोरलू को चाऊ एन लाई द्वारा दिये गये भोज में भाग लेने के लिए राजी करने की जिस तरह बार-बार कोशिशें की, उसकी मुझे याद आती है। वह अपने चीनी समकक्ष को बहुत पसंद करने लगे थे और न सिर्फ अपने और चाऊ के बीच बल्कि एशिया के इन दो विशाल राष्ट्रों के बीच स्थायी दोस्ती कायम करने के लिए ईमानदारी से भरसक चेष्टा कर रहे थे। अफसोस की बात है कि चाऊ ने इसे गलत समझा। वह समझे, जैसा कि बाद में मालूम हुआ, कि नेहरू सरपरस्ती कर रहे हैं। यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि दोस्ती और स्नेह के बंधन तनाव और खुले विरोध में बदल गये। यह सचमुच एक दुखद परिच्छेद था।

लेकिन नेहरू ने इस क्षणिक आघातों से अपने सार्वभौमिक दृष्टिकोण को प्रभावित नहीं होने दिया। उन्हें अफ्रीकी व्यक्तित्व को उभारने की लगन थी। उन्होंने बांडुंग में इसके लिए अपनी हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की और अफ्रीकी आजादी के उद्देश्य के लिए एशिया के हार्दिक समर्थन का आवाहन किया। उन्होंने अश्वेत महाद्वीप के नेताओं जोमो केन्याटा, डाक्टर केनेथ कौंडा डाक्टर जूलियस

मुझ जोगजकार्ता मे लिखा था। मुझे दी गयी नौकरी उन्ह नापसद थी, क्योंकि यह उनकी नजर मे मामूली थी। उन्होने मुझसे कहा कि मैं इसे छोड दू ताकि वह मुझे और कही फायदे मे लगा दें। मैं दो नावो पर एक साथ सवार होना नही चाहता था, न मुझे ऊँची तनख्वाह का लालच था। सरदार न मेरे रुख को सराहा। उन्होने कहा कि मेरी मदद लेने से कभी हिचकिचाना मत। यह बात उन्होने पूरी ईमानदारी से कही थी। विदेशी मामलात के मत्रालय म अपने सक्षिप्त कार्यकाल के दौरान मैं काम करने के तरीको, लाल फीताशाही और नौकरी के अदरूनी दाँव पेंच जान गया था। एक बार मैं यात्रा भत्ते का बिल बनाने के सिलसिले म एक खास नियम को समझना चाहता था। जिस मातहत कर्मचारी के जिम्मे यह काम था उससे मैंने पूछा तो उसने बडी मासूमियत से कहा, "यह तो इस पर निर्भर करता है कि यह किसका मामला है।" इससे मुझे एक नये सत्य का पता चला। नियम, जाहिर है उन लोगो के लिए होते है जो यह जानते हैं कि किसी जरूरत को पूरा करने या किसी व्यक्ति की सुविधा के लिए उन्हें किस तरह तोडा मरोडा जाये।

विशेष सेवा मे 200 ऐसे उम्मीदवारो का साक्षात्कार करने के लिए 1948 के शुरू म एक विशेष चयन बोर्ड का गठन किया गया, सरकारी नौकरियो म शामिल होने की जिनकी उम्र गुजर चुकी थी। बचे हुए उम्मीदवारो का चयन करने के लिए मई 1949 म बोर्ड फिर से गठित किया गया। इस बोर्ड न मेरी स्थायी सेवा की औपचारिकताएँ पूरी कर दी। कुछ स्थायी आकाओ को यह बात पसद नही आयी और उनमे से एक न अपने मनोभावो को बिलकुल नहीं छिपाया "प्रधानमत्री आपको मत्री, राज्यपाल या राजदूत बना सकते है। फिर वह एक राजनीतिज्ञ को लाकर सेवाओ की गरिमा क्यो कम कर रहे हैं ?" मेरी राज नीतिक पृष्ठभूमि और मेरे सपर्क उनको पसद नही थे और उनम से कुछ को दिल्ली म मेरी मौजूदगी अखर रही थी। इसलिए जब मुझसे जून म तैयार होकर मशहद जाकर महावाणिज्य दूत के पद पर काम करने के लिए कहा गया तो मुझे ताज्जुब नही हुआ। जल्दी ही ये आदेश रद्द कर दिये गये और अगस्त मे मैं अकारा म राजदूतावास का काम सँभालने के लिए जहाज से रवाना हो गया। राज दूत जा चुके थे वाणिज्यदूत को समय से पहले अवकाश ग्रहण करा दिया गया था और प्रथम सचिव को, जो बाद म विदेश सचिव के पद तक पहुँचे, प्रभारी दूत होने के काबिल नही समझा गया। इसलिए दूतावास का काम चलाने के लिए मेरे पास सिर्फ एक प्रेस अताशे और वाणिज्य सचिव रह गये।

मैं जब तुर्की जाने के लिए तैयार हो रहा था, तो मैंने कराची के एक अँग्रेजी दैनिक मे एक खबर पढी कि मेरे बहनोई नसीम हुसन अकारा मे पाकिस्तान राज दूतावास म कानूनी सलाहकार नियुक्त कर दिये गये हैं। स्वाभाविक रूप से बहन और उनके परिवार से मिलने की उम्मीद स मुझे बहुत खुशी हुई। लेकिन यह खुशी कुछ ही दिन की थी। अकारा पहुँचने पर मुझे मालूम हुआ कि जैसे ही मेरी तैनाती की सूचना मिली पाकिस्तान की सरकार ने फौरन नसीम की नियुक्ति बदल दी। दो मुसलमानो को, खास तौर पर जब वे भाई बहन हो, दो देशो का प्रतिनिधित्व करने की कैसे अनुमति दी जा सकती थी, क्योंकि फिर दो राष्ट्रो के सिद्धात को कैसे उचित ठहराया जा सकता था। पाकिस्तानी राजदूत ने मुझे बहुत बाद मे बताया कि 'तुर्की मे आप दोनो के एक साथ होने से नाजुक और अप्रिय स्थिति पैदा हो जाती। इसीलिए नसीम कभी नही आये।" लेकिन मेरे मन मे

ऐसा कोई सशय नही था और मुझे बहुत लुत्फ आता। भारत का दिल इतना बडा है कि इन मामूली बातो पर वहा कोई हलचल नही मचती।

अकारा मे मेरी नियुक्ति मेरे लिए खास तौर पर दिल को छूने वाली थी। कुछ तुर्की नेताओ से मेरी जान पहचान थी। शेष मेरे बचपन ही से मेरे लिए ऐतिहासिक पुरुष बन चुके थे। मैं तुर्की इतिहास की मुख्य बातें, उनके महान सुल्तानो और उस सघष के बारे मे जानता था जो नौजवान तुर्को ने यह साबित करने के लिए किया था कि तुर्की "अब यूरोप का रोग जजर व्यक्ति" नही रह गया है। मेरे भाई अब्दुरहमान 1912 के बल्कान युद्ध मे तुर्की गये थे। वह वही रहे और तुर्की के लिए लडे और उसके लिए जान दी। वह इस्तावुल मे दफन किये गय थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि मेरे वहा पहुँचने पर, मुझे लेने के लिए रऊफ पाशा आय थे। वह तुर्की के आखिरी सुल्तान के प्रधानमत्री और 1926 तक अतातुक के एकमात्र प्रतिद्वद्वी थे। वह मुझे मेरे भाई के मजार तक पहुँचाने के लिए आये थे। मैं बाद मे कुछ पत्रकारो से मिला और बहुत ईमानदारी व सजीदगी से मैंने उनसे कहा, "मैं एसी भूमि पर आया हूँ जो मेरे भाई के खून से लाल है। इससे मुझे लगता है जैसे मैं भी आधा तुर्क हूँ।' वहा पहुँचने के कुछ ही हफ्तो म मैं करीब-करीब सभी प्रमुख तुर्को से परिचित हो गया। तुर्की के राष्ट्रपति इनोनू ने मेरे भाई की सराहना की और मुझसे तुर्की को अपना घर ही समझने के लिए कहा। वह अपने अडियलपन और जुलाई 1923 म लासान सम्मलन म उल्लेखनीय कमाल दिखाने के लिए बहुत मशहूर थे। लार्ड कर्जन ने, जिन्होने इस सम्मेलन मे अँग्रेजो का प्रतिनिधित्व किया था, अपने रोब दाब, शान शौकत और तडक भडक से तुर्को को सहमाने की कोशिश की। लेकिन इनोनू ने, जो ऊँचा सुनते थे, अपनी इस खामी का पूरा फायदा उठाया और कर्जन से एक ही बात को बार बार बोलने के लिए कहा जिससे वह चिढ गये। अगले वर्ष मई म सलाल बायर राष्ट्रपति निर्वाचित हो गये। वह विरोधी दल के वरिष्ठ नेता थे और अतातुक के साथियो म से थे। वह मेरे भाई को भी जानते थे। माशल फैजी चकमक लगभग 90 वर्ष के हो चुके थे और वह बिस्तर पर पडे रहते थे। लेकिन मैं उनसे मिलने और उनकी बातें सुनने म कामयाब हो गया। उन्होने मुझे अपने कारनामे सुनाये और बताया कि उन्होंने तुर्की की सेना को कैसे मजबूत बनाया था। प्रसिद्ध क्रातिकारी लेखिका, खालिदा अदीब खानम और उनके विद्वान पति अदनान ऐडिवार मुझे पहले से जानते थे और उन्होने मुझसे परिवार के एक सदस्य की तरह बरताव किया। मैंने अदनान मैंदेरिस और फौट कोपरलू से लबी बातचीत की जो क्रमश प्रधानमत्री और विदेशमत्री बन गये थे। इनोनू की सरकार के विदेशमत्री और मँझे हुए राजनयिक नजमुद्दीन सादिक वरिष्ठ पत्रकार अहमद अमीन यलमान, धुरधर ससदवेत्ता कासिम गुलेक के अलावा अफगानिस्तान के मेरे कुछ अच्छे दोस्त भी यहाँ मौजूद थे जो 1929 से अफगानिस्तान से यहाँ आकर निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। ये सब मेरे भाई को जानते थे और इन्होने मुझसे प्रेम और स्नेह का बरताव किया। उन्होने मेरा बहुत ख्याल रखा जो किसी विदेशी भूमि पर तैनात और विदेशी शिष्टाचार के नियमो म जकडे हुए राजनयिक को नही मिल सकता।

विदेशी तैनाती मे एसी स्थिति म मुझे भारत की अच्छी तसवीर पेश करने मे बहुत मदद मिली। तुर्क यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि एक मुसलमान, जिसके भाई ने इतनी विशिष्टता से उनकी सेवा की थी, भारत का प्रतिनिधित्व

कर रहा है। विभाजन और उसके खतरों के बारे में मैंने जो बताया उसको उन्होंने बहुत ध्यान से सुना। वे बहुत उलझन में पड गये। लेकिन उन्होंने वादा किया कि वे दूसरे लोगों को भारत की राजनीतिक वास्तविकता के बारे में बताने में मेरी मदद करेंगे। मैंने अतातुर्क के बारे में और बाहरी दबाव से तुर्की को बचाने के उनके संघर्ष के बारे में भी उन्हें बताया। मैंने यह भी बताया कि खुद उन्होंने अपनी इच्छा से तुर्की में धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित किया है। मैंने बहुत भावुक होकर कहा कि हमने भी आपके उदाहरण का अनुकरण करके आपका ही रास्ता अपनाया है। मैंने उनकी सदभावना और उनका सहयोग प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की और अपनी ओर से मैंने कुछ व्यक्तिगत सदभावनापूर्ण कार्यों से अपनी सच्चाई का सबूत दिया। मैं पाकिस्तानी राजदूत मियाँ बशीर, उनकी बीवी गेती, उनकी दोनो पुत्रियों रिफअत और सरवत, और उनके इकलौते बेटे मजर को वर्षों से जानता था। रिफअत ने 1945 में मेरे जेल से रिहा होने पर मुझे सचित्र 'दीवान ग़ालिब' भेंट किया था, जिस पर उनके हाथ की स्नेहपूर्ण शुभकामना भी लिखी हुई थी। मैंने इसे अपने बैठकखाने में नुमायाँ जगह पर सजा दिया था ताकि मेरे तुर्क दोस्त यह देख लें कि हम लोग कितने अच्छे दोस्त रहे हैं। उनमें से कई फिर मियाँ बशीर के पास जाकर उनका भारत विरोधी अंधा प्रचार सुनते। वह उन्हें हिंदुओं की तिकड़मों की दास्तानें सुनाते। वह मुझे हिंदू या हिंदुओं का दलाल तक कह देते थे। इससे चकित तुर्क "इस असामान्य स्थिति से निपटने में मेरी कफियत" से हमदर्दी करते थे।

मेरे मेजबानों को भारत के तर्कसंगत होने के और भी प्रमाण मिले। चौधरी खलीकुज्जमा पाकिस्तान की प्रिय योजना इस्लामिस्तान के लिए समर्थन जुटाने के उद्देश्य से अंकारा आये थे। मैं तब तक तुर्की लोगों के विचार समझ चुका था और जानता था कि उन्हें बाल की खाल निकालने और लच्छेदार बातों से किस हद तक चिढ़ है। मैं पाकिस्तान के दूत का स्वागत करने के लिए हवाई अड्डे पर गया। वह मेरे भाई को जानते थे, क्योंकि दोनों डॉक्टर अंसारी के लाल हिलाल मिशन में शामिल होकर 1912 में तुर्की गये थे। खलीक साहब पर मेरे सदभाव का बहुत गहरा असर पड़ा और तुर्क इसे देखकर ताज्जुब में पड़ गये। बाद में तो उन्होंने मेरी इस सम्भावना की और ज्यादा सराहना की और उन्होंने ऐसी धार्मिक गुटबाजी के प्रति उदासीनता दिखायी। आखिरकार उन्होंने पाकिस्तानियों की बात मानने से इंकार कर दिया। इसके बाद आये सरदार इब्राहीम, जिन्हें पाकिस्तानी राजदूत ने आज़ाद कश्मीर का प्रसीडेंट बताया। उन्होंने उनके सम्मान में एक प्रीतिभोज भी दिया। मैं तुर्की विदेश मंत्रालय के राजनीतिक विभाग के प्रधान रस्तो जोरलू से मिला, जो बाद में विदेशमंत्री हो गये। मैंने उनसे कहा कि ऐसे मामलों में फँसने से धर्म निरपेक्ष और प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में तुर्की की छवि धूमिल हो जायगी। उन्होंने बड़े धैर्य से मेरी बात सुनी और कहा, 'मैं राजदूत से मिलकर यह पता करूँगा कि क्या पाकिस्तान ने आज़ाद कश्मीर को एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता दे दी है? हमने तो नहीं दी और हमारी तरफ से कोई नहीं जायेगा।' मैंने अपनी ज़िम्मेदारी निभा दी थी और स्वाभाविक रूप से इस परिणाम पर मैंने आभार व्यक्त किया। लेकिन पाकिस्तान के राजदूत, जिनके बारे में एक बार उनकी बीवी ने कहा था, 'एक छोटा आदमी जो बिस्तर में शेर बन जाता है', गुस्से से गरज उठे!

तुर्की में होने के अवसर का फायदा उठाकर मैंने बासफोरस और मरमारस

सागर के किनारे आनातोलिया और एशिया माइनर मे विस्तृत दौरे किये और फार्मों पर, कारखानो, स्कूलो व फौजी प्रतिष्ठानो मे, जहा भी जगह मिली, मैं बहुत आराम से रहा। बहुधा मामूली किसाना को यह देखकर बहुत ताज्जुब होता कि झडा फहराती हुई कार मे, जो उनके लिए बहुत प्रतिष्ठा की चीज थी, बैठा हुआ राजनयिक गाव के स्कूल मे सोने के लिए तयार हो और जो भी खाना वे दें उससे सतुष्ट हो। इससे मैं जनता के और करीब आया और हमारे बीच दोस्ताना सबध कायम हो गय। उनके नज़दीक आने की वजह से मैं सैनिकों के राष्ट्र के रूप, उनके गुणो और मुसीबतो के बारे मे सोचने लगा। उन्होने कई सदिया तक एक बडे साम्राज्य पर हुकूमत की थी और अपनी आखा के सामन अपना पतन होते देखा था। उन्होन तुर्की को नेस्तोनाबूद करने के बारे मे बडी ताक्तो के लालच को देखा। उस समय अतातुक 'मसीहा' बनकर उनके सामने आये। उनकी अथक कोशिशो से दुश्मन ध्वस्त हो गये और आधुनिक देश का ढाचा तयार हो गया, लेकिन वह अथशास्त्री नही थे और शायद उनको अथ शास्त्रियो की परवाह भी नही थी। नतीजा नुमायाँ तौर पर सामने था। वह तुर्की को आत्म निभर बनाना चाहते थे लेकिन वह यह नही जानते थे कि यह काम कसे किया जाये। ऐसा आधार तैयार किये बिना जिससे उत्पादन लगातार होता रहे उन्होंने सभी तरह के कारखान शुरू करने का आदेश दे दिया। उन्हे जिदा रखन के लिए लगातार हर किस्म की सहायता देनी पडती और वे अथव्यवस्था पर लगातार बोझ बने रहे। 1940 के बाद के दशक के अतिम वर्षों मे बडे पैमाने पर अमरीकी सहायता मिली। इसे एक काल्पनिक दुश्मन से लडने की तयारी करने के लिए प्रतिरक्षा पर इस्तेमाल किया गया। अतातुक न अपने देशवासियो से परपरागत लाल तुर्की टापी को तिलाजलि देकर यूरोपीय हैट का इस्तेमाल करन को कहा, लेकिन ऐसा करने मे वह यह भूल गये कि किसी इसान के लिए जरूरी यह है कि उसके सर मे क्या है, न कि यह कि उसके सर पर क्या है। इसी तरीके से धम निरपेक्षता अपनाने मे वह हद से आगे चले गय। मजहबी अकीदत का परित्याग करन की क्या जरूरत थी? और क्या जरूरत थी मुस्लिम व्यक्ति गत कानून (शरीअत) को हटाकर उसकी जगह स्विटजरलैंड का सिविल कोड अपनाया जाये? जिस कठोरता से इसे लागू किया गया उसकी प्रतिक्रिया होना जरूरी थी। 1950 के बाद वाले दशक के शुरू मे इसमे जरा सी जो ढील दी गयी उससे धार्मिक पुनरोत्थान और पुरानी दकियानूसी को फिर से कायम करने की ख्वाहिश पदा हो गयी। अज़ान (नमाज के लिए आह्वान) पर पाबदी लगा दी गयी थी इसलिए नय उत्साही लोग चाहते थे कि नमाज का वक्त न होने पर भी उन्हे 'अज़ान' सुनन को मिले। तुर्की के हज करन वाले इतने दिनो की दबी ख्वाहिश को पूरा करने के लिए असाधारण उत्साह का परिचय देकर मक्का की पदल यात्रा करने लगे।

तुर्की भाषा को शुद्ध करने की उत्कट इच्छा पदा हो गयी जिसने करीब करीब उन्माद का रूप ले लिया। कुछ तुर्कों की निगाह मे इसका ऐतिहासिक औचित्य था। अरब के लारेंस के प्रभाव मे ब्रिटिश समथक अरब शाहो न अपने इलाके मे फँसे तुर्की फौजी दस्तो का सफाया कर दिया था, इन इलाको मे रहन वाले तुर्कों को उन्होंने बहुत चोट पहुँचायी थी और उनके जानमाल का बहुत नुकसान किया था। उसे भूलना आसान नही था, लेकिन इसका बदला लेने के तरीका मे खामियाँ थी। तुर्की जुबान से अरबी और फारसी के शब्द हटा देने से

उसकी समद्धि खत्म हो गयी। उन्होंने शार्टहैंड का भी कोई तरीका नही बनाया, इसलिए जब उन्हे जरूरत पडी तो उन्हें इस काम के लिए अरबी लिपि—शकिस्ता—का सहारा लेना पडा। तुर्की ने क्राति के बाद कोई विशिष्ट साहित्यकार पैदा नही किया।

इस्मत इनोनू अतातुर्क के दाहिने हाथ थे और वह उनके उत्तराधिकारी भी बने। उन्होंने अतातुर्क की नीतियों का अनुकरण किया, अपने देश को द्वितीय महायुद्ध से अलग रखा और उत्तर अटलांटिक सधिसघ (नाटो) म शामिल होने की जी तोड कोशिश की। यह कोई गौरव की बात नही थी, क्योकि एशियाई व्यवस्था के अतगत एक सुसगठित और विकसित देश की जगह तुर्की ने यूरोपीय समाज म एक नगण्य स्थिति को स्वीकार कर लिया। लेकिन यही तो तुर्की के नेता चाहते थे। इसीलिए उन्होने यह रास्ता चुना। लेकिन इनोनू के कार्यकाल म राजनीतिक और आर्थिक गतिरोध पदा हो गया। उनके काम करने के तरीको की आलोचना की गयी और यह आरोप लगाया गया कि वह सिर्फ प्रेसीडेंट के पद से चिपके रहना चाहते है। सलाल बायर और उनके अनुयायियो ने इनोनू को हटाने के लिए एक शक्तिशाली आदोलन चलाया और इस तरह से मई 1950 के आम चुनाव इस बहादुर कौम के इतिहास म एक मोड बन गये। चुनाव के नतीजे पर जीतने और हारने वाले दोनो पक्षो को ताज्जुब हुआ। बायर का खयाल था कि उनकी डेमोक्रेटिक पार्टी 180 सीटें जीतेगी, लेकिन इसकी जगह उन्होंने अपने प्रतिद्वद्वियो की जडें उखाड फेंकी। उन्हे 487 सीटो वाले सदन मे 435 सीटें मिली। उनकी चाहे जो नाकामियाँ रही हो, इनोनू ने अपनी जनता को अपनी मर्जी से फसला करने की आजादी दी और जनता के निर्णय को सौम्यता से स्वीकार किया। यह मेरी आँखो के सामने का वाकया है। अनेक राजनीतिक भविष्य खत्म हो गये और बिलकुल ही नये लोग राजनीतिक क्षितिज पर हावी हो गये। सामाजिक ढाचा इतना बदल दिया गया कि वह पहचाना नही जाता था। अतर इतना गहरा था कि उसके बारे म कोई गलतफहमी नही हो सकती थी।

तुर्की म मई 1950 के परिवर्तन के बाद सामाजिक धार्मिक मसलो मे पुनरोत्थान की प्रवृत्ति बढी। जबरदस्ती लागू की गयी धर्म निरपेक्षता की चूलें हिलने लगी और उसम दरारें नजर आने लगी। तुर्की के समाज का गुजरा हुआ जमाना उसके सामने था और वह उसे गले लगाने के लिए तयार नजर आता था। सत्ता रूढ डेमोक्रेटिक पार्टी ने अपने गरेबान म मुह डालकर देखने की प्रक्रिया शुरू की। पश्चिम ने देखा कि इस ख्वाहिश को इस्तेमाल करने और अपने हितो को आगे बढाने का बहुत अच्छा मौका है। उन्हे कम्युनिज्म के विरुद्ध सयुक्त मोर्चा बनाने के लिए तुर्की की प्रतिष्ठा की जरूरत थी। इराक, ईरान और पाकिस्तान मोर्चे म साझीदार बनने को तैयार थे। अगर पश्चिमी ताकतो पर कम्युनिज्म के फैलते हुए प्रभाव को रोकने का भूत सवार था तो उनके छोटे मित्रो को हथियार और दौलत पाने का। सलाल बायर और उनके चुस्त चालाक प्रधानमत्री अदनान मदरिस बहुत आसानी से एक नये रास्ते की बुनियाद डालने के लालच म आ गये। वह पूर्व की ओर देखने के लिए तयार थे। यह नयी धुन बन गयी। इसके फौरन बाद बगदाद सधि पर हस्ताक्षर हुए। इसमे कुछ रद्दोबदल हुई और कालातर मे मध्य सनिक सधि सगठन (सेंटो) ने इसकी जगह ले ली।

मैं जब तुर्की म था तो मुझे दो बहुत उपयोगी नसीहतें मिली जिनसे मुझे वहाँ और बाद मे राजनयिक जीवन की उलझनो का सामना करने मे मदद मिली।

एक अमरीकी राजनयिक हुआवा ने एक बार मुझसे कहा था कि 37 वर्ष के राजनय ने मुझे एक सबक सिखाया है। उन्होंने कहा, "मैं शराब की दावतों में जाता हूँ, लेकिन मैं कभी बीच में आकर नहीं खड़ा होता। किनारे पर मँडराते से मैं हमेशा उन लोगों के संपर्क में आता जो भीड़ से बचना चाहते हैं। केंद्र स्थल पर हाथ हिला हिलाकर चिल्लाने वाले के मुकाबले में ऐसे लोगों से बातचीत करना ज्यादा लाभप्रद होता है। किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के दावत में आ जाने पर वह एकदम से आपको छोड़कर नहीं भागता।'

कनाडा के राजदूत जनरल ओडलम ने एक बार मुझे रात के खाने पर बुलाया। उन्होंने मुझे एक मोटी फाइल दिखायी जिस पर लिखा हुआ था "पका के लिए'। यह चक्कर में डालने वाली बात थी। उन्होंने कहा इसमें उनके लिए आये केवल वे पत्र रखे जाते हैं जिनके जवाब वह फुर्सत पाने पर देंगे। इससे उन्हें यह भी तय करने का मौका मिलेगा कि जवाब देने की उनकी इच्छा कितनी गहरी है। यह व्यवस्था बहुत बढ़िया लगी। किसी भी तैनाती में आम तौर पर कई लोगों से जान-पहचान होती है लेकिन उनमें से कुछ ही अच्छे दोस्त रहे जा सकते हैं। 'पका हुआ' ही याद रखने के काबिल होता है।

अंकारा में एक साल से कम के प्रवास के बाद मुझे विदेश सचिव के०पी०एस० मेनन का बहुत प्रशंसा भरा पत्र मिला। उन्होंने कहा कि तुर्की में मेरे अच्छे काम और इराक की चुनौती को ध्यान में रखते हुए, जो भारत विरोधी प्रचार का केंद्र बन गया है प्रधानमंत्री ने यह इच्छा व्यक्त की है कि मुझे प्रभारी दूत बनाकर बगदाद भेज दिया जाये। यह एक बम था, क्योंकि मैं अपने नये घर में बस ही रहा था और उससे कुछ मानूस हो चला था और मुझे अपने प्रवास में आनंद आने लगा था। लेकिन मेरे सामने और कोई चारा नहीं था। मैं एकदम से हटने की असुविधाओं और नये काम के बारे में अपनी आशंकाओं के सिलसिले में उन्हें लिखने वाला नहीं था। डेढ़ साल के अंदर मैं दिल्ली से जकार्ता वहाँ से जोगजकार्ता गया और फिर वापस आया था। मैं आठ महीने दिल्ली में रहा और फिर एक साल से कम समय के लिए अंकारा गया। हरएक नियुक्ति चुनौती भरी थी, उनसे स्थायी संबंध कायम हुए और जो काम करने के लिए मैं भेजा गया था उसे सफलतापूर्वक निपटा देने का मुझे संतोष मिला। लेकिन बगदाद जाने का मतलब 'सी' श्रेणी के एक और स्थान पर जाना था। बड़े साहबों ने पश्चिम-समर्थक भावना के आधार पर अपनी समझ के अनुसार दुनिया की राजधानियों का वर्गीकरण कर रखा था। वे खुद तरह तरह के बहाने बनाकर इन स्थानों से दूर रहते। एक वक्त तो उन्नीस आई० सी० एस० अधिकारी यूरोप में हमारे दूतावासों में काम कर रहे थे, जबकि अफ्रीका में एक भी आई० सी० एस० अधिकारी नहीं था और एशिया में केवल एक था।

मैं अगस्त 1950 में इराक पहुँचा। मैंने तारूस एक्सप्रेस से यात्रा की, वैगन ली स्लीपर में अनातोले पठार पार करके अरब रेगिस्तान पहुँचा। खलीफा हारून रशीद का शहर बगदाद जो किसी जमाने में अपने "अलिफ लैला" के किस्सों के लिए मशहूर था, अब भी वही कायम था। लेकिन उसकी उस पुरानी शान शौकत का वहाँ नामो निशान नहीं था। खजूर पक रहे थे। किस्मत ने एक बार फिर मेरा दरवाजा खटखटाया। भारत के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ काम शुरू करने के साथ ही पश्चिमी एशियाई मसले प्रमुख बन गये। अप्रैल 1951 में ईरान में डॉ० मोहम्मद मुसद्दिक की ताकत के उभरने से तेल संकट शुरू हो गया।

ब्रिटेन के लिए न सिर्फ वहाँ बल्कि खाडी के पूरे क्षेत्र मे परेशानी पदा हो गयी। यह इलाका सही मायनो मे तेल के सागर पर तरने वाला ज़मीन का एक बडा टुकडा था। इस पर बहुत आसानी से आग लगायी जा सकती थी। बाइबिल मे जिस अमर ज्योति का उल्लेख मिलता है, वह किरकुक के तैल-क्षेत्र के एक कोन म आज भी नज़र आती है। देश का शानदार अतीत एक भूली हुइ कहानी बन गया था। बैबिलान क प्राचीन खंडहर या केसीफोन के बहुत महराब की छाया उसकी याद जरूर दिलाती थी। तेरहवी सदी म मगोल गरोहा क हमलों ने इराक के बीच के काल की निशानिया का, उसकी इमारता, ऐश आराम की जिंदगी और ज्ञान के केंद्र के रूप म उसकी ख्याति का सफाया कर दिया था। इससे इराक के इतिहास को समझने के लिए बीच म बहुत बडा अतराल पैदा हो गया था।

चालाक राजनीतिज्ञ नूरी अस सईद, जो नूरी पाशा के नाम स मशहूर थे स्थायी प्रधानमत्री थे जबकि करीब एक दजन व्यक्ति मौका पान के इतजार मे अपनी एडिया घिस रहे थ। नौजवान शाह फसल इगलैंड मे पढ रहे थे। उनकी अनुपस्थिति मे राज काज का काम आमोद प्रमोद मे डूबे रहन वाने मीर अब्दुल्ला सँभालते थे, जो कुछ सनकी मुसाहिबा और मसखरे चापलूसो से घिरे हुए थे। देश उतना समद्ध नही था जितना कि वह तेल की कीमता म बतहाशा वद्धि के बाद हो गया था। फिर भी वह अविभाजित पजाब स ज्यादा बडा था। उसके पास अपने 60 लाख निवासियो की अच्छी तरह देखभाल करने के लिए पर्याप्त साधन थे। ईरान ने जब तेल का राष्ट्रीयकरण कर दिया तो नूरी को "गडबडी करन वाने इराकियो को खामोश रखने के लिए' अधिक रॉयल्टी मागने का मौका मिला, लेकिन चारा ओर असमानता असताप और बौखलाहट फली थी। वतमान अधकारमय नज़र आ रहा था। तात्कालिक भविष्य अनिश्चितता और खून खराबे से भरा नज़र आता था। सिफ दूर क्षितिज पर नयी शक्तियों के उदय की सभावना नज़र आती थी। 'सपन्न वग को इन बातो का गुमान तक नही था कि यह ज्वालामुखी कभी भी फट सकता था। इसमे समय ज़रूर लगा और अतत 14 जुलाई 1958 को ज्वालामुखी फट गया। बगदाद पहुँचने के कुछ दिन बाद मुझे विदेश सचिव ने एक अति आवश्यक सदेश भेजकर सूचना दी कि मैं "इसराइल को शीघ्र ही भारत की ओर स दी जान वाली मान्यता से उत्पन्न होन वाली कटुता और आघात को बरदाश्त करने के लिए" तैयार रहूँ। इसलिए मैंन विदेश मत्री तौफीक-अस सुवदी स मुलाकात की और उनसे जितनी होशियारी से मुमकिन हो सकता था बताया कि हम पर एक कडवी गोली निगलने क लिए दबाव डाला जा रहा है। उनका चेहरा सुग्न हो गया। 'अपन हिंदुस्तान से आन वाल अपने दोस्त की ज़ुबान से मैं यह क्या सुन रहा हूँ! क्या आप गाधी को भूल गये हैं और क्या नेहरू न अपने आदर्शों को भुला दिया है? यह बहुत ही बुरी बात है। यह नाकाबिले यकीन है।" मैंन उनम कहा कि आप मुझे कुछ वजह बताइये जिनकी बिना पर मैं अपनी सरकार को यकीन दिला सकूँ कि यह फमला बिलकुल बेतुका है। वह फौरन ही दलीलें देन लगे और मेरे दाँव को समझ बिना बोले 'यह एक साम्राज्यवादी षडयत्र है। यह एक पिछडी हुई रूढिवादी मध्य युगीन सकल्पना है और यूरोपीय यहूदियो को खुश करन के लिए अरब भूमि के टुकडे किय जा रहे हैं।" उनकी दलीलो स सहमति प्रकट करते हुए मैंने बडी मासूमियत से सुझाव दिया कि मेरा ख्याल है कि इराक हर मामले म इन्ही मूल्यो को अपनायगा। मैंन उनसे यह भी कहा कि अगर मेरे देश ने यह रास्ता छोड

दिया तो वहाँ मेरी कोई जगह नही है। वह मेरी प्रतिक्रिया से खुश हुए, लेकिन मैंने आगे जो कुछ कहा उससे एकदम से वह सजीदा हो गये। "जनाब," मैंने कहा, "साम्राज्यवादियो ने मेरे देश को भी विभाजित कर दिया। धार्मिक आधार पर विभाजन पिछडा हुआ, प्रगति विरोधी कदम है, जिसने मेरे जसे लाखो मुसलमानो को इसने अपने ही देश मे शरणार्थी बना दिया है। इसने मुझे अपने माँ-बाप के मज़ार पर दुआ माँगने से वचित कर दिया है। क्या आप इस तरह के अत्याचार का समथन करते हैं? मुझसे इसराइल को मान्यता न देने के लिए कहने से पहले आप यकीनन पाकिस्तान को दी गयी अपनी मान्यता वापस ले लेंगे।"

मौत के जैसा सन्नाटा छा गया। जून 1952 म बहुत ही हँसी-खुशी से अपना कायकाल समाप्त करने तक इस विवाद के बारे मे मैंन और कोई ज़िक्र नही सुना। इसने मुझे उलझन-भरी स्थिति से निपटने मे सच्चाई और ईमानदारी के महत्व के बारे में सिखाया। इसी से मेरे अदर यह भावना ज़ोर पकडती गयी कि राजनयिक को अपने देश के वास्ते सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी व्यक्तिगत लोकप्रियता को दाँव पर लगा देना चाहिए। ज़िदादिल और खुशमिज़ाज बने रहने का क्या फायदा, अगर मेज़बान को नाराज़ करने के डर से अप्रिय विषय न छेडकर आप अपन को घमडी गधा साबित कर दें? वाशिंगटन मे हमारे कुछ राजदूतो ने यही काम किया। वे व्यक्तिगत तौर पर तो पसद किये जाने लगे लेकिन कश्मीर, गोआ, गुट निरपेक्षता, अणु-प्रसार निषेध सधि, बँगलादेश आदि जसी बुनियादी महत्व की समस्याओ के सिलसिले मे भारत का पक्ष समुचित समथन प्रदान न किये जाने के कारण बरबाद हो गया।

इराक मे शुरू मे जो मामले मेरे लिए सिरदद बने उनमे से एक अवध की वसीअत (जो खारिया ए अवध के नाम से मशहूर है) के प्रबध की समस्या के बारे मे था। अवध के तत्कालीन शासक ने ब्रिटिश सरकार को कुछ धन दिया था और साथ ही यह शत लगा दी थी कि इसका सूद इराक मे कवला और नजफ मे मज़ारो पर गरीबो और धमात्मा लोगो मे बाँटा जाये। यह रकम 20 हज़ार पौंड सालाना थी। अँग्रेज़ इसी के मुताबिक यह रकम सौ साल से ज्यादा अर्से तक अपने गुर्गों को बाटते रहे। भारत मे सत्ता हस्तातरण के समय यह तय हो गया था कि अँग्रेज़ो द्वारा छोडे गये सभी बाहरी कर्ज़ और सारी लेनदारी देनदारी भारत की ज़िम्मेदारी है, फिर भी बगदाद मे ब्रिटिश राजदूतावास ने यह झगडा खडा कर दिया कि भारतीय अथवा पाकिस्तानी राजदूतावासो म से किसको इस रकम की ज़िम्मेदारी दी जाय और इसका बँटवारा कैसे हो? मुझे मसले की गभीरता के बारे म कोई भ्रम नही था और मैंने विदेश मत्रालय को लिखा कि ब्रिटिश सरकार से कहा जाये कि फौरन वह सारे कागजात दे दे और आज़ादी के बाद जितनी रकम व्यक्तिगत तौर पर दी गयी है उसे वापस किया जाये। उन्ह हमारे बल पर उदारता दिखाने का कोई हक नही है। ऊँचे स्तर पर यह कदम उठाया गया और एक पखवाडे के अदर ब्रिटिश राजदूतावास ने फाइलो से लदे दो ट्रक हमारे पास भेजे। इसके बाद हमने 60 हज़ार पौड की रकम की वापसी के लिए जोर नही दिया। सर हम्फ्रे ट्रेवेलयान आई० सी० एस०, जो भारत मे नौकरी कर चुके थे, ब्रिटिश राजदूतावास म मिनिस्टर काउसेलर थे। क्योंकि वही यह तिडकमे कर रहे थे इसलिए स्वाभाविक तौर पर वह बहुत झेंपे और खिसिया गये। ट्रेवेलयान बाद मे काहिरा और पीकिंग मे राजदूत बने। इराक मे पाकिस्तानी राजदूत राजा गजनफर अली भी परेशान हो गये। उनसे यह कहना पडा कि चूंकि यह

रकम हमारे खजाने से आयी थी इसलिए उन्हें इसके बारे में भूल जाना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वह जरूरतमंदों में बाँटने के लिए इतनी ही रकम देने के लिए अपनी सरकार को राजी करें। वह अवध की वसीअत के बारे में क्या झगड़ा कर रहे हैं?

यह मुश्किल दूर करने के बाद मैंने नूरी-अस सईद, कुछ प्रमुख संतो और महमूदाबाद के राजा स्वर्गीय अमीर अहमद खाँ से, जो उस वक्त करबला में रह रहे थे इस रकम को बाँटने के बारे में सलाह माँगी। मैंने मजारों में रहने वाले कुछ हिंदुस्तानियों से भी सलाह माँगी। इनमें से ज्यादातर "इन मुकद्दस (पवित्र) रौजों के साये में और इस पाक जमीन पर मरने के लिए यहाँ आये थे"। इनमें से कुछ पेशेवर आदमी थे और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए वित्तीय सहायता की जरूरत थी। उन्हें पुनर्वास के लिए काफी रकम दी गयी। तिमाही भुगतान उलेमा, तुलबा और फुकरा—यानी, छात्र और गरीब—इन तीन श्रेणियों में बाँट दिया गया। हर एक को नियमित रूप से अच्छी-खासी रकम दी जाने लगी। यह व्यवस्था हालांकि सर्वोत्तम नहीं थी, मगर चूंकि यह काम अच्छी नियत से किया गया था इसलिए उसके बारे में अच्छी राय कायम की गयी। इसका तत्काल नतीजा यह हुआ कि हमारे पाकिस्तानी दोस्तों के इशारे पर धार्मिक तत्वों द्वारा किया जाने वाला भारत विरोधी प्रचार रुक गया। अभी तक पाकिस्तानी दोस्त यह दावा करते थे कि वे इस रकम के रखवाले हैं।

इराक में अपनी नियुक्ति के कारण मैंने खाड़ी के—कुवैत, बहरीन, शारजाह अबूदहाबी दुबई, कतार और मसकत आदि कई देशों की यात्रा की। वहाँ सभी जगह अंग्रेजों की मौजूदगी की छाप थी। कुवैत के अलावा बाकी देशों में समृद्धि अभी आयी नहीं थी। मैं ब्रिटिश राजनीतिक एजेंटों का मेहमान बनता। इनमें से अधिकांश ने भारत की सेवा की थी या उससे उनका संबंध रह चुका था। राजनीतिक रेजीडेंट सर रूपटह सीमांत प्रदेश में नौकरी कर चुके थे। उनकी आखिरी नियुक्ति बलूचिस्तान के गवर्नर जनरल के एजेंट के पद पर हुई थी। उन्होंने मेरे पिता के बारे में सुना था और मेरे परिवार के कुछ सदस्यों को जानते थे। यह सोचकर कि मैंने भी उनकी नौकरी की होगी, उन्होंने एक बार मुझसे अचानक पूछा "1943 46 में आप कहाँ तैनात थे?" मैंने जवाब दिया, 'कैदखाने में।' राजनीतिक विभाग के अधिकारी ने, जो अब विदेशी सेवा में स्थानांतरित हो गये थे चौंककर कहा "या खुदा, तो आप गांधी वाला है।' अंग्रेजों के साथ स्थानीय शेखों और उनके हमवतनों ने बहुत ज्यादा दोस्ताना और शिष्ट बरताव किया। वे भारत से आकृष्ट थे और कई पीढ़ियों से बंबई उनका स्वप्नदेश बना हुआ था। उन्हें देखकर मुझे सरहद के कबायली मलिकों की याद आ जाती थी। वे बलिष्ठ मजबूत खुले दिल के लोग और अपनी बंदूकों और बाजों की मदद से शिकार करने के शौकीन थे। 1951 के शुरू में मैंने सरकार को शेखों की बढ़ती हुई अहमियत के बारे में चेतावनी दी थी। भारतीय मुद्रा अभी तक यहाँ प्रचलित थी। मैं चाहता था कि ज्यादा स्थायी और लाभदायक संबंध कायम कर लिये जायें और उन्हें सुदृढ़ बना दिया जाये। मुझे डर था कि अंग्रेजों का घटता हुआ प्रभाव यह बरदाश्त नहीं करेगा, क्योंकि अमरीका से और अधिक शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी भी मैदान में उतर आये थे। वहाँ रहने वाले भारतीय अच्छा खासा व्यवसाय कर रहे थे। वह हम अथवा स्थानीय शेखों को अपनी समस्याओं से परेशान नहीं करते थे। फिर भी वे हमारे लिए फायदेमंद नहीं थे।

अँग्रेज खाडी के क्षेत्रो मे भेजे जाने वाले अफसरो का इतजाम और खर्च भारत से करते थे। उनकी अधिकाश सपदा के मालिक हम थे, लेकिन उन्होने स्पष्ट कारणो से उनके तबादलो म देर की। अँग्रेजो ने न सिर्फ वहाँ बल्कि काबुल मे भी जिन कुछ बढिया इमारतो पर कब्जा जमा रखा था उनके बारे मे सोचकर अब भी बुरा लगता है। खैर, हमे खुश करने के लिए उन्होंने बहुत मेहरबानी करके दो पुरानी हबर मोटरें बगदाद मे हमारे राजदूतावास के लिए भेज दी। कारो की हालत बेहद खस्ता थी और पूरे तौर पर उनकी मरम्मत की जरूरत थी। कारो के एक मशहूर विक्रेता हफी-अल-काज़ी ने सुझाव दिया कि इन कारो की मरम्मत पर 300 पौंड से अधिक खर्च करने के बजाय "इन दोनो ब्रिटिश कारो को 500 पौंड मे बेच दिया जाये और एक हजार पौंड से कुछ अधिक म एक नयी ब्यूक खरीद ली जाये।" यह एक आकर्षक प्रस्ताव था और मैंने इसके बारे म विदेश सचिव को लिखा। एक आई० सी० एस० अधिकारी, जो बेल्जियम म कार्यवाहक प्रभारी दूत के पद पर काम करने के बाद हाल ही मे दिल्ली लौटे थे मत्रालय मे प्रशासन के प्रधान थे। मुझे फौरन ही टका-सा जवाब मिल गया कि मुझे विदेश सचिव का वक्त तुच्छ समस्याओ के बारे मे खराब नही करना चाहिए, बल्कि रोजमर्रा के इन घिसे पिटे मामलो के लिए मुझे अडर-सेक्रेटरी को लिखना चाहिए। उसके बाद उन्होंने मुझे नसीहत की, "ब्रूसेल्स मे मिस्र के राजदूत छोटी-सी फोर्ड कार इस्तेमाल करते हैं। आपको ब्यूक की क्या जरूरत है?" मुझे बात लग गयी। किस्मत से मैं जब यह खत पढ रहा था तो बेल्जियम के राजदूत मुझसे जवाबी मुलाकात के लिए आये। वह राजनयिक शिष्टाचार विभाग के प्रधान रहे थे और हमारे प्रभारी दूत को जानते थे। उन्होने मुझे बताया कि वहा के भारतीय राजदूतावास ने दो कैडिलक कारें बाहर से मँगायी है—एक राजदूतावास के सरकारी कामकाज के लिए और दूसरी मेरे इस रोब झाडने वाले सहयोगी को घर ले जाने के लिए। इसलिए मैंने फिर लिखा, लेकिन इस बार प्रधानमत्री को। वह हमारे विदेशमत्री भी थे। मैंने अपने मूल प्रस्ताव की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और इस टीका के साथ खत खत्म किया, 'मेहरबानी करके मिस्र के राजदूत की सवारी के बारे मे लिखने वाले इस अधिकारी से पूछिये कि उनके पास कौन-सी गाडी है? उनमें ऐसी क्या खास बात है कि वह कैडिलक कार रखें और मेरे ब्यूक गाडी का इस्तेमाल करने पर ऐतराज करें?" मुझे फौरन ही तार मिला कि मैं अपनी पसद की कार खरीद लू। इस तरह उस अधिकारी को अच्छा सबक सिखा दिया गया।

उस जमाने का एक रोमाचक और हमेशा याद रहने वाला अनुभव अपने दो नौसैनिक जहाजो—'यमुना' और 'कावेरी'—पर यात्रा का है। यह यात्रा जनवरी 1951 मे की गयी थी। खाडी के बदरगाहो और बसरा की स्वतत्र भारत की नौसेना की पहली सद्भावना यात्रा थी। मुझसे कहा गया कि राजनयिक शिष्टाचार के मामला म मैं दोनो कप्तानो—बी०एस०सोमान और विक्टर जेसुदासन—की मदद करूँ और जिन बदरगाहो पर हमारे ये जहाज जाने वाले थे वहाँ उनके यथोचित स्वागत का पक्का प्रबध करूँ। जल्दी ही मुझे मालूम हो गया कि इस काम को पूरा करने के लिए काफी प्रारभिक काय और सपर्क करना पडेगा, लेकिन मेरी मेहनत सुआरत हो गयी। हमारे सजीले और चुस्त नौसैनिक जवानो को देखकर वहाँ रहने वाले हिंदुस्तानियो का सीना गर्व से चौडा हो गया और स्थानीय अधिकारी उनकी शानदार मौजूदगी से बहुत प्रभावित हुए। जहाजो पर विशिष्ट

अतिथियो और हिंदुस्तानियो की जो खातिर की गयी वह दिल खोलकर नफीस और अच्छे ढँग से की गयी थी। मैं जहाजिया के साथ करीब 20 दिन रहा और मुझे कर्तव्यपालन की भावना व सभी परिस्थितियो मे उनके हँसते रहन से बहुत प्रभावित हुआ। कप्तान सोमान ने, जो बाद म नौसेना के प्रधान हो गये थे, मेरे इस्तेमाल के लिए अपना केबिन खाली कर दिया था। कुछ चूहो ने इस इतजाम को नापसद किया और मैंने आलमारी म अपने जो कपडे टाग दिये थे उनमे उन्होंने छेद कर दिये। नौजवान जहाजियो ने मुझे मजाक मे यकीन दिलाया कि जहाज पर चूहो की मौजूदगी एक शुभ चिह्न है, क्योकि वे डूबते हुए जहाज को छोडकर भागते हैं। अपने कुछ राजनीतिज्ञो के बारे मे भी यही बात कही जा सकती है। उनकी अवसरवादिता पर चूहा को भी शर्म आ जाती है।

वहा मेरे कार्यकाल के दौरान जो लोग बगदाद आये थे उनमे रामपुर के नवाब रजाअली खाँ और उनकी बेगम रफत जमानी ने मुझे प्रभावित किया। ये लोग अक्तूबर 1950 में आये थे। वे नजफ और कर्बला में कुछ प्रमुख व्यक्तियो को जानते थे और लगातार इन रौज़ो की यात्रा करते थे। इनके बाद कलाकारों का एक तीन सदस्यीय शिष्टमडल आया जिसमे मशहूर इतिहासज्ञ डा० कालीदास नाग, शहजादा यूसुफ मिर्जा और पी० सी० सिन्हा थे जो कलकत्ता में एक कला समिति के सचिव थे और अपने कुछ चित्र यहा दिखाने के लिए अपने साथ लाये थे। डॉ० नाग ने कुछ चुनी हुई गोष्ठियो मे भाषण दिये। शहजादे को, जो अवध के नवाबो के वशज थे, राजनयिक शिष्टाचार का बहुत खयाल रहता था। मैंने इन लोगो के लिए जो प्रीतिभोज दिया उसमे उन्हें बहुत असमजस की स्थिति का सामना करना पडा। वह बद गले का सफेद कोट और काली पतलून पहनकर आये तो उन्होंने देखा कि मेरे चारो वेटर उसी तरह की पोशाक पहने हुए है। हालत और भी खराब हो गयी जब यह देखा गया कि उनमे स दो वेटरो की शक्ल सूरत भी शहजादे से मिलती जुलती है और टीप का बद यह कि एक अतिथि ने वेटर समझकर उन्हें खाली गिलास पकडा दिया। इससे वह गुस्से से तिलमिला उठे।

उसके बाद आये हैदराबाद के निजाम के दूसरे बेटे शहजादा मुअज्जम जाह— उनकी शादी एक खूबसूरत तुर्की शहजादी नीलोफर स हुई थी। उनके साथ नौकरो चाकरो की पूरी फौज आयी थी जिनम तीन खूबसूरत नर्सें भी शामिल थी। उनमे रईसो की सभी सनकें मौजूद थी। वह अपने खाने पर मोतिया का चूरा छिडकवाने के शौकीन थे। वह जियारतो के लिए आये थे लेकिन नजफ जाने वाली रेतीली सडक से बचने के लिए उन्होंने एक छोटे विमान का इस्तेमाल किया। मैंने उनके सम्मान म जो रात्रिभोज दिया उसमे उन्हें एक राजदूत की बेटी पसद आ गयी और उन्होंने खामोशी से पता लगाया कि क्या वह उनके साथ यूरोप की यात्रा पर जाने के लिए तैयार हो जायगी? एक इराकी मत्री ने यह बात चीत सुन ली। उसने मुझे एक तरफ अलग ले जाकर कहा कि अपने अतिथियों का खयाल रखिये कही ऐसा न हो कि किसी का अपहरण हो जाये। एक और विशिष्ट तीर्थयात्री बोहरा मुसलमानो के प्रधान आलम एदीन मुल्ला ताहिर सफुद्दीन भी आये थे। वह जहाँ भी जाते, उनके कई बेटे और शागिर्द उनके साथ जाते। राज दूतावास से कोई इशारा पाये बिना भी उन्होंने स्थानीय अधिकारियो से अपने भारतीय सबध पर जोर दिया, और हमलोगो की तारीफो के पुल बाँधे। उस वक्त इसकी बुरी तरह जरूरत भी थी।

भारत के विभिन्न भागो से आये हुए कुछ दूकानदारो और क्लर्कों ने इराक को अपना घर बना लिया था। उनकी मौजूदगी और उपयोगी सपर्क से राजदूतावास के काम मे और आसानी होनी चाहिए थी, लेकिन वे स्थानीय जनता से दोस्ती करने मे नाकामयाब रहे। काश, उन्होंने कुछ समझदारी और मर्यादा से काम लिया होता। इनके अलावा वहाँ अवध के नवाबो के लगभग 80 वशज थे जिन्हें निर्वासित कर दिया गया था। अँग्रेज इन्हें पेंशन देते थे। इन्हें शुरू मे जो रकम दी जाती थी वह घटते घटते बहुत थोडी रह गयी थी। उनमे से कुछ को तो हमसे सिर्फ पाच रुपये महीना वसीका मिलता था, फिर भी वे नवाब कहलाते थे।

मुकामी खादिम, जो नजफ कर्बला, काज़मैन और जीलानी के मकबरे की जियारत करने के लिए बहुत बडी सख्या म आने वाले लोगो की देखभाल करते थे, उर्दू बोल लेते थे और ये बहुत मददगार साबित हुए। तीर्थयात्रा की रिवायत से दोनो देशो के बीच दोस्ती पनपती रही है। अब इसे नयी दिशा देने की जरूरत है। इराक म ब्रिटिश प्रभाव की वजह से, जो पहले महायुद्ध के फौरन बाद शुरू हुआ था, भारतीय और इराकी प्रशासको के बीच सहयोग बढा। भारतीय सेना, रेलवे कर्मचारियो व अन्य लोगो की मौजूदगी से 1920 के बाद वाले दशक के शुरू म बहुत भाईचारा कायम हुआ। इस मेलजोल का एक नतीजा तो यह हुआ कि मुकामी जनता कुछ भारतीय खानो की शौकीन बन गयी। बसरा म घर घर म बिरयानी के शौकीन पैदा हो गये और वहा बिरयानी पकने लगी।

इराकी बहुत दोस्त इसान हैं, लेकिन उनम बेहद अर्तविरोध ह। राजनयिक दावतो म उच्चवर्गीय लोगों का झुड जमा हो जाता था। ये फिजूल की बातें करने म माहिर थे। आम लोग रेगिस्तान म घूमते फिरते, अपने घर पर काहिली मे पडे रहते, नदी किनारे के होटलो म मज़कूफ़ मछली खाते या कुर्दिस्तान के पहाडो मे विद्रोह का नेतृत्व करते। वहा एक आदिम जाति के भी कुछ ऐसे बचे-खुचे लोग थे जो दलदलो के किनारे पाषाण युग की ज़िदगी बसर करते थे या उत्तर मे मूसल के पास जक बक सफेद पोशाको मे शैतान की पूजा करते थे। कितने ही लोग नजफ, कर्बला, काज़मैन या जीलानी की मस्जिद मे जाकर नमाज़ पढते या कुरान शरीफ की तिलावत करते। कुछ यहूदियो के चले जाने से उत्पन्न खाली जगह को पूरा करने म व्यस्त रहते। लेकिन वे, चाहे जो करते हो, ज़िदादिल, बढिया खातिर करने वाले और गरम मिज़ाज के लोग थे और बात बात मे हिंसा पर उतारू रहते थे। उनका इतिहास उनके चरित्र की इस खासियत से भरा पडा है। मैंने विभिन्न वर्गों के लोगो से दोस्ती बढायी और उनसे 1965, 1971 और 1973 म और आखिरी बार नवबर 1975 मे कई बार मिला था। सियासी उथल पुथल से हैसियतें बदल गयी, लेकिन दिल नही बदले। खुदा उन्हें सलामत रखे।

एक बार शारजाह जाने पर मैं ब्रिटिश राजनीतिक एजेंट मार्टिन बक मास्टर का मेहमान बना। उनकी मा प्रतिष्ठित और रोबदार महिला थी और वह यहा अपने बेटे के साथ रहने आयी थी। मैंने उन्हें बगदाद की सैर करने का सुझाव दिया और उन्होंने अपने इस छोटे से प्रवास का आनद उठाया। एक बार वह मेरे बठकखाने म रखा हुआ एक अलबम उठाकर देखने लगी। उन्होंने मेरा एक चित्र देखा जिसका शीर्षक था, 'जेल से रिहाई पर'। वह एकदम से चौंक पडी और बोली, "खुदा के वास्ते बताओ कि तुम जेल मे क्या कर रहे थे?" मेरा जवाब था "मैं अपने देश के लिए आज़ादी चाहता था और आपके लोगो ने मुझे

जेल मे बद कर दिया था।" लेडी बकमास्टर ने पूछा, "क्या मेरी गरदन मरोडने की तुम्हारी तबीयत नही होती ?" मैंने जवाब दिया, 'क्या आपको इसका कोई सकेत मिला है ?" उन्हे मेरी मुहब्बत देखकर ताज्जुब हुआ और मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि यह अँग्रेज महिला इससे पहले कभी किसी भारतीय से नही मिली थी। उन्होंने माफी माँगने वाले अदाज मे मुझसे कहा, "आपके यहाँ के बारे मे मैंने सिर्फ इतना सुना था कि कोई खराब बूढा आदमी गाधी है जो साम्राज्य के लिए लगातार परेशानियाँ पैदा करता रहता है।'

इराक मे मेरा प्रवास 1952 के जून मे अचानक खत्म हो गया। तब तक किसी भी पद पर मेरे कार्यकाल की यह सबसे लबी अवधि थी—एक साल और दस महीने। दो नियुक्तियो के बाद प्रधान कार्यालय मे काम करने की सभावना से मैं बहुत खुश हो रहा था, लेकिन दिल्ली वापस आने पर मुझे एकदम से धक्का लगा। तीन देशो मे लगातार मिशनो के प्रधान के रूप मे काम करने के बाद मुझे अडर-सेक्रेटरी के पद पर रखा गया। मानो यही काफी नही था, मुझे कुमारी लीलामणि नायडू के मातहत कर दिया गया। आई० सी० एस० गुट अपने अलावा हर एक की औकात कम करने की शुरू से ही जो कोशिश कर रहा था, उसी का यह एक हिस्सा था। अपने देश की मैंने चाहे जो सेवा की हो, उसके बावजूद उनके लिए मैं बाहरी व्यक्ति बना रहा और जब वे विदेशी शासको की खिदमत करने मे मशगूल थे, मैं राजनीति म हिस्सा ले रहा था, राष्ट्रवादी था और जेल काट रहा था। *जहा तक मेरा सबध था, वरिष्ठता का मसला तय करने मे उन्होंने जिन* घृणित तिकडमो का सहारा लिया था उनके प्रतिकूल उन्ही के वर्ग के कई अधिकारी थे जो विदेशो मे तृतीय सचिव के पद पर काम करने के लिए भेजे गये थे और सयुक्त सचिव होकर लौटे थे।

फीरोज गाधी ने, जिन्हें हमेशा किसी भी अन्याय के विरुद्ध गुस्सा आता था, मशहूर व्यग चित्रकार शकर से कहा कि वह एक कार्टून बनायें जिसमे यह दिखाया जाये कि एक आदमी सार्वजनिक सभा मे भाषण करता है, पारितोषिक वितरण समारोह की अध्यक्षता करता है अपने देश का झडा फहराता है और झडा फहराती हुई कार से उतरने पर उसे भारत सरकार म अवर सचिव नियुक्त कर दिया जाता है। रफी अहमद किदवई भी इस मामले से स्तब्ध रह गये। खासतौर से वह इस बात से बहुत परेशान थे कि मुझे एक ऐसे विदेश सचिव के नीचे काम करना पडेगा जिसके लिए उनके दिल मे बिलकुल भी इज्जत नही थी। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या वह मुझे कही और लगा दें ? लेकिन मैंने कहा कि मैं यही काम करूँगा, जो होगा देखा जायगा। इसकी दो वजहें थी—एक तो, मैं दुनिया की तमाम दौलत के बदले भी बक्स वाला नही बनना चाहता था और दूसरे यह कि मैं जवाहरलालजी का साथ नही छोडना चाहता था। ओछी अफसरशाही की परेशान करने वाली हरकतो के बावजूद किसी भी हैसियत से उनके लिए काम करने मे मुझे सतोष मिलता था।

रफी अहमद किदवई की आदतें अजीब थी। उनमे प्रतिभा थी और वह बहुत व्यवहारकुशल थे। किसी भी मुश्किल काम को पूरा कर लेने की उनमे लगन थी। उनके दोस्त उनके प्रति बहुत निष्ठा रखते थे और हमेशा उनका साथ देते थे। इन लोगो को मजाक म 'रफियन'[1] कहा जाता था। उन्ह सभी बातो की

1 इसी उच्चारण के अंग्रेजी शब्द का अर्थ 'गुडा' भी होता है।

जानकारी रहती, वह हमेशा मुस्तैद रहते और हर चीज सहज बुद्धि से निपटाते थे। वह गरीब थे, फिर भी हर एक की खातिरदारी करते थे। वह भ्रष्ट नही थे, लेकिन हर एक का काम कर देते थे। इन्हीं मौको पर आदमियो और हालात को इस्तेमाल करने की उनकी क्षमता काम आती थी। जरूरतमद लोग उनके पास आकर अपनी मुसीबत की दास्तानें सुनाते। उस वक्त उनके पास जो भी सप न मुलाकाती मौजूद होता, उससे वह उस जरूरतमद आदमी को पैसा दिलवा देते, लेकिन अपने लिए उन्होंने कभी कुछ नही लिया। उनका बरताव गैररस्मी, सीधा-सादा था और वह लकीर के फकीर नही थे। इसीलिए उन्होंने बहुत अच्छे प्रशासक होने की शोहरत हासिल कर ली। सचार और फिर खाद्य एव कृषि मत्रालयो को उन्होने बडी खूबी से सँभाला। रफीसाहब से आसानी से मिला जा सकता था। वह मिलने आने वालो की बातें सुनते थे, लेकिन उनके विचारो की रौ मे बह नही जाते थे। वह अपने फैसले खुद करते थे। उनकी मौत नेहरू के लिए बहुत बडा व्यक्तिगत आघात था। वह कई तरीको से रफी की मदद और सलाह लेते रहते थे।

दिल्ली वापस आने पर मैं शुरू मे हमेशा की तरह जवाहरलाल नेहरू के साथ ठहर गया। वह मुझे अकसर अपने साथ सावजनिक सभाओ या सामाजिक सभाओ म ले जाते। एक बार किसी राजदूतावास म राष्ट्रीय दिवस समारोह मे भाग लेकर हम लोग लौट रहे थे। रास्ते मे मैंने उनसे कहा कि ऐसे समारोहो मे उनका शरीक होना अजीब मालूम पडता है क्योकि दुनिया की किसी भी दूसरी राजधानी मे कोई शासनाध्यक्ष ऐसा नही करता। उन्हे मेरी बात पसद नही आयी। उन्होंने कहा, "तुम एक तडक भडक वाले अहिमन्य इसान के बारे म बातें कर रहे हो। वे सामाजिक मलजोल से बचने के लिए अपने को राजनयिक शिष्टाचार की तुच्छ धारणाओ से बाध लेते हैं।" मैं भी झुकने वाला नही था। 'आप ब्रिटेन, अमरीका और सोवियत सघ मे अपने राजदूतो से क्यो नही मालूम करते? क्या इग्लैड की रानी, अमरीका के राष्ट्रपति या जोजेफ स्तालिन कभी हमारे राजदूतावास आये हैं?" लेकिन तब तक हम घर पहुँच चुके थे और खाने का वक्त हो चुका था। अगले दिन साउथ ब्लाक के गलियारो मे यह खबर मशहूर थी कि विदेशी राजदूतावासो को तार द्वारा एक परिपत्र भेजा गया है जिसमे यह पूछा गया है कि 'राष्ट्रीय दिवस आयोजनो मे उपस्थिति का क्या तरीका है?' फौरन ही जवाब आने शुरू हो गये। राजनयिक शिष्टाचार के मुताबिक कोई शासनाध्यक्ष ऐसे समारोह मे भाग नही लेता था। किसी दूसरे देश का शासनाध्यक्ष उनके देश आता है तब ही वे एस समारोहा मे शरीक होते हैं। कार म कही हुई एक आकस्मिक बात के एक पखवाडे के अदर विदेश मत्रालय ने एक दूसरा परिपत्र दिल्ली मे विदेशी दूतावासो को भेजा जिसमे उन्ह यह सूचना दी गयी थी कि "अपनी व्यस्तता के कारण राष्ट्रपति और प्रधानमत्री राष्ट्रीय दिवस समारोहो म भाग नही लेंगे। आइदा से उपराष्ट्रपति भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करेंगे।[1]

---

1 माच 1977 में एक अजीब घटना हुई। उपराष्ट्रपति वासप्पा दानप्पा जत्ती कायवाहक राष्ट्रपति के रूप में काम कर रहे थ। चनाव की सरगरमी की वजह से क्रमश 3 और 17 माच को होने वाले मोरोक्को और आयरलड के राष्ट्रीय दिवसो पर सरकार का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई भी व्यक्ति सुलभ नही था। राजनयिक शिष्टाचार के प्रधान अधिकारी उलझन मे पड गये। उन्होने विदेश सचिव से सलाह मांगी। यह तय

14 नवंबर को नेहरू का जन्मदिन सार्वजनिक बधाई का दिन बन गया। भारी संख्या में लोग उन्हें बधाई देने के लिए आते। कुछ चुने हुए लोग उनके निवास स्थान में अंदर जाकर एक प्याला चाय या कॉफी पीते और मिठाई खाते। रात को परिवार के सदस्य एक साथ मिलकर खाना खाते। अक्सर इसमें लोग अजीबो ग़रीब पोशाकें पहनकर आते। अगर कोई नहीं आता तो नेहरू उसे अपने कमरे में ले जाते और वहाँ टँगी हुई बहुत सी विदेशी पोशाकें दिखाते जो विदेश यात्रा के दौरान उन्हें भेंट में मिली थीं। नेहरू उस व्यक्ति को दावत के लिए कोई पोशाक उधार दे देते। मृदुला साराभाई, जो बड़ी लगन से काम करने वाली कांग्रेसी कार्यकर्ता एवं परिवार की मित्र थीं, सबसे बधाई देने वालों में नियमित रूप से आती। उन्होंने एक बार यह ख्वाहिश जाहिर की कि रात में खाने पर आमंत्रित विशेष व्यक्तियों की सूची में उन्हें भी शामिल किया जाये। मृदुला अपनी अजीब पोशाक के लिए मशहूर थीं। उनकी पोशाक औरतों जैसी नहीं, मर्दों जैसी होती थी। उनके बाल कानों के ऊपर तक छोटे छोटे कटे हुए थे, वह पेशावरी चप्पल, ढीली ढाली सलवार और ढीली-ढाली कमीज पहनती। दुपट्टा गले में यूं ही पड़ा रहता। उन्हें आमंत्रण मिल गया, लेकिन उनसे रूप धरकर आने के लिए कहा गया। उन्होंने पूछा, "मैं क्या पहनूं ?" इत्तिफाक से जवाहरलालजी भी वहीं खड़े हुए थे। उन्होंने अपना सिर खुजलाया, मुसकराये और बोले, 'तुम कपड़े बदलने के लिए औरतों जैसे कपड़े पहनकर आना।" वह बात समझ गयीं और साड़ी पहनकर आयीं। मद्धिम रोशनी और खुशमिजाज लोगों के बीच मृदुला साराभाई लजा रही थीं। दूसरे तरीके से भी नेहरूजी की विनोदप्रियता का पता चलता है। एक बार रफीसाहब ने नेहरू को सेब छीलते देखा और कहा, 'छिलके के साथ सभी विटामिन फेंके जा रहे हैं।" जवाहरलाल अपना काम करते रहे और सेब खाने के बाद उन्होंने छिलके रफी साहब की ओर बढ़ा दिये और बोले, विटामिन हाजिर हैं, नोश फरमायें।"

जवाहरलाल नेहरू संगीत के शौकीन नहीं थे, खासतौर पर उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत में रुचि नहीं थी। एक बार वह मशहूर गायक बड़े गुलाम अली खाँ के संगीत कार्यक्रम में आमंत्रित किये गये। इस कार्यक्रम का आयोजन कस्तूरबा मार्ग पर अब ध्वस्त कांस्टीट्यूशन हाउस के लान पर किया गया था। प्रधानमंत्री जब चलने की तैयारी करने लगे तो उसी वक्त उस्ताद अपना अगला राग छेड़ रहे थे। कार्यक्रम के मुख्य आयोजक उनके पास आये और बोले, "अब गला चलने लगा है। सुनने का वक्त तो अब आया है बस जरा ठहर जाइये।" नेहरू मुस्कराये और बोले, 'वह तो चलता ही रहेगा, मगर मुझे एक जगह पहुँचना है।' इस सिलसिले में मुझे देश के विभाजन के समय बड़े गुलाम अली खाँ के पाकिस्तान चले जाने का वाक़या याद आ गया। वह तीन साल के अंदर ही भागकर भारत

पाया गया कि मैं नुमाइंदगी कर दूं। दोनों दूतावासों को यही सूचना दे दी गयी। मैं जब दाखिल हुआ तो राष्ट्रीय धुनें बजने लगीं। मुझे उस घटना की याद आयी जब मैंने ऐसे समारोहों में नेहरू की उपस्थिति पर विरोध प्रकट किया था। मैं इन्हीं खयालों में डूबा हुआ था कि जबरदस्ती घुस आने वाले लोग जो हर ऐसे समारोह में अपनी मौजूदगी से उसकी शोभा बढ़ाते हैं मेरे पास आकर मुझसे कहने लगे आपको नया पद मुबारक हो। अरब अफ्रीकी देशों सोवियत संघ ईरान अफगानिस्तान चेकोस्लोवाकिया और इंडोनेशिया के राजदूतों ने मेरे आने पर खुले दिल से खुशी जाहिर की और मैंने अपने मन में सोचा कि यह तो सिर्फ एक कर्तव्य है जो मुझे सौंपा गया है।

वापस आ गये। जब किसी ने उनसे पूछा कि अव्वल आप गये ही क्यो थे, तो उन्होने स्वीकार किया "विभाजन के बाद दगो से मैं घबरा गया था। मेरे हवास ठिकाने नही रहे थे और मैंने अपनी जान बचाने की बात सोची, लेकिन पाकिस्तान मे मुझे दूसरी मुश्किलो का सामना करना पडा। एक बार मुझे कुछ चुने हुए लोगो के सामने गाने की दावत मिली। जसे ही मैंने ठुमरी गाना शुरू किया, जिसमे 'श्याम' का जिक्र आया था, तो श्रोताओ मे से किसी ने चिल्लाकर कहा, 'मेहरबानी करके यहा कृष्ण का नाम मत लीजिये।' मैंने पूछा, 'तो मैं किसका नाम लू, मोहम्मद अली जिन्ना कहूँ या लियाकत अली या फिर सिकदर मिर्जा को याद करूँ?' ऐसे रवये की वजह से अपने सगीत के साथ मेरे लिए वहाँ रहना नामुमकिन हो गया।"

विदेश मन्त्रालय मे काम करने की अपनी शान होती है। इससे कुछ मसलो को और अधिक गहराई से समझने का मौका मिलता है। खुले राजनय का तरीका प्रचलित हो गया था, लेकिन इसका एक हलका-फुलका पहलू भी था। गभीर परिणामो की धमकियाँ और अल्टीमेटम के वक्तव्य अखबारो मे छपते, लेकिन किसी राजकीय भोज के खानो की सूची अति गोपनीय दस्तावेज की हैसियत से भेजी जाती। इसे मजाक माना जा सकता था, लेकिन उसकी भी एक हद होती है और अधिक सजीदा स्तर पर, सभी मन्त्रालयो मे नियुक्त किये गये स्थायी विशेषज्ञो की प्राथमिकताएँ भी गलत ढँग से निर्धारित की गयी थी। रफीसाहब ने एक बार कहा था कि आई० सी० एस० न इडियन है, न सिविल है और न सर्विस। लेकिन जब तक इसके आखिरी अवशेष खत्म नही हो गये, आजाद हिंदुस्तान को इसे बरदाश्त करना पडा। सेवा मे हमसे से कई इन गलत कामो से क्षुब्ध थे और कई मौको पर हमने उनके बारे मे बताया भी। 7 जनवरी,1954 को मैंने अपने मनोभाव प्रकट करते हुए प्रधानमन्त्री को एक खत लिखा, जो विदेश मन्त्री भी थे। इस पत्र मे मैंने लिखा

> कोई भी आई० सी० एस० के एक वर्ग के रूप मे विरुद्ध नही है। इनमे कुछ प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं, लेकिन उनके इस खयाल को मजूर कर लेना मुमकिन नही है कि अकेले वही किसी खास मिट्टी के बने हैं। उनमे से कुछ तो निश्चित रूप से हमारे जसे महान स्वतन्त्र देश की प्रशासकीय व्यवस्था के अयोग्य है। उनकी पूरी तालीम ही दूसरे तरीके से हुई है और उनके लिए सीखा हुआ सब कुछ भुला देना आसान नही है। वे हमारे अनोखे सघर्ष से प्रेरणा लेने के लिए आम लोगो के साथ न तो खुले दिल से घुल मिल सकते और न ही उनके प्रति भाईचारे की भावना अपना सकते है। वे यह नही समझ पाते कि आज हम काहे के लिए सघर्ष कर रहे हैं। असलियत यह है कि वे इस हकीकत का कभी जिक्र भी करने मे शर्म महसूस करते हैं। उन्हे डर लगता है कि कही उनसे यह न पूछ लिया जाये कि आप उस वक्त क्या कर रहे थे? अपनी जनता से मिलने जुलने मे वे असमर्थ हैं और कुछ हद तक इसी की वजह से उनमे से ज्यादातर बाहर तैनात किये जाने की जी तोड कोशिश करते है। वे चाहते है कि उन्हे यूरोप या अमरीका मे तैनात किया जाये। वे भारत या एशिया और अफ्रीका मे कही भी चैन नही महसूस करते, क्योकि उन्होने अपने और बाकी लोगो के बीच एक गहरी खाई पैदा कर ली है। अगर उन्हें दूसरो के साथ समान दरजे पर रख दिया जाये तो हो सकता

है कि यह खाई पट जाये और वे अपने चारों तरफ जो कुछ हो रहा है उसमे दिलचस्पी लेने के लिए मजबूर हो जायें। तब उन्हें अपनी काबलियत दिखाने के भी काफी मौके मिलेंगे और उनकी प्रतिभा और काबलियत नया आन बान के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेंगी। आई० सी० एस० के कई सदस्य अपनी मौजूदा हालत के मुकाबले उस स्थिति को बेहतर समझेंगे। वे मोटी तनख्वाहें पाते हैं, लेकिन उन्हें अपने मातहतों से इज्जत नहीं मिलती। आपने इस बात पर बहुत सही जोर दिया है कि आइंदा तरक्कियों के लिए सिर्फ काबलियत पर गौर किया जाय लेकिन सिर्फ काबलियत ही काफी नहीं है। काम के लिए उत्साह और निष्ठा भी लाजिमी है। आजकल इसका बिलकुल अभाव है। इसके साथ यह भी मुनासिब होगा कि जिन लोगों ने परिवर्तन या तरक्की के लिए कोई उत्साह नहीं दिखाया है, उन्हें अनुचित ऊँचाइयों से नीचे ले आया जाय। मौजूदा वक्त में श्रेणी, हैसियत और अंतर का वर्गीकरण मिलता है जिसका आधार किसी व्यक्ति की योग्यता नहीं बल्कि वह ओहदा होता है जिस पर वह पहुँच चुका है। जो लोग चोटी पर बैठे हैं उन्हें अगर नीचे से कोई सुझाव दिया जाय तो वे चिढ़ जाते हैं। वे यह उम्मीद करते हैं कि उनके मातहत सिर्फ उनकी हाँ में हाँ मिलायें, पहल कदमी की भावना कम कर दी जाती है और हमसे यह उम्मीद की जाती है कि हम अपने सामने मौजूद विभिन्न खामियों और दुश्वारियों की तरफ से आँखें मूंद लें और बिलकुल उदासीन हो जायें। हमें राष्ट्रीय हितों की ओर ध्यान दिलाने के लिए उत्साहित नहीं किया जाता, क्योंकि यह माना जाता है कि उच्च अधिकारी राष्ट्रीय हितों के बारे में मातहतों को बतायेंगे। ऐसा शायद ही कभी होता हो और अनिश्चित काल के लिए इंतजार नहीं किया जा सकता।

एक उर्दू का शेर इन मनोभावों को और अच्छी तरह से व्यक्त करता है

हमने माना कि तगाफुल न करोगे लेकिन
खाक हो जायेंगे हम तुमको खबर होने तक।

विदेश सेवा से बढ़ती हुई निराशा के कारण मैंने पत्र के अंत में यह अनुरोध भी किया कि मुझे इस्तीफा देकर अपनी क्षमताओं का और कहीं इस्तेमाल करने की अनुमति दी जाय। जवाहरलाल इससे सहमत थे कि पत्र में जो कुछ कहा गया है उसका ज्यादातर भाग सही है, लेकिन चूंकि वह नयी नीति बनाने में व्यस्त थे इसलिए उन्होंने मुझे नौकरी न छोड़ने के लिए राजी कर लिया। यह बात 1954 की है। मैं 1974 तक काम करता रहा और जब मैंने अंत में विदेश सेवा छोड़ी तो मेरे रिटायर होने में कुछ ही समय बाकी था। मैंने अपनी उस कसम को पूरा किया था कि समय पूरा होने से पहले ही नौकरी छोड़ दूंगा और सेवाकाल में वद्धि मंजूर नहीं करूँगा।

भारतीय विदेश सेवा में आने वाले नये नौजवानों को उन्नीसवीं सदी की इस धारणा को रद्द करना पड़ा कि यह सेवा संपन्न लोगों को करदाता के पैसे के बल पर मजे उड़ाने का मौका देती है। दुनिया में स्वाधीन भारत किस तरह से काम करे इसके लिए नयी दिशा के बारे में जवाहरलाल नेहरू कितने सजग थे, इसका पता 1958 में स्पेन में मेरी नियुक्ति पर उनकी प्रतिक्रिया से चलता है।

इस नियुक्ति के बारे मे सुनने पर मेरे एक दोस्त ने मुझसे कहा कि उनके खयाल मे एक रोमाचक नियुक्ति के लिए मैं गलत आदमी हूँ। उनसे अपनी बात साफ करने के लिए कहा तो वह बोले, "आप सिगरेट पीते नही, शराब पीते नही, नाचते हैं नही, आप गोल्फ या ब्रिज खेलते नही हैं तो फिर आप मैड्रिड जैसी जगह मे करेंगे क्या ?" मैंने जवाब दिया कि नियुक्ति मे मेरा तो कोई दखल नही था और अब कोई चारा भी नही है। लेकिन जब मैं प्रधानमंत्री से विदा लेने के लिए गया तो मेरे दिमाग में वह चेतावनी मौजूद थी। मैंने उन्हे बताया कि मेरे दोस्त ने क्या कहा था। वह मुसकराये और बोले, 'बेहतर हो कि तुम अपने दोस्त को बता दो कि जल्दी ही हर एक सरकार किसी नियुक्ति के लिए किसी राजनयिक को चुनने से पहले इसका यकीन कर लेगी कि वह सिगरेट नही पीता, शराब नही पीता, नाचता नही और गोल्फ या ब्रिज नही खेलता, ताकि वह कुछ काम कर पाये।"

भारत मे गुट निरपेक्षता के प्रति औपनिवेशिक अफसरशाही के विद्वेष का सबसे बडा शिकार खुद गुट-निरपेक्षता की धारणा थी। हालांकि यह एक ऐतिहासिक परपरा का युक्तिसगत परिणाम थी और इससे विरोधी विचारो को टकराव से बचकर बीच का मार्ग निकाल लेने की गुजाइश मिलती थी, फिर भी यह उनका आदर पाने मे नाकामयाब रही। यह आजादी के हमारे अनोखे सघर्ष के अनुरूप थी और इसका उद्देश्य हमारे रोजमर्रा के हितो को सुरक्षित रखना था, लेकिन न तो वे इसकी क्षमता समझ पाये और न इस हकीकत को समझे कि इस पर अमल करने से फौरन ही हमारी हैसियत बढ जायेगी। उन पर इसका कोई असर नही पडा कि अधिकाधिक देश इसकी कीमत समझते जा रहे है।

विदेश सेवा म हमारे ही एक सहयोगी न फरमाया था, "जब तक यह बेमानी नीति बिलकुल रद्द नही कर दी जाती तब तक पश्चिम म दोस्त बनाने की कोई उम्मीद नही है।" एक यूगोस्लाव राजदूत न इन्ही महाशय से बातचीत के बाद बहुत दुख से कहा, "नेहरू के वतन के इस मन्द बुद्धि वाले व्यक्ति के मुकाबले म कनाडा वालो को गुट निरपेक्षता के फायदो के बारे मे यकीन दिलाना ज्यादा आसान था।" यह बात साफ है कि अगर हम इस विवेकपूर्ण और बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण को न अपनाते तो हम किसी न किसी शक्ति के गुट के पिछलग्गू बन रहते। 1956 के बाद गुट निरपेक्षता विश्व शाति और स्थायित्व के लिए भारत की देन माना जाने लगा और यह एक फेशनबुल नारा भी बन गया। गुट निरपेक्षता के प्रति बडी ताकतो का विरोध भी कुछ हलका पडा। नौजवान आई० एफ० एस० (भारतीय विदेश सेवा) अधिकारी उसके फायदेमद और सकारात्मक पहल पर जोर देने लगे। उन्होने अपने और अफ्रीकी एशियाई समाज के बीच सद्भाव कायम करने की कोशिश की। कुछ लटिन अमरीकी और कुछ यूरोपीय देश भी इस बिरादरी मे शामिल हो गये और कुछ, जो बाहर रह गये थे, जबरदस्ती इसम शामिल होने की कोशिश करने लगे। अतर्राष्ट्रीय राजनय म नये आयाम जुड गये। गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन का महत्व बढ गया और पश्चिमी देशो के सचार के माध्यम उनको सम्मान की नजर से देखने लगे।

पिछले 32 वर्षों मे बहुत से 'महामहिम' पैदा हुए, भारतीय विदेश सेवा के सदस्य जिनकी खिल्ली उडाते थे। फिर भी ऐसे कुछ ही देश है जिनके पास ऐसे काबिल और क्षमतावान लोग हो। बहुत से राजदूतो ने अपनी मातृभाषा का सम्मान बढाया। उनमे से कुछ दुनिया की कई राजधानियो मे अपने समकक्ष

लोगों के मुकाबले बहुत बेहतर थे, लेकिन कुछ 'कुलकलक' भी थे। एक भिन्न प्रसग मे यह कहा गया है कि अकेला एक अँग्रेज बेवकूफ होता है, दो मिलकर किसी के भी मुकाबले खडे हो सकते है और तीन राष्ट्र बना लेते है। हमारे मामले म यह कुछ दूसरे तरीके से कहा जायेगा। अकेला एक भारतीय मेधावी, प्रतिभाशाली होता है, दो होने पर जातियाँ बन जाती हैं और तीन आपस मे लडने लगते हैं। कभी कभी मिल जुलकर काम करने की भावना के अभाव मे मुसीबत पदा हो जाती है। रियो डि जेनेरो मे हमारे राजदूतावास मे जो हुआ वह उसका एक अच्छा उदाहरण है। तीन राजनयिक मीनू मसानी, जे० एन० अटल और कृष्ण कृपलानी क्रमश राजदूत, कानूनी सलाहकार और प्रथम सचिव (सास्कृतिक) वहा तैनात थे। ये तीनो अच्छे परिवारो के सुशिक्षित लोग थे, और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि भी बढिया थी। उनकी पत्नियाँ भी पढी लिखी और काफी सुसस्कृत थी, लेकिन फिर भी वे हिल-मिल नही पाये। गडबडी की वजह यह थी कि राजदूत अपने बेटे की आया से नाराज हो गये, उसने एक दूसरे अधिकारी के यहाँ पनाह ली, इस पर उनके आका नाराज हो गय। उनके बचकाना झगडा की वजह से रियो मे और यहाँ विदेश विभाग मे शिकायतो और जवाबी शिकायतो का ताँता लग गया।

भारतीय विदेश सेवा के अधिकाश लोग, जिन्होन पेशे के रूप मे उसे नही अपनाया अपने को कानून से परे मानते थे। दूसरे लोग इस तरह से काम करते गोया विदेश सेवा उन्ही के बल पर चलती है और वे अपने को प्रधानमत्री का चहेता मानते थे। भीमसेन सच्चर के मामले म यह रुझान अपनी चरम सीमा को पहुँच गया था। वह पजाब के मुख्यमत्री थे और उन्होंने राज्यपाल के पद पर भी काम किया था। अप्रल 1965 मे वह भी लका म उच्चायुक्त बनाकर भेजे गये। उन्होने प्रधानमत्री के अलावा किसी दूसरे से खतोकिताबत करन से इकार कर दिया। कभी कभी बडी उदारता दिखाकर वह विदेश सचिव से बात कर लेते थे। बताया जाता है कि लालबहादुर शास्त्री न इस सिलसिले मे एक बार टीका की "सच्चर को भारत से बाहर मुझसे पत्र व्यवहार करने के लिए नही भेजा गया था।' आखिरकार उन्हे वापस बुला लिया गया और वहाँ का दूतावास गैर जरूरी परेशानिया से बच गया। एक एम० सी० छागला थे जो विदेशमत्री बन गये। उनकी भोडी और भद्दी गलतिया को नजरअदाज कर दिया जाता, या उन्हे छिपा लिया जाता। तेहरान मे उन्होने जो कमाल दिखाया था उसे भुलाया नही जा सकता। अप्रल 1967 मे वह ईरान गये और शाह से मिले। बाद म सवाददाताओ से बातचीत करते हुए उन्होंने बहुत इतमीनान से कहा, 'ईरानी सरकार भारत की भूमिका को अच्छा समझती है और यह मानती है कि हमारे साथ विवाद म पाकिस्तान का रुख बेजा और बेतुका है। भारत और पाकिस्तान में एक और जग होन की हालत म ईरान पाकिस्तान की हिमायत नही करेगा।' हमारे समाचारपत्रो म यह वक्तव्य बहुत प्रमुखता से छापा गया। इस घोषणा से उनके मजबान बौखला गये और ईरान से उनके रवाना होन के कुछ ही घटा के अदर ईरानिया ने "पाकिस्तान को हमारे बिना शर्त समर्थन के बारे म इतना गुमराह करन वाले जायजे पर झुझलाहट जाहिर की। उन्होने कहा कि यह बहुत बडा मसखरा और फित्रमोख्ता है जिसका मतलब फारसी म भद्दा और घिनौना इसान होता है। इससे चिढकर उन्होंने पाकिस्तान के साथ एकता और भाईचारा बढ़ान के लिए कदम उठाये। छागला को इस्तीफा दे देना चाहिए था। भारत

सरकार को इससे जिस उलझन का सामना करना पडा उसे विदेश मत्रालय ही जानता है, जिसे बाद मे यह गदगी साफ करनी पडी। छागला को कई वरिष्ठ जजा को हक मारकर तत्कालीन बबई का मुख्य न्यायाधीश बना दिया गया था। उस वक्त उन्हे पदोन्नति के लिए केवल वरिष्ठता को आधार न मानने के सिद्धात से होने वाले फायदे हासिल करने म कोई हिचकिचाहट नही हुई। मुख्य न्याया धीश का पद छोडने के बाद राजदूत और केंद्रीय मन्त्रिमडल मे मत्री बनन पर उनके दिल ने नही कचोटा, लेकिन 1970 के बाद वाले दशक के बीच म यही सज्जन थे जिन्होने सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशो की वरिष्ठता को पदोन्नति के लिए आधार न मानने पर श्रीमती गाधी के खिलाफ वावैला मचाया था।

'हमारे महामहिम' विदेश मत्रालय को जो रिपोर्टें भेजते थे उसम लाजिमी तौर पर उनके अपन महत्व पर जोर दिया जाता। कभी कभी वे कुछ बात कहने के लिए किसी राष्ट्रपति या प्रधानमत्री से वार्तालाप की मनगढत कहानी बना लेते। दूतावासो से सबद्ध प्रेम-सपर्क अधिकारी को आका का प्रचार करन के लिए काम करना पडता, क्योकि विदेशो मे उनकी कोई परवाह न करता इसलिए बेचारे जन सपर्क अधिकारी से यह उम्मीद की जाती कि वह भारतीय समाचारपत्रा मे उनका प्रचार करें। वाशिगटन मे हमारे राजदूतावास मे इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण मिलता है। जून 1965 मे पूरे अमरीका के भारतीय छात्रो की एक सभा का आयोजन किया गया जिसे न्यूयार्क म हमारे राजदूत सबोधित करने वाले थे। वह न्यूयार्क और सैन फ्रासिस्को स्थित महावाणिज्य दूता, प्रेस अधिकारी राजदूतावास के दो अधिकारिया और अपन निजी सचिव के साथ इस ऐतिहासिक अवसर पर वहाँ पहुँचे। उस बडे हॉल म कुल मिलाकर पाच मसखरे लगने वाले हिंदुस्तानी बैठे थे जो इस यशस्वी मुख से गिरने वाली अमन की बूदो और ज्ञान के शब्दो को बटोरने के लिए वहा मौजूद थे। अमरीका मे तो यह कलक का दिन किसी तरह गुजर गया। लेकिन भारतीय समाचारपत्रो मे राजदूत का यह भाषण इस ढँग से छापा गया मानो यह दुनिया को हिला देने वाली कोई घटना थी। इसी तरह से कुछ लोगो की शोहरत बनी थी और स्वदेश मे आसानी स हर बात पर यकीन कर लेन वाला पर, जिनमे सत्तारूढ लोग भी शामिल हैं, झूठा प्रभाव डाला जाता था।

लेकिन पेशेवर राजनयिको मे कुछ बेहद काबिल लोग भी थे। सक्षेप म अगर बतायें तो सर गिरिजाशकर बाजपेयी के बेहतरीन आत्मविश्वास, सर राघवन पिल्लई के शात धैर्य और नीरस दृष्टिकोण, के० पी० एस० मेनन की नरमदिली, जिन्होने एक बार एक मातहत को "बहुत बढिया गलती करन" के लिए झिडका था, उभरकर सामने आती है। घमडी आर० के० नेहरू के बाद आये एम० जे० देसाई जिन्होने साउथ ब्लॉक मे अपने सहयोगी की मौजूदगी स उत्पन्न कमियो को पूरा किया, धमभीरू सुबिमल दत्त मेहनती जरूर थे लेकिन बिलकुल नीरस। उनके बाद आने वाले कुछ लोग निष्ठावान थे, लेकिन उनमे कोई महत्वपूण उप-लब्धि हासिल करन की लगन नही थी। कुछ दूसरा की आकाक्षाओ मे उद्देश्य की कमी थी और वे हास्यास्पद चापलूस बनकर रह गय। उनमे मे कुछ एक सजग बुद्धिमत्तापूण विदेश सेवा की नीव डाल सकते थे, लेकिन बदकिस्मती से उनमे स्पष्ट दृष्टिकोण का अभाव था जबकि अपनी स्वाथपरता से वे राष्ट्रीय हितो को नजरअदाज करते थे। उन्होने अपने बेटो और दामादो को सेवा मे शामिल करन

की जो कोशिश की अपने फायदे के लिए जो नियम बनाये और अपने वर्ग को मुक्त करने के लिए उन्होंने जो तिकड़म की उन्हें देखकर सचमुच ताज्जुब होता है। इसके आधे उत्साह से भी अगर वे किसी अधिक बड़े उद्देश्य को पूरा करने के लिए काम करते तो हम सही दिशा में आगे बढ़ सकते थे। इसीलिए दीर्घकाल में हमें परेशानियाँ उठानी पड़ी।

हमारे कुछ राजनयिकों का आचरण घोर निंदनीय था। कुछ अपनी बेवकूफियों और भोंडेपन के लिए मशहूर हो गये। सरकार को एक ऐसे राजदूत को बरखास्त करना पड़ा जो बड़े इत्मीनान से निजी लाभ के लिए विनिमय-व्यापार करते थे। स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों में मुफ्त बाँटने के लिए टी बोर्ड की ओर से उपहार में दिये गये चाय के डिब्बों को एक स्थानीय स्टोर को देकर उनके बदले में वह पनीर, मुरब्बा, सिगरेटें व दूसरी चीजें ले लेते थे। एक दूसरे थे जो पगड़ी बाँधा करते थे और जिनकी मजाकिया ढंग की बड़ी नुकीली मूँछें थीं। उन्होंने अपनी तनख्वाह और विदेशी भत्ते को जमा करके और सिर्फ विदेशी मुद्रा विनिमय पर गुजर-बसर करके देश और विदेश के महाजनों को मात कर दिया। 1960 के दशक में विदेशी सेवा के एक आई० सी० एस० अधिकारी ने घरेलू सामान जमा करने के लिए अपनी राजनयिक निरापदता व बचत का बेजा इस्तेमाल किया। एक पड़ोसी देश से अपना घरेलू सामान दिल्ली लाने के लिए उन्होंने यातायात के विभिन्न साधनों का इस्तेमाल किया। राजनयिक शिष्टाचार के एक प्रधान अपनी छपी हुई तसवीर देखने के इतने शौकीन थे कि वे बाहर से आये हुए अतिथि की परवाह किये बिना खुद फोटोग्राफर के सामने खड़े हो जाते थे। एक बार एक राजदूत ने कुछ अन्य राजदूतों व उनकी पत्नियों को रात्रिभोज पर आमंत्रित किया। उन्होंने पाजामा पहने हुए उनका स्वागत किया। वह गले में मफलर लपेटे हुए थे और ओवरकोट पहने हुए थे जिसके कालर में एक बड़ी सफेद पिन लगी हुई थी। उनके पास एक छोटा सा लड़का नौकर था जिससे उनका अपना मनोबल भले ही ऊँचा होता हो लेकिन वह कोई खास अच्छा काम नहीं करता था। कुछ तश्तरियाँ एक छोटी सी मेज पर रखी थीं लेकिन छुरी काँटे और चमचे कहीं दिखायी नहीं दे रहे थे। एक बड़े से कटोरदान से खाना परोसा गया। राजदूत को अपने मेहमानों का इतना ज्यादा खयाल था कि एक बार उन्होंने कटोरदान से खाना निकालने में अतिथियों की मदद करनी चाही तो जरा जोर का झटका लगने से सारा खाना ब्रिटिश राजदूत की पत्नी की गोद में उलट गया। उस महिला को अपनी खूबसूरत पोशाक से, जो बेहद खराब हो गयी थी, खाना हटाते देखकर वह बोले, 'श्रीमतीजी, आप परेशान न हों रसोई में अभी बहुत खाना रखा हुआ है।"

और फिर एम०एस० थे जो अपने घर पर रहने वाले कुत्ते के नाम खत भेजा करते थे। उनका नौकर इन खतों को जोर से पढ़कर कुत्ते को सुनाता था। राजदूतावास के एक अधिकारी को ऐसे गंभीर मौकों पर मौजूद रहना पड़ता। जब कुत्ता अपने मालिक के दिल की बात सुन लेता, और वह उसे बता देते कि उसकी जुदाई से उन्हें कितनी तकलीफ हुई और कुत्ते को उनकी कितनी याद आती होगी, तब ही खाना परोसा जाता। विदेश सेवा की एक और नायाब हस्ती थे जिन्होंने एक आधुनिक लेखक व पत्रकार एस० एच० वात्स्यायन का परिचय सदियों पुराने कामसूत्र के लेखक की हैसियत से कराया।

एक दूसरे 'असाधारण दूत' थे जिनका अहंभाव इतना ज्यादा बढ़ा हुआ था कि

उन्होंने अपने निजी सचिव को यह परिपत्र जारी करने का आदेश दिया कि महामहिम की इच्छा है कि "जब कभी औपचारिक या अनौपचारिक रूप से महामहिम को संबोधित किया जाये तो महामहिम को लाजिमी तौर पर महामहिम कहा जाये।" ऐसे ही एक दूसरे साहब ने एक एशियाई देश के प्रधानमंत्री से उनके देश की आबादी पूछी। जब उन्हें आबादी बता दी गयी तो वह बोले, "लेकिन यह तो उस ज़िले की आबादी के बराबर है जहाँ मैं कलेक्टर था।" नतीजा यह हुआ कि प्रधानमंत्री ने उनसे कभी बातचीत नहीं की। दूसरी जगह भी ऐसी ही गड़बड़ियां हुई। एक दूसरे दूत ने एक अमरीकी पत्रकार को बहुत विस्तार से यह बताया कि कैसे उन्होंने तुर्की के राष्ट्रपति को गलती से कुली समझ लिया था और इस्तांबुल के एक होटल की सीढ़ियों पर उन्हें बख्शीश दे दी थी। वह भी कभी राष्ट्रपति से नहीं मिल पाये जिन्होंने उसके बाद इतने "अविवेकी और पेट के हलके राजनयिक से मिलने से इंकार कर दिया।"

सर महाराजसिंह, जो 1950 के बाद वाले दशक के शुरू में अविभाजित बंबई के राज्यपाल थे, संयुक्त राष्ट्रसंघ में पहले भारतीय शिष्टमंडल में शामिल कर लिये गये और वह उसकी एक समिति में भी निर्वाचित हो गये। वह अहमन्य और बेसबरे थे। वह एकदम से बोलने के लिए खड़े हो गये। उनके नौजवान विदेशी सेवा सहायक ने सलाह दी कि पहले दूसरे लोगों की बात तो सुन ली जाये, तो वह निराश होकर बैठ गये। इससे उन्हें नींद आ गयी और वह खर्राटे भरने लगे। परेशान अधिकारी ने उन्हें टहोका देकर जगाया। सर महाराजसिंह उछल कर बैठ गये। उन्होंने समझा कि उनकी बोलने की बारी आ गयी है। जब उन्हें दूसरी बार रोका गया तो वह गुस्से में चीखकर बोले, "तुम मुझे न बोलने देते हो और न सोने देते हो, फिर मैं क्या करूँ?" उसके बाद वह दीर्घा में चले गये और एक कोने में एक बड़ा सोफा पड़ा देखकर उस पर लेटने का फैसला किया। एक अमरीकी प्रतिनिधि ने समझा कि वह बेहोश हो गये हैं और उसने शोर मचा दिया। फौरन ही प्राथमिक चिकित्सा का इंतजाम कर दिया गया। तब मालूम पड़ा कि यह विशिष्ट भारतीय तो सिर्फ आराम फरमा रहे थे।

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित सोवियत संघ में पहली भारतीय राजदूत थीं। स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों और राजनयिकों ने उन्हें दावतों और समारोहों में साड़ी पहने देखा और उन्हें इसकी आदत भी पड़ गयी। उनके बाद आये एक नौजवान अधिकारी राजेश्वरदयाल, जो बाद में बढ़कर विदेश सचिव हो गये थे, काली अचकन और सफेद चूड़ीदार पाजामा पहनकर अपने पहले औपचारिक स्वागत समारोह में भाग लेने के लिए आये। राजनयिक शिष्टाचार अधिकारी ने दरवाजे पर रोकने की कोशिश की, उनकी आस्तीन खींची और सहानुभूति से कान में कहा "श्रीमान, आप पतलून पहनना भूल गये हैं।" गर्वीले प्रभारी दूत ने झटककर उसे अलग कर दिया और गर्व से हाल में दाखिल हुए, लेकिन उन्होंने देखा कि कई लोगों की आंखें ताज्जुब से फैल गयी और एक साजिशी कानाफूसी होने लगी। पश्चिम वालों को अपनी सफेद टाई या दुमदार कोट वाली पोशाक के अलावा कोई दूसरी औपचारिक राष्ट्रीय पोशाक देखने का यह पहला मौका था। तब तक कुछ थोड़े से ही एशियाई अंतर्राष्ट्रीय मंच पर पहुँचे थे। जापानियों ने यूरोपीय ढंग से रहना बेहतर समझा और अपना जापानी चलन स्वदेश के लिए रख छोड़ा था। चीनियों, थाईलैंड वालों, अफगानों और ईरानियों ने भी यह तरीका अपनाया। इथियोपिया और मिस्र के अलावा अफ्रीका इस तसवीर में

शामिल नही था और इथियोपिया और मिस्र दोनो का यह खयाल था कि पश्चिम वाद सच्ची अतर्राष्ट्रीय छवि का एक चिह्न है।

चूडीदार के बारे मे जिक्र करते समय मेरे दिमाग मे दो घटनाएँ आती हैं। ये उस समय की घटनाएँ हैं जब 1965 म सरदार स्वर्णसिह विदेशमत्री और सयुक्त राष्टसघ मे भारतीय प्रतिनिधिमडल के नेता थे। उ होने अपने कपडे, जिनमे कुछ चूडीदार पाजामे भी शामिल थे, धुलने के लिए भेजे। डाइवर जब कुछ दिन बाद कपडे लेने के लिए गया तो लाड्री का मैनेजर बहुत उत्कठा से बाहर आया और बोला "पास पडोस के बच्चे उस व्यक्ति को देखना चाहते हैं जिसकी टाँगें इतनी लबी हैं। अगर वह खुद अपने कपडे लेने आयें तो मैं आपसे धुलाई के दाम नही लूगा।" तुर्की मे 1949 की शरद ऋतु मे दावतो के पहले दौर के दौरान एक फ्रासीसी राजनयिक ने चकित होकर मुझसे पूछा, "आप दिन मे पाजामा पहनते हैं तो रात म फिर क्या करते है?" मुझे उसे यह समझाने म कुछ वक्त लगा कि पाजामे का चलन कसे शुरू हुआ और पश्चिम को इसके लिए हमारा एहसान मानना चाहिए कि वे एक आरामदेह पोशाक म सो सकते हैं। मैंने कहा कि सोचिये, इसके पहले आपकी क्या हालत होती थी, रात म या तो मोटी पतलून पहने रहते थे या कुछ भी नही।

तीन भारतीय महिलाओ का एक सदभावना शिष्टमडल 1955 मे जापान भेजा गया। मेजबानो को यह पता लगा कि मुस्लिम महिला सुअर का गोश्त नही खाती। दूसरी हिन्दू महिला गाय का गोश्त नही खायेगी और तीसरी शुद्ध शाका हारी है। एक चकित लेकिन तेजतरार अखबार वाले ने एक अनोखी खबर भेजी 'भारत से तीन महिलाएँ आयी हैं। एक सुअर का गोश्त नही खाती, एक गाय का गोश्त नही खाती और तीसरी कुछ भी नही खाती।"

दिल्ली मे 1947 मे पहले मिस्री राजदूत इस्माइल कामिल बे पुरानी सस्कृति की उपज थे। अपने रहन सहन म वह अपने क्रातिकारी आकाओ की तरह नहीं, बल्कि शाह फारूक का अदाज अपनाते। वह शराब, अच्छे खान और आकर्षक सगत के शौकीन थे। 1949 के शुरू म वह लखनऊ आये। श्रीमती सरोजिनी नायडू उस समय राज्यपाल थी। यह सोचकर कि उनके अतिथि को शायद अपने मजहब की पाबदियो की वजह से कुछ खाने म परहेज हो, उन्होंने इस कठिनाई को दूर करने की कोशिश की। वह यह भी चाहती थी कि विशेष अतिथि घर जैसा आराम महसूस करें। उन्होंने कहा, महामहिम इस घर म मैं गाय या सुअर का गोश्त नही परोसती।" मिस्री दूत को इन परहेजो की कोई परवाह नहीं था। असलियत मे वह एकदम से चौंक गये और बोले, 'तो फिर आप नाश्ते म क्या परोसती हैं? मैं भी वही था क्योकि मैं भी लखनऊ गया हुआ था और उस समय राज्यपाल के साथ ठहरा हुआ था। कामिल बे ने आँख से इशारा किया और मुसकराकर बोले, 'मैं सिर्फ उन चीजो से डरता हूँ जो मुझे खा लें और मैं उनसे नही डरता जिन्हें मैं खुद निगल लू। दिल्ली म बाद म वह मशहूर हस्ती बन गये और वह अपने श्रोताओं को अपने लबे और रंगीले जीवन के किस्से सुना कर उन्हें आनदित करते।

भारतीय राजदूत के बारे म सबसे मजेदार किस्सा जिदबई का है जो काफी लबे अर्से तक जद्दा म तनात रहे। 1956 का साल था। राजदूतावास भवन में वातानुकूलन की सुविधा नहीं थी लेकिन सऊदी अरब के शाह ने भारतीय राज दूत को एक वातानुकूलित कार उपहार में दी थी। गरमी का मौसम था। उमस

भरी गरमी के सताये हुए राजदूत अपनी पत्नी के साथ रोज रात को उस ठडी आरामदेह कार में सोते थे। इसी देश में भारत की तसवीर उज्ज्वल करन के लिए उन्होंने एक अनोखा तरीका अपनाया। राजदूत ने ठडे पानी के बडे-बडे मटके जद्दा से मक्का जाने वाली पूरी सडक पर रखवाने चाहे ताकि तीर्थयात्री अपनी प्यास बुझायें और भारत का गुण गायें। पहले तो प्रधानमंत्री नेहरू ने इस सनक भरे सुझाव के लिए उन्हे झिडका, लेकिन फिर इस बहुत बडा मजाक समझ लिया। वह इसे 'मटका राजनय' कहते थे।

1956 मे मार्शल बुलगानिन और ख्रुश्चेव की भारत यात्रा के बाद साउथ ब्लाक के गलियारो मे एक उडती उडती खबर फल गयी कि जवाहरलाल नेहरू ने उनसे पूछा कि उन्होने भारत मे जो कुछ देखा उसके बारे म उनकी क्या राय है, तो दोनो ने अपने स्वागत और भारत की शानदार प्रगति की तारीफ की। उनसे जब इस बात पर जोर दिया गया कि वह भारत की कुछ खराबिया बतायें तो ख्रुश्चेव न कहा कि "चमकती हुई पिछाडी के अलावा बाकी सब चीजें बढिया हैं।' नेहरूजी एक लम्हे के लिए तो भौचक्के रह गये, लेकिन वह फौरन ही समझ गये कि ख्रुश्चेव उन लोगो का जिक्र कर रहे हैं जो सवेरे तडके सडका अथवा रेलवे लाइनो के किनारे नित्यकम से निवत होते हैं। यह तो खैर सही था, लेकिन कहानी इसके आगे भी है। कहानी का अगला हिस्सा नेहरू की सोवियत सघ की यात्रा से जुडा हुआ है। ख्रुश्चेव ट्रेन मे उनके साथ लेनिनग्राद तक गये। बताया जाता है कि एक छोटे स्टेशन पर टेन के रुकने पर नेहरू ने अचानक एक चमकती हुई पिछाडी देखी और उन्होंने बहुत खुश होकर यह दृश्य ख्रुश्चेव को दिखाया। ख्रुश्चेव ने अपराधी को हाजिर करने का आदेश दिया। कुछ देर बाद उनका सहायक लौट आया और आकर चुपचाप खडा हो गया। ख्रुश्चेव चिल्लाये, "वह आदमी कहा है?" और सहायक न सहमते हुए जवाब दिया, "उसका कहना है कि वह राजनयिक हैं और इसलिए उन्हे पूरी छूट है। उनका कहना है कि वह भारतीय राजदूत है।" नेहरू विनोदप्रिय थे और भारतीय आदत पर इस व्यग्य को बरदाश्त कर सकते थे।

कई देशा म भारत की सेवा करने और तारीफें व गालिया दोनो सुनने के बाद मैं यह समझ सका कि विदेशी पृष्ठभूमि मे भारतीय मनोभाव क्या होता है।

बाडुग म अप्रैल 1955 मे जो पहला एशियाई अफ्रीकी सम्मेलन हुआ था वह इन दोनो महाद्वीपो म होने वाली जागति की एक युगातरकारी घटना थी। एक साल पहले बोगोर मे भारत, बर्मा, श्रीलका और पाकिस्तान के प्रधानमत्रियो और इडोनेशिया के प्रेसीडेंट ने इस सिलसिले मे पहलकदमी की थी। उन्होने एक अपील जारी की और अपने यहा यह ऐतिहासिक सम्मेलन करने का प्रस्ताव रखा। उन्होने यह भी कहा कि वे इसे सगठित करने और काम करने के लिए सयुक्त सचिवालय में काम करने के वास्ते अपने यहा से अफसर भी भेज देंगे। भारत से भेजे जाने वाले अफसरा म मैं भी था। मैं जोगजकार्ता के जमान से महासचिव रोस्लन अब्दुल गनी को जानता था। उन्होने मुझे फौरन ही सचि-वालय म सलाहकार का दर्जा दे दिया। वरिष्ठता क्रम मे उनके बाद मेरा नबर आता था। मैं अधिकाश इडोनेशी नेताओ को जानता था और जो कुछ काम होता था उसके बारे मे हम खुले दिल से अच्छी तरह बात कर सकत थे। सुकार्नो और उनके मत्रियो को यह भरोसा था कि मुझे उनकी मातृभूमि से लगाव है और उन्होंने मेरे सुझावो का स्वागत किया। इससे मेरा काम और आसान हो गया,

लेकिन उसन मेरे कंधो पर भारी जिम्मेदारी भी डाल दी। इडोनेशी चाहते थ कि यह सम्मेलन बहुत सफल हो और परिणाम उनकी आशा के अनुकूल हुआ।

बादुग सम्मेलन मे एशिया व अफ्रीका के मशहूर नेताओ ने भाग लिया। वहाँ नेहरू, नासिर चाऊ एन लाई, सुकार्नो, फॉम वान दोग व अनेक प्रख्यात लोग मौजूद थे। उन्हे यह सुनहरा मौका मिला था कि एक दूसरे से व्यक्तिगत सपक व घनिष्ठता कायम कर लें। उन्होंने जो फसले किये वे महत्वपूर्ण हो गये। उसस भी बडी उपलब्धि थी बादुग भावना का जन्म, जिससे नेहरू की गुट निरपेक्षता की अवधारणा को एक वास्तविकता बनाने का रास्ता खुला। यह सम्मलन एक अनोखा अनुभव था, पर मैं यहा अपनी बात उन चद फुटकर घटनाओ तक सीमित रखूगा जिनका मुझ पर सबसे ज्यादा असर पडा। डाक्टर अली सस्त्रामिदजोजी, जिन्हे सम्मेलन की अध्यक्षता करनी थी एक दिन मुझसे कहने लगे कि मैं बहुत व्यस्त हूँ, इसलिए अध्यक्षीय भाषण का एक खाका आप लिख दीजिये। मैं भी बहुत व्यस्त था, पर इस बात का कोई महत्व नही था। इस प्रस्ताव के पीछे जो स्वर था वह बहुत ही महत्व का था, जिससे मैं भौचक्का सा रह गया। मैं सिवा इसके और क्या कर सकता था कि नेहरू की मदद लू! वह एकदम नाराज हो गय, होठ चबाने लगे और बोले "सस्त्रामिदजोजी को हो क्या गया है? क्या वह इस शहर मे जो सम्मेलन हो रहा है उसका महत्व नही समझते? यहा एशिया और अफ्रीका एक साथ इकट्ठे हो रहे है और सारी दुनिया दम साधे सुनने को बठी है कि यहा क्या कहा जा रहा है? और वह चलते फिरते तुमसे कह देते हैं कि कुछ घसीट दो जिसे वह उदघाटन के समय पढ दें! यह तो फजीहत वाली बात है।" मैंन कुछ उखडकर कहा "आपकी राय मेरे बारे मे जो भी हो, इडोनेशियाइ राय काफी अच्छी है। मैं सयुक्त राष्ट्रसघ के लिए उनके भाषण तैयार करता रहा हूँ।' नेहरू मुझे नाराज होकर घूरते रहे फिर लिखने बैठ गये। वह दिन के ज्यादातर वक्त लिखते ही रहे। मैंन उनसे वे पन्ने लेकर कहा कि मैं उन्हें तरतीव से लगा दूगा। सस्त्रामिन्दजोजी बहुत खुश हुए और बोले "मैं बिलकुल यही चाहता था।' उन्होंन उन पन्नो को अपनी फूली हुई जेब म ठूस लिया। उन्होंने उन पन्नो को घर पर पढा होगा। पर अगले दिन जब वह एफ्रो एशियाई सम्मलन मे बोलने खडे हुए तो उन्होंन वही पन्ने जेब से निकाले!

सुकार्नो मे मेरी गहरी दोस्ती ने मेरे लिए एक अजीब स्थिति पदा कर दी। उन दिनो उनका इश्क एक तलाकशुदा औरत हार्टिनी से चल रहा था, जिससे उन्होंन बाद मे शादी कर ली थी। उनकी पहली बीवी, फातिमावती, इसस स्वाभाविक रूप से नाराज थी और बादुग के करीब एक पहाडी जगह पर अलग रह रही थी। सुकार्नो चाहत थे कि वह विभिन्न शासनाध्यक्षो को जो दावत दे रहे थे उसमे मेहमानो का स्वागत करन के लिए फातिमावती मौजूद रहें। पर वह यह एहसान करन क लिए तैयार नही थी। राष्ट्रपति न मुझसे कहा "अपनी बहिन को आने के लिए राजी कर लो। तो मैंने फातिमावती स लबी बात की और उन्हें समझाया कि जिस मसले म एशिया और अफ्रीका का सम्मान हो, उसम आपका व्यक्तिगत स्वाभिमान बाधा नहीं बनना चाहिए। इसका मुनासिब असर हुआ। वह बोली मैं आपका लिहाज करके और जवाहरलालजी का सम्मान करन के लिए आऊँगी लेकिन राष्ट्रपति को यह मालूम हो जाना चाहिए।' सुकार्नो खुश हो गय पर तब भी उनकी शिकायतें जारी रही 'आपकी बहिन बहुत गलत रवया अख्तियार करती हैं। वह इस देश की प्रथम महिला बनी रह सकती

हैं और मेरी पूरी सदभावना उनके साथ है। मेरी किसी दूसरी औरत से मामूली जान पहचान से वह गृहस्थी क्यो तोडना चाहती हैं? क्या आप समझते हैं कि इसके बारे मे पडितजी उनसे बात करें? वह पडितजी की बात जरूर मान लेंगी।" मैं उन्हें इस सिलसिले म पडितजी से बात करने के लिए प्रोत्साहित करने की स्थिति मे नही था।

सम्मेलन मे हुई दो झडपें मुझे याद आती हैं। इराकी प्रतिनिधिमडल के नेता फाजिल जमाली, जो कुछ समय अपने देश मे प्रधानमत्री की हैसियत से भी कामकर चुके थे, बार बार पश्चिमी एशिया की और विश्व की शाति के लिए इसराइली खतरे का जिक्र कर रह थे। इमसे नेहरूजी खीझ गये। आखिरकार वह नाराज होकर खडे हो गये और बोले "इराक के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि की इसराइली खतरे की बात सुनकर मैं अचभे मे पड गया हू। उस देश को जन्म किसन दिया? उसे कायम कौन रखे हुए है? हम सभी जानते हैं कि अमरीका व ब्रिटेन के बिना इसराइल एक दिन भी टिक नही सकता। लेकिन मेरे दोस्त, डॉक्टर जमाली, इसराइल के इन सरपरस्तो के पीछे तो खडे होते हैं और यहाँ आकर इसराइल की आलोचना करते हैं। मेरी समझ मे न तो यह तक आता है और न मनोवृत्ति।" जैसे ही नेहरूजी ने अपना सक्षिप्त हस्तक्षेप समाप्त किया, फिलिस्तीन के बडे मुफ्ती अलहाज अमीन-उल हुसेन, जो पर्यवेक्षक की हैसियत से एक अरब प्रतिनिधिमडल के साथ आये थे, दौडे हुए नेहरूजी के पास गये, उनके गले मे बाँहें डाल दी और उनकी पेशानी चूमते हुए ज़ोर से फुसफुसाये "बिलकुल यही बात मैं अरबो से कहता रहा हूँ। आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं। वल्लाह हाय, आप ठीक फरमाते हैं। अल्लाह आपको सलामत रखे, मिस्टर नेहरू और हमारे लोगो को समझदारी दे।"

दूसरा दृश्य फिलिपीस के जनरल कार्लोस रोमुलो और थाइलैंड के प्रिंस वाग द्वार चीन पर लगाये गये आरोप का था। वे दानो नेता सयुक्त राष्ट्रसघ के कामकाज के विशेषज्ञ समझे जाते थे। उन्होंने चाऊ एन लाइ की कोई ग़लती पकडी और नाहक बहस करते रहे। नेहरूजी उनकी आलोचना काफी देर तक तो सुनते रहे। फिर अपनी सिगरेट फेंककर इन दोनो की तरफ घूरा और बोले, "आप चीन को सयुक्त राष्ट्रसघ से बाहर रखे हुए हैं और यहा चाहते है कि वह सघ के कानून-कायदो से वाकिफ हो? मैं चाहता हूँ कि थाइलैंड व फिलिपीस के मेरे दोस्त तक से काम लें। आप चीन को सयुक्त राष्ट्रसघ मे आने दें ताकि वह उसकी सही भूमिका को समझें। इस बीच, हम चीन के साथ यहा सहयोग करें और उस यह महसूस करने दें कि हम सब एक ही बडे परिवार मे शामिल हैं।'

खुले अधिवेशन मे नेहरू ने अपने भाषण म आस्ट्रेलिया की सम्मेलन से गरहाजिरी पर भी टिप्पणी की। उन्होंने आगे आशा व्यक्त की कि "इस क्षेत्र के इस देश से हमारा सहयोग बढेगा।' जसे ही वह बैठ रहे थे डॉक्टर जॉन बर्टन मेरे पास दौडे हुए आये। वह पाँचवें दशक मे आस्ट्रेलिया के विदेश मत्रालय के स्थायी अध्यक्ष रहे थे और जनवरी 1949 मे दिल्ली मे हुए इडोनेशिया सम्मेलन में अपने देश के प्रतिनिधिमडल के नेता थे, वह एक पर्यवेक्षक के रूप मे बादुग आये थे। मेरे पास आकर वह रुँधे गले से बोले, "शुक्र है कि किसी ने मेरे छोटे से देश को याद तो किया। भगवान जवाहरलाल नेहरू को चिरायु करे और मेरे देश की जनता को बताये कि यहाँ क्या हो रहा है।"

26 जुलाई, 1956, को स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण एक सनसनीखेज घटना

थी। इसके फौरन ही बाद, 24 अक्तूबर को हंगरी मे विद्रोह हुआ, एक अन्य अंतर्राष्ट्रीय संकट था 29 अक्तूबर को इसराइल द्वारा हमला और 5 नवंबर को फ्रांस व ब्रिटेन द्वारा 'मिस्र मे हुए गलत काम' को खत्म करने के लिए मिलकर उसका साथ देना। "डाकुओं जैसे इस कृत्य" की विश्व भर मे जनमत ने भर्त्सना की। जो दोषी थे उन्हें अपना कदम शर्म के साथ वापस लेना पड़ा और अपनी अकड़ की कीमत चुकानी पड़ी। हंगरी की घटना अप्रिय थी, पर स्वेज संकट ने अपने पुराने उपनिवेशों के खिलाफ साम्राज्यवादियों का इरादा स्पष्ट कर दिया। इससे नव स्वतंत्र देशों मे आक्रोश फैला। भारत की भूमिका प्रमुख रही। हमने आक्रमण का शिकार होने वाले लोगों को दोनों जगह मदद पहुँचायी। लेकिन तब भी कुछ अति उत्साही लोगों ने सरकार की आलोचना की कि उसने हंगरी के बारे में काफी कुछ नहीं किया, मानो उनके सरपरस्त आकाओं ने कश्मीर के मसले पर हमारी मदद में उँगली भी उठायी हो। उन दिनों मैं विदेश मंत्रालय मे यूरोप व पश्चिम एशिया के विभागों का क्षेत्रीय अफसर था और लगातार हंगरी व मिस्र के दूतावासों, भारतीय रेडक्रॉस और सहायता कार्य में लगी संयुक्त संघ की संस्थाओं के संपर्क में था। इन दो विवादों मे भारत के पड़ने से अनेक दुश्मनियां पैदा हो गयीं। हमें कुछ अति शक्तिशाली विरोधियों की नफरत और गुस्से को भुगतना पड़ा, क्योंकि ये विरोधी वर्षों तक हमारी कार्रवाई पर हमारे खिलाफ कीना रखे रहे।

नवंबर 1955 में सऊदी अरब के शाह सऊद भारत की औपचारिक यात्रा पर आने वाले थे। जद्दा मे हमारे राजदूत के पास मे संदेश आया कि शाह पानी के जहाज से आयेंगे और वह चाहते हैं कि हमारी नौ सेना के जहाज उनके जहाज के आसपास चलें। प्रधानमंत्री नेहरू को यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया और उन्होंने इंकार करते हुए कह दिया "यह नहीं होगा।" जब राजदूत के लिए जवाब तैयार किया जा रहा था, उस क्षेत्र के लिए जिम्मेदार अफसर होने के नाते मैंने अपना शक जाहिर किया। मैंने कहा कि हमारे इंकार का जो नतीजा होगा वह पहले प्रधानमंत्री को बता दिया जाये। विदेश सचिव सुबिमल दत्त व शिष्टाचार विभाग के प्रधान मुझसे सहमत थे, पर उनका रुख यह था कि प्रधानमंत्री ने चूंकि एक बार फैसला कर लिया है, इसलिए मामले को यहीं छोड़ देना चाहिए। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि प्रधानमंत्री को यह बता दिया जाना चाहिए कि इस तरह के जवाब से गलतफहमी पैदा होगी और अरब देशों व भारत के बीच बढ़ रहे मैत्रीपूर्ण संबंधों पर आंच आयगी। अंत में वे मान गये पर उन्होंने कहा कि नेहरू से मिलने मैं उनके साथ चलूं। जैसे ही हम प्रधानमंत्री के दफ्तर में घुसे, दत्त ने सारा बोझ मुझ पर डाल दिया। वह बोले "सर, यूनुस को लगता है कि हम लोग सऊदी अनुरोध पर 'न' न कहें।" प्रधानमंत्री एकदम कुर्सी से उठ खड़े हुए और ज़ोर से बोले 'हमारे नौ-सैनिक अफसरों का यह काम नहीं है कि अरब राजाओं के मार्गरक्षक बनकर पहरा दें। उन्हें इससे ज्यादा ज़रूरी काम हैं। मैंने कह दिया है कि नौ सेना के जहाज़ नहीं जायेंगे।" मुझे मुंह खोलने का तक मौका नहीं मिला, क्योंकि दत्त ने मेरी बाँह पकड़ी और मुझे कमरे से बाहर खींच ले गये। इसके पहले कि मैं समझ पाऊँ कि हो क्या रहा है, हम लोग दत्त के कमरे में वापस मौजूद थे और रुआँसे होकर वह कह रहे थे, "मैंने तुम्हें बताया था न, कि उन्होंने पहले ही फैसला कर लिया है।'

सौभाग्यवश, उस शाम को प्रधानमंत्री के घर पर एक स्वागत आयोजन था।

जब मेहमान चले गये और विदेश मत्रालय के कुछ अफसर व सआदत अली, जो मत्रालय म सभा-सचिव थे, जा रहे थे, प्रधानमत्री एकाएक मेरी आर मुडे और बोले "तुम अपनी नौ सेना के जहाज सऊदी अरब भेजने की बात पर इतने परेशान क्या हो ?" मैं ऐसे ही मौके की तलाश मे था। मैं बरस सा पडा, "आपने बादशाह को क्यो बुलाया ? क्या पागल कुत्ते ने काटा था ? अब वह मेहमान की हैसियत से आ रहा है। जो चाहे सो करवा ले। आप अब कौन हैं 'नही' कहने वाले ? जब मैं प्रधानमत्री से बात कर रहा था, अफसर—खासतौर पर सआदत अली—कापने लगे और मुझे खामोश करन की कोशिश करने लगे। मैंने उनकी एक नही सुनी और प्रधानमत्री से कहा, "बात मैं कर रहा हूँ और काप ये रह हैं।" जवाहरलाल हँस पडे और बोले, "अच्छा सदेश भेज दो कि जहाज बादशाह की पहरेदारी पर जायेंगे। तुम ठीक कहते हो। हमारे लिए 'न कहना मुनासिब नही होगा।'

दूसरे दिन मत्रालय के महासचिव, सर राघवन पिल्ले ने, जिन्हे उनके दोस्त 'रैम' कहकर पुकारते थे, मुझे अपने दफ्तर मे बुलाया। वह हिंदी बहुत कम जानते थे, प्रधानमत्री से मेरी झडप मे उनकी समझ मे सिफ एक लफ्ज—'कुत्ता' आया था। उन्होंने पूछा, "यह कुत्ता का क्या जिक्र था ?' मैं मुसकरा दिया। इसके पहले कि मैं कुछ कहूँ, वही कुछ सोचते हुए बाले, "मेर खयाल म कुत्ता स बाजी पलट गयी।' विदेश मत्रालय के सबसे आला हाकिम के इस मूल्याकन पर मुझे बहुत मजा आया, पर किया क्या जा सकता था। शाह सऊद जहाज से आये ही नही। उन्होंने सोचा होगा कि हवाई जहाज ज्यादा तेज चलते हैं और सफर आराम-देह भी होता है, तो फिर समुद्र से सफर क्यो किया जाये ?

जवाहरलाल नहरू ने सऊदी अरब की जवाबी यात्रा 24 सितबर, 1956 को की। तभी स्वेज सकट हुआ था। भारत द्वारा मिस्र के पूण समथन का सारे अरब जगत मे स्वागत हो रहा था। इसलिए भारतीय प्रधानमत्री का बहुत शानदार और अभूतपूव स्वागत हुआ। उन्हे रसूल उस्सलाम (शातिदूत) कहा गया और उनके दिल दिमाग के गुणो की प्रशसा की गयी। अरबी म 'रसूल' का मतलब 'दूत' है और इसका कोई धार्मिक महत्व नही है। लेकिन उदू में इस शब्द को विशेष अथ दिये गये हैं और आम तौर पर इसका इस्तेमाल पगबर के लिए होता है। इसलिए नेहरूजी के लिए इस लफ्ज के इस्तेमाल से पाकिस्तान के धर्मान्ध मुसलमानो को बुरा लगा। उनके मुखपत्र डान (कराची) ने एक सपादकीय लेख 'अफसोस, सऊद शीषक से लिखा जिसमें शाह की आलोचना इसलिए की गयी थी कि उन्होंने अपने अखबारो को नेहरूजी को रसूल कहन दिया था। कई प्रतिष्ठित अरब नताओ ने इस पर हँसकर पाकिस्तानी रुख का मजाक उडाया। कुछ प्रबुद्ध पाकिस्तानियो ने भी तकसगत प्रतिक्रिया व्यक्त की और अपने देशवासियो के कठमुल्लापन का बुरा माना। नामी शायर और बुजुग पत्रकार रईस अमरोहवी न नेहरू की तारीफ मे यह कतअ कहा और यह दनिक जग म छपा

> जप रहा है आज माला एक हिंदू की अरब,
> बरहमनजादे म शाने दिलबरी ऐसी तो हो
> हिक्मते पडित जवाहरलाल नहरू की कसम,
> मर मिटे इस्लाम जिस पर काफिरी ऐसी तो हो।

एक दिन शाह सऊद ने अपने अनेक बेटों का परिचय नेहरू से करवाया। उनकी तादाद का असर नेहरूजी पर हुआ, पर तब भी उनकी आँख में एक चमक थी। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और शाह से यह कहकर परिचय कराया कि मैं अपने वालिद का बयालीसवां बेटा हूँ। इसका वही असर हुआ जो नेहरूजी चाहते थे। बादशाह उठे, मुझे गले से लगाया। 'माशा अल्लाह' कहा और मुझे अपनी बगल में बिठा लिया। प्रधानमंत्री से बात करने का मुझे जैसे ही मौका मिला, मैंने उनके कान में कहा "अब आपकी खातिर और इज्जत कम होगी। मेरा बाप का एक बेटा, कहा बयालीस!" रियाद की यात्रा एक अनोखा तजुर्बा बन गयी हम जो दावतनामा मिला था उसके मुताबिक हम कई सौ आदमियों की टोली ले जा सकते थे। जब इस बात पर विचार हो रहा था कि यह यात्रा कितने दिन की हो तभी शाह के पास से संदेश आया कि वह चाहते हैं कि नेहरू कम से कम एक महीना वहां रुकें, क्योंकि तीन चार दिन में वहां कुछ भी देख नहीं पायेंगे। जिस महल में हम लोग ठहरे वह तभी बनकर तैयार हुआ था और उस तक पहुँचने की सड़क उस समय बन ही रही थी। कमरों में ईरानी कालीन बड़े शानदार ढँग से सजे हुए थे। हर गुसलखाने में शावर नंबर पांच की बड़ी बड़ी शीशियां रखी हुई थीं। ढेरों खाना परोसा जाता था। कमरों और दालानों में लगे झाड़ फानूस चकाचौंध पैदा करते थे। मतलब में समृद्धि के अपार चिह्न वहां मौजूद थे। जब नेहरू ने पढ़ना चाहा और टेबिल लैंप की मांग की तो नौकर समझा कि रोशनी काफी नहीं है। उसने एक और बहुत बड़ा लैंप लाकर रख दिया जिसमें बहुत ही ज्यादा पावर का बल्ब लगा हुआ था। उसकी चौंध कम करने के लिए मैंने उस पर एक तौलिया डाल दिया पर बल्ब की गरमी से वह करीब करीब जल गया।

भारतीय राजदूत का घर और राजदूतावास देखकर नेहरूजी को धक्का लगा। एक छोटे से बैठकखाने में एक फटा सा सोफा सेट पड़ा था लोहे के दो अस्पताली पलँग थे कुछ बेमेल हिलती डुलती तिपाइयां व कुर्सियां थीं और कीलों में डोरियां बांधकर कुछ परदे लटका दिये गये थे। दो औसत कद के मिट्टी के लाल, हरे, नीले रँगे हुए शेर दरवाजे पर रखे हुए थे। हमारे राजदूत की कलाकृतियों के बारे में यही धारणा थी! ऐसा फर्नीचर रख रखाव और रँग ढँग था यह। इस वजह से मैंने अपने पहले के एक प्रस्ताव पर फिर से जोर दिया कि एक उच्चस्तरीय समिति नियुक्त कर दी जाय जो भारतीय राजदूतावासों में एक-से व इज्जतदार साज सामान का इंतजाम करे। यह काम उनमें रहने वाले राजदूतों की मनमानी पसंद पर न छोड़ा जाय। नेहरू ने कुछ गुस्से में कहा, 'यह सिफारिश क्यों है या तहमील?' वह इसमें इतना परेशान हुए कि उन्होंने मुझसे कहा कि मैं कुछ दिन रियाद में ही रुककर दूतावास का इंतजाम ठीक कर दूं। यह काम एक पखवाड़े में पूरा हो गया और राजदूत एक नये मकान में रहने आ गये। इस नये इंतजाम को देखकर राजदूत बोले 'यह तो तुमने बादशाह का घर बना दिया है!' धन्यवाद हुज़ूर!

जब नेहरूजी के वहां से चलने का वक्त आया तो शाही तोहफे आये। प्रधानमंत्री के लिए एक कडिलक मोटरकार और स्विटजरलैंड की बनी ढेरों घड़ियां और प्रतिनिधिमंडल के दूसरे लोगों के लिए वाल और बालामी अरब घोड़े! अभिनन्दन का एक ठाठदार गाड़ी नजर पर लोगों की बात पसंद रहा थी। मैं उनकी परेशानी देख रहा था और बोला, "इनके पास और क्या है? अगर

मोटर न दें तो फिर क्या दें ? तेल का पीपा या रेत का बोरा ?" नेहरू समझ गये बहुत जोर से हँसे और बाहर जाकर उनकी देखभाल के लिए मंत्री, अली मुहम्मद रजा, के जरिए बादशाह को शुक्रिया कहला भेजा। यह जानने के लिए बेचैन थे कि कार के रंग के बारे में नेहरू की पसंद क्या है शाह ने एक हरी कैडिलेक छांटी थी। नेहरू ने उसे स्वीकार कर लिया और राष्ट्रपति भवन के अतिविशिष्ट मेहमानों के लिए सुरक्षित मोटरों के बाड़े में उसे जमा करवा दिया। यह कार 1956 में भेंट में मिली थी, पर आज भी बहुत बढ़िया चलती है।

बीच-बीच में विदेशों की यात्राओं में नेहरू को आराम करने का मौका मिल जाता था। वह तरोताजा महसूस करने लगते थे और घर लौटकर समस्याओं को सुलझाने में दुगुने जोश से जुट जाते थे। उनमें यह सिफ्त थी कि जहां जाते थे वहां के वातावरण व रीति रिवाजों में रम जाते थे। सन् 1956 में डेनमार्क की यात्रा में वह टिवोली के मशहूर मनोरंजक पार्क में गये। डेनमार्कवासी एक बूढ़े ने उनसे कहा कि वहां के एक लोक नाच में वह भी शामिल हो जायें। वह खुशी से राजी हो गये। गणतंत्र दिवस समारोह पर दिल्ली में लोक नर्तकों की जो टोलियां आती थीं उनमें भी वह घुल मिल जाते थे। वह सिर्फ उनके साथ नाचते ही नहीं थे बल्कि उनकी क्षेत्रीय पोशाक भी पहन लेते थे। छोटी से छोटी घटनाएँ भी उनकी नजर में ओझल नहीं रहती थीं। एक उदाहरण वह स्वीडेन के बादशाह के मेहमान थे। महल का एक रिवाज उन्हें बहुत भाया। शाही खान-दान के बच्चे हर खाने के बाद अपने माता पिता के पास जाकर उनका शुक्रिया अदा करते थे। नेहरूजी बाद में अक्सर इस संबंध में बात करते थे "कोई बच्चा यह मानकर क्या चले कि माता पिता तो खर हैं ही ? बड़ा अच्छा लगता था जब छोटे छोटे नन्हे मुन्ने अपने माता पिता के पास जाकर कहते कि बहुत बढ़िया खाने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।"

जिनमें ईमानदारी की कमी होती उनके लिए नेहरू के मन में कितनी नफरत होती थी, इसकी एक घटना मेरे मन पर अमिट छाप डाल गयी है। उनके एक सहयोगी ने एक बार उन्हें बताया कि उनके कुछ मंत्री हमेशा उनके खिलाफ बातें करते हैं और पीठ पीछे उन्हें बुरा भला कहते हैं व साजिश करते हैं। नेहरू बाहर लान में खड़े थे। उन्होंने देखा कि एक चींटी उनके पैर पर चढ़ रही है। उसको झिटकते हुए वह बोले, "क्या मेरे लिए इसे कुचल देना भी जरूरी है ?' यह कह कर वह आगे बढ़ गये, पर उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया से इसका भरपूर आभास मिल गया कि उनका दिमाग किस तरह काम करता है और उन लोगों के बारे में उनकी क्या राय है जो धोखा फरेब करते हैं। इससे उनकी सहनशीलता का भी पता चलता है। आगे आने वाले इतिहासकार उनके स्वभाव की इस बात पर गहन विचार करके अलग-अलग व्याख्याएँ कर सकते हैं। उन्हें शायद उनकी इस प्रवृत्ति में उनकी शक्ति और दुर्बलता दोनों ही दिखायी दें। उनकी यह सहिष्णुता दूसरी बातों में व्यक्त होती थी। हमारे राजनीतिज्ञों में सौंदर्य बोध के नितांत अभाव और उनके भाड़े तौर-तरीकों से नेहरू जैसे परिष्कृत व संवेदनशील व्यक्ति को तकलीफ पहुँचती थी। वह गलती बताने से तो अपने को रोक नहीं पाते थे—उनके व्यक्तित्व का सुधारवादी स्वाभाविक रूप से सामने आ जाता था—फिर भी अपनी बात वह इतनी नरमी से और व्यंग्य भरे लहजे में कहते थे कि उनकी झिड़की भी कबूल हो जाती थी। एक बार, दिल्ली में एक दावत में उन्होंने कुछ

पेटू मेहमानो को अपनी प्लेटो को मुर्गों से पाटते और जल्दी-जल्दी खाते देखा। यह देखने मे बहुत ही बुरा लग रहा था। जब एक और पेटू मेहमान को उन्होंने अपनी प्लेट उसी तरह भरते देखा, तो वह उसके पास गये, उसकी पीठ होले से थपथपायी और कहा, 'ये मुर्गे मरे पड़े हैं। भाग नही सकते। जरा धीरे धीरे लीजिये।"

नेहरू के दर्जी, उमर, ने एक बार उनसे एक प्रमाणपत्र मांगा। नेहरू को मालूम था कि उमर तभी सऊदी अरब के बादशाह और ईरान के शाह के कपड़े सिल चुके थे और उनसे अच्छे प्रमाणपत्र पा चुके थे। इसलिए उन्होंने मजाक मे कहा, 'आप सर्टिफिकेट लेकर क्या करेंगे? आपको तो ये शाहो-बादशाहो से मिल चुके हैं।" दर्जी ने कहा, "आप भी तो बादशाह हैं।' नेहरू ने तुनककर कहा, 'मुझे बादशाह न कहिये, उनके सिर कलम कर दिये जाते हैं।" इस पर उमर ने एक याद रहने वाला जुमला कहा, "वे तो तख्त पर बैठने वाले बादशाह हैं और आप दिलो के बादशाह है आपका उनसे क्या मुकाबला?" उमर को सर्टिफिकेट मिल गया। बाद मे वह उसे इतना बड़ा करवाना चाहते थे कि उनकी दूकान के सामने वाली दीवार भर जाय। कोई फोटोग्राफर यह काम नहीं कर सका, तो उन्होंने एक पेंटर को बुलाकर बड़े-बड़े अक्षरो मे वह सर्टिफिकेट पूरी दीवार पर लिखवा लिया।

चुस्ती और समानता की दृष्टि से प्रधानमंत्री ने सभी मंत्रियो, अफसरो और सरकारी दफ्तरो मे काम करने वाले दूसरे लोगो को सलाह दी कि वे पतलून और बंद गले के कोट पहना करें। किसी ने सुझाव दिया कि लड़कियो के लिए भी इसी तरह की हिदायत होनी चाहिए, क्योकि दफ्तरो मे काम करने वाली लड़कियाँ बहुत तड़क भड़क वाले कपड़े पहना करती थी। एक और गश्ती-पत्र जारी हुआ जिसमे मरदो के बारे मे जो हिदायत दी गयी थी, वह दोहरायी गयी थी और आखिर मे यह जुमला था, 'लड़कियां दफ्तरो मे शादी के जोड़े पहनकर न आया करें। वे भड़कीले रंगो से बचें और उनकी चोलियाँ काफी लंबी हो।" उस समय के तरुण अफसरो के बीच—जिनमे युवक व युवतियां दोनो शामिल थी—इस मसले पर बड़ी गरमागरम बहस हुई। जिन्हे शरारती चुहलपसंद थी वे कहने लगे, "चलो, चलकर देखें कि कौन कौन काफी लंबी चोलियां पहने हैं!'

जब मैं बगदाद मे था तब अलीगढ मे मेरे पुराने स्कूल के हेडमास्टर, कर्नल बशीर हसन जैदी, का खत मिला। उन्होंने लिखा था कि मैं रामपुर के नवाब रजा अली खां और उनकी बेगम रफअत जमानी की खातिर और देखभाल ठीक से करूँ। यह मैंने किया। जून 1952 मे हिंदुस्तान लौटने पर उन्होंने जवाबी मेहमान नवाजी दिखायी और मुझे कई बार शानदार दावतो मे बुलाया। 1953 के जाड़ो मे नवाब के बड़े बेटे, मुर्तजा अली खां जिन्हे घर वाले बच्छन कहकर पुकारते हैं मुझसे मिलने आये और घबराये हुए बोले, 'यूनुस भाई, हमे बचा लीजिये। मेहरबानी करके हमे बचा लीजिये।' उन्होंने मुझे बताया कि उनके मां-बाप ने दिल्ली के एक बैंक से दो करोड़ रुपये की कीमत के जेवरो के दो बक्से निकाले हैं और उन्हे एक हवाई जहाज चार्टर करके कलकत्ता भेजा है। उन्हे डर था कि ये जेवर नवाब के सौतेले भाई अब्दुल करीम खां को, जिन्हे ढिल्लन कहकर पुकारा जाता था, दे दिये जायेंगे। तब ढिल्लन उन्हें ढाका भेजने का इंतजाम करेंगे, जहां उनके कलकत्ता के पुराने दोस्त हसन शहीद सुहरवर्दी (जो बाद मे पाकिस्तान के प्रधानमंत्री बने) उन्हें लंदन भिजवाने का इंतजाम करेंगे। उन्होंने

मुझसे यह भी कहा कि नवाब को उनके सौतेले भाई ढिल्लन और बेगम की मिली भगत के बारे म खबर नही है। कुछ बहस के बाद फीरोज गाधी और मैं रफी साहब को इत्तिला देने चल दिये। रफीसाहब ने फौरन गृहमत्री कैलाशनाथ काटजू से बात की और कहा कि उस हवाई जहाज को उस सामान समत वैसा का वैसा दिल्ली वापस बुला लिया जाय।

नवाब को पता चल गया कि उन्ह किसने दाँव दिया था। इसलिए उन्होने अपने बेटे और बहू सकीना के खिलाफ जहरीला प्रचार शुरू कर दिया। बेटे और बहू ने बदले म बेगम के खिलाफ चटपटी कहानियाँ सुनानी शुरू कर दी और उनकी रामपुर खानदान की दौलत छीन लेने की साजिश और उनको नवाब को छोड देने की योजना का चर्चा शुरू कर दिया। बेगम ने बदला लिया अपने ही बेटे के जन्म के बारे मे बेहूदा व ऊलजुलूल तोहमतें लगाकर। इससे बेटे ने रहा-सहा सयम भी खो दिया और बहुत आजादी के साथ अपनी गन्दी जुबान अपनी माँ के बारे म चलानी शुरू कर दी। दोनो घरो के नौकरो ने एक-दूसरे पर खुफिया नजर रखने म होड-सी बद ली। उन्होने बच्छन को वे खत दिखाये जो बेगम ने ढिल्लन को लिखे थे। बच्छन ने उनकी फोटोकापियाँ बनवा ली और उन्ह गृह मत्रालय की रामपुर-सबधी फाइल मे रखवा दिया। नवाब ने नेहरू खानदान की एक महिला और एक पुरुष को बीच मे डालकर अपने को बेकसूर साबित करने की कोशिश की। पर फीरोज और मैंने कोशिश की कि वह कामयाब न हो। तब नवाब ने मौलाना आजाद से अपने बेटे की अपनी माँ की शान म गुस्ताखी की शिकायत की। मौलाना को मालूम था कि इस मामले म मैंने क्या किया था और उन्होने मुझे बताया कि उन्होने नवाब को यह कहकर टरका दिया कि "यह आदत आपके खून म मालूम पडती है। आपने भी दिल्ली म एक अखबार निकाल-कर अपनी सगी बहन को बदनाम किया था।" यह उस घटना का हवाला था जिसमे नवाब रजा अली ने तीसरे दशक के शुरू म अपनी सगी बहन के खिलाफ कीचड उछालने की मुहिम चलायी थी। खर, जेवरो को बाहर जाने से रोकने के बाद फीरोज व मैं सामने स हट चुके थे। रामपुर घराने के झगडा, समझौता और हमेशा बदलत रहने वाली दोस्तियो दुश्मनियो की कहानियाँ हम तक बराबर पहुँचती रही। बूढे नवाब 6 मार्च, 1966 को इस दुनिया से सिधार गये। उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव के 1969 के चुनाव मे बच्छन अपनी माँ के खिलाफ लडे और उन्हें रामपुर निर्वाचन क्षेत्र से हराया।

छठे दशक म मै मौलाना आजाद से अक्सर मिलता रहता था। वह एक ऐसे शानदार व्यक्ति और बहुत बडे साहित्यकार थे जो राजनीति की उथल पुथल म धकेल दिये गये थे। वह मूलत अलग थलग रहने वाले इसान थे, लेकिन राज नीतिक भँवर मे फँस गये थ। अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति और पश्चिम एशिया की विस्फोटक स्थिति के लिए जिम्मेदार घटनाओ की वह अकसर व्याख्या करते थे। वह बहुत यकीन के साथ बात करते थे और उनकी बातें यकीन करने वाली होती थी, कुछ मामलो मे उनकी राय पुरातनपथी होती थी, पर वह हमेशा दूसरा दृष्टिकोण सुनने के लिए तयार रहते थे। किसी बात पर सहमति दिखाने का उनका तरीका 'हाँ, मेरे भाई' कहना था। भारतीय सिविल सेवा के वह बहुत सख्त आलोचक थे और उन्होने अडकर किसी आई० सी० एस० को अपने शिक्षा मत्रालय के सचिव पद पर नही आने दिया था। इस सबध मे उनका व्यग्य भरा जुमला याद आता है, "सरदार ने भी कहा था और जवाहरलाल भी कहते रहते

है कि किसी आई० सी० एम० को लगा लेना चाहिए। पर मैंने तो साफ साफ कह दिया है कि यहा तालीम का काम है और इसके लिए पढे लिखे लाग चाहिए।

मौलाना आजाद मरे स्थायी तौर पर विदेश सेवा म चले जान के समथक नहीं थे। वह चाहत थे कि मैं राजनीति म लौट आऊँ और उन्हान मुझे राज्यसभा का मम्बर बनान का सुझाव दिया। उन्हान जवाहरलाल स इसके बार म बात की और बख्शी गुलाम मुहम्मद को भी लिखा कि मेरा नाम कश्मीर की फेहरिस्त म शामिल कर लें। यह 1957 के जाडा की बात है। मौलाना फरवरी 1958 म मर गय। मरी समझ म नहीं आ रहा था कि अब क्या करूँ? लेकिन जवाहरलाल न मौलाना की मौत के कुछ दिन बाद मुझसे इस सिलसिले म कहा "मैं तुम्हारा राज्यसभा म जाना पसद नहीं करता। अब मौलाना की सीट खाली हो गयी है। तुम चुनाव लडकर लोकसभा म क्या नहीं आ जात?" इसके बाद उन्होंने मुझसे उनके साथ चडीगढ चलन को कहा। उन्होंने तब के मुख्यमत्री सरदार प्रतापसिंह करो से मेरा परिचय कराया। मौलाना गुडगाव निर्वाचन क्षेत्र से चुने गय थ, जो तब पजाब म पडता था। करो न बहुत उत्साह दिखाया। उन्हान मुझस कहा कि मिलता रहूँ और पजाब के मामला म दिलचस्पी लू।

कुछ दिन बाद काग्रेस पार्लमेंटरी बोर्ड की बठक हुई। मेरा नाम पजाब काग्रेस कमेटी न भेजा था। लकिन, मौलिचद्र शर्मा, जो जनसघी थे पर सघ छोडकर काग्रेस म शामिल हो गय थे, लगातार काग्रेस अध्यक्ष, उच्छगराय ढेबर से मिलत रहते थे और राजनीतिक स्थान पान के लिए उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था। ढेबर न करो से कहा कि मौलिचद्र शर्मा का नाम भी भेज दें। यह होने क बाद ढेबर ने बोर्ड की कारवाई कुछ इस ढँग से चलायी कि शर्मा को टिकट मिल गया। इसस स्थानीय कार्यकर्ता बहुत नाराज थे। चिल्लाते चिल्लाते उनके गले पड गय कि यह चयन गलत हुआ है दुर्भाग्यपूर्ण है और असफलता ही हाथ लगेगी। दिल्ली क एक काग्रेस विरोधी उर्दू दनिक तक ने एक सपादकीय टिप्पणी म कहा कि शासक दल न यह सीट विपक्ष को भेंट म दे दी है। और सचमुच यही हुआ। मौलाना विशाल बहुमत स जीते थ, पर काग्रेस यह चुनाव इस बार हार गयी। काग्रेस नतृत्व की आखें इस हार के बाद खुली। चुनाव के फौरन बाद दिल्ली म काग्रेस महासमिति की उस बठक म जवाहरलाल ने इसके बारे म चर्चा की। उन्होंने कहा "एक गलत उम्मीदवार को एक अच्छे उम्मीदवार के मुकाबले म छाटा स हम लोगो को बहुत शर्मिन्दगी का सामना करना पडा है। इस तरह की गलतियो से हम बचना चाहिए। फीरोज गाधी मुझस इसलिए नाराज थे कि मैंने उन्हें नहीं बताया था कि मैं राजनीति म आना चाहता हूँ। उन्हान आवेश म आकर मुझसे कहा अगर मुझे पहले मालूम हो जाता ता उन लोगो के लिए यह दोरुखी चाल मुश्किल हो जाती।' लेकिन यह तो चिडिया के खेत चुग जान के बाद पछतावे वाली बात थी। मुझे बुरा लगा और मैंने तय कर लिया कि ऐसे काम चलाऊ राजनीतिक इतजामो पर कभी भरोसा नहीं करूँगा। राजनीति म असर दार होने के लिए एक ठोस क्षेत्रीय बुनियाद और ठोस आर्थिक स्थिति की जरूरत है वरना तो हमारी पार्टी के महतो की कृपा पर निर्भर रहता है जिनके जोड-तोड लगातार बदलते रहते ह। मैंने तय कर लिया था कि मैं ऐसी हालत म फिर कभी न पडूँगा।

1950 53 के कोरिया युद्ध के परिणामो म सुदूर-पूर्व के क्षेत्रीय अफसर होने

उन्हें देखनें के लिए एक बहुत बडी भीड इकट्ठी थी। एक मेहमान नें खिडकी के बाहर झाँका। इसके पहले कि वह सिर फिर भीतर कर सकें, भीड ने उन्हें बाहर खींच लिया और प्लेटफाम पर बने एक अस्थायी मच पर ले जाकर खडा कर दिया और उनसे भाषण करनें का अनुरोध किया। बेचारे ने हाथ जोडकर बार बार "हिंदी-चीनी भाई भाई" दोहराना शुरू कर दिया। उन्हें वहा से ट्रेन में वापस लाने मे बडी कठिनाई का सामना करना पडा। दूसरो को सचेत कर दिया गया कि उत्साही भीड द्वारा शोषण के लिए कोई भी उपलब्ध न हो। एक और खतरा यह भी था कि अगर कोई मेहमान इसमे फँसा तो उसकी ट्रेन छूट जायगी।

चाऊ एन लाई जून 1954 म भारत आये थे और उनका बडी गर्मजोशी से स्वागत हुआ था। ऐसी आशा बनाना स्वाभाविक था कि दोनो देशो के बीच स्थायी मैत्री स्थापित हो जायगी। हम लोग उनसे बाद में फिर मिले और उनके हँसमुख स्वभाव को बहुत पसद किया। दिसबर 1954 म मार्शल टीटो आये तो उनकी नेहरू के मित्र होने के नाते विशेष खातिरदारी की गयी। यह केवल भावना और प्रेम की ही बात नही थी, बल्कि विचारधारा मे साम्य की बात भी थी। एक गाव मे उनके आगमन के लिए जो सजावट हुई तो स्थानीय जनता के मन मे यह सजावट उनके नाम से जुड गयी। वही जब भी फिर कोई विदेशी अतिथि गये और फिर सजावट हुई तो झडे, तोरण देखकर एक गाव वाले ने कहा, ' फिर टीटो होवत है।"

पाकिस्तान के राष्ट्रपति, गुलाम मुहम्मद, जनवरी 1955 म "दोनो देशो के बीच अच्छे रिश्ते फिर से कायम करने की अपनी अतिम इच्छा" पूरी करने आये। लेकिन उनकी जुबान लडखडाती थी और उनके विचार अस्पष्ट थे इसलिए वह अपने उद्देश्य मे सफल नही हो पाये। उनके साथ डॉक्टर खान साहब आये थे जो तभी पाकिस्तान मत्रिमडल म शामिल हुए थे। साथ मे इस्कदर मिर्जा भी थे जो कुछ दिनो के लिए पाकिस्तान के राष्ट्रपति बने थे। इडोनेशिया के उपराष्ट्रपति मुहम्मद हट्टा अपने पुराने दोस्त नेहरू से मिलने अक्तूबर 1955 म आये। उनके बाद नवबर 1955 मे ख्रुश्चेव और बुल्गानिन आये। उन्हें असाधारण और उत्साहपूर्ण स्वागत मिला। उनके लिए यह एक नया अनुभव था, क्योकि आम भारतीय लोगो से उनका यह पहला साक्षात था। इससे सचमुच उनके दिल उमग से भर गये। उन्होने पहले स नही बताया था कि उनके साथ कितने लोग आ रहे हैं और न उनके नाम भेजे थे। इससे हम आखिर वक्त तक दुविधा म रहे। जब शिष्टमडल आया तो एक जहाज के बाद दूसरा जहाज उतरने लगा और उनमे स ढेरो रूसी उतरने लगे। विदेश सेवा म हाल ही मे आये नटवरसिंह को मेरी मदद के लिए तैनात किया गया था और उनकी ड्यूटी लगी कि इन रूसियो के नाम व ओहदा वगैरह का पता लगायें। वह एक रूसी से दूसरे के पास भेजे जाते रहे, जिस किसी के पास वह जाते वही दूसरे अफसर की ओर इशारा कर देता। जब वह मेरे पास आते तो मैं भी उन्हें डॉटकर जल्दी काम पूरा करने को कहता। आखिरकार वह भारत स्थित सोवियत राजदूत के पास गये और उनसे कहा कि अगर मेहमानो की फेहरिस्त जल्दी न मिली तो मेरी नौकरी चली जायगी। खैर, नटवर को तीसरे दिन फ़ेहरिस्त मिल गयी और बाद मे उनकी बहुत मजे म कटी।

उस वक्त जो भारत सोवियत दोस्ती शुरू हुई उसमे सोवियत नेताओ ने सार्वजनिक रूप मे बडे भावावेश से कहा था कि वे हमेशा हमारा साथ देंगे और रोटी का अपना आखिरी टुकडा भी हमारे साथ मिल-बाँट कर खायेंगे। इस

भावना का उपयुक्त प्रतिदान भी हुआ था और तब से यह दोस्ती बराबर बढती ही गयी है।

छठे दशक के मध्य मे ऊ नू, भडारनायके, डॉक्टर अली सस्त्रमिद जोजो (बर्मा, श्रीलका व इडोनेशिया के प्रधानमत्री) भारत आये। उन्होंने भारत के साथ अपने-अपने देशो के सबधो पर द्विपक्षीय वार्ता की और अतर्राष्ट्रीय समस्याओ पर भी विचार विनिमय किया। शाहो और प्रधानमत्रियो का नियमित रूप से भारत म जो आगमन हुआ, उसमे उस साल जॉर्डन के शाह हुसेन भी शामिल थे। वह बहुत ही दुर्भाग्य ग्रस्त रहे हैं और पिछले 25 वर्षों मे अनेक दुर्घटनाओ के शिकार हुए हैं। कबोडिया के चचल चित्त वाले प्रिंस नोरोदम सिंहनुक का जो मार्च 1955 मे आये थे, सबसे पहले लोकसभा के अध्यक्ष अनतशयनम आयगर से सामना हो गया। आयगर ने उनके धोती जैसे लगने वाले पायजामे के बारे मे छूटते ही पूछा कि यह सिला हुआ है या नही? लाओस के प्रिंस सुवन्न फूमा यहा आने वालो मे सबसे ज्यादा परेशान रहे क्योंकि उनके सौतेले भाई देश मे लगातार उनके लिए समस्याएँ खडी कर रहे थे। थाइलैंड की राजमाता भी उसी साल कुछ अतिथियो के साथ आयी। नवबर 1955 मे सऊदी अरब के शाह सऊद के आगमन का मतलब था 16 स्मरणीय दिन। वह जहाँ भी जाते, हगामा-सा खडा हो जाता। वह भारी भारी रकमे बख्शीश मे दे डालते थे और एक छोटी सी दुर्घटना का शिकार होने वाले व्यक्ति को भी उन्होंने बहुत भारी मुआवजा दे डाला। एक बार उनकी मोटर से एक चूजा दबकर मर गया। उस चूजे के मालिक को गाव म 20,000 रुपये दे दिये गये। उनके साथ जो लोग आये थे उनमे एक शख्स को सोना बेचते हुए पकडा गया। मुझसे कहा गया कि मैं जाकर शाह को यह खबर दू। तब वह आगरा म थे, वह इतने नाराज हुए कि बोले "आप मुझे उसका नाम बता दें, मैं उसका सिर आपके हवाले कर दूगा।" ईरान के शाह और उनकी खूबसूरत बेगम सुरैया पहली बार फरवरी 1956 मे यहा आये। वह खूबसूरत थी, पर गूगी। उनके खिचे खिचे से आपसी रिश्ते सभी को मालूम हो गये। इस लिए कुछ दिन बाद जब उनका तलाक हुआ तो उन लोगो को ताज्जुब नही हुआ जो यहाँ उनकी खातिर मे लगे थे। 1979 के शुरू मे उनके राजनीतिक देश निकाले से लोगो को इससे ज्यादा ताज्जुब हुआ।

जनवरी 1958 मे अपनी खास शान शौकत और तडक-भडक से सुकार्नो आये। उन्होंने उसके फौरन बाद ही कहा, "मैं यहा कुछ लबे अरसे तक आकर ठहरना चाहता हूँ पर शर्त यह है कि भारतीय सस्कृति के मूल सिद्धात समझाने के लिए ढेर सारी लडकिया तैयार हो।" उनके बाद अफगानिस्तान के शाह जहीर शाह फरवरी 1958 मे अपने चाचा फील्डमार्शल शाहवली खा, उनकी बेटी बिलकीस और उनके पति वली के साथ आये। वे सुकार्नो के बिलकुल विपरीत स्वभाव के थे। वे सभी बहुत आहिस्ता बोलते मीठा बोलते, व शेर के शिकार के लिए गये और फिर खामोशी से वापस लौट गये। साधु स्वभाव डॉक्टर हो ची मिन्ह फरवरी 1958 मे आये और उन्होंने अपने विनय, सादगी व ईमानदारी से सबको प्रभावित किया। इन ऐतिहासिक विभूतियो के साथ गुजारे गये थोडे से दिन भी मेरी एक धरोहर हैं। मैं नौजवान था, सीखना चाहता था और सवेदनशील था। अब तक मैंने यही सीखा था कि अगर कोई अपना व्यक्तित्व लचीला रखे और उस लचीलेपन से काम ले तो नेतृत्व के स्थानो पर पहुँचे हुए इन

बड़े लोगों से बहुत कुछ सीख सकता है, अपने एकाकीपन से व जो शक्ति प्राप्त करते हैं वह भी।

उदाहरण के लिए, एक बार मैंने अपनी किसी समस्या के बारे में जवाहरलाल से शिकायत की। एकाएक वह बोले, 'तुम तो अपनी समस्याएँ खोलकर मेरे सामने रख सकते हो। पर मैं किसके पास जाऊँ? पहले मैं बापू के पास चला जाता था। पर अब वह भी नहीं हैं।' बाद में, वह मौलाना आजाद के पास जाने लगे जो अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिनसे नेहरू अपनी बराबरी वाले की हैसियत से जी खोलकर बात कर सकते थे। फरवरी 1958 में मौलाना के मर जाने के बाद वह अकेलापन महसूस करने लगे। शायद इसी से उनमें लोगों और राजनीति के प्रति कुछ अतीतदर्शी सी मनोवृत्ति पैदा हो गयी थी। इसलिए जब अप्रैल 1958 में ही उन्होंने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देने की इच्छा जाहिर की तो मुझे ताज्जुब नहीं हुआ। उन्होंने दल की कार्यकारिणी की एक बैठक में भी कहा कि वह प्रधानमंत्री का ओहदा छोड़ना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि वह शांति से अलग बैठकर विचार करना चाहते हैं और स्थितियों व समस्याओं को तटस्थ भाव से बाहर से देखना चाहते हैं। असल में उनका मुख्य उद्देश्य आम कांग्रेसजन में त्याग की एक नयी भावना भरने के बड़े काम को अपने ऊपर लेना था। पार्टी के भीतर के झगड़ों से वह दुखी थे और इन झगड़ों का जनता पर जो बुरा असर पड़ता है उसे देख रहे थे। नेहरू के इस फैसले से पार्टी के महंतों पर जैसे बिजली गिर पड़ी हो और ये तिकड़मी लोग घबरा गये क्योंकि वे जानते थे कि नेहरू उनके रक्षा कवच थे जिनके बिना वे एक दिन भी नहीं टिक सकते थे। इसलिए उनसे अपना फैसला बदलवाने के लिए शोर मच गया।

मैं उसी शाम उनसे मिलने गया था। वह लान के सामने वाली छत पर अकेले बैठे थे। मैंने उन्हें सोच में डूबा हुआ पाया। मैं उनके ऐसे क्षणों से परिचित था, इसलिए मैंने उनके सोच विचार में विघ्न डालने की कोई कोशिश नहीं की। मैंने सिर्फ इतना कहा कि खाना मैं भी खाऊँगा, वह भी करीब-करीब नहीं बोले। पर जैसे ही मैं चलने लगा उन्होंने कहा, 'आप शायद कुछ सुनकर आये हैं। आपका क्या खयाल है?' उनके फैसले के विभिन्न पहलुओं पर मैंने गौर नहीं किया था लेकिन मेरी पहली प्रतिक्रिया उनके विचार का समर्थन करने की थी। 'यह कदम सबको हिला देगा। इसकी सख्त जरूरत भी है।' मैं समझता हूँ कि इस्तीफा देने का खयाल छोड़ देने का उनका आखिरी फैसला अनर्थकारी था। सरकार के बाहर से जवाहरलाल नेहरू जैसा शख्स आलसी कांग्रेसजन में एक नयी स्फूर्ति भर सकता था और राजनीतिक कार्यों में एक नयी जान फूंक सकता था। लेकिन अफसोस, यह नहीं होना था और जब यथास्थिति कायम रही तो मुझे निराशा हुई।

विदेश मंत्रालय के केंद्रीय दफ्तर में छः बरस टिके रहना अपने आप में बहुत खुशी और संतोष की बात थी हालांकि इसमें खुशी और अफसोस दोनों ही के मौके आये। आखिरकार जब वहाँ से हटने का मौका आया तो विदेश सचिव सुबिमल दत्त ने मेरे साथ बहुत भलमनसाहत बरती। एक दिन उन्होंने मुझे बुलाकर पूछा कि तीन जगहों में से मैं कहाँ जाना पसंद करूँगा—जेनीवा या न्यूयार्क में कौंसल-जनरली या मैड्रिड में चार्ज डि-अफेयर्स का पद। यह बड़ी स्नेह भरी बात थी लेकिन मैंने फैसला उन्हीं पर छोड़ दिया। अगले दिन प्रधानमंत्री ने मुझे बुला कर कहा, 'अगर मैं जवान होता और इस तरह का विकल्प मिलता तो मैं मैड्रिड

गुडिया की तरह बैठी थी। उस दावत मे स्पेन के उस समय के उच्चतम समाज क सदस्य—ड्यूक, मार्क्विस, काउट, बैरन व उनकी पत्नियाँ—मौजूद थे। उनक नामो से ही उस महान देश का इतिहास व शान शौकत झलकती थी। डचेस द्वारा सब लोगो से परिचय कराये जान के कारण मुझे ऊँचे लोगो के उस समुदाय म शामिल मान लिया गया। उनम से कई लोग बाद म मेरे व्यक्तिगत दोस्त बन गय।

मैंने शुरू से ही समझ लिया था कि सॉडा की लडाई, फ्लामेको (एक पहाडी नत्य) और फेरिया (सप्ताह का वह दिन जब धार्मिक दृष्टि से दावता की मनाही होती है) के इस खूबसूरत देश म अगर काम आगे बढाना है तो औपचारिक, सरकारी सपर्कों मे राजनीति को दूर ही रखना होगा। भारत व स्पेन के बीच बस यही एक झगडा था। चौथे दशक म हमन रिपब्लिकनो का समथन किया था और बाद म 1957 तक फ्राको के स्पेन को भारत ने मा यता नही दी थी, जो ठीक ही था। इसलिए मैंन दूसरा तरीका अपनाया। आखिरकार 1492 म शाह फर्डिनेंड व महारानी इसाबेला ने योलबस को भारत का रास्ता ढूढ निकालने के लिए ही तो भेजा था। उसने गलती की और गलती से ही एक नया महाद्वीप खोज निकाला! स्पेन है तो यूरोप मे, पर जैसी कि कहावत है, अफ्रीका पिरेनीज पवत श्रेणी से ही शुरू हो जाता है। यहाँ की दुनिया ही अलग है समय यहाँ दो शताब्दियो तक ठहर गया था। स्पेनी व्यक्तित्व एक अनोखी वास्तविकता है पर स्पेनी लोग अच्छे दोस्त होते हैं। मैंने कोशिश की कि लोगो से मिलू, स्कूल कॉलेजो मे जाऊँ, सास्कृतिक सामाजिक केंद्रो मे जाऊँ और श्रोताओ को बताऊँ कि कोलबस भी गलती कर गया था, अब हमने पहल की है, दूतावास खोला है और दोस्ती के लिए हाथ बढाया है। मेरे भाषणो की इस शुरुआत से वे खुश होते और तादात्म्य कायम होने पर मैं और बहुत सारी दूसरी बातें भी कह देता।

मैंडिड मे जमनी के राजदूत ने एक बार मुझसे कहा, 'ये स्पनी लोग अजीब हैं। वे हमसे कितने भिन है। व कामकाज की बात भी नही करते।" मैं उनके पहले जुमले से कभी सहमत नही हुआ, पर यह बात मान लेन मे मुझे कोई झिझक नही कि वे जमन या अ य एग्लो सक्सन जातियो से भिन हैं। कई बाता मे स्पेन यूरोप के कई अ य देशो के मुकाबले म हमसे ज्यादा नजदीक है। हडबडी या उतावली से उन्हे नफरत है और किसी योजना की प्रगति के बारे मे रोजमर्रा की पूछताछ से उन्हे चिढ है, शायद दिल के मामलो म भी उनका यही रवया है। बस, उनसे ज्यादा प्यारा इसान कोई दूसरा नही है। स्पनी लोगो की आत्म महत्व और आत्म गौरव की भावना बडी प्रबल होती है, उसमे वीरोचित उदारता और सम्मान की भावना होती है, मध्ययुगीन साहसिकता, गमजोशी, मेहमाननवाजी, खुश रहने व हँसने खिलखिलाने की तबीयत, मजा लूटने का स्वभाव और मौज करने की असीम क्षमता होती है, इन सबके मिल जाने से उसकी दोस्ती भी बहुत उग्र होती है। वह घटा बढकर किसी भी विषय पर बात कर सकता है उसका स्वभाव मजाक-पसद है पर उसका ढंग बडा प्रतिष्ठापूण होता है। उस अपनी सभ्यता पर गव है उस अपने नाम और इज्जत की परवाह रहती है और तिरस्कार या अपमान के बारे म वह बहुत सतक रहता है। वह कायदो का पाबद और शान शौकत वाली औपचारिकता म पक्का होता है, पारिवारिक सबधो का उसे बहुत खयाल रहता है। उसकी दिनचर्या उसकी बिलकुल अपनी होती है। सबेरे के नाश्ते या काई खास जिक्र नही पर उसे अजीब-अजीब वक्तो पर सैंडविच खाते या काफी पीते देखा जा सकता है। उसके कोपितो म दोपहर बारह बजे से दो बजे

तक शराब—शैरी, रम, जिन या शिंगला—मिलती है और तीन बजे शाम के आसपास दोपहर का खाना होता है। दफ्तरों में काम करने के घंटे भी बड़े अजीब होते है—सवेरे 10 बजे से दोपहर एक बजे तक, फिर शाम को चार बजे से आठ बजे तक। गृह-युद्ध के पहले एक विदेशमंत्री के बारे में मशहूर था कि वह रात के 12 बजे से सवेरे चार बजे तक दफ्तर करते है। और जगहों पर शाम को चार बजे चाय पी जाती है, पर यहाँ आमतौर पर सात बजे शाम को। कॉक्टेल पार्टियाँ रात को नौ बजे से 11 बजे तक होती हैं और रात का खाना बारह बजे से पहले कभी नहीं मिलता। रात्रि-क्लब, जहां फ्लामेंको नाच होता है रात के दो बजे अपने शबाब पर आते है। इन मनोरंजन केंद्रों के बाहर 'चुरो' नामक मिठाई बिकती है सिर्फ सवेरे पांच बजे, यह पतली डबलरोटी को गर्म चाक्लेट में डुबो कर तैयार की जाती है। रात्रि-क्लबों से भोर में घर लौटते वक्त चुरो खाने का आम रिवाज है। शैरी बनाने के एक मशहूर कारखाने के मालिक, मनोलो दामेक बड़े गर्व से कहते थे कि उन्होंने 19 साल से सूरज नहीं देखा है। वह कहते, "मेरा वक्त तो रात है। आप जो चाहे सजा लें, जो देखने काबिल नहीं है उसे छिपा दें। यह काम आप दिन की रोशनी में कैसे कर सकते हैं?'

लेकिन सब कुछ मौज मस्ती ही तो नहीं थी। पिछले 30 वर्षों में अधिकांश लेखक, कलाकार व अन्य बुद्धिजीवी या तो देश से निकाले जा चुके थे या बिलकुल निष्क्रिय कर दिये गये थे। किसी ने सच ही बताया था कि युवकों को अशिक्षित बनाने की नियोजित प्रक्रिया चलायी गयी थी। इससे एक ऐसी खाई पैदा हो चुकी थी जिसे पाटना मुश्किल लग रहा था। फिर भी, पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा के लिए स्पेन के सामरिक महत्व और हवाई अड्डों के लिए आदर्श स्थान यहां होने के कारण अमरीका और उसके यूरोपीय मित्र-देशों को उन्हीं फ्रांको का स्वीकार कर लेना पड़ा था जिसका वे 17 वर्ष तक बहिष्कार करते रहे थे। 'अछूत' माने जाने की इस अवधि में वहाँ संहारक गृह युद्ध भी हुआ, जिसमें भाई भाई से लड़ा। फिर भीषण सूखा पड़ गया और भुखमरी की हालत पैदा हो गयी। इसका प्रभाव भीषण था और स्पेन की अर्थव्यवस्था एकदम ठप हो गयी थी।

पर हालत सुधरी, पहले बहुत धीरे-धीरे और 1960 के बाद उसने बला की तेजी से तरक्की की। पर्यटकों के आने से अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ। एक ही साल में करीब 30 लाख पर्यटक आये और अरबों खरबों डालर खर्च कर गये, जिससे समृद्धि आयी। मैंने यह परिवर्तन अपनी आंखों से देखा जब सवा तीन साल तक मैं वहाँ था। युगों से चली आ रही प्रथाएँ समाप्त हो रही थीं। अकसर मैं अपने दोस्तों को गहरी तकलीफ के साथ कहता सुनता, 'अब नौकर मिलना सहज नहीं है। कोई 'सि का' (खेती के बड़े फार्म) की देखभाल करने के लिए भी नहीं मिलता, क्योंकि नौकर भी शहरों में ही रहना चाहते है।'

लेकिन तानाशाही किस तरह काम करती है, इसे देखने में मेरी गहरी दिलचस्पी थी, इसमें अपने देश के लिए भी नसीहत थी। जनरल फ्रांको एक कुशल पर जिद्दी प्रशासक और सख्त अनुशासन का पालन कराने वाले व्यक्ति थे। खुद हिटलर को उनसे समझौता करने में बड़ी परेशानी हुई थी। उन्हें प्रचार या चापलूसी में दिलचस्पी नहीं थी वह सिर्फ पूरी तरह से आज्ञा-पालन चाहते थे। लेकिन उनमें इतना धैर्य और समझदारी थी कि उनके बारे में चायखानों व कहवाखानों में जो मजाक किये जाते थे, उनका वह बुरा नहीं मानते थे। एक बार एक नौजवान ने अपनी प्रेमिका से मुसकराते हुए कहा, ' तुम्हारी आंखें वैसी ही काली

हैं जैसे फाको की आत्मा।" यह बात एक अखबार तक में छप गयी, लेकिन कोई कारवाई नहीं हुई।

फाको के निवास से छोटी मोटी खबरें पाने का हमें राजदूतो के पास एक ही जरिया था। वह एक अंग्रेज बुढिया थी जो फाको की इकलौती बेटी कारमेन की नैनी (धाय) थी। दिल की बीमारियो के विशेषज्ञ एक डाक्टर से विवाहित कारमेन शेर चीता जैसे बडे जानवरो के शिकार में बेहद दिलचस्पी रखती थी। वह खुद भी अच्छी निशानेबाज थी। ननी उनके बच्चे की देखभाल व परवरिश करती थी। ब्रिटिश दूतावास के लिए खबरें पाने का यह आदर्श स्रोत था। लोग उसे जनरलिसिमो (फाको) की टक्कर पर नैनीलिसिमो कहते थे।

वास्तव में कारमेन और उसके पति मेरे बहुत अच्छे दोस्त बन गये थे। एक बार वे मेरे घर आये जो शानदार सडक कस्तलना, पर था। दुनिया के किसी भी शहर में शायद इतनी चौडी सडक कही भी नहीं होगी। जैसे ही कारमेन मेरे बैठकखाने में घुसी उन्होंने जवाहरलालजी की सामने ही सजी हुई तस्वीर को देखा। वह बोली, "बुरा आदमी बहुत बुरा आदमी।" मैंने उनसे हाथ मिलाया और धीमी पर मजबूत आवाज में कहा "स्पेन आने के पहले मैं तुम्हारे पिता को बहुत बुरा आदमी समझता था। पर यहां आने के बाद मैंने अपनी आखो से देखा है कि उन्होंने स्पेन के लिए कितना कुछ किया है और मैंने अपनी राय बदल दी। अगर आप भारत जायें तो आप भी देखेगी कि नेहरू ने हम लोगो के लिए क्या किया है। मुझे यकीन है कि आप भी अपनी राय बदल देंगी।" वह राजी हो गया और तभी उन्हें भारत में भ्रमण व शिकार खलने व दर्शनीय स्थान देखने के लिए व्यक्तिगत रूप से आमंत्रित करने की बात उठी। विभिन्न औपचारिकताएँ पूरी करने में समय लगा और जब कारमेन भारत आयी तब मैं उस लुभावने देश को अलविदा कह चुका था। कुछ वर्ष बाद वह एक बार और भी भारत आयी। लगता है कि उन्हें नेहरू का भारत जरूर अच्छा लगा।

मैं एक साल मेड्रिड में पूरा करने के बाद दिल्ली लौटने के लिए उतावला सा था पर यह होना नहीं था। जो भी हो स्पेन में लंबे प्रवास के अपने कार्यकाल और अंतत मैं बहुत उत्साहजनक और लाभदायक अवधि वहाँ पूरी करके ही लौटा।

राजदूत की हैसियत से मुख्य काम कनारी द्वीप समूह में था जहाँ बडी संख्या में भारतीय दुकानदार या फुटकर व्यापार में लगे थे। मैं छ महीने में एक बार वहाँ जाता था और उनकी शोभा बहुत समझाना था कि जिन लोगो में रह रहे है उनके लिए भी उनका कुछ कर्तव्य है। अपने भारतीय मित्रो के लिए जो सदा त्यौहार मनाते ... [illegible] ... के लिए उन्हें ... [illegible] ... आखिर में मैं द्वीपसमूह में हो एक उजाड जगह इस काम में कामयाब हो गया।

द्वीपसमूह के स्थानीय लोगो की उत्पत्ति के संबंध में बहुत कम जानकारी है। ... [illegible] ... में आये थे। पर अब तो आबादी का बहुमत ... [illegible] ... है। एक द्वीप पर स्थानीय लोग सीटी बजाकर बात करते हैं। एक दूसरे द्वीप की प्रसिद्धि ज्वालामुखी के ... [illegible] ... के लिए है। ... [illegible] ... और ... [illegible] ... है। ... [illegible] ... बहुत ... [illegible] ... में बडा

रगीन बदलाव था। स्पेन को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि यहा जितनी राजधानिया बनी, उतनी दुनिया के किसी और देश म नहीं बनी। और आप यकीन भले ही न करें, दुनिया की राजधानियो मे सबसे ज्यादा ऊँची जगह पर मड्रिड ही बसा हुआ है। मैं रिविस्ता ज्योग्रफिका एस्पेनोला के बलेरियाना सत्रास से मिला और उन्हें अपनी भूगोल पत्रिका का एक विशेष अक केवल भारत पर निकालने के लिए राजी कर लिया। इसकी सामग्री, फोटो व छपाइ सचमुच बहुत बढ़िया थी। डॉक्टर जैन रोजस के माध्यम से महात्मा गाधी की बी० आर० नदा कृत जीवनी और टैगोर की दो पुस्तको का स्पेनी भाषा म अनुवाद कराया लिया गया। टैगोर की पुस्तको का जन्मशती समारोह के अवसर पर विमोचन हुआ। प्रोफेसर जूलियन मारिया के भारतीय परिस्थिति पर छपे लेखो को पुस्तक का स्वरूप दिया गया और एक मित्र सस्था द्वारा उसकी बिक्री का बदोबस्त किया गया।

मड्रिड म मेरे प्रवास के दौरान लगातार मेहमान आते रहे और उनम से अनेक मेरे साथ ठहरे। कमलादेवी चट्टोपाध्याय शिल्प केंद्रो म जाकर वहा का सामान देखने और वह सामान बनाने वाला स मिलन के लिए आतुर रहती थी। एक व्यवसायी भगतसिंह बग्गा और उनके कुछ व्यापारी सहयोगी वहा एक स्थानीय उद्योगपति से मिलकर कोई उद्योग स्थापित करने के लिए स्थिति आकने आये। मत्रालय के सेक्रेटरी जनरल (महासचिव) का पदभार सँभालने के पहले कुछ आराम करने के लिए और तरोताजा होने के लिए एम० जे० देसाई आये। उन्ह पट मे अक्सर (फोडे) थे और उनकी सेहत बस भी अच्छी नही रहती थी, पर वह नाच रात रात भर सकते थे। भिक्षु चमनलाल ने एक प्रमुख समाचार-पत्र म यह खबर छपवा दी कि वह 10 000 हाथियो के साथ सफर कर रहे हैं। असल म वह हाथीदात के बने नन्ह-नन्ह हाथियों को लाल मनकों मे भरकर लाये थे। रामकृष्ण मिशन के स्वामी रगनाथानद ने दूतावास म एक छोटी सी पर प्रभावशाली भीड के समक्ष जो भाषण दिया, उससे लागो पर गहरा प्रभाव पडा। उनके युक्तिसगत व तर्कपूर्ण भाषण से प्रभावित एक स्पेनी राजनयिक ने कहा, "अच्छा, तो इस तरह आप भारतीय लोग उपदेश देकर धर्म-परिवर्तन करते ह।" सुशीला नैयर बिना बताये ही आ गयीं और बोलीं कि मैं "स्पेनी वास्तविकता का परिचय पाना चाहती हूँ।' मैं उन्ह विश्व प्रसिद्ध प्रादो कला सग्रहालय ले गया जिसम इकट्ठी कला-कृतियो पर कोइ भी मोहित हो जाता। पर सुशीला जल्दी जल्दी चलती गयी कुछ ऊबी सी लगी और बाहर आकर बोली, "घूसु भाई, कलर प्रिंट तो हमने हिंदुस्तान मे भी बहुत देखे है। चलिये, कुछ और दिखाइये।" गणित की विलक्षण प्रतिभा वाली शकुतला ने, जिन्ह 'एलेक्ट्रानिक दिमाग' भी कहते ह मैड्रिड भर मे धूम मचा दी यह इसलिए भी कि वह लातीनी अमरीका के लबे दौरे स लौटी थी और स्पेनी भाषा म भी सवाल जवाब कर लेती थी। घाना मे हमारे सुस्तमिजाज उच्चायुक्त बलराज कपूर जितने दिन रहे उन पर एक ब्रिटिश राजनयिक की मा को खोजने की ही धुन सवार रही, मा किसी अस्पताल म बडी नर्स थी, पर किस अस्पताल मे यह पता नही चल सका। प्रख्यात वैज्ञानिक डॉक्टर होमी भाभा, जो परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष भी थे, पेप्सी वाडिया के साथ आये, जिन्हें मैं कृष्णा हठीसिंह के जरिए बहुत अच्छी तरह जान गया था। यह एक अच्छी कडी थी और ज्यादातर वक्त हम लोग साथ रहे। डॉक्टर भाभा मेरी जान पहचान के कुछ लोगो स इतने प्रभावित हुए कि उन्होने

अपना प्रवास बढ़ा लिया। हम स्पेनी परमाणु ऊर्जा आयोग से यूरेनियम खरीदने में भी सफलता मिल गयी, आयोग के अध्यक्ष, प्रोफेसर आतरो नवास्क्स, यह समझौता बहुत जल्दी करवाने पर तुले हुए थ। होमी स मेरी दोस्ती कायम रही और वह मुझे हर नये साल की मुबारकबाद देने के लिए कार्ड भेजते थ, जिन पर उनके अपने बनाये चित्र अंकित रहते थे। रावराजा हनोतसिंह भी आये और पोलो के अपने श्रेष्ठ खेल से उन्होंने स्थानीय विशिष्ट अभिजात वर्ग को मोहित कर लिया, उनके घोड़ों की देखभाल के लिए जो अंग्रेज लडकियाँ आयी थीं उन्हें दप-दप्त मस्त स्पेनी आश्चर्य से कहते, "आह, क्या सुंदरता है क्या चमक-दमक है!"

स्पेन म अपने प्रवास के दौरान मुझे प्रख्यात अभिनेताओं-अभिनेत्रियों स जान पहचान करने का सुनहरा मौका मिला। इस पहचान स मरे और मरे उन दोस्तों के घरों पर अक्सर जिंदादिल पार्टियाँ हुआ करती थीं जो इन अभ्यागतो क प्रशसक थ। ऐसी अनौपचारिक दावतों म अनेक सामाजिक अवरोध दूर हो जाते थे। मुझे याद है कि श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने एक बार भौचक्के स रह गये टाइरोन पावर से कहा था, 'मैं आपसे बहुत नफरत करती थी, क्योंकि मेरी तीनों किशोरी बेटियाँ समझती थीं कि वे आपसे मुहब्बत करती हैं और पढ़ाई लिखाई म ध्यान नहीं देती थीं।" बाद म टाइरोन की मौत मड्रिड म ही हो गयी जब वह 'सोलोमन ऐंड शेबा' फिल्म म काम कर रहे थे। हवाई अड्डे पर मैं मौजूद था जब उनकी शोक से विक्षिप्त पत्नी उनका शव लेकर अमरीका जा रही थी। जब कुछ बरस बाद मेरी तैनाती अमरीका म हुई तो स्पेन म की गयी दोस्तियाँ और जान पहचानें और भी गहरी हो गयी। मैं उस महान देश और उसके लोगों को ज्यादा अच्छी तरह समझने लगा। चार्लटन हेस्टन, जिन्हें उनके दोस्त 'चक' कहकर पुकारते थे और उनकी बीवी लीडिया मेरे परिचितों म सबसे ज्यादा स्नेही दंपत्ति साबित हुए, जो समस्याओं को समझते थे। बीवर्ले हिल्स (लॉस एंजिल्स) मे उनके खूबसूरत सजावट वाले घर म मैं हर तरह के लोगों से मिलकर अच्छा महसूस करता था।

जब मैं स्पेन से चलने लगा तो मुझे लगा कि दोनों देशों के बीच अनबन से जो दरार पड गयी थी, उसे पाटने म कुछ सफलता मिली और मुझे अपने काम पर संतोष था। मुझे भेंट मे एक चाँदी की एक थाली भी मिली। स्पेन और वैटिकन (पोप) के बीच एक समझौते के अनुसार पोप का प्रतिनिधि राजनयिक बिरादरी का अध्यक्ष हुआ करता था। उन्होंने इस भेंट के लिए एक विशेष समारोह का आयोजन किया। इस अवसर पर उन्होंने 'राजनयिक समुदाय के आपके सहयोगियों की ओर से' मुझे वह थाल दिया और 'राजदूत की हैसियत स अपने कर्तव्यों की समाप्ति' के लिए पोप की ओर से एक तमगा दिया। इसका संबंध उन मिशनरियों से था जो भारत मे काम करने के लिए प्रवेश पत्र चाहते थे। उनके आवेदन पत्रों को मैंने अलग अलग श्रेणियों मे बाँट रखा था। जो जेसुइट पादरियों द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों मे पढ़ाने के लिए जाना चाहते थे, मैं उन्हें उदारतापूर्वक प्रवेश पत्र देने के पक्ष म था। मड्रिड विश्वविद्यालय के सेंट फ्रांसिस ज़ेवियर कॉलेज ने मुझे 'कोलेसियो द आनर' देकर सम्मानित किया, जिसके लिए विश्वविद्यालय प्रांगण म एक भव्य समारोह हुआ। 'इस्कूएला द फक्श नेरीज़ इंटरनेशनल' ने जहाँ मैंने आज का भारत विषय पर चार व्याख्यान दिये थे, उन भाषणों की एक पुस्तिका प्रकाशित की और मुझे यादगार के रूप म भेंट की। सरकार ने भी मेरी सेवाओं' के लिए और 'भारत-स्पेन को इतना निकट

मान' के लिए मेरी प्रशंसा की और यहाँ के विदेश मंत्री फ्रांदो मारिया कस्टील ने व्यक्तिगत रूप से मुझे स्पेन का एक पुरस्कार 'मेरिटो देल सिविल' प्रदान किया, उन्होंने कहा, "मैं जानता हूँ कि आपकी सरकार ऐसे पुरस्कार या आभूषण स्वीकार नहीं करने देती, लेकिन आप पता लगायें कि क्या आपकी सरकार 'हमारे वीर आपके बहुत सुखद प्रवास के सम्मान में एक यादगार' के रूप में इसे लेने पर एतराज नहीं करेगी ?" भारत सरकार ने मुझे चाँदी के इस तमगे को 'प्रतीक भेंट' की शक्ल में रखने की इजाजत दे दी।

दिसंबर 1961 में दिल्ली वापस आने पर मैं विदेश मंत्रालय के शिष्टाचार विभाग में कुछ दिनों के लिए उसकी कार्य पद्धति का सुधार रूप देने के लिए तैनात कर दिया गया। इस तरह का काम मुझे पसंद नहीं था और महासचिव, एम० जे० देसाई ने मुझे कुछ ही दिनों बाद एक क्षेत्रीय विभाग में अध्यक्ष पद पर तैनात कर दिया। शुरू में इस दक्षिणी विभाग में बर्मा, श्रीलंका, मलेशिया, वियतनाम, थाइलैंड, कंबोडिया, इंडोनेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और फिलीपीन्स जैसे देश थे। किंतु संयुक्त सचिव के लिए यह काम हलका समझा गया और ब्रिटिश साम्राज्य के अवशेष और ब्रिटेन भी इसमें शामिल कर दिये गये। प्रशासन के किसी तीक्ष्ण बुद्धि महाशय का फिर दूर की सूझी और उन्होंने सोचा कि आयरलैंड को चूंकि भारत का लंदन स्थित उच्चायुक्त की देखता है इसलिए आयरलैंड भी मेरे विभाग में शामिल किया जाय। जब भी किसी देश के सैनिक विमान भारतीय क्षेत्र के ऊपर होकर उड़ते हैं, तो उन्हें विशेष अनुमति दी जाती है। अभी तक यह काम किसी विशिष्ट देश से संबंधित क्षेत्रीय विभाग ही देखा करते थे और पता चला कि इससे कुछ भूलें हो गयी थीं, क्योंकि समन्वय का अभाव था। इसलिए यह तय किया गया कि यह सारा काम मेरे सिपुर्द कर दिया जाय। विभिन्न क्षेत्रीय विभागों के बीच समन्वय का काम पहले भी दक्षिणी विभाग ही किया करता था।

तभी, अगस्त 1962 में, खेल की एक घटना को लेकर भारत और इंडोनेशिया के बीच एक हंगामा खड़ा हो गया और कुछ कड़वाहट भरी बातें कही गयीं। एक उच्चस्तरीय निर्णय हुआ कि अंतर्राष्ट्रीय खेलों में राजनयिक स्वर मुखर होने के कारण बेहतर यही होगा कि इन खेल कूदों के आयोजन की जिम्मेदारी शिक्षा मंत्रालय से हटाकर विदेश मंत्रालय को सौंप दी जाये। और दक्षिणी विभाग के अध्यक्ष के अलावा यह जिम्मेदारी और किसे सौंपी जा सकती थी ! मानो यह सब काफी न हो प्रधानमंत्री ने राय दी कि तोशाखाना भी मेरे अधीन रहे जहाँ विदेशी सरकारों द्वारा अति विशिष्ट लोगों को दी गयी भेंटें जमा इकट्ठी की जाती थीं। विचार यह था कि जिन लोगों को ये भेंट मिलती थीं, वे इनमें से कैसी चीजें व्यक्तिगत रूप से अपने लिए रख सकते हैं इसके बारे में तत्संगत नियम बना लिये जायें। स्पष्ट है कि नेहरू के पास तक उनके ऊँचे हाकिमों के लालची कारनामों के बारे में कुछ अफवाहें पहुँची थीं। राजनयिक जिम्मेदारियों के साथ मुझे यह नाशुकरा काम भी करना पड़ा, क्योंकि भेंट पाने वाले लोग अधिकतर इन सौगातों का कोई ब्योरा ही नहीं देते थे। जो सौगातें छिपा लेने के अपराधी थे, उन्हें पकड़ने का कोई उपाय भी नहीं था। जो भी हो, प्रधानमंत्री को पिछले वर्षों में मिली ढेरों सौगातों को तोशाखाने के सिपुर्द कर दिया गया था और विदेश मंत्रालय के कार्यालय के बरामदों में उनके प्रदर्शन की उपयुक्त व्यवस्था की गयी थी। हमने एक खाना जान बूझकर "सौगातें जिनकी सूचना

नही दी गयी" के लिए खाली रखा, ताकि ऐसे लोगो को शरम आय जिनकी अतरात्मा दोषी थी।

एक दूसरे की क्षेत्रीय अखडता और प्रभुता, अनाक्रमण, एक दूसरे के आत रिक मामलो मे अहस्तक्षेप, समता और परस्पर लाभ तथा शातिपूर्ण सह-अस्तित्व के पाँच सिद्धातो पर आधारित पचशील और मत्री की नेहरू की नीति को चीन से बिगाड होने से धक्का लगा। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि चीन से जब हमारे सबध गहरे थे, उस समय—1948 से 1960 तक—चीन मे हमारे प्रतिनिधि थ सरदार के० एम० पणिक्कर, जो एक इतिहासकार थे और राजनय के क्षेत्र म आ गये थे और एन० राघवन, जिन पर आज़ाद हिंद फौज के उनके सहयोगियो को ही शक था, इ्ह बाहर से राजनय मे लाया गया था और इ्होंन मामला चौपट कर दिया। विदेश मत्रालय म काम करन वाले आई० सी० एस० टाइप के लोग, जैसे आर० के० नेहरू और पत्रकारिता से राजनय मे आये जी० पी० पाथ सारथी भी चीन से उसके इरादो के बारे मे ठोस बात करके पक्की लिखा पढी करान के लिए गभीरतापूवक बात करने मे नाकामयाब रहे। छठ दशक म यह काम बहुत आसान होता। अँग्रेज़ो से विरासत म हमे तिब्बत मे एक विशेष स्थिति मिला थी, जिसे चीन हमारी सदभावना स ही प्राप्त कर सकता था। पर हमने पूर्वी क्षेत्र म अपन गभीर हितो की पूरी रक्षा किये बिना ही तिब्बत म अपनी विशेष स्थिति त्याग दी। दोनो देशो के बीच मैकमेहोन रेखा को सीमा स्वीकार कर लेने के लिए चीन को राजी किया जा सकता था। अपने विकास की उस मज़िल मे चीन किसी तकसगत समझौते को अस्वीकार करने की हालत म नही था, क्योकि चीन के लिए उत्तर पूव सीमा एजेंसी (नफा) मे क्षेत्रीय समजन से ज्यादा महत्व था तिब्बत का। स्पष्ट है कि उस समय समझौते की सभावनाए बहुत प्रबल थी। तिब्बत मे हमारी उपस्थिति एक बहुत महत्वपूण बात थी और इसकी बुनियाद पर सौदा भी किया जा सकता था। हमारे विशेषज्ञ उस समय 'माओ और चाऊ की मीठी मीठी युक्तिसगति' से भ्रम मे पडे थे। मैंने जान बूझकर विशेषज्ञो पर दोषारोपण किया है, क्योकि वे राजनीतिक नेताओ को चीनियो के बद इरादो के बारे मे आगाह करने म नाकामयाब रहे। पणिक्कर की इतिहास कार की प्रतिभा तभी सोकर जागी जब चीनी भारतीय क्षेत्र पर कब्ज़ा कर चुके थे। उसके बाद ही उन्होने घोषणा की कि, 'चीनी हमेशा ही प्रसारवादी रहे हैं।" राघवन को भी अपनी गद्दी बचाने के लिए झूठ बोलना पडा। पता चला कि आर० के० नेहरू अपन बहरेपन के कारण यही नही सुन पाये कि चीनी अपनी स्थिति के बारे मे क्या कह रहे थे, और चीनी यह नही समझ पाय कि आर० के० नहरू क्या कहते थे, क्योकि उनकी आवाज़ बहुत अजीब और धीमी थी। जहा तक पाथसारथी का सबध है उन्होने चीनी तर्कों को न तो सुना और न उनकी काट करन के लिए कुछ कहा ही। वह सिफ आखें झपकाते, सिर हिलाते, "ओम शाति, शाति नम।" कहते रह गये।

चीनियो को चाहिए था समय और इसके लिए वे ठडे दिमाग से इतज़ार करते रह। लेकिन एक बार जब उनकी स्थिति मजबूत हो गयी और उन्हे तिब्बत पर पूरा कब्ज़ा मिल गया, तो उन्होने आँखें तरेरना शुरू कर दिया। दलाई लामा व उनके अनुयायियो को परेशान किया गया और अप्रैल 1959 म अपना देश छोडकर भागकर भारत आने पर मजबूर कर दिया गया। तिब्बत की जनता के साथ शताब्दियो से चली आ रही हमारी मैत्री को देखते हुए भारत सरकार के

लिए उन्ह शरण देने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। इससे चीनियो को चुभन हुई और वे अकसडपन से बात करने लग और सीमा विवाद तय करने के लिए उतावली दिखाने लगे। हमारे पार खबरें आ रही थी कि उस इलाके मे चीनियो की शत्रुतापूण कारवाई चल रही है और हमारी सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो रहा है। शुरू की झडपो के बाद टकराव के तेवर पैदा हो गये और अत मे 20 अक्तूबर, 1962 को हमारे ऊपर हमला कर दिया गया।

हमने बराबर चीन से दोस्ती का रवैया अपनाया था और लडाई की कोई तैयारी नही की थी। दूसरी ओर, चीनी कारवाई सुनियोजित थी जिसका वे पहले से अभ्यास तक कर रहे थे। हमला अचानक हुआ और हम बेखबर रह गये। हमारी फौजें कम थी और लडाई का साज सामान भी कम था। हम शम व बदनामी के साथ पीछे हटना पडा। पूरी स्थिति हमारे खिलाफ थी—इलाके की भौगोलिक स्थिति, दुश्मन की बहुत ज्यादा ताकत और बिजली जैसी तेजी से की गयी उसकी कार्रवाई। नेहरू के दुश्मनो न इस "भीषण घोटाले" के खिलाफ शोर मचाकर आसमान सिर पर उठा लिया। रक्षा मत्री, वी०के० कृष्ण मेनन को इस्तीफा दना पडा और लेफ्टिनेंट जनरल बी० एम० कौल को कमान से हटाना पडा। जैसे ही हिंदुस्तान ने अपनी सेनाओ की व्यूह रचना की और उन्ह युद्ध स्थल पर भेजने की तयारी की, चीनियो न एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा कर दी और सामरिक महत्व के उन स्थानो मे वापस पहुँच गये जो उनके पास पहले से ही थे। किंतु फौजी हार एक बदनुमा धब्बा था, जिसकी शम से उबरने मे हम वर्षों लग गये। हमें बाद मे इसका आभास हुआ कि तथाकथित पराजय पराजय थी ही नही, क्योकि उन ऊँचाइया पर कोई फसला हो ही कैसे सकता था? वहाँ न तो कोई कभी रहा था और न भविष्य मे ही कोई कभी रहेगा। अगर चीनियो ने अपनी पुरानी चालाकी या विवेक स काम न लिया होता और तेजी से वापस न लौट गये होते तो अतत उन्ह पीछे खदेड दिया जाता और इस विश्वासघात की उन्ह माकूल सजा मिलती।

जसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इस सकट की सबसे बडी दुघटना कृष्ण मेनन के लिए ही हुई। उन्हाने उल्लेखनीय सयम और धैय दिखाया और कभी यह यह सवाल नही उठाया कि लडाई के परिणामस्वरूप जो राजनीतिक हगामा हुआ, उसम उन्ह ही अलग छाँटकर सजा क्यो दी गयी? उन्हाने मौन धारण कर लिया और अपने से बहुत छोटे लोगा से अपमानित होने पर भी मुह नही खोला। इसके लिए मैं उनकी सराहना करता हूँ। यह देखकर खुशी होती है कि हम लोगो के बीच एसे भी ऊँचे इसान थे, सिफ वे बेशम लोग ही नही थे जो 15 वरस बाद, माच 1977 मे चीख चीखकर कहने लग थे कि कांग्रेस की हार के लिए वे जिम्मेदार नही है। उनकी दलील शायद यह थी कि वे मौज मजा करने और रुपया बनान के लिए और बाद मे अपने नेता पर मुसीबत पडने पर उनका साथ छोड देने के लिए ही पैदा हुए थे। लेकिन कृष्ण मेनन दूसरी ही मिट्टी के बने थे। उनका व्यक्तित्व विवादग्रस्त था और वह अपनी तेज जुबान और उससे भी ज्यादा तेज दिमाग के लिए मशहूर थे। उनका सावजनिक जीवन बहुत लबा था—पहले इग्लैंड मे भारतीय आजादी के प्रवक्ता फिर राजनयिक, रक्षामत्री, सयुक्त राष्ट्रसघ मे भारतीय प्रतिनिधि और अत मे अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञ—इस लबे जीवन मे या तो लाग उनके प्रशसक ही रहे, या कटु आलोचक। लोगो को नाराज करके उन्ह अपना दुश्मन बना लेना उनकी एक खूबी थी। पर उनमे यह

बडप्पन व मोहक गुण भी था कि वह अपनी ग़लतियाँ मान लेत थे। अपन सामन हुई एक झडप का मैं यहा जिक्र करूँगा।

एक बार वह विदेश मत्रालय के अफसरो की एक गोष्ठी म भाषण कर रहे थे। किस तरह परदे के पीछे हुई बातचीत व सलाह मशविरे से महत्वपूण काम हो जाते हैं, इसके उन्होने कई दिलचस्प उदाहरण दिये। एक जगह जब वह पाकिस्तान की परिस्थिति के बारे मे अपनी राय द रह थे, मैं उनकी बात पर मुसकराया। उन्होंने मुझे देख लिया और फौरन पूछा, 'क्या आपको मेरे मूल्याकन पर कोई शक है ?" मैंने कहा, "हाँ।" उन्होने मुझसे गोष्ठी के बाद मिलन के लिए कहा। इसके बाद उन्होन कहा कि अफसर अगर कुछ सवाल करना चाह तो वह जवाब देने के लिए तैयार हैं। सबसे पहले महासचिव आर० के० नहरू उठे। उन्होंने कोई अप्रासगिक सवाल उठा दिया और उन्ह झिडक दिया गया "आपसे यहा नीतियाँ बनाने की अपक्षा की जाती है, आप इस तरह के सवाल क्या करत हैं ?' एक अन्य सचिव, बदरुद्दीन एफ० तैयबजी की बारी आयी और उन्ह इससे भी ज्यादा करारा जवाब मिल गया। तब एक युवा अफसर एस० के० राय न अगला सवाल पूछा और वह भी फटकार दिये गय। पर उनमे नये भारत की तरुण भावना भरी थी। उन्होने उलटकर कहा, "अगर आपको हम लोगो को मूख और अनाडी समझकर बरताव करना है तो आप हमसे बात ही क्या करते हैं ?" कृष्ण मेनन इसके लिए तैयार नही थे। उन्होंने फौरन माफी माँगी और पूछा कि क्या उनके व्यवहार से ऐसा ही कुछ आभास हुआ था ? बठक म सन्नाटा छाया रहा। मैं फिर मुसकरा दिया। बाद मे, जब मैं उनसे मिला, तो वह पाकिस्तान के बारे मे अपनी राय से मुझे कायल नही कर सके, कुछ और बातो पर भी मतभेद रहा। लेकिन मैं उनकी हमेशा इज्जत करता था और हमारे सबध दिल्ली म लबी बीमारी के बाद 6 अक्तूबर, 1974 को उनकी मृत्यु के समय तक सदभावनापूण बने रहे।

कृष्णमेनन के रक्षामत्री पद से हटने से थल सेना अध्यक्ष, जे० एन० चौधरी को प्रेरणा मिली कि वह कुछ वष पहले दिल्ली मे खुले नेशनल डिफेंस कॉलेज को बद करवाने के लिए दबाव डाल सकते है। विदेश सेवा के एक सहयोगी, पृथ्वीसिंह, ने मुझे इस आसन्न सकट की पहली सूचना दी। इसके फौरन बाद सना के कुछ दोस्तो ने इसकी पुष्टि की। मुझे इससे बहुत तक्लीफ हुई, क्योकि इस सस्था के उपयोगी होने के बारे मे मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। कॉलेज बद करने के प्रस्ताव से एकबारगी अभी तक हुए अच्छे काम पर एकदम पानी फिर जाता। इस कॉलेज को बद करने का मतलब यह होता कि देश की जटिल समस्याओ के गभीर अध्ययन की कोई क्षमता ही नही रह जाती। इसलिए मैं प्रधानमत्री से मिलन गया और इस होन वाली गलती की ओर उनका ध्यान दिलाया। उन्हें मनाने की कोई जरूरत नही थी वह मुझसे सहमत थे। बाद मे रक्षा मत्रालय म अपने एक दोस्त से मुझे पता चला कि नहरू ने रक्षा सचिव को बुलाकर डाँटा था और उन्हें सावधान किया कि इस कॉलेज की तरह की सस्थाएँ मनमाने ढँग स न खोली जा सकती हैं और न बद ही की जा सकती है उनके पनपन और विकसित होने के लिए प्रोत्साहन और दूरदेशी की जरूरत होती है। उनके सामयिक हस्तक्षेप के बिना यह सस्था बद हो जाती और आने वाली पीढ़ियाँ इसके लाभ से वचित रह जातीं। अब यह राजधानी की एक बहुत शानदार और महत्वपूण सस्था है। सिफ अपनी सेना के अफसर, गर फौजी अफसर और निजी क्षेत्र के लोग ही नही, बल्कि

विदेशी नागरिक भी अपने योग्य उम्मीदवारों को यहाँ प्रवेश दिलाने के लिए लालायित रहते हैं।

अक्तूबर 1962 के चीनी आक्रमण के समय ब्रिटिश उच्च आयुक्त ने महासचिव राघवन पिल्ले से मिलकर उत्तर-पूर्व में बसे हुए उन ब्रिटिश नागरिकों की सुरक्षा के लिए चिंता व्यक्त की थी जो असम में बड़े-बड़े चाय बागानों के मालिक थे। उनके मातहत उप-उच्चायुक्त मुझसे मिले और कहा कि खतरे की जगह से उन लोगों को निकाल लेना चाहिए। मैंने उन्हें समझाया कि जहाँ लड़ाई हो रही है चायबागान वहाँ से बहुत दूर हैं और ऐसी हालत में अंग्रेजों के हटाये जाने से वहाँ व्यापक आतंक फैल जाने और भगदड़ मच जाने का अंदेशा है। मैंने इस बात पर जोर दिया कि यह तो एक क्षणिक-सी स्थिति है और अगर इस संकट के समय विदेशी मालिक अपने बागान छोड़कर भागे तो स्थानीय जनता फिर उन्हें वापस न आने देगी। वह बस इन बागानों पर कब्जा कर लेंगे। अगले दिन वह अपने वायुसेना सलाहकार को साथ लाये। वह अपने साथ नक्शे भी लाये थे जिन पर हवाई अड्डे दिखाये गये थे। उन्होंने हम से इजाजत माँगी कि वह ब्रिटिश नागरिकों को असम के बागान क्षेत्र से निकाल लायें। मैंने अपनी बात पहले से ज्यादा जोर से दोहरायी, पर कोई असर नहीं हुआ। वह बराबर कहते रहे कि ब्रिटिश नागरिकों को उस क्षेत्र से बाहर निकाल लाना बहुत जरूरी है। उनकी जिद देखकर और यह जानते हुए कि इससे देश की शांति में विघ्न पड़ेगा और यथास्थिति कायम नहीं रह सकेगी, मैं अपने को रोक नहीं सका और मैंने व्यंग्य में कहा 'भलेमानसो! हम आपके नागरिकों की पूरी हिफाजत करेंगे और उनकी हर मदद करेंगे। अल्लाह न करे, अगर चीनी वहाँ तक बढ़ भी आयें तो हम एक भी अंग्रेज को चीनी हाथों में नहीं पड़ने देंगे, हम ही पहले उन्हें गोली मार देंगे।"

वह भौचक्के रह गये, लेकिन नौकरशाही के ऊपर के स्तर पर वह अपनी बात मनवाने में सफल हो गये। लेकिन इससे उन्हें अपने देशवासियों से फटकार ही मिली। मैं इन बागान मालिकों में से कुछ से बाद में मिला था। वे अपने दूतावास से "इस तरह घबरा जाने और हमारे भाग्य को चौपट करने के लिए" बहुत नाराज थे।

सातवें दशक में ही बाद में इन "चुने हुए" लोगों से मेरी दूसरी झड़प हुई। शाही युद्ध कब्र आयोग, जो राष्ट्रकुल के दो महायुद्धों में मारे गये सिपाहियों के कब्रिस्तानों की देखभाल करता है और जिसका काम अनेक देशों में फैला हुआ है, उन दिनों दिल्ली में एक अदना सा अफसर रखे हुए था। यह अंग्रेज अपने को बड़ा आदमी समझने लगा था और राजनयिकों को दी जाने वाली सुविधाओं के अंतर्गत एक विदेशी कार का आयात करना चाहता था। उसकी प्रार्थना को विदेश व रक्षा मंत्रालयों ने ध्यानपूर्वक जाँचा और अनुमति नहीं दी। यह अंग्रेज इससे संतुष्ट नहीं हुआ और उसने लंदन स्थित अपने मुख्य कार्यालय को लिखा। आयोग के उपाध्यक्ष, जो फौज के जनरल थे और उन्हें 'सर' का खिताब भी मिला हुआ था, भारत आये और रक्षा सचिव, एच० सी० सरीन, से मिले, जिन्होंने उन्हें विदेश सचिव वाई० डी० गुंडेविया से मिलने को कहा। गुंडेविया तभी दौरे पर जा रहे थे और उन्होंने मुझसे मामले को देख लेने के लिए कहा, क्योंकि यह क्षेत्रीय विभाग के अध्यक्ष के काम की परिधि में ही आता था। यह लंबा अंग्रेज 'सर' अपने स्थानीय प्रतिनिधि सी० डी० जैक के साथ मेरे दफ्तर में तीसरे पहर आया। मैंने

बहुत विनय और शिष्टता का व्यवहार किया और पूछा कि मैं उनकी क्या खिदमत कर सकता हूँ ? वह सीधे बैठ गया और बहुत अकड़कर बोला, "मुझे उम्मीद है कि आपको इस मामले की पृष्ठभूमि मालूम है। मुझे ताज्जुब है कि इस छोटी-सी बात मे भारत सरकार अडचनें डाल रही है। जर्मनी और इटली जैसे शत्रु-देशों तक ने हमारे उचित अनुरोधो को मान लिया है। लेकिन भारत, जो कि राष्ट्रकुल का एक सदस्य है, अजीब रवैया अपनाये हुए है। यह आयोग 21 देशो मे फैला हुआ है और इसलिए इसका स्थान अलग अलग देशो से ऊँचा है। मुझे यकीन है कि किसी नासमझ अदना अफसर ने इस मामले मे गडबड कर दी है।' लेकिन इसके बाद उसने जो चेतावनी दी और जिस लहजे मे दी, उससे मेरा खून खौल उठा। साम्राज्यवादी ब्रिटेन का यह खँडहर मुझे धमकी देते हुए बोला, "आप जल्दी करें और कल सवेरे मेरे दिल्ली से जाने के पहले मुझे मुनासिब जवाब दे दें।" मैं उसके इस गुस्ताख भाषण को चुपचाप सुनता रहा। फिर मैंने पूछा कि क्या उन्हें कुछ और कहना है। उसने ऊँची आवाज मे कहा, "नौजवान ! मैं तुमसे कह चुका हूँ कि जल्दी मेरा काम करो।' आजादी की लडाई मे भी मैंने अंग्रेजों को देखा था उनसे मिला था, उनसे दोस्ती भी की थी। मैं भलेमानसो और उन लोगो मे फर्क जानता था जो अपनी हेकडी और लडाकूपन को साम्राज्य के 'हीरो' के निशान की तरह लिये घूमते थे। जनरल के रंग ढंग शेखी हेकडी वाले ही थे। मैं शुरू के अपने संयम के बावजूद सोचने लगा कि अब बहुत हो चुका अब उसे उसकी औकात बता देनी चाहिए। मैंने कहा, "अरे कफनखसोट ! तुम्हारी यह मजाल कैसे हुई कि मेरे मुल्क का मुकाबला फासिस्टो से करो ? उठो और निकल जाओ बाहर, वरना मैं तुम्हें उठाकर इस खिडकी के बाहर फेंक दूंगा ?" मैं इसके आगे कुछ भी बोल पाता उसके पहले ही वे दोनो वहा से ओझल हो गये। मैं कुर्सी पर बैठा देर तक हँसता रहा हँसते हँसते पेट मे बल पड गये। लेकिन इस मामले मे जो नियम है, उन्हें मैं जानता था मैंने जल्दी जल्दी एक नोट टाइप करवाकर फौरन विदेश सचिव को भेज दिया। वह अंग्रेज 'सर' इस बीच भागा हुआ रक्षा मत्रालय मे अपने दोस्त के पास गया और मेरे अभद्र रवैये की शिकायत की। सरीन ने गुडेविया को टेलीफोन किया, जिन्हें मेरी टिप्पणी मिल चुकी थी। उन्होंने उस अंग्रेज को राय दी कि पहला हवाई जहाज पकडकर फौरन घर लौट जाय, क्योकि, "उस नौजवान को आपको देश से निकाल देने का आदेश देने का अधिकार है।"

भारत और इडोनेशिया के बीच जो सौहार्द था, उसको धक्का लगने और चीन के प्रसारवादी इरादा के संबध मे संदेह के कारण दोनो देशो के बीच उच्च स्तर पर आपसी संबध बनने लगे। गुट निरपेक्ष आदोलन की सफलता से चीन बहुत हद तक अकेला भी पड गया था। जवाबी कारवाई के तौर पर चीन व इडोनेशिया ने सभी एशियाई व अफ्रीकी देशो की एक बैठक बुलाने के प्रस्ताव पर जोर देना शुरू किया, यानी वे बाडुग की तरह का एक और सम्मेलन करना चाहते थे। चीन ने तब इडोनेशिया व पाकिस्तान से दोस्ती कर रखी थी। इडोनेशिया तो दूसरे बाडुग सम्मेलन के विचार पर ही उछल पडा। सम्मेलन के लिए अप्रैल 1964 मे जकार्ता मे एक तैयारी समिति की बैठक हुई। हम पूरी तैयारी करके गये थे कि पिछडे व गरीब देशो की बेहतरी के लिए चलाये गये आदोलन मे बाधा डालने की किसी भी कोशिश को नाकाम करेंगे। इस बैठक मे हम सम्मेलन के लिए तैयार हो गये और एल्जियर्स मे इसे करने पर भी राजी हो गये। लेकिन

इस स्वीकृति के साथ ही हमने शत रखी कि सोवियत सघ और मलेशिया को भी आमन्त्रित किया जाये। हमारे प्रस्ताव का अनुमोदन श्रीलका ने किया। इससे मेजवान इडोनेशिया व चीन के हाथ पाव फूल गये। मिस्र व अल्जीरिया के प्रतिनिधियो ने प्रस्ताव रखा कि विचार स्थगित करके अनौपचारिक रूप से सलाह-मशविरा किया जाये। उन्होने कुछ स्पष्टीकरण चाहे और पूछा कि दो नये सदस्य वनाने की तात्कालिक आवश्यकता क्या है? हमारा जवाब था कि मलेशिया सर्वोच्च सत्तासपन्न स्वाधीन राज्य की सभी शर्तें पूरी करता है और जहा तक सोवियत सघ का सबध है, उसका एक तिहाई क्षेत्र एशिया मे है। इसके अलावा उसके कई एशियाई गणराज्य माच 1946 मे दिल्ली मे हुए एशियाई सम्मेलन म भाग ले चुके थे, सोवियत सघ एशिया व अफ्रीका म आजादी की लडाइयो का सक्रिय समथन करता रहा है और एफ्रो एशियाई एकता आदोलन की उदारतापूवक सहायता करता रहा है। इस तरह की किसी भी बैठक मे उनको शामिल करने के लिए ये ठोस तक थे और इस प्रस्ताव को सिफ इसीलिए नही ठुकराया जा सकता था कि किसी एक देश को खुश करना है। अरबो ने हमे निजी रूप से बताया कि वे हमारा सुझाव अस्वीकार नही कर सकते, पर उन्हें डर था कि बठक मे अडचन पडेगी। इसका जवाब हमने और भी करारा दिया, "आप क्या यह नही देख रहे कि चीन और उसके दोस्त गुट निरपेक्ष आदोलन के लिए कसा खतरा पैदा कर रहे हैं? बादुग की तरह का दूसरा सम्मेलन करने की क्या जरूरत है, जब चीन व पाकिस्तान को छोडकर सभी देश गुट निरपेक्ष सम्मेलन मे एक साथ बैठ सकते हैं? ये दोनो देश उन परिवतनो को स्वीकार कर लें जिनसे वे गुट निरपेक्ष परिवार मे शामिल हो सकते हैं।"

तीन विदेशमन्त्रियो स्वर्णसिंह, चेन यी और भुट्टो के बीच कुछ कडवाहट भरी झडपें हुईं। अरब आश्चयजनक ढंग से खामोश रहे और इडोनेशिया की दिलचस्पी तभी खत्म हो गयी थी जब सम्मेलन को एल्जियस मे करने का अल्जीरिया का दावा पेश किया गया था। बाद में मैं सुकार्नो से मिलने गया। मैं आठ बरस बाद इडोनेशिया गया था। जसे ही उन्होने मुझे देखा, उनका पहला सवाल था, "इडोनेशिया वापस लौटने पर कैसा लग रहा है?" मैंने कहा, "मुझे खुशी भी है और अफसोस भी।' बुग कार्नो ने टोका, "ऐसा क्यो?" मैंने कहा कि, "आप सब लोगो से मिलकर मैं खुश हूँ पर जब मैं पिछली बार यहा आया था, तब हम दोनो बडे अच्छे दोस्त थे। अब हमारे सबधो मे तनाव है। इससे स्वाभाविक रूप से मुझे अफसोस है।" सुकार्नो ने कधे झिटके और कहा, "यह सब तुम्हारा किया धरा है। तुम तुकू अब्दुरहमान का हमारी धरती पर समथन क्या करते हो?" मुझे इन दोनो पडोसी देशो के आपसी विद्वेष और टकराव की हालत के बारे मे पता था, तब भी मैंने पूछा कि "क्या तुकू से दोस्ती करने मे बुराई है?' सुकार्नो उबल पडे, "वह एक साम्राज्यवादी एजेंट हैं। वह गद्दार है और आवारा है।" उनके भडक उठने का मैंने स्वागत किया, क्योकि इससे मुझे अपनी बात कहने का मौका मिल गया, "मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आप अब भी साम्राज्यवादियो के खिलाफ हैं। पर वे सिफ मलेशिया तक ही तो सीमित नही हैं। अय्यूब के बारे मे आपका क्या खयाल है? उन्होने भी अँग्रेजो की खिदमत की थी। और भुट्टो के बार मे? उनके वालिद को 'सर का खिताब किसने दिया था? अल्लाह ने तो उन्हे यह खिताब दिया नही था।" सुकार्नो हँस पडे, "तुम बिलकुल नही बदले हो। तुम अपने विश्वास के पक्के हो। मैं तुमसे मिलकर बहुत खुश हूँ। मेहरबानी करके

पडितजी से कहना कि मैं उनसे मिलने के लिए बहुत उत्सुक हूँ।" यह कभी हो नहीं पाया हालांकि भारत व इडोनेशिया की फिर से दोस्ती हो गयी। बाद में हमने चीन व इडोनेशिया के बीच राजनयिक सबध पूरी तरह टूटते भी देखे। और 1965 में जो बठक एल्जियस मे होने वाली थी वह भी नहीं हुई। उसे आखिरी वक्त पर इसलिए रद्द करना पडा कि उस देश में नेतृत्व ही बदल गया था। दुनिया का यही ढँग है।

शेख अब्दुल्ला, जिन्हें जम्मू व कश्मीर सरकार ने जुलाई 1953 म गिरफ्तार किया था, मई 1964 मे रिहा कर दिये गये। वह दिल्ली आये और नेहरू ने, जिनकी तबीयत कुछ खराब थी, मुझसे हवाई अड्डे जाकर उनका स्वागत करने के लिए कहा। जब हम वापस लौटे, नेहरू बाहर बरसाती मे उनका स्वागत करने के लिए खडे थे। यह बडा अनोखा व स्मरणीय दृश्य था। ये दो दोस्त थे, जिनमे से एक न दूसरे को 11 बरस जेल मे रखा, लेकिन वे जिस सहृदयता और सवदन शीलता से मिल रहे थे उससे स्पष्ट था कि राजनीतिक मतभेदो से जो भी कटुता पैदा हो सकती है दोस्ती उससे बडी चीज है। अगले दिन ससद मे विपक्ष न बडा शोर मचाया कि विदेश मत्रालय का कोई अफसर शेख के स्वागत के लिए क्या गया? प्रधानमत्री ने शोर मचाने वाले उत्तेजित ससद सदस्या मे कहा कि एक सीधी सादी बात को गभीर मायने पहनाने की कोशिश न की जाय, "मैं यूनुस को जानता हूँ और वह शेख अब्दुल्ला को जानते हैं। इसलिए मैंने उनसे जाने के लिए कह दिया। बस बात इतनी सी है।" उस बार नेहरू के साथ ठहरने पर देखा गया कि शेख को खाना पसद नहीं आ रहा है। मुझसे यह समस्या हल करने को कहा गया। मैंने बढिया कोरमा और बिरयानी काफी मात्रा मे परोसने का इतजाम एक दोस्त के जरिए किया। एक मौके पर शेख ने दो मोटे ताजे मुर्गे खाये। नेहरू न कुछ कौतूहल से देखा। मैंने ध्यान दिलाया कि शेख ने तीन बार काफी चावल भी लिया था। नेहरू ने फौरन मुझे डाटा, "यह क्या कहा? खाने के वक्त कोई थोडे गिनता है कि किसने कितना खाया।" शेख साहब बोले, "मैं आजकल कम खाता हूँ। डॉक्टरो ने सख्त हिदायत कर रखी है।" वह आज भी डटकर खाते हैं डॉक्टरो ने कुछ भी कहा हो। माशा अल्लाह! इसके कुछ दिन बाद ही शेख साहब पाकिस्तान गये यह देखने कि उनके बीच मे पडने से क्या दोनो पडोसी देशो में कोई समझौता हो सकता है? दुर्भाग्यवश, उन्हें शाति के अपने इस मिशन को बीच मे ही छोडकर वापस आना पडा, उस घोर विपदा के कारण जो हम लोगो पर 27 मई 1964 को आ पडी थी।

मैं साउथ ब्लाक के अपने दफ्तर के कमरे मे घुसा ही था कि मैंने टेलीफोन बजते सुना। "जल्दी आओ," कोई तीनमूर्ति भवन से बोल रहा था और मैं उसकी बात से कुल इतना ही समझ पाया। मैं फौरन वहाँ पहुँचा। जान-पहचान कुछ चेहरे गम म डूबे दिखायी दिये। मैंने श्रीमती इदिरा गाधी को देखा। वह बोली, "पापू बीमार हैं।" इसके बाद के कुछ घटो न मुझे बिलकुल तोडकर रख दिया। भारत का वह अनमोल जवाहर, लकवाग्रस्त पडा था। 11 बजे उनकी एकलौती बेटी ने अपना खून पापू को चढाने के लिए दिया। पर उन्हें बचाने की हर कोशिश बेकार गयी और दोपहर को 1 बजकर 55 मिनट पर वह इस दुनिया मे नहीं रहे।

मुझे यकीन नहीं आया कि वह चले गये हैं और उनके साथ वह कीर्ति, वह तेज, वह महत्ता भी जो सिर्फ उन्होने हम सबके लिए बनायी थी। उनकी मौत से

जवाहरलाल अपने नाती राजीव के साथ खेल रहे हैं। पहलगाम, 1945।

लखक श्रीमती इदिरा गाधी के साथ पठान लिबास म। पहलगाम, 1945।

लेखक और डा॰ खान साहब ब्रिटिश ससदीय शिष्टमडल के सदस्यों के साथ। पशावर, जनवरी 1946।
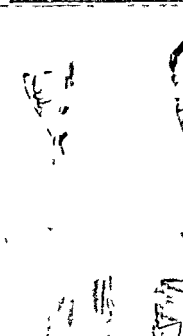
जवाहरलाल नेहरू के साथ उस मोटर से निकलते हुए जिस पर गोली लगी थी।
लंडीकोटल, नवंबर 1946।

लेखक इंडोनेशिया के मंत्रीमंडल की बैठक में भाग लेते हुए। सुकार्नो बोल रहे हैं और अमीर शरीफुद्दीन तथा अन्य मंत्री सुन रहे हैं। जोगजकार्ता, नवंबर 1947।

इदिरा गाधी अस्पताल से बाहर आते हुए। उनकी गोद म सजय है। नयी दिल्ली, दिसबर 1948।

सुल्तान शहरयार की जोगजकार्ता मे वापसी। दिसबर 1948।

जवाहरलाल नेहरू के साथ उस मोटर से निकलते हुए जिस पर गोली लगी थी।
लण्डीकोटल, नवंबर 1946।

लेखक इण्डोनेशिया के मंत्रीमंडल की बैठक में भाग लेते हुए। सुकार्नो बोल रहे हैं और अमीर शरीफुद्दीन तथा अन्य मंत्री सुन रहे हैं। जोगजकार्ता, नवंबर 1947।

इदिरा गाधी अस्पताल से बाहर आते हुए। उनकी गोद म सजय है। नयी दिल्ली, दिसबर 1948।
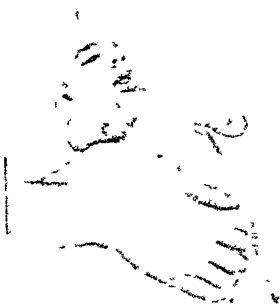
सुल्तान शहरयार की जोगजकार्ता मे वापसी। दिसबर 1948।

लेखक खालिदा अदीब खानम के साथ।
अकारा, 1949।

लेखक जलान बायर के साथ।
अकारा, मई, 1950।
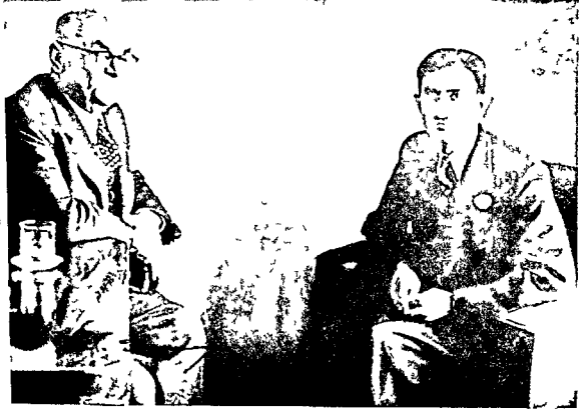
लेखक फीरोज़ गांधी के साथ।
नयी दिल्ली 1954।

लेखक बख़्शी गुलाम मुहम्मद के साथ।
नयी दिल्ली, 1954।

लेसक चाऊ एन-लाई के साथ।
बादुग, अप्रल 1955।

'बादुग भावना'। नहरू, श्रीमन सस्त्रामिदजोजो चाऊ-एन लाई मादाल चेन यी, गहत्रामिन्जात्रा, इदिरा गाधी नासर फिलस्तान के बडे मुफ्ती फॉन दाग और ऊ नू। लेखक खडे हुए।
बादुग, अप्रैल 1955।

बाद तीन प्राकृतिक घटनाएँ हुइ —शाम को पाच बजे के करीब भूकप आया, रात मे तेज़ धूल भरी आधी आयी और फिर वर्षा हुई—धार्मिक विश्वास के अनुसार इन तीनो का साथ तभी होता है जब कोई बडा और भला इसान इस दुनिया से उठ जाता है। उनका शरीर शाम को छ बजे के बाद रस्मी तौर पर दशनाथ रख दिया गया और लोगो की भीड उनके अतिम दशन के लिए रात-भर आती रही। हम लोग रात भर चौकसी पर खडे रहे। हममे वही शेख अब्दुल्ला भी थे जिन्हे नेहरू ने गिरफ्तार किया था, पर जो इस वक्त आसू भरी आखो से ताकते खडे थे। अगले दिन और भी बडी भीडें आयी और विदेशो से आये प्रतिष्ठित व्यक्तियो का ताता लगा रहा जो अत्यष्टि के लिए विशेष रूप से आये थे। फिर दिल्ली के बडे रास्ते से श्मशान घाट तक की अतिम यात्रा। उनकी मृत्यु के दो दिन बाद *उनकी अस्थियाँ एक स्पेशल ट्रेन से इलाहाबाद ले जायी गयी जहा गगा मे उनका* विसजन होना था। हमम से बहुत लोग उनके साथ थे और 631 किलोमीटर लबे सफर मे हमने लगातार भीडों को रेलवे लाइन के किनारे जमा देखा। अलीगढ रेलवे स्टेशन पर फिर शेख अस्थि कलश के पास बैठे इकबाल की प्रसिद्ध कविता 'हिंदोस्ता हमारा' की पक्तिया दोहरा रहे थे।

अपनी वसीयत मे नहरू ने एक बहुत खूबसूरत बात कही थी, वह यह कि मेरी राख उन खेतो मे बिखेर दी जाये जहा भारतीय किसान हल जोतता है और मेहनत करता है। कसा इसान था वह ! जीवन के कसे मूल्यो को उसने सँजोया था, पोसा था ! मेरी एक बहन ने पेशावर से मुझे तार भेजा "अफसोस, तुम्हारा बाप सा एक दोस्त नही रहा।" पर मुझे लगा कि मैंने बहुत कुछ और भी खो दिया है, मैंने सब कुछ खो दिया है।

हज़ारो साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बडी मुश्किल से होता है चमन मे दीदावर पदा।

वह चले गये और, जैसा कि मैंने कहा, वह कीर्ति, वह तेज, वह महत्ता भी उनके साथ चली गयी जो सिफ वही लाये थे। वह क्या थी ? आज़ादी के लिए उनकी कामयाब लडाई शाति के लिए उनके प्रयास, गुट निरपेक्षता का उनका सिद्धात या उनका भारत को आत्म निभर आधुनिक और लोकतान्त्रिक देश बनाने का सपना ? शायद यह सब कुछ और इसके अलावा बहुत कुछ और। भारत की उनकी खोज एक लगातार चलन वाली प्रक्रिया थी। उनकी प्रखर बुद्धि, जो ऐतिहासिक भावना से समजित थी और उनकी अनुभव चेतना से उन्हे एक ऐसी दूर-दृष्टि और अवलोकन शक्ति मिली थी कि वह अनेक पहलू एक साथ देख लेते थे और उसम नये आयाम जुटते जाते थे। वह पहले व्यक्ति थे जो हमारी सास्कृतिक परपराओ के अथाह भडार म देखने की आवश्यकता महसूस कर सके थे और जिन्होने राष्ट्र का ध्यान इस ओर खीचा था कि भारत की विविधता और अनकता सिफ प्रातीय व भाषाई विशिष्टताओ तक सीमित नही है। आदिवासी व ग्रामीण समुदायो से मिलकर इस विविधता न भारत का निर्माण किया था। इसके लिए उनकी प्रतिबद्धता केवल बौद्धिक नही थी। वह इससे बहुत आगे बढ गये थे और उन्होंने भारत के इस स्वप्न को एक ठोस कायनम मे उतारना चाहा था। एक आदिवासी शोध सस्थान स्थापित हुआ और इसके माध्यम से उन्होने समाज के इन विविध समुदायो को शेष समाज के निकट लाने के लिए गणतत्र दिवस समारोह मे उनका रगीन सहयोग प्राप्त किया। इस विचार से समारोह मे भाग

लेने वालो मे गर्व की एक भावना जागी और शहरी लोगो को अपनी सास्कृतिक समद्धि की एक नयी चेतना मिली। व्यक्ति की आजादी और सृजनशीलता के अलमबरदार होन के नाते और एक स्वस्थ समाज के निर्माण मे लेखक, कवि व कलाकार की गतिशील भूमिका म विश्वास रखने के कारण उन्होने मौलाना आजाद के साथ मिलकर तीन अकादमियो की नीव डाली—साहित्य के लिए साहित्य अकादमी, कलाओ के लिए ललितकला अकादमी और सगीत, नृत्य व नाटक के लिए सगीत-नाटक अकादमी। दो शताब्दियो के विदेशी प्रभुत्व के दौरान इन क्षेत्रो की जो सस्थाएँ या प्रतिभाएँ दबकर रह गयी थी, मरणासन्न था या विकृत हो गयी थी, उनमें से योग्य पात्रा को चुनकर आवश्यक सहायता, निर्देशन व मान्यता देने की भूमिका इन अकादमियो को सौंपी गयी थी। नेहरू न अन्य देशा से सास्कृतिक आदान प्रदान द्वारा हमारी सास्कृतिक धरोहर की अभिवद्धि और विश्वविद्यालयो मे विदेशी भाषाआ के अध्ययन-अध्यापन को भी प्रोत्साहित किया। स्कूल आफ इटरनशनल स्टडीज़ व इडियन काउसिल ऑफ वल्ड एफेयस की स्थापना अतर्राष्ट्रीय सबधो को समन्वित व परिपक्व करन के लिए की गयी।

नेहरू को सास्कृतिक मामलो पर ज़ोर देने-भर से ही सतोष नही था। अन्य सभी लोगो से ज्यादा उन्होने यह ज़रूरत समझी थी कि विज्ञान व प्रविधि के क्षेत्र मे और अधिक आदान प्रदान होना चाहिए। सास्कृतिक कायक्रमा की परिधि लगातार व्यापक की गयी, ताकि वैज्ञानिक ज्ञान के अनेक क्षेत्र इसम समेटे जा सकें। इसकी व्यावहारिक बुनियाद थी। टेक्नॉलोजी वे चार इस्टीटयूटें जो सोवियत सघ, अमरीका, ब्रिटन व पश्चिमी जमनी के सहयोग से स्थापित की गयी थी। वज्ञानिक जानकारी बढाने के लिए राष्ट्रीय विज्ञानशालाएँ स्थापित की गयी। अतत इन प्रयोगशालाआ म विकसित प्रविधि के क्षेत्र मे बहुत बढिया काम हुआ और बहुत ही कुशल व प्रशिक्षित नवयुवको की एक सेना बनी जो विदेशी मुद्रा कमान का सबसे बडा साधन बने। उनकी धम निरपेक्षता धार्मिक व दाशनिक ज्ञान का मूल्याकन करने व उसे आधुनिक चिंतन को प्रभावित करने के लिए इस्तमाल करन मे बाधक नही बनी। उनके विचार से पश्चिमी चिंतन के लिए यह पूर्वी सभ्यताओ का सदेश था। वह एक सपूण व्यक्ति थे जिनका दिमाग जीवन की पूणता को समझ सकता था, पकड सकता था। उनमे व्यक्तिगत ओछेपन या राजनीतिक सकीणता का लेश भी नही था। और इसीलिए वह भारतीय विकास को विश्व के सभी स्वस्थ और प्रगतिशील आदोलन से समन्वित करने के इच्छुक थे।

नेहरू के बाद, उनके मन्त्रिमडल के गहमत्री, गुलज़ारीलाल नदा ने कुछ दिना तक कायकारी प्रधानमत्री की हैसियत से काम सँभाला। पर जून 1964 से जनवरी 1966 तक भारत के दूसर प्रधानमत्री बने लालबहादुर शास्त्री। वह अपने महान पूववर्ती नेता से बिलकुल भिन्न थे। छोटे क्द और सीमित दृष्टि के एक भले, सीधे-सादे और आडबरहीन व्यक्ति, जिन्हे साधु भी नही कहा जा सकता था। हम लोग 1939 के शुरू म पहली बार मिले थे। वह सयुक्त प्रात काग्रेस कमटी के महासचिवा म से एक थे और मैं लखनऊ म उसके दफ्तर का काम देखन-समझन के लिए उनके साथ रखा गया था। उन्होंने मेरी बहुत सहायता की, वह जटिल बातो का थाडे से सीधे सादे जुमला मे समझा देते थे। मुझे वह पसद आय और हमारे सबध बहुत मधुर हो गय। मेरी उनसे दूसरी भेंट 1946 में हुई। मैं इलाहाबाद जिल के कुछ हिस्सा म खुदाई खिदमतगारो के एक जत्थे के

साथ सूबाई चुनावा मे कांग्रेसी उम्मीदवारो के लिए वोट माँगने के लिए दौरा कर रहा था। मुस्लिम लीग के लोगो को यह पसद नही आया और उन्होने इलाहाबाद के बाहर एक जगह हमारी बहुत ठुकाई की। लालबहादुर न घायल स्वयसेवको की बहुत देखभाल की और बाद मे उनके वापस जान का इतजाम किया। तीसरी मुलाकात 1954 मे हुई जब वह केंद्रीय मन्त्रिमडल मे शामिल थे। उनके सग साथ की हर अवधि का अपना अलग आनद था और हर बार दोस्ती के रिश्ते मजबूत होते गये। जब उनका किसी से मतभेद भी होता था तब भी उनकी विनम्रता बात को साफ, दोटूक वह देने मे बाधक बनती थी। उदाहरण के लिए मुझे याद है कि मैंने उनसे कहा था कि प्रधानमन्त्री बनन के बाद वह अपनी मदद के लिए नेहरूजी का पूरा अमला ले लें। उन्होंने धैय से मुझे सुना, फिर बोले, "पडितजी तो बहुत बडे थे और बहुत शान मे काम करते थे। मैं एक सीधा सादा आदमी हूँ और मेरे तरीके भी सीधे होंगे। ये लोग मेरे साथ चल न सकेंगे।"

नेहरू के लोगा से अपने को घेर लेने से इकार के पीछे जो असली वजह थी, वह मैं जानता था, पर उन्हान यह बात इतनी मासूमियत से कही कि इससे किसी को बुरा न लगा। बाद मे उन्होने अपन-आपको एक नेहरू विरोधी गुट के कब्जे मे चला जाने दिया। नेहरू से भिन्न इस छोटे से इसान के व्यक्तित्व को जनता के सामन पेश करन के बारे मे इस गुट के अपने खयाल थे। उसने सोचा कि लाल बहादुरजी को जनता से अलग रखा जाये, जिससे नहरू-युग का सहभागिता का उत्साह खत्म हो गया। इसका नतीजा बहुत दुर्भाग्यपूण हुआ। यह प्रचार-साधनो की पूण असफलता भी थी। ऐसे भी मौके आय जब वह अपने मुख्यमन्त्रियो तक से नही मिल सकते थे और सिनेमा के परदे पर जब उनकी तसवीर आती तब दशको के बीच हँसी के ठहाके उठते।

लालबहादुर शास्त्री के बारे मे लिखते वक्त 'भारत छोडो' आदोलन की एक घटना का जिक्र न करने से तसवीर अधूरी रह जायेगी। यू० पी० के नेता उस समय चाहते थे कि शास्त्रीजी गिरफ्तार न हो और पहले से निश्चित आदोलनात्मक कारवाई को सचालित करने के लिए बाहर रहें। पर एक जाने मान कार्यकर्ता को उसी के शहर मे छिपाया कसे जाये ? किसी को खयाल आया कि उन्ह जमादारिन के कपडे पहनाकर आनद भवन म ही रख लिया जाये। इसलिए उन्होंने लहँगा पहना, झाडू ली और अगर कभी एकाएक पुलिस आ जाय तो मुह छिपान के टकसाली ढँग स घूघट काढने के लिए दुपट्टा ओढा। उनकी पोशाक म कुछ चूडिया भी शामिल थीं। उस जनानी वेष भूषा, नीची जाति के तौर तरीका और आनद भवन की शान शौकत की यादो से शायद लालबहादुरजी के मन पर शम और अपमान का एक धब्बा आ गया था। बाद की उनकी कुछ मनोग्रथियों को आशिक रूप से शायद इसी धब्बे के सदभ मे समझा जा सके।

लालबहादुर एक प्रिय व्यक्ति थे और नेहरू के मन मे उनके लिए अपार स्नेह था। वास्तव म, नेहरू की लगातार मदद और सदभावना के बिना शास्त्रीजी आगे बढ ही नही सकते थे। नेहरूजी ने उन्हे बिलकुल गुमनामी से निकाल कर केंद्रीय मन्त्रिमडल मे ला बिठाया था और उन्ह हर तरह की जिम्मेदारिया सौंपी थी। एक बार राष्ट्रकुल के प्रधानमन्त्रिया की लदन मे हो रही बैठक के लिए नेहरू उन्ह अपने साथ ले जाना चाहते थे। उनकी पोशाक के बारे मे नेहरू जानते थे इसलिए उन्होने शास्त्रीजी से एक अचकन और कुछ चूडीदार पाजामे बनवा लेने के लिए कहा। शास्त्रीजी ने बात मान ली, पर एक दोस्त से शिकायत की कि

"पाजामा पहन तो लिया मगर उसका उतारना मुश्किल हो गया।" लदन की वह यात्रा स्थगित हो गयी, पर शास्त्रीजी का भाग्य उन्हें प्रधानमत्री की हैसियत स जून 1964 मे उसी राष्ट्रकुल के प्रधानमन्त्रियो की बठक मे लदन ले गया।

जसा कि ऐसे मौको पर होता था, विदेश मत्रालय को उन विभिन्न विषया पर, जो बैठक म विचारार्थ आ सक्ते थे, सदभ टिप्पणिया तयार करनी होती थी। सयोग से मैं ही समन्वय सयुक्त सचिव था, जिसे विभिन्न क्षेत्रीय विभागा से आये कागजात मे तालमेल बिठाना था। मैंने मुख्य फाइल तयार करके प्रधानमत्री को दे दी। अचानक मेरा तत्काल बुलावा आया इस विश्वास के अयोग्य शिकायत के साथ कि टिप्पणियो मे 'इगलैंड की आजादी, वहा की शासन प्रणाली और इस तरह के महत्वपूण प्रश्नो पर कोई सामग्री नही है। यह सूचना ब्रिटिश उच्च आयोग से तत्काल एकत्र कर ली जाये।" नेहरूजी जसे व्यापक पकड और जानकारी वाले दिमाग के तजुर्बे के बाद, मैं यह सोच भी नही सकता था कि भारत के किसी प्रधानमत्री को ऐसी मामूली बातें बताने की भी जरूरत पडेगी, खासतौर पर ब्रिटिश शासन प्रणाली के बारे मे! उन्ही सवधानिक आजादियो के लिए हम 80 साल तक लडे थे जो इगलड के नागरिका को मिली हुई थी और कुछ बहुत ही जटिल उलझनें शासन प्रणाली की समस्याओ को लेकर ही पैदा हुई थी। और यह शख्स, जो आजादी की लडाई का एक हिस्सा रह चुका था, इसके बावजूद इतना अनजान था! सो, मैंने ब्रिटेन के बारे मे प्रारभिक जानकारी अपनी टिप्पणी मे जोड दी कि ब्रिटेन मे लोकतत्र है और उस वक्त वहा की आबादी 5 5 करोड थी। मैं इतना खीझा हुआ था कि मैंन ब्रिटिश उच्च आयोग से लेकर वह पुस्तिका भी फाइल मे नत्थी कर दी जो विदेशी पयटका मे बाटी जाती है। "अब यह ठीक है," भारत के दूसरे प्रधानमत्री ने 1964 के साल मे यह कहा। मैं सिफ "जय हिन्द!" ही कह सका।

11 जनवरी, 1966 को ताशकद मे शास्त्रीजी की अचानक और दुखद मौत के बाद ऐसी कमिया नही रही। हर कोई उनकी कमियो-खामियो का भूलकर सिफ उनके सादा व विनयपूण जीवन को ही याद रखना चाहता है।

जैसे जसे दिन गुजरते गये और जवाहरलाल की कमी खलती गयी मैंन सोचा कि ऐसा कुछ किया जाये जिससे दुनिया भर म उनकी याद नयी पीढी मे ताजा रह। मैंने एक अतर्राष्ट्रीय वाद विवाद प्रतियोगिता सगठित करने की योजना बनायी, यह प्रतियोगिता हर देश म 'अतर्राष्ट्रीय राजनीति म नेहरू की भूमिका' विषय पर होनी थी और नेहरू के जन्मदिन से लेकर उनकी पुण्यतिथि तक चलनी थी। मैंने प्रधानमत्री शास्त्रीजी स इस सबध मे बात की और वह राजी हो गये, मुझसे इस सिलसिले मे जरूरी कदम उठाने के लिए भी कहा। मैंने शिक्षा मत्री, मुहम्मद करीम छागला, से मिलकर इसका ब्योरा तैयार किया। उस ट्राफी के डिजाइन भी जल्दी तैयार किय गय जिसे 'जवाहरलाल नेहरू डिबेटिंग शील्ड' कहा जाना था। मूल विचार यह था कि लकडी के काले तख्ते पर भारत का चांदी स बना एक बडा नक्शा जडा रह और 100 100 मिलीमीटर के टुकडा पर प्रतियोगिता मे विजयी लोगो के नाम अकित हो जायें। इस वजयती के छोटे नमून जीतने वाला को दे दिये जायें। इन वजयतियो के लिए मैंन 30 000 रुपय के खच की मौखिक स्वीकृति भी ले ली। विदेश मत्रालय के अफसर बहुत उत्साह दिखा रहे थे और उन्होंने इस विश्वव्यापी प्रतियोगिता के लिए विषय भी चुन लिया था।

विदेश सचिव ने उद्देश्य और लक्ष्य से सबधित पत्र का अनुमोदन कर दिया। मेरे दस्तखत से सभी राजदूतो के नाम एक गश्ती चिटठी जारी कर दी गयी। जल्दी ही योजना से सहमत होते हुए दुनिया के कोन कोन से उत्साह-भरे जवाब आने लगे। लेकिन वाशिगटन म हमारे दूतावास से कुछ भी जवाब नही आया। हमारे पत्र की स्वीकृति तक नही मिली। मैं याद दिलाने के लिए दूसरी सख्त चिटठी डालने के लिए मजबूर हुआ। इसका फोरन जवाब आया, पर इतनी लबी चुप्पी के बाद कि उसे माफ नही किया जा सकता था और यह माँग करते हुए कि वैजयती 15 दिन के भीतर वाशिगटन पहुँच जानी चाहिए। मत्रालय से व्यवहार करने का यह एक अजीब उतावला ढंग था और राजदूत को यह साफ-साफ बता भी दिया गया। उनसे यह पूछा गया था कि क्या वह इस तरह की प्रतियोगिता सगठित कर सकते हैं? लेकिन इत्तिला देने की जगह वह तत्काल एक वैजयती चाहते थे। इसमे तो वक्त लगना ही था। राजदूत ने सचिव के नाम एक और तार भेजा और कहा कि वजयती भेजने म देर हुई तो यहा उच्च स्तर के लोगो मे मेरा मुँह काला हो जायेगा। गुडेविया को मामले की पृष्ठभूमि मालूम थी और वह उस "राजदूत की हरकतो से खीझ भी चुके थे।" इसलिए उन्होन गोपनीय भाषा म एक पत्र उन्हे भेजा और उनके दूतावास की शुरू की उदासीनता की ओर और उसके बाद इस अशालीन हडबडी की ओर ध्यान दिलाया। उन्होने लिखा कि इस स्थिति मे, "हम उच्चतम स्तर पर आपका मुह काला होने से रोकने के लिए कुछ भी नही कर सकते। *यहाँ आपका मुह काला हो ही चुका है।*" लालबहादुर शास्त्री ने इस पत्र की प्रतिलिपि जरूर देख ली होगी। एक दिन दफ्तर के बरामदे मे मुझे देखकर बोले, 'आप लोगो ने तो सचमुच राजदूत के बखिये उधेड दिये। अब देखें कि वह क्या करते हैं!"

विदेश मत्रालय म गुजरे कुछ सालो मे मुझे अपने कुछ बुजुग सहयोगियो के व्यवहार व धारणाओ के अनोखेपन का अहसास हो गया। वे किसी के मुह पर कुछ कहते थे और उसकी पीठ पीछे उससे बिलकुल उलटी बात बोलते थे। कभी कभी वे शालीनता का ऐसा अभाव प्रदर्शित करते थे कि देखकर अचभा होता था। कुछ लोगो मे चमक दमक वाली पालिश तो थी, पर गहराई नही थी। कुछ बिलकुल गँवार या कोल्हू के बल थे। कुछ चालाक थे, कुछ बेवकूफ और कुछ अपने समय के लिए अप्रासगिक। इस पर ताज्जुब होता था कि पुनर्निर्माण मे लगे किसी नये आजाद देश का काम ऐसे हाथो से कसे चलता होगा। उनकी बहुत सी सम्मतियो का इसलिए जिक्र ही नही होता था कि उनसे विवाद और कटुता पैदा हो सकती थी। इस तरह दृष्टिकोण म अतर होते हुए भी दोस्ती हो सकती थी।

जैसे जसे शास्त्रीजी का अपने आपमे विश्वास बढता गया, यह स्पष्ट हो गया कि वह अपने आपको और देश को नेहरू के प्रभाव से मुक्त करना चाहते हैं। अपनी व्यक्तिगत हीनभावना से उनमे मनोग्रथियाँ पैदा हो गयी थी, पर इनका असर देश की प्रवत्तिया पर पडता था। बहुत से लोगो को नेहरू-विरोधी होने के लिए प्रोत्साहित किया गया। जिस वक्त मैं नेहरू को बदनाम करने की कोशिशो की शुरुआत का गवाह बनने को मजबूर था, उसी वक्त मेरे ऊपर एक बडा व्यक्तिगत सकट आ गया। मेरा अकेला लडका, आदिल, एक मोटर साइकिल दुघटना म, मई 1964 मे इस बुरी तरह घायल हो गया कि उसके बचने की कोई उम्मीद नही थी। उसका भाग्य अच्छा था कि वह बच गया। मत्रालय के केंद्रीय दफ्तर म काम करने की मेरी अवधि पूरी हो चुकी थी और वाद विवाद प्रतियोगिता की योजना बडी

चलाकी से दाखिल दफ्तर की जा चुकी थी। मुझसे जुबानी कह दिया गया था कि मैं स्टॉकहोम जाने के लिए तैयार रहूँ। उसके फौरन बाद ही प्रधानमत्री न मुझे बुलाया। उन्होंने मेरे बेटे के सिर मे लगी चोट के बारे म बहुत हमदर्दी स पूछताछ की और कहा, "मुझसे कहा गया है कि स्टाकहोम की आबहवा उसके लिए माफिक नही होगी। अगर आप एक निचले ओहदे पर काम करने का बुरा न मानें तो सैन फ्रासिस्को चले जायें। वहाँ वह किसी बाधा के बिना अपनी पढाई भी जारी रख सकेगा।" उनकी हमदर्दी का मुझ पर बहुत असर हुआ, उन्होने इस ब्योरे तक का पता लगा लिया था कि मेरा बेटा दिल्ली मे अमरीकी स्कूल म पढ रहा था।

चूंकि अतर्राष्ट्रीय वाद विवाद प्रतियोगिता ताक पर रख दी गयी थी, मैं भी ऊब रहा था और राजधानी छोडने के लिए तयार था। इसलिए मैंने दो महीने की छुट्टी ली और मई 1965 मे रवाना हो गया। मैं बहुत आराम स सफर कर रहा था और पहला पडाव मैंन काबुल मे डाला। बादशाह खा न अपने-आप देश निकाला ले लिया था और वह अफगानिस्तान मे निर्वासन का जीवन व्यतीत कर रहे थे। अट्ठारह साल बाद हम जलालाबाद म मिले। जसे ही मैं लान मे उनकी ओर बढा, उन्होने बहुत शाति से कहा, "शुक्र है कि तुम आ गये।" एकदम व साल आखो के सामने कौंध गये जो एक ही लडाई मे साथ साथ लडत बीते थे। भावो द्रेक से मैं द्रवित हो गया, उस इसान को देखकर जिसने इतन लबे अरसे तक हम रास्ता दिखाया था, अपने आदर्शों के लिए इतनी कुर्बानी दी थी। वह बूढ़े हो गये थे पर अब भी एक नया ज़माना लाने म उनका विश्वास अडिग था। यह बडी नाटकीय स्थिति थी मैं बैठा उनकी बातें सुन रहा था और सोच रहा था 'मैं एक आजाद देश का प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ, खुशकिस्मत हूँ, पर यह अब भी एक शत्रुतापूर्ण सरकार के हाथो अपमान भोग रहे है, घुल रहे है।'

काबुल से मैं तेहरान, बगदाद, बेरूत, काहिरा, इस्तांबूल, बार्सेलोना, मड्रिड, रोम बॉन, डसेलडोर्फ, फ्रैंकफर्ट पेरिस, हेग, जेनीवा वियेना, स्टाकहोम, कोपेन हैगेन, लदन, न्यूयार्क, वाशिंगटन गया और इस तरह जून के अत म सन फ्रासिस्को पहुँचा। इन बीसो शहरो मे मैं दोस्तो से मिला दिलचस्प जगह देखी और जितना हो सका विश्राम किया। इससे पिछले साल मैं बहुत दिमागी यत्रणा से गुजरा था और इस सफर और जलवायु परिवर्तन से मेरी सेहत ठीक हो गयी व मेरा इरादा पक्का हो गया।

नयी दुनिया (अमरीका) अपने इतिहास के एक सकटपूर्ण दौर से गुज़र रही थी और उस अतरात्मा के गहरे सकट से गुज़रना पडा था। वियतनाम का युद्ध लबा खिच रहा था और 'कीमती अमरीकी प्राणो की भारी क़ीमत वसूल' कर रहा था। लडाई जारी रखन का भारी खर्च तो और भी ज्यादा कमर तोड़ दे रहा था और इस खर्च के दीर्घकालीन आर्थिक परिणामो की लबी काली परछाइ आगे आने वाली घटनाओ पर पड रही थी। लडाई के भयानक, वीभत्स दृश्य, घायलो को घसीट घसीटकर मार डालने या यत्रणा म मरने के लिए छोड दने के दृश्य देहातो म सब कुछ जलाकर भस्म कर देन की नीति, नागरिक आबादियो पर बमबारी के दृश्य—सभी टेलीविजन पर देखे जा सकत थे। टेलीविजन के रगीन फिल्म इन दृश्यो का और भी खूख्वार, डरावना और घिनौना बना देते थे। नौजवान फौज म अनिवार्य भरती का विरोध कर रहे थे। अनिवार्य भरती क खिलाफ़ विश्वविद्यालय प्रागणो व बुद्धिजीवियों की गोष्ठियो म तीव्र विरोध हो रहा था।

जो लोग मैदान मे लड भी रहे थे, वे भी असमजस मे थे और भगोडो की सख्या बढती जा रही थी। निश्चय ही, यह सबसे अधिक अलोकप्रिय युद्ध था जो अमरीका ने कभी भी लडा था। लडाई के लबे खिचते जाने से अमरीकी अजेयता का भ्रम टूट चुका था। अमरीकियों को यह विश्वास दिलाया गया था कि किसी युद्ध-स्थल पर उनकी मौजूदगी-भर से विजय निश्चित हो जाती है। "क्या हमने पहले महायुद्ध और फिर 1945 मे यह नही कर दिखाया था ?" पर, यहाँ था एक नन्हा सा मुल्क जो दुनिया की सबसे बडी ताकत को चुनौती दे रहा था। बहुत से लोग सोचते थे कि वियतनाम ने वह कौन सा पाप किया है जो दुनिया के सबसे अधिक सहारक युद्धास्त्रो व उपकरणो द्वारा तहस नहस किया जा रहा था। मनोबल गिर रहा था और लोग निराशा भरी अनास्था के शिकार होते जा रहे थे। एक समृद्ध समाज की बुराइया और बीमारिया, हिप्पियो और नशे की गोलिया खाने वालो की लगातार बढती सख्या के रूप मे प्रकट हो रही थी, हिप्पिया का व्यवहार सभ्य स्तर का नही था। ये लक्षण थे एक गहरी और पुरानी बीमारी के। विवेक वाले अमरीकी अपने समाज के भविष्य के सबध मे बहुत चिन्तित थे।

भारत के कौसल जनरल के कार्य-क्षेत्र के विस्तार की वजह से अनेक राजदूत मेरी स्थिति से ईर्ष्या करते थे। मिसीसिपी के पश्चिम के सभी राज्य इस क्षेत्र मे आ जाते थे और उत्तर मे अलास्का व दक्षिण मे गुआम भी इसमे शामिल थे, अमरीका के 50 मे से 23 राज्य। एक साथ कई राज्यो मे जाया नही जा सकता था।

मेरे आने के थोडे दिन बाद ही कश्मीर को लेकर भारत पाकिस्तान मतभेद इतने बढ गये कि सशस्त्र मुठभेड की नौबत आ गयी। सितबर 1965 मे एक छोटा सा युद्ध हो गया। राष्ट्रपति जॉनसन ने इसे मुस्लिम पाकिस्तान व हिंदू भारत के बीच युद्ध बताया। मैं गुस्से से पागल हो गया और इसके ऊपर, भारत मे मौजूद अमरीकी अखबारो के प्रतिनिधि लडाई की भारत विरोधी खबरें भेज रहे थे। तब तक मैं अपने बेटे को बर्कले मे भरती करवा चुका था, जिससे मुझे उस महान सस्था से लाभदायक सपर्क बनाने मे सुविधा हुई। यह अमरीका के युवा आदोलन का प्रेरणा केंद्र था और उस समय अमरीका के वियतनाम युद्ध मे शामिल रहने के विरोध के मुखर स्वर यही से उठ रहे थे। मैंने सोचा कि मैं बहुत सी गलत धारणाओ को दूर कर सकता हूँ, खासतौर पर इसलिए कि मैं मुसलमान था, जॉनसन ने जिसे हिंदू भारत कहा था, उसके सिलसिले मे गलती सुधारने का मौका मुझे मिल रहा था। जब विश्वविद्यालय के छात्र-यूनियन ने मुझे बोलने के लिए आमंत्रित किया तो मुझे खुशी हुई। जब मैं वहा पहुँचा तो देखा कि 'भारतीय दृष्टिकोण' को सुनने के लिए बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। मैंने उन्हे कुछ देर तक सबोधित किया और फिर कहा कि लबा भाषण देने की जगह मैं उनके सवालो के जवाब देना ज्यादा पसद करूँगा ताकि अगर गलतफहमिया हो तो दूर हो सकें। यह बात पसद की गयी और मुझे ताज्जुब हुआ कि जब पहला सवाल दिसबर 1961 मे गोवा की मुक्ति के बारे मे किया गया। मैंने तथ्य उनके सामने रख दिये और फिर कहा, यह एक बडी अजीब सी बात है कि मुझे वाशिंगटन, जेफरसन और लिंकन के देश मे अपनी आजादी की रक्षा के लिए उठाये गये कदम की सफाई देनी पडे। हमारे लिए न्यूयार्क के बाहर लगी स्वतंत्रता की देवी की प्रतिमा अमरीका की असली आत्मा की प्रतीक है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग मेरे पक्ष मे

हो, ताकि हम आप मिलकर प्रतिक्रियावादी और फासिस्टवाद की शक्तियां को हरा सकें।" दूसरा सवाल था कश्मीर के बारे म। मैंन अक्तूबर 1947 म कबाइली हमले, हमारी सयुक्त राष्ट्रसघ म शिकायत, पाकिस्तान द्वारा इस हमले म अपनी शिरकत से इकार, लबी बहसो, समझौते की कोशिशो और अतर्राष्ट्रीय समाज के हमलावर व हमले के शिकार दोनो का बराबर मानने के पक्षपातपूण रवय का ब्योरे से हवाला दिया। फिर मैंने पूछा, "खुदा न करे, अगर फीदेल कास्त्रो कलिफोर्निया पर हमला कर दें और उससे उसी जगह निपटन की बजाय आप सयुक्त राष्ट्रसघ म शिकायत करें, जो हमला रोकन के लिए कुछ न करे, और अगर 15 साल बाद आपसे कहा जाये कि जनमत सग्रह करवा लो, तो आप क्या करेंगे ? चुपचाप बैठे इस बेतुकी बात को बरदाश्त करेंगे ?" "हम उनकी नाक पर घूसा जड देंगे," एक आवाज़ पीछे से आयी। "मैं भी यही करूँगा," मेरा जवाब था। हॉल म खचाखच भरे हुए श्रोतागण जोर से तालिया बजान लगे और परा की थपथपाहट से हाल गूज उठा।

इसी भावना का लाभ उठाते हुए मैंने फिर पहले ही सवाल का जवाब दना शुरू किया और कहा, "आपके कुछ विशिष्ट नेताओ न गोआ म हमारी कारवाई को पसद नही किया। उन्होने इल्जाम लगाया कि हमने महात्मा गाधी और अहिंसा के उनके पैगाम के साथ गद्दारी की है। मुझे इस पर हँसी आती है क्योंकि इसी भीड ने उसके एक साल बाद चीनियो के विरुद्ध लडन के लिए जरूरी फौजी सामान का सारा खच उठाने की जिम्मेदारी लेने का प्रस्ताव रखा था। अहिंसा का पगाम सुविधाजनक तरीके से भुला दिया गया। इससे यह साफ हो गया कि वे यह नही चाहते थे कि हम पुर्तगालियो को उनके औपनिवेशिक कब्जे से वचित करें, लेकिन चीनियो के खिलाफ लडने मे वे हमारी मदद करने को तैयार थे। हम इस चाल को समझ गये और उनका ढोग दिन की रोशनी की तरह साफ हो गया। वे चाहते थे कि हम पीले आदमी (चीनी) को मार दें, लेकिन व यह नही चाहते थे कि हम एक श्वेत साम्राज्यवादी के चगुल से अपने को आज़ाद कर लें। क्या आप इस नीति को मानते हैं ? 'नही, नही, हम आपके साथ हैं। इस नज़रिये की बदौलत मैं भारत के लिए बहुत से दोस्त बनाने म कामयाब हुआ और जो हमे पसद नही करते थे उनके विरोध को भी मै कुछ कम कर सका। इसने यह भी साबित कर दिया कि हर जगह साधारण इसान सदभावना से ओत प्रोत रहता है और दोस्ताना लहजे की उस पर अनुकूल प्रतिक्रिया होती है। मरी बात का लक्ष्य कभी यह साधारण आदमी नही होता था चाहे वह अमरीकी हो या ब्रिटिश, रूसी हो या फ्रासीसी या चीनी, बल्कि व नता होते थे जो हमारे दश को नुक्सान पहुँचाने वाली नीति बनाते थे, या वह साम्राज्यवादी राजतत्र हाता था जो उत्पीडन का प्रतीक था। मैं राजनीति या व्यापार म शोषण की पश्चिमी नीति के लिए मेहनत करके रोटी कमान वाले औसत अमरीकी स जवाब तलब नही करूँगा, लेकिन मैं निक्सन या फोड जसे लोगो को इसके लिए जरूर गाली दूगा। मैंन साधारण अमरीकी और अमरीकी निहित स्वार्थों के बीच और उस इगलड के, जसा कि वह अँग्रेजो के लिए था और उस इगलड के बीच जो भारत का शासक था हमेशा स्पष्ट अतर रखन का निश्चय किया था। सिफ वही लोग बात को समझत थ जो उस समझना नही चाहत थे। और यह बात हमारे अपन देश म हमारे देशवासियो और दोस्तो पर भी पूरी तरह से लागू होती थी।

यक्ल की सभा ने दिशा तय करन का काम किया, मुझे रेडियो, टेलीविज़न

और विभिन्न सास्कृतिक व सामाजिक गोष्ठियो मे भाषण देने के लिए बराबर आमन्त्रित किया जाता। अमरीकी भोजन के साथ की जान वाली गोष्ठियो का आनद लेते थे—जिनमे तीन तरीके के खाने परोसे जाते और एक भाषण होता। इससे सगठनकर्ताओ को हर हफ्ते एक अतिथि-वक्ता को आमन्त्रित करन का मौका मिल जाता था। ऐसे मौको पर मैं यह उम्मीद जाहिर करने के साथ अपना भाषण खत्म करता कि "भारत और प्रोटेस्टेंट अमरीका के बीच रिश्ते और अधिक मत्री-पूण होगे।" किसी-न किसी मे इतनी सूझ-बूझ होती कि वह लाजमी तौर पर यह सवाल पूछता कि मैंने अमरीका के पहले 'प्रोटेस्टेंट' का विशेषण क्यो जोडा ? तब मुझे अपनी यह बात कहने का मौका मिल जाता और मैं उन्हे बताता कि "आपके राष्ट्रपति मेरे देश को, जिसमे करोडो मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख, यहूदी और पारसी हैं, हिंदू भारत कहते हैं। बदले मे मुझे भी ऐसे ही उद्गार व्यक्त करने चाहिए और यह भूल जाना चाहिए कि इस महान देश मे बहुत से कैथोलिक और यहूदी भी रहते हैं। आपके राष्ट्रपति की तरह मैं भी सिर्फ बहुसंख्यक लोगो का जिक्र करता हूँ। खुदा बाकी को सलामत रखे !" अमरीकी समाचारपत्रो मे इस टीका की खबर पढने पर अमरीकी विदेश विभाग के मेरे एक दोस्त मुझे टेलीफोन करके यह भरोसा दिलाने के लिए प्रेरित हुए कि "गलती पर उचित ध्यान दिया गया है और मुझे बार बार इस गलती की ओर अब इशारा करने की जरूरत नही है।"

लास एजिल्स मे एक टेलीविजन कायक्रम मे मुझसे पूछा गया कि "आपने कृष्णमेनन को इतने साल तक भारत अमरीकी सबधो को खराब करने की इजाजत क्या दी ?" मैंन भी वसा ही तीखा प्रत्युत्तर दिया 'क्याकि आपने एक मोटे कद्दू को मेरे देश की बेइज्जती करन की इजाजत दी।" प्रश्नकर्ता यह नही समझ पाया कि कद्दू से मेरा मतलब क्या है। उसन पूछा "वह कौन है ?' मैंने कहा "जान फॉस्टर डलेस। उन्होन हमारी गुट निरपेक्षता को अनतिक बताया था। एक बडे राष्ट्र की बेइज्जती करन का अधिकार उन्ह किसने दिया जो आपकी आबादी से तीन गुना बडा है ?" यह कहने के बाद मैंन सोचा कि इसका प्रतिकूल प्रभाव पड सक्ता है, इसलिए जल्दी से मैंन अपनी बात मे यह भी जोडा,' लेकिन दो सनकियो के बारे म क्यो परेशान हुआ जाये ? एक मर चुका है और दूसरा सियासी तौर पर खत्म हो चुका है। हम अपने दोनो देशा के बीच बहुत पहले से कायम दोस्ती के बधन को मजबूत करन के बेहतर तरीका के बारे मे सोचना चाहिए।' प्रश्न कर्ता की प्रतिक्रिया खास अमरीकी अदाज की थी। उसन खुशमिजाजी से कहा "आपने जब कृष्ण मेनन को सनकी कह दिया तब आप हमे कुछ भी कह सकते हैं और हम उसे खुशी से मजूर कर लेंगे।" वे ऐसी ही जुबान समझते हैं।

अरब और इसराइल के बीच 1967 की लडाई के बाद पश्चिमी एशिया के देशो को भारत के पूण समर्थन के बारे म यह सवाल बार-बार पूछा गया "आप इसराइल के खिलाफ अरबो का समथन क्या कर रहे हैं ?" वे बहुत जोश मे यह बताते कि यहूदियो ने बहुत मुसीबतें झेली हैं और वक्त आ गया है कि उनकी मुसीबतो का खात्मा हो। ऐसे लोगो के लिए मेरा जवाब था, "सदिया से कौन यहूदिया को तग और परेशान कर रहा है और उन्ह बेइज्जत कर रहा है ? किसन उन पर ईसा मसीह को सूली पर चढाने का आरोप लगाया ? किसन उन्हें गदा यहूदी' कहा है ? अरबो न नही जिनके साथ वे करीब दो हजार साल तक अमन से रहते रहे। उन्हें इज्जत दी गयी और सम्मान से जिंदगी बसर करने का मौका

दिया गया, लेकिन शेक्सपियर जसे महान मानवतावादी ने भी यहूदियो को हिकारत की नज़र से देखा, हिटलर ने बेरहमी से उनका कत्लेआम किया और जब अपराधी को सज़ा देने का वक्त आया तो आपने जाकर अरब भूमि के टुकडे कर डाले। क्या यह उचित है ? क्या यही इसाफ है ?" वे इन ऐतिहासिक वास्तविकताओ का प्रतिवाद करने की कोशिश करते, लेकिन स्वाभाविक तौर पर हकीकत बनाने वाले तथ्यो से मेरे अरब दोस्तो को खुशी हुई।

बहुत जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि कई सजातीय समूहो के बीच मतभेद और क्षेत्रीय प्रतिद्वद्विता उसी तरह अमरीकी जीवन का हिस्सा है, जितना वह हमारे देश मे है। लेकिन वे स्वस्थ प्रतिद्वद्विता और हँसी मजाक के लहजे म इसे ढँक लेने मे कामयाब रहते है। एक बार गवनर एडमड जेराल्ड ने, जिहें कैलीफोर्निया के गवनर के पद के लिए रिचड निक्सन को हराने का श्रेय प्राप्त है मुझसे पूछा, "आप उस छोटे से नगर न्यूयाक के ज़रिए जिसे बहुत कम लोग जानते हैं, हमारे पास क्यो आते हैं ? आप तो सीधे हमारे नज़दीक हैं—प्रशात महासागर के पार !" सचमुच नक्शा देखने से यह मालूम हुआ कि दिल्ली लदन न्यूयाक सान फ्रासिस्को की तुलना मे दिल्ली टोकियो सान फ्रासिस्को 1215 किलोमीटर कम दूर है। मुझे एक बात सूझी कि किफायत करने के लिए मत्रालय राजनयिक डाक को एयर इडिया की टोकियो जाने वाली उडान से भेज सकता है जहाँ से किसी भी अतर्राष्ट्रीय उडान के ज़रिए उसे सान फ्रासिस्को भेजा जा सकता है इसलिए मैंने यह बात बहुत बेताबी से मत्रालय को लिखी और कहा कि ऐसा ही होना चाहिए। लेकिन मुझे इसका बदला क्या मिला ? इतनी दूर से मुझे टेलीफोन किया गया कि मैं इस प्रस्ताव पर ज़ोर न दू क्योंकि इसका असर यूरोप होकर जाने वाले मौजूदा मायता प्राप्त माग पर पडेगा। इसकी वजह से अधिकारियो को किसी यूरोपीय राजधानी मे कुछ दिन व्यतीत करने का सरकारी बहाना मिल जाता था जहा जाना वे पूरब के शहरो की तुलना म ज़्यादा पसन्द करते थे। यह एक ऐसी तीथयात्रा थी जो बहुत थोडे लोग करदाता की सदभावना पाने के लिए छोडने को तैयार होते। असलियत तो यह है कि कई अफ्रीकी देशो को जाने के लिए हमारा मायता प्राप्त माग लदन पेरिस ब्रूसल्स या रोम होकर है। अफसरशाही के खुद अपने को और अपने मन्त्रिमडलीय साथियो को फायदा पहुँचाने के ऐसे ही तिकडमी तरीके हैं।

व्यापार सबधी दष्टिकोण म भी इसी प्रकार का पक्षपात था, जिसके कारण कभी कभी बहुत निराशा होती थी। लेकिन कभी कभी ऐसा केवल सोचने के गलत ढँग की वजह से होता था। एक बार बगलौर के हिंदुस्तान मशीन टूल्स ने अपनी घडिया के कुछ नमूनें सान फ्रासिस्को स्थित हमारे कासुलेट जनरल के व्यापार विभाग को भेजे और यह सुझाव दिया कि वहाँ इनकी बिक्री की सभावनाओ का पता चलाया जाये। कुछ बडे व्यापारियो से सपक स्थापित किया गया और उनम से एक भारतीय घडियो की कायकुशलता से बहुत प्रभावित हुआ। घडी की कीमत 6 डालर रखी गयी थी। उस व्यापारी नें फौरन 150 हज़ार घडियो का आडर दे दिया। जाहिर है हम सभी इस सौदे से बहुत खुश थे, लेकिन इसके बाद बगलौर से जो जवाब हम मिला उससे हम हक्का-बक्का रह गये। हम यह बताया गया कि इन घडियो का सपूण उत्पादन केवल 100 हज़ार था और इसलिए हमसे अनुरोध किया गया कि केवल एक या दो हजार घडियो के सौदे तय किय जायें। जब हमारा व्यापार कौंसल इस विषय पर सान फ्रासिस्को के व्यापारी से बात करने

गये तो उसने विशिष्ट अमरीकी लहजे मे जवाब दिया, "मैं एक हजार घडिया लेकर क्या करूँगा ? क्या अपनी सास के जन्मदिन पर उन्हें उपहार मे दे दू ?" इस प्रकार की गलतियाँ कभी हमारे दूतावासो के व्यापार विभागो पर थोप दी जाती है, जबकि असलियत यह है कि हमारे निर्यात अभियान इसलिए असफल रहते हैं कि घरेलू उत्पादन काफी नही है। 1974 के आसपास जाकर हम निर्यात करने की स्थिति मे आये। हमारा निर्यात तेजी से बढा जिससे हमें जरूरी विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

जब मैं अमरीका मे वाशिंगटन राज्य के सीटिल नगर मे था तब वहा मैंने विद्यार्थियो, वकीलो और व्यापारियो की मिली जुली सभा को सबोधित किया। ये सब लोग उन उत्साही भारतीयो के प्रयत्न से इकट्ठा हुए थे जो नगर मे और उसके आस-पास रहते थे। मैंने समान दिलचस्पी के क्षेत्रो और हमारी और अमरीकियो की मूल विचारधारा के बारे मे बात की। लेकिन मैंने एक बात जोर देकर कही जिससे कि सभा मे उपस्थित कुछ लोग सन्न रह गये। "क्या आपको मालूम है," मैंने पूछा, "कि अमरीका के बाद भारत मे, न कि छोटे से इग्लैंड म, सबसे अधिक अँग्रेजी बोलने वाले लोग रहते हैं ?" इस पर बहुत देर तक तालिया बजती रही और मेरे भाषण के इस हिस्से को अखबारो ने मोटी मोटी सुर्खी देकर छापा। मेरे बयान पर किसी ने शका नही की। लेकिन हैरत है कि बी०के०नेहरू को जो वाशिंगटन मे हमारे राजदूत थे यह अच्छा नही लगा। शायद अखबारो की सुर्खियो से वह चिढ गये थे। उन्होने मुझसे पूछा कि यह सूचना मुझे कहा से मिली ? मैंने जवाब दिया,"मैं तथ्यो को जानता हूँ, क्योकि मैं इसके लिए मेहनत करता हूँ। भारत म करीब सात करोड अँग्रेजी बोलने वाले हैं जो कि इग्लैंड की पूरी जनसख्या से अधिक हैं। अगले बीस-तीस वर्षो मे हम अमरीका से भी आगे बढ जायेंगे।" इस बातचीत के कुछ अर्से बाद बी० के० नेहरू ने मुझे बुलाया और कहा, "आपने यहाँ के सिख प्रवासिया से इतना बढिया तालमेल बिठा लिया है कि आप उनसे कहिये कि वे जवाहरलाल नेहरू जन्म दिवस कोष के लिए दिल खोलकर चदा दें। मैं इसके लिए अपील निकाल रहा हूँ। हमारा लक्ष्य एक लाख डालर होना चाहिए। मैं दिल्ली जा रहा हूँ। आप मुझे 14 नवबर से पहले तार भेजकर इसके बारे मे बतायें।' मैंने सभावनाओ का पता लगाने का वादा किया और उसी समय कोष के लिए अपनी एक महीने की तनख्वाह दान मे दे दी।

पर जब मैं स्टाक्टन के गुरुद्वारे मे अपने सिख मित्रो से मिला तो उन्हान बताया कि उसी वष वे लोग एक लाख डालर से अधिक की रकम बाढ पीडितो के लिए और फिर युद्ध-कोष मे दे चुके थे। साथ मे उस वष उन्हे खेती के उत्पादन मे भारी नुकसान हुआ था, इसलिए उन्होने मेरे अनुरोध को पूरा करने म असमथता दिखायी। मैंने इसी आशय का तार राजदूत को भेज दिया। वह तो चेक के इतजार म थे जो कि वह स्वय नये प्रधानमत्री को भेंट करना चाहते थे। मैं उनकी निराशा को समझ सकता हूँ, लेकिन इसके बाद मुझ पर उनका रोष आश्चयजनक था। हमारे नियमों के अनुसार वाशिंगटन स्थित राजदूत दूतावास के अफसरो के बारे मे और सान फ्रासिस्को और न्यूयाक के कौसल-जनरलो के बारे मे भी वार्षिक रिपोट भेजता है। पहले वष उन्होने मेरे बारे मे अच्छी रिपोट भेजी थी, क्योकि मुझे किसी प्रतिकूल टिप्पणी से सूचना नही दी गयी थी। लेकिन अगले वष की रिपोट मे उनकी कथित ईमानदारी बहुत प्रत्यक्ष रूप से सामने आयी। उन्होने मुझ पर जवाहरलाल नेहरू के साथ गद्दारी करने का आरोप लगाया। उस

समय सान फ्रांसिस्को मे मेरे साथ एम० जे० देसाई ठहरे हुए थे जो सेवा से अवकाश ले चुके थे। रिपोर्ट के इस हिस्से को पढकर वह दग रह गये और विदेश सेवा के सदस्य होने के नाते उन्हे बहुत बुरा लगा। उन्होने मुझसे कहा, "ऐसी गरजिम्मेदाराना बात गैर पेशेवर राजनीतिक राजदूत तो लिख सकता है, लेकिन एक आई० सी० एस० अफसर से मैं ऐसी अपेक्षा नही करता था। हमारे सेवा नियमो मे यह कही नही लिखा है कि एक सरकारी नौकर अपने राजनीतिक मालिक के प्रति वफादार हो। मूल्याकन उसके काम का किया जाता है, न कि उसकी वफादारी का।"

एक सकीर्ण सेवा म यदि आमने सामने मुकाबले की स्थिति आ जाये तो इसके सभावित नतीजे के बारे मे चिंता आम बात है। वाशिंगटन के दूतावास से एक अफसर एक मीटिंग म हिस्सा लेने के लिए सान फ्रांसिस्को पधारे और परिस्थिति के बारे मे उन्होने मेरा पक्ष जानना चाहा। उन्होने मुझे बताया कि राजदूत नहरू ने जवाहरलाल नेहरू के ऊपर अतर्राष्ट्रीय परिचर्चा के मेरे प्रस्ताव का मजाक उडाया था और इस पर अमरीकी विदेश विभाग से बात करने से इकार कर दिया था। बहुत ही कम समय मे शील्ड पाने के लिए भेजे गये उनके तार का मकसद हमम से कुछ लोगो को नाकारा साबित करने का था। उनको यह उत्तर का पूर्वाभास नही था और इस कारण वह मुझसे और नाराज हो गये। इस व्यक्ति ने मुझे बताया कि राजदूत महोदय राजनीति म प्रवेश पाने के लिए उत्सुक थे। पहले राज्यसभा के सदस्य होकर और बाद मे वित्त मत्री के रूप मे केंद्रीय मत्रिमडल मे शामिल होने का उनका इरादा था। उनके दो आई० सी० एस० मित्रो ने उन्हे सब्ज बाग दिखाया था और यह सलाह दी थी कि वह नहरू परिवार से अपने सबधो की ज्यादा चर्चा न करें जिससे उन्हे लालबहादुर शास्त्री का समर्थन मिल जाय। इसके बाद वह लालबहादुर शास्त्री और अनेक दरबारियो मे मेलजोल बढाने लगे, यहा तक कि उन्होने जवाहरलाल नेहरू की नीतियो की आलोचना शुरू कर दी और उन्हे केवल अव्यावहारिक स्वप्नदर्शी कहने लगे। उनके मातहत इस बात का मजा लेते थे कि ऐसी खुली खुशामद से भी कोई नतीजा न निकला। परिस्थिति ने नाटकीय मोड लिया। शास्त्रीजी का देहान्त हो गया और 24 जनवरी 1966 को श्रीमती इदिरा गाधी प्रधानमत्री बनी। इसके फलस्वरूप बी० के० नेहरू को फिर एक बार पीछे लौटना पडा और अपने पारिवारिक सबधो को एक बार फिर स्वीकारना पडा। मुझसे जब उन्होने घाव वगूलन के लिए खुशामदाना बात की थी तब वह यह साबित करना चाहते थे और कि वह यमठ सरकारी नौकर और जवाहरलाल नेहरू के अनुयायी हैं क्योंकि उस समय नेहरू की पुत्री सत्ता मे आ गयी थी।

जब मैं सान फ्रांसिस्को म कौंसल जनरल था तब मेरे न्यू मैक्सिको और टेक्सास के दौरे याद रखने लायक साबित हुए। मैं ऐंटोनियो टेलर के पास मैड्रिड के अपने एक दोस्त का पत्र लेकर गया था। यह लिंडन जॉनसन की पत्नी क्लाडिया के, जिनका लोकप्रिय नाम लेडी बर्ड था भाई थे। टेलर ने एक स्पेनी महिला से विवाह किया था और उनकी ससुराल वालो ने उन्हे सूचित किया था कि शीघ्र ही मैं उनसे मिलूंगा। इस पत्र को मैंने डाक से भेज दिया था और उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की थी। इसके तुरत बाद मुझे न्यू मैक्सिको के गवर्नर का निमत्रण मिला कि मैं सरकारी हैसियत से सान्ता फे की यात्रा करूं। वहा पहुंच कर साफ हो गया कि इस सारे मामले के पीछे मैड्रिड से प्राप्त वह पत्र था। इस

राज्य की स्रेनी नगरो से मिलती-जुलती राजधानी पहुँचन पर, जो मक्सिको सीमा के बहुत निकट थी, मुझसे एक प्रतिनिधिमडल मिलने आया, जिसम वहा के अफसर, विधायक और रोटरी क्लब के प्रमुख सदस्य थे। एँटोनियो टेलर की छाप हर जगह थी जिससे यह लगता था कि मेरी उपस्थिति ने वहा पर काफी दिलचस्पी पैदा की है। राष्ट्रपति लिडन जॉनसन के साले टेलर ने मुझे राज्य की विधानसभा को सबोधित करन के लिए कहा, आमतौर पर विदेशियो को ऐसी इज्जत कम मिलती है और वह भी उसी देश मे स्थित एक कूटनीतिज्ञ को।

मैंने इस अवसर पर हमारे दोना देशो के सामान्य दृष्टिकोणो की समानताओ के बारे म बताया और कहा कि हमारे आपसी सबधो को सुन्ढ करने और सौहाद-पूण ढँग से मतभेद दूर करन का निश्चय करने की जरूरत है। मैंन उनकी वियत नाम नीति की ढके छिपे ढँग मे आलोचना की और एशिया व अफ्रीका की जनता की राष्ट्रवादी आकाक्षाओ को मान्यता देन की आवश्यकता पर बल दिया। मेरे भाषण का स्थानीय रेडियो से सीधा प्रसारण हो रहा था। टेलर की इकलौती पुत्री डायना मकार्थर वाशिगटन से अपने माता पिता स मिलन आयी थी। वह खुले दिल की साफ बात कहने वाली महिला थी। उन्ह एक "इतने अच्छे भारतीय' को देखकर बहुत ताज्जुब हुआ। वह अपन फूफा लिडन जॉनसन के साथ पाकिस्तान जा चुकी थी जहा उनके दिमाग मे पाकिस्तान समथक खयाल ठूस दिये गये थे। जॉनसन उस जमान मे उपराष्ट्रपति थे। वह वहा पाकिस्तानियो से बहुत गमजोशी से मिले। पाकिस्तानियो न भी इसी तरह का 'वाह यार खूब मिले का रख अपनाया था। इसी मेल जोल की वजह से उन्होने कराची म एक ऊँट वाले को अमरीका आने का निमत्रण दे दिया था। डायना और उनके माता पिता मेरे बहुत अच्छे दोस्त बन गये। मैं तीन दिन वहा रहा आर उन्होने मेरा बहुत खयाल रखा और बहुत खातिर की। मैंन सोचा कि राजनय के कितन अजीब तरीके है और सयोग भी कभी कभी देशो के बीच सबध बनाते या बिगाडते है। उदाहरण के लिए, यहा एक महान देश का सुदूर कोना भाईचारे और दोस्ती से इतना शरा बोर हो रहा था जैसाकि वह कभी नही हुआ था और ऐसा महज इसलिए था कि एक अकेले इसान ने व्यक्तिगत दिलचस्पी ली थी, क्योकि मैं उसके सुसराल वालो को एक दूसरे देश म जानता था।

डलास मे भी मेरा बहुत स्नेहपूण स्वागत किया गया, हालाकि इसकी वजह भिन्न थी। वहा यह स्वागत एक कमठ भारतीय इकबालसिंह की वजह से हुआ जिनके डलास के गवनर और मेयर से बहुत अच्छे सबध हो गये थे।

अनेक महाद्वीपा मे गुजरे मेरे तीस साल के राजनयिक जीवन से बहुत सी घटनाएँ जुडी हुई हैं। कुछ अनुभव बहुत रोमाचक और याद रखने वाल थे कुछ कटु और अप्रिय थे, और कुछ बहुत ही ज्यादा तकलीफदेह। लेकिन जिंदगी इसी का नाम है और हर एक की जिदगी म अच्छाइया आर बुराइया दोना ही आती है। आम तौर पर अपनी नियुक्तियो और नियुक्तिया के समय के बारे म मैं बहुत खुश किस्मत रहा। मैंन विभिन्न रूपो और भाषाओ म उनका आनद लिया। अपने कुछ सहयोगिया के विपरीत मैं पश्चिम की जगह पूव के राजनीतिक दष्टि से नवोदित और सास्कृतिक दष्टि से दिलचस्प जगहा म नियुक्ति बेहतर समझता था, लेकिन कोई आदमी कही भी जाये और कुछ भी करे वह जो चाहता है और जो इच्छा करता है उसका बहुत थोडा सा भाग ही उसे मिलता है। मैं यह दावा नही करता कि मैं एक ऐसा इसान हूँ जिसकी प्रेरणा से हजारा नये खयाल पनपते हो, लेकिन मेरे

अंदर सतुष्टि की भावना जरूर है जिसकी वजह से मैं इसानो और मसलो म फ़िजूल की चीज़ो की परवाह नही करता। मुझे बी० के० नेहरू या उनकी तरह के लोगो की परवाह नही है। इस रवये से मुझे आमतौर पर फायदा ही हुआ है। उदाहरण के लिए, अमरीका मे उनसे टकराव का नतीजा उनकी मर्जी के खिलाफ हुआ। मामला जब अत मे श्रीमती गाधी के सामने रखा गया तो उन्होंने कहा कि "व्यक्तित्व का टकराव" इस अप्रिय काड की जड है। उन्होंने इसलिए मेरी तरक्की प्रथम श्रेणी मे करने और अल्जीरिया मे मुझे राजदूत नियुक्त करने का आदेश दिया।

कोई देश किसी व्यक्ति पर क्या प्रभाव डालता है, यह शायद इस पर निभर है कि उसका अपना दृष्टिकोण क्या है और उसका स्वभाव किस चीज से प्रभावित होता है। अगस्त 1967 म जब मैं एल्जियस पहुँचा तो सबसे पहले मुझ पर उसके महान सघप का प्रभाव पडा। 15 लाख व्यक्ति मारे गये थे, वहाँ दस लाख से ज्यादा बेवाएँ और यतीम थे। इतनी मुसीबता के बावजूद उनका अपनी कामयाबी पर जो नाज था वह उनसे कोई नही छीन सका। आजाद होने के लिए उन्होंने यह कीमत अदा की थी और यह कीमत अदा करके वे खुश थे। स्थानीय राजनयिक कायविधि के प्रतिकूल, जहाँ काय भार सँभालन के लिए आने वाले नये राजदूतो को महीनो इतजार कराया जाता है, मैंने बिना किसी विलब के अपना परिचय पत्र पेश कर दिया। अल्जीरिया के राष्ट्रपति हूरी बूमेदीन ने परिचय समारोह म ही दोस्ताना माहौल कायम कर दिया था। उनका रवैया बहुत सौहादपूण था। अरब इसराइल विवाद और उसके हल के बारे मे वह जो सोचते थे और उन्हान जो कुछ कहा उससे पता चला कि उनका नजरिया बिलकुल भिन है। उन्हान कहा "जब तक हम अपने देश मे गरीबी और अभाव खत्म नही कर देते, हम इसराइल को नही हरा सकते। रहन सहन का स्तर ऊँचा उठाना ही पडेगा। हर इसराइली अपने देश के लिए लडने और मरने को तयार है, क्योंकि वह महसूस करता है कि इसराइल की हार जीत से उसका भाग्य जुडा हुआ है। अरबो को भी ऐसा ही करना चाहिए। हमे जिंदगी की आनददायक चीजो से मामूली इसान के भावी को जोडना चाहिए। आज वह काहे के लिए लडे—अपनी गरीबी की मुसीबत और कुछ लोगो की सुख-सुविधा को कायम रखने के लिए ? अल्जीरिया म हमने शुरुआत कर दी है और हम चाहते हैं कि हमारे एक करोड तीस लाख बाशिंदो को यह भरोसा हो कि वे मुल्क की दौलत के मालिक हैं। इस एहसास से नयी भावना पदा होगी। सिफ यही वह चीज है जिसके बल-बूते पर हम दुश्मनो को हरा सकेंगे।' इसलिए उनके नेताओ पर आर्थिक समद्धि हासिल करने की धुन सवार हो गयी। एक नौजवान, नातजुर्बेकार और अपरिपक्व दल को एक ऐसे देश की जिम्मेदारी मिली जिसका आकार भारत का तो एक तिहाई है लेकिन उन्हान उनति के शिखर पर पहुँचाने वाली काय प्रणाली बनाने और नीतियो पर अमल करने की जिम्मेदारी प्रविधि विशेषज्ञो को सौप दी। उन्होंने जल्दी ही अपने को जरूरता के हिसाब से ढाल लिया और शीघ्र ही वे दूसरो के लिए आदश बन गये।

अपने देश के प्रतिनिधि के नाते मेरा पहला काम अमीर अब्दुल कादिर के मकबरे पर फूल चढाना था। अमीर अब्दुल कादिर अल्जीरिया के उन्नीसवी सदी के महान लोकनायक थे। फ्रांसीसी हुकूमत के खिलाफ़ सात साल की आजादी की लडाई म अपनी जान कुरबान करने वाले कई शहीदो के मकबरे भी इसी कब्रिस्तान

मे बने हुए हैं। बूमेदीन भी, जिनका 27 दिसबर, 1978 मे देहात हुआ था, इसी कब्रिस्तान मे दफन हैं। ऐंठ मे भरे हुए फ्रासीसी कनल, जिन्हे शुरू मे अपनी सरकार का पूरा समथन हासिल था, नवोदित अल्जीरियाई चेतना की असलियत से अनभिज्ञ थे। जरनल द गाल ने टकराव की व्यथता को समझ लिया था, सहार रोक दिया था और समझौता वार्ता के कई दौर चलाये थे जिससे आखिरकार मसला तय हो गया था। उन्होने फ्रास को वास्तव म 1958 मे उबार लिया था और अल्जीरिया को स्वतत्र राष्ट्र बनने दिया था। इससे अल्जीरिया को अपने भाग्य का निर्माण करने का मौका मिला।

मैं 1950 के दशक के अतिम वर्षों म आजादी की लडाई के उनके कुछ सैनिको को जानता था और उनके साथ मैंने एसे वक्त अच्छे सबध कायम किय थे जब व अपन हथियारबद सघष के लिए बाहरी समथन पाने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए जब मैं अल्जीरिया गया तो मुझे वहा काम करने के लिए सदभावना और सदाशयता का बहुत अच्छा माहौल मिला। आम तौर पर हर राजदूत ऐसा भाग्यशाली नही होता। इसके विपरीत अल्जीरिया की केंद्रीय स्थिति से मुझे तेजी स जागत होने वाले इस महाद्वीप की धाराओ और उप धाराओ को देखन का मौका मिला। यह समझने म मुझे वक्त नही लगा कि औसत अफ्रीकी बेहद परिणामवादी होता है और उसे राष्ट्रीय हितो को पाने के लिए कोई भी तरीका अपनाने मे हिचकिचाहट नही होती। वह अनादिकाल से मुसीबतें भोग रहा है, इसलिए उसके इस रुख पर कोई ताज्जुब भी नही होता।

अल्जीरिया का एक बडा भाग बडे सहारा मे शामिल है। रेत के टीले सागर की जमी हुई लहरो की तरह दिखायी देते हैं। भूमध्यसागर के किनारे अल्जीरिया की 850 किलोमीटर लबी तट रेखा उसके मनोरम दृश्य, उसकी हरी भरी जमीन, मोहित करने वाले खूबसूरत नजारे, नैसर्गिक प्रतीत होत हैं। अल्जीरिया की आबोहवा ऐसी है कि उसके बारे म कोई अदाज ही नही लगाया जा सकता। पहले दिन सरदी से शरीर ठिठुरता है दूसरे दिन गरमी महसूस होती है और बाकी दिन न ज्यादा गरमी रहती है न ज्यादा सरदी। खेल-कूद के और बाहर घूमने फिरने के शौकीन लोगो को अल्जीरिया म अनोखे अवसर प्राप्त हो सकते है। एक ही दिन मे सिर्फ 30 किलोमीटर की दूरी पर वे तरन का भी आनद ले सकते हैं और बर्फ पर फिसलने का भी। अल्जीरिया की लबी तट रेखा मे खूबसूरत बालू तट है जिन्हे पयटक-स्थल बनाने के लिए बहुत होशियारी से चुना गया है और आकर्षक ढँग से उनका विकास किया गया है। एल्जियस से लगभग 2,500 किलो मीटर दूर सहारा के बीच मे तासिली शिला चित्र हैं। देश मे प्राकृतिक गैस, तेल, खनिज, खजूर व सभी तरह के फलो की अपार सपदा है। शराब भी बहुतायत से है, लेकिन इसमे भी शोषण का पहलू मौजूद है। फ्रास अल्जीरिया मे बहुत अच्छे किस्म के अगूर पैदा करता था और अपनी मशहूर शराबो मे उन्हे मिलाता था लेकिन अल्जीरिया के आम लोगो को शोरबा बनाने के लिए टमाटर, प्याज व जिन दूसरी सब्जियो की जरूरत होती थी उनका फ्रास से आयात किया जाता था। इसीलिए बूमेदीन ने शराब के उद्योग की विरासत को "साम्राज्यवाद की जहरीली देन बताया था।" लेकिन उपभोक्ता वस्तुओ का निर्माण करने वाले नये कारखाने देश को और अधिक धनी बना देंगे।

व्यापार और विकास सबधी दूसरा राष्ट्रमडलीय सम्मेलन दिल्ली म 1968 मे होन वाला था। विकासशील देशो की, जिन्होने अपने को '77 राष्ट्रीय दल'

कहना शुरू किया था, एल्जियस मे अक्तूबर 1968 मे सम्मेलन की कार्यनीति तय करने के लिए बैठक हुई। स्वाभाविक रूप से इसमे भारत का अच्छा प्रतिनिधित्व था और सभी का ध्यान उस पर लगा हुआ था। जे० आर० जयवर्धन श्रीलंका के शिष्टमंडल का नेतृत्व कर रहे थे। मैं उन्हें 1939 से जानता था। पाकिस्तान के वाणिज्यमंत्री अब्दुल गफूर अपने देश के दल का नेतृत्व कर रहे थे। वह होती के नवाब सर अकबर खाँ के बेटे थे और हम लोग बचपन से एक-दूसरे को जानते थे। वह अपने लंबे चौडे डील डौल वाले पिता के मुकाबले कही भी नही ठहरते थे, जो कई मायनो मे एक अनोखे आदमी थे—रईस, लवे-तगडे और मुहफट, उनके तौर तरीके भी बिलकुल अनोखे थे। एक बार शिमला के एक नाचघर मे उन्होंने एक नाजुक अँग्रेज लडकी को उठा लिया और हर एक को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि उन्होने उस युवती को हथेली पर खडा कर लिया। सरहद मे 1946 के चुनाव के दौरान एक बार उनसे सभा मे जिन्ना का परिचय देने को कहा गया। वह पश्तो मे बोले, 'मैं जिन्ना को कई साल से जानता हूँ। दिल्ली में वह निचले सदन के सदस्य हैं और मैं ऊपरी सदन मे बैठता हूँ।[1] मेरे दोस्त सर मोहम्मद इकबाल ने पाकिस्तान का सिद्धांत बनाया और जिन्ना ने उस सिद्धांत को विकसित कर दिया। वह जिद्दी हैं।" इस बात पर जोर देने के लिए उन्होंने मातृभाषा मे कहा, 'चि कुम जई उदरेगे नूबिया खर पशते वा वलार य" (एक गधे की तरह वह खुर जमाकर खडा हो जाता है और हटने का नाम नही लेता)। श्रोता कहकहा लगाने लगे। सभा मे मौजूद प्रमुख लीगी नेता चक्कर मे पड गये और यह नही समझ पाये कि उन्हें इस विषय पर और कुछ कहने से कैसे रोका जाय?

अल्जीरियाई दक्षिण वियतनाम के शिष्टमंडल की मेजबानी करने की संभावना से परेशान हो रहे थे। यह बात उनके गले से नहीं उतर रही थी कि ऐसे घोर प्रतिक्रियावादी उनके मेहमान बनें या उनके देश मे आकर भाषण करें। वे यह जानते थे कि उनको प्रवेश देने से इंकार करने से जटिलताएँ बढेंगी। इसलिए उन्होने पेरिस एक अधिकारी भेज दिया जो दक्षिण वियतनामियो का स्वागत करे और उन्हे एल्जियस न जाने के लिए राजी कर ले। सैगोन की सरकार ने अपने तीनो प्रतिनिधियो को चेतावनी दी थी कि वे बहुत सतर्क रहें, क्योकि कहीं ऐसा न हो कि एल्जियस मे उत्तर वियतनामी उन्हे पकड लें। इसलिए दक्षिण वियतनामी प्रतिनिधियो को यह जानकर खुशी हुई कि पेरिस मे ठहरने मे उन्हे अपनी जेब से कुछ भी खर्च नही करना पडेगा। उनकी गैर मौजूदगी पर किसी की नजर नही पडी लेकिन पाँचवें दिन अर्जेंटीना के प्रतिनिधियो को शक हो गया और उन्होने अपने पीछे की सीटें खाली रहने का कारण जानना चाहा। तब तक वे असलियत मालूम करते, दक्षिण वियतनाम के एक प्रतिनिधि ने पेरिस से एक अस्पष्ट और भ्रामक बयान जारी कर दिया कि वे सम्मेलन मे क्यो नही मौजूद रह सके।

मैं जब अमरीका मे था तो मैंने घर जाने की कोई छुट्टी नही ली थी। इसलिए एल्जियस मे, जिसे सही तौर पर भूमध्य क्षेत्र की रानी कहा जाता है, पद भार ग्रहण करने के फौरन बाद मैं फरवरी 1968 मे तीन महीने की छुट्टी पर दिल्ली आ गया। इस तरह मुझे इटली की एक लडकी सोनिया से प्रधानमंत्री के बडे बेटे राजीव की शादी मे शरीक होने का मौका मिल गया। विवाह समारोह सादा

1 उस जमाने मे लेजिस्लेटिव असेंबली और कौंसिल आफ स्टेट।

लेकिन सुरुचिपूर्ण था। इससे कई साल पहले की याद ताज़ा हो गयी जब भारत की आज़ादी की लड़ाई के दौरान बहुत ही नाटकीय परिस्थितियों में इलाहाबाद में इंदिरा और फीरोज़ की शादी हुई थी, लेकिन तब भी इसी सादगी से और सुरुचिपूर्ण ढंग से। इस 26 साल के अंतराल में उस समय की खूबसूरत और नाज़ुक दुल्हन और अधिक आकर्षक प्रधानमंत्री बन गयी। मैं भी एक उग्र खुदाई खिदमतगार से विभिन्न जगहों पर घूमने वाला राजनयिक बन गया। जवाहरलाल की अनुपस्थिति ने एक ऐसी शून्यता पैदा कर दी थी जो मैं हर समय महसूस करता था लेकिन इस मौके पर मुझे फीरोज़ की बेहद याद आयी। उन्हें कितनी खुशी होती! संसद के रूप में जब उनका चरमोत्कर्ष था, 8 सितंबर 1960 को 48 साल की ही उम्र में उनका देहांत हो गया था। इसका यकीन नहीं होता था कि वह इतनी कम उम्र में चल बसेंगे। मैं जब स्पेन में था तो मुझे इसकी खबर मिली, जिसके बाद उनकी बीवी का खत आया जिसे पढ़कर मेरी आँखों में भी आँसू आ गये। इंदिरा गांधी जैसे व्यक्ति के पास से, जो ज़्यादातर वक्त अपनी भावनाओं को काबू में रखती हैं, इस तरह का खत आना एक करुण गाथा थी जिसने मेरे दिल को हिला दिया। उन्होंने लिखा था "मैं नहीं जानती कि क्या लिखूं—मैं बिलकुल अकेला महसूस कर रही हूँ और बहुत दुखी हूँ। यह बात तुमसे ज़्यादा कोई नहीं जानता कि फीरोज़ और मैं कई साल से कितना झगड़ते रहे थे और हममें मतभेद रहता था, फिर भी इसके बावजूद अलग होने या दोस्ती का बंधन ढीला करने की जगह हम लोग एक दूसरे के और करीब आ गये। श्रीनगर में एक हाउस-बोट में करीब एक महीने तक हम लोगों ने साथ-साथ छुट्टी का आनंद लिया और भविष्य के लिए बहुत सारी योजनाएँ बनायीं। लड़कों की उम्र अब ऐसी हो गयी है जब उन्हें माँ की जगह पिता की ज़्यादा ज़रूरत है। मैं बिलकुल भटक सी रही हूँ और खालीपन महसूस करती हूँ। मुझे लग रहा है कि मैं मुरदा हो गयी हूँ। फिर भी ज़िंदगी तो चलती ही रहेगी।"

फीरोज़ कैसे इंसान थे? हम दोनों के बीच बहुत अच्छी दोस्ती कायम हो गयी थी। हालांकि हम दोनों के काम करने के क्षेत्र अलग-अलग थे, लेकिन हम दोनों की कई समान दिलचस्पियां थीं और हम लोग अकसर साथ इकट्ठा हो जाते थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक और मोहित कर देने वाला था। वह बहुत ही ज़िंदादिल और आमोदप्रिय थे। आराम और आसाइश के शौकीन थे। उनकी ख्वाहिश थी कि वह पार्टी संगठन में प्रभावकारी भूमिका अदा करें और उनकी बात को महत्व दिया जाये। वह ब्योरे की छोटी से छोटी बात का ध्यान रखते थे, कार्यकुशलता में विश्वास करते थे। वह हद दर्जे के नफ़ासत-पसंद और नाज़ुक मिज़ाज थे। कभी कभी उनकी बातें और बरताव हलका फुलका होता था, लेकिन दूसरे मौकों पर वह पूरी तरह संजीदा और प्रतिबद्ध भी होते थे। वह किसी राजकीय भोज की जगह अपने किसी दोस्त के साथ चुपचाप खाना हमेशा बेहतर समझते थे। समारोह कितना ही प्रतिष्ठाजनक क्यों न हो, वह उनमें दुमछल्ले या पिछलग्गू की हैसियत से जाना पसंद नहीं करते थे। वह बुद्धिमान, सदाशय, दिल के अच्छे और तेजस्वी थे लेकिन उनमें बहुत बड़ी आकांक्षाएँ नहीं थीं। उन्होंने जिस खानदान में शादी की थी उसकी महानता के रौब, शिष्टाचार और नियमों से उन्हें ऊब होती थी। उन्हें कायदे-कानून तोड़ना पसंद था। इसमें उन्हें बच्चों की तरह मज़ा आता था। सबसे ज़्यादा अनौपचारिक मौके तब आते जब हम बच्चों के साथ पिकनिक पर जाने के लिए इकट्ठा होते। इंदिरा भी ऐसे मौकों पर व्यस्तता और प्रधानमंत्री

की पुत्री होने के नाते पडने वाले काम के भार और राजनीति मे स्वय अपनी बढती हुई शिरकत को भूल जाती। सावजनिक मसलो मे गडबडी करने वाले फीरोज से डरने लगे थे। असलियत तो यह है कि अपने जीवन के अत के करीब, विशेष तौर पर ससदवेत्ता के रूप म अपने दूसरे कायकाल म, प्रतीत होता था कि वह अपने खोल से बाहर निकल आये हैं और राजनीतिक व ससदीय क्षेत्र म उनके काम का प्रभाव पडने लगा था और उनकी मौजूदगी का एहसास होने लगा।

भारत की इस यात्रा के दौरान मैं दिल्ली मे कई दोस्ता से मिला और एसी कई जगहा पर जाने के लिए मैंने अपनी छुट्टी का इस्तेमाल किया जहाँ मैं अभी तक नही गया था, मैं नेपाल और श्रीलका भी गया। कोलबो म मैं अपन पुरान दोस्त जे० आर०जयवधन और उनकी अति आकपक पत्नी एलीना के साथ ठहरा। मैंने एक हफ्ते तक उनकी मेजबानी का आनद उठाया। काठमाडू म भी मरा वक्त बहुत मजे मे कटा और कई बार गुजेश्वरीप्रसादसिंह से मिला। उन्होंने बहुत अफसोस से कहा, "अमरीकनो ने राजदूत तो एक कुवारी को बनाकर भेज दिया मगर चुनी बुढिया।" वह कुमारी कैरोल लैसे का जिक्र कर रहे थे, जिनकी शादी एल्सवथ बक्र से हुई थी, जो खुद भी राजदूत थे। पत्नी आर पति नेपाल और दक्षिण वियतनाम म तैनात थे। उनकी सरकार न उनके लिए एक विमान भी दे रखा था कि वे जब चाह, आपस मे मिल सकें। मैंन मोटर से नागालैंड और मिजोरम के दूर-दराज इलाका का सफर किया और उसका भरपूर आनद लिया। ऐसा लगता था कि वहा के लोगो का उल्लास शाश्वत है।

शिलाग मे मैं राज्यपाल विष्णुसहाय के साथ ठहरा। अपन छोटे भाई भगवान सहाय की तरह वह भी आइ० सी० एस० अधिकारिया की भीड म एक अनोखे व्यक्ति है। मेरी हमेशा से यह राय रही है कि उनके जैस मित्रो को अपन कई बेकार सहयोगिया म अलग रहना चाहिए। एक निष्पक्ष जाँच से कूडा छँट जाता और काबिल लोगो को हर व्यक्ति मजूर कर लेता। लेकिन वे लोग तो चाहते थ कि सभी को एक-सा माना जाये जिसकी वजह से मेरे जसे कई लोगा न उस पूरे कुनबे को रद्द कर दिया। खैर, जो भी हो विष्णुसहाय लगातार जिद करत रहे कि मैं उन्ह बता दू कि मेरी यात्रा का असली मकसद क्या है। वह इस पर यकीन नही कर पा रह थे कि मैं अपने खर्चे से भारत-दशन कर रहा हूँ। किसी ने ससद मे यह सवाल भी पूछ लिया, "यूनुस यहाँ क्या कर रहे हैं? गाया मैंन भारत म आन का अधिकार ही खो दिया था।

मैं कुछ बार दिल्ली म शेख अब्दुल्ला स भी मिला और उनके साथ उन विभिन्न आतरिक और बाहरी समस्याओ पर बातचीत की जो हमारे सामन थी। वह इस बात से बहुत क्षुब्ध थे कि उन्हें सबसे अलग रखा जाता है जिससे उनके सावजनिक जीवन पर निराशाजनक प्रभाव पड रहा है। यह बात श्रीमती इंदिरा गाधी को बता दी गयी जिन्होंने फौरन ही उन्हें उनके परिवार को और मुझे 1968 के अप्रल के शुरू म अपन निवासस्थान 1, सफदरजग रोड पर अनौपचारिक दोपहर के भोजन पर बुला लिया। इससे सिलसिला शुरू हुआ और लाभदायक वार्ता के लिए माग तैयार हो गया। यह बातचीत बाद म बहुत चुपचाप हुई और अतत समझौता हो गया। शेख न 21 साल बाद कश्मीर म शासन की बागडोर सँभाली। एक बडी राजनीतिक बाधा दूर हो गयी और आखिरकार राज्य का वातावरण शात होना शुरू हो गया। पूर्वी क्षेत्र के कबायली नताओ के साथ भी इसी तरह पर्दे के पीछे समझौता-वार्ता हुई और एक एक करके व सब राष्ट्रीय विकास की

मुख्य धारा में शामिल होने के लिए सहमत हो गये। यह एक वास्तविक उपलब्धि थी। सिक्किम को भारत के अग के रूप मे मान्यता मिल गयी और वहा प्रजा तान्त्रिक व्यवस्था कायम कर दी गयी।

एल्जियर्स वापस लौटने पर मैंने बहुत व्यापक दौरा किया। मार्च 1969 म बाकायदा सफारी का इतजाम किया गया। तासिली मे 18 हजार साल पुरान शिला चित्रो को देखन के लिए कुछ स्थानीय और विदेशी तथा उत्साही लोगो मे मैं भी शरीक हो गया। विमान सहारा और हाग्गर पहाड पार करके तमानरासेट पहुँचा। चारो ओर रेत-ही रेत थी और हमे यह देखकर बहुत हँसी आयी कि हवाई अड्डे की इमारत पर एक लडरोवर जीप थी जो विमान के आने जाने के साथ ही आती जाती थी। हम कुछ जीपो मे बैठकर दजानेत पहुँचे जहा सूडान से तीन महीन पहले रवाना हुए एक कारवा के लोग सवरे से पडाव डाले पडे थे। वे निगार और माली जा रहे थे और नौ महीने बाद खारतूम वापस लौटने वाले थे। इस इलाके मे एक बहुत बडा खानाबदोश कबीला तूरग रहता था। उनके बारे म कई किस्से मशहूर हैं। वे नीले रग के कपडे पहनते और यह रग उनकी खाल पर छूट जाता था। इसीलिए उन्हे कभी कभी नीला कबीला भी कहा जाता है। उनकी औरतें घरो पर ही रहती और मद चेहरा ढके रहते, मानो व किसी को नाराज करने या सदेह पदा करने से डरते हो, लेकिन असलियत मे वे रेत स अपन को सुरक्षित रखने के लिए चेहरा ढके रहते हैं क्योकि यहा हर वक्त रेत उडा करती है। उनकी पुरानी लिपि बायें से दायें भी लिखी जाती है और दायें से बायें भी।

दस दिन तक हम सीधी और सख्त चढाई पर चढत रहे। हमारा खाना-पानी और सामान गधो पर लदा हुआ था। हम सबसे पहले तमरीत पहुँचे और बाद मे सेफार, तिन-तज्जारिफ, तिन अबूतेक और तान जामतुका म रुके। य उन निजन जगहो के आकपक नाम थे जहा इक्का दुक्का किसी खानाबदोश और उसके गधे, किसी भूली भटकी चिडिया और सापो व बिच्छुओ के सिवा जिंदगी का कोई निशान नजर नही आता था, लेकिन उसकी गुफाओ व पहाडी चोटियो पर एक गुजरे हुए जमाने के बेहतरीन चित्र मिलते हैं।

अगले साल 1970 मे मैं फिर भारत में मौजूद था। दिल्ली मे उत्तर अफ्रीका और पश्चिम एशिया म तनात भारतीय राजनयिक मिशनो के अध्यक्षो का एक सम्मेलन किया गया था। ऐसी बैठकें बहुत लाभदायक होती हैं और सरकारी चिंतन व मूल्याकन के जाले साफ कर देती हैं। प्रधानमत्री न, जो हमेशा एसे अवसर पर भाषण करती हैं उन मुख्य विषयो पर जोर देकर सम्मेलन का पथ प्रदशन किया जिन पर विचार होना था, जबकि तत्कालीन उप-प्रधानमत्री मोरारजी देसाई ने राजदूतो की इस बात के लिए निंदा की कि वे अपनी मातृभूमि की अपेक्षा उन देशो के हितो को बढान के लिए अधिक चिंतित रहत है जहाँ वे तैनात रहते हैं। उन्होंने यह भी टीका की कि इस तरह के फायदे हासिल करने के लिए कई राजनयिक भारतीय ही नही रह जाते। इस बात का गले से उतरना मुश्किल था और मैंने बहुत जोरदार तरीके स इसका विरोध किया तो मोरारजी ने कहा, "आप क्यो परेशान हो रहे हैं ? बात आप पर लागू नही होती है।" इस दलील से मुझे और जोर का गुस्सा आया। मैंन खडे होकर बहुत आक्रोश मे कहा, "श्री उप प्रधानमत्री बात आप पर लागू हो सकती है। हालांकि सम्मलन मे भाग लेने वाले कई लोगो ने मेरे मुनासिब क्षोभ पर मेरी पीठ ठोकी, लेकिन मोरारजी देसाई और मेरे बीच कटु झडपो के दौरान उनकी

खामोशी से मुझे अचभा हुआ।

1968 की वसत ऋतु और मई 1969 मे भारत की दोनो यात्राएँ उन कामो की प्रस्तावना थे जो बाद म मैंने अजाम दिये। बादशाह खाँ को महात्मा गाधी के शताब्दी समारोह मे भाग लेन और 1967 68 के वप म अतर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए नेहरू पुरस्कार प्राप्त करने के लिए आमत्रित किया गया। बादशाह खाँ की देखभाल करने और वह जो कुछ देखना चाह उसकी व्यवस्था के मे समन्वय करने के लिए मुझे सितबर 1969 मे यथाशीघ्र दिल्ली आने के लिए एक तार मिला। लेकिन इस अनुरोध की एक पृष्ठभूमि थी। इसके फौरन बाद मुझे एक दूसरा सदेश मिला कि मैं अभी रवाना न होऊँ। इसके बाद मुझे एक लबा खत मिला जिसमे कहा गया था कि फिर से गौर करने के बाद मत्रालय इस नतीजे पर पहुँचा है कि मेरी मौजूदगी मुनासिब नही है। एक पखवाडे के अदर मुझे जल्दी करने और दिल्ली म मौजूद होने के लिए नये सदेश मिले। यह मुझे बाद मे पता चला कि इस अवसर के लिए गठित स्वागत समिति के कुछ सदस्य यह नही चाहते थे कि मैं मौजूद रहूँ। 1969 का काग्रेस का विभाजन हो चुका था और इन लोगो का उद्देश्य यह था कि श्रीमती इदिरा गाधी की छवि को धूमिल करने के लिए बादशाह खा की मौजूदगी और उनके भाषणो का इस्तेमाल किया जाये। वे इसके जरिए अपने लिए ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाना चाहते थे। इसीलिए श्रीमती गाधी को उनकी अनगढ समिति का सदस्य भी नही बनाया गया। वे अदाज लगा रहे थे कि श्रीमती गाधी का सितारा डूब जायेगा। जय प्रकाश नारायण और दिनेशसिंह को बहुत चालाकी से इस अफवाह पर यकीन दिला दिया गया कि बादशाह खाँ मुझसे नाराज है, क्योकि 1947 म मैंने पशावर छोड दिया था। लेकिन प्रधानमत्री के कानो तक यह 'बेवकूफी की कहानी' पहुँची और उन्होने आदेश दिया कि मुझे बुलाया जाये और अगर बादशाह खाँ इसे नापसद करें तो फिर मुझसे वापस जाने के लिए कहने मे कोई मुश्किल नही होगी। खैर, वे सभी गलत साबित हुए और उन्ह अपना थूका चाटना पडा। बादशाह खाँ के चले जान के कुछ दिन बाद जयप्रकाश नारायण ने मजबूर होकर मुझसे कहा, "हमे खेद है हमने तुम्हे गलत समझा।"

बादशाह खा की यात्रा अत्यधिक रोमाचकारी अनुभव साबित हुई। यह भारत के राजनीतिक विकासक्रम की एक महत्वपूर्ण घटना बन गयी। मेरे लिए इसने एक नया परिच्छेद शुरू कर दिया और मुझे लगा कि मैं फिर एक अभूतपूर्व जन आदोलन मे शरीक हो रहा हूँ। बीच के सालो मे मैंने जो राजनयिक जीवन व्यतीत किया था वह इससे बहुत भिन्न था। यह मुझे ज्यादा साथक भी लग रहा था। बादशाह खाँ 22 साल बाद भारत आये थे। दिल्ली हवाई अड्डे पर उनका भव्य स्वागत किया गया था। जब वह विमान से उतरकर अपनी छोटी सी गठरी लेकर चलने लगे जिसम उनके कपडे और उनके पास जो भी था सब रखा हुआ था, तो प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी न कहा कि गठरी मुझे दे दीजिये मैं लेकर चलती हूँ, लेकिन वह राजी नही हुए। उन्होने कहा, "आप एक बहुत भारी बोझ उठाये हुए हैं। मुझे अपन हिस्से का बोझ उठान दीजिये। उन्होंने देश भर मे व्यापक दौरा किया और अपने भाषणो म जाना माना रुख ही अपनाया। इन भाषणो न उनके श्रोताओ पर जादू का ऐसा असर किया और साधारण आदमी के लिए उनकी मौजूदगी ने दवा का ऐसा असर किया कि व उन्ह एक ऐसे युग का सच्चा प्रतिनिधि मानते जो करीब करीब खत्म हो चुका था। वह जहाँ

भी जाते लोगो की भीड उन्हें देखने के लिए उमड पडती और वे मत्रमुग्ध होकर उनका भाषण सुनते। फिजूलखर्च के दिखावे से वह अक्सर चिढ जाते और सार्वजनिक धन के दुरुपयोग के लिए झिडकते। वह उन्हें गाधीजी के सत्य, स्नेह और अहिंसा के सदेश की याद दिलाते, वह खुद इन आदर्शों के प्रतीक थे। शुरू में तो पुरान गाधीवादी उनके इद-गिर्द इकट्ठे हो गये, लेकिन उनकी बातें उन्हें बहुत अप्रिय लगी। उन्होंने भी इन लोगो को बिलकुल ही गैर गाधीवादी तरीके से काम करते देखा और वह स्पष्टत और निडरता से उनकी आलोचना करने मे नही हिचके। स्वाभाविक रूप से इससे अलगाव पदा हुआ। नकली गमजोशी कायम नही रह सकी।

उनके दिल्ली आगमन के दूसरे दिन मैंने दीवारो पर एक पोस्टर लगा देखा जिसमे बादशाह खाँ को भिखारी तरह हाथ फैलाये दिखाया गया था। उसके नीचे लिखा था, "सच्चाई और अहिंसा के जीवित प्रतीक के लिए उदारता से दान दो।' इस बेहूदगी से मैं स्तब्ध रह गया। मैंने जब यह उन्हें दिखाया तो वह भी बेहद नाराज हुए। उन्होंने सालगिरह समिति (80वी जन्मदिवस समिति) के सदस्यो से इसके बारे मे कहा। उन्होंने बहुत से बहाने बनाये। सुशीला नय्यर मुझे कमरे मे घुसते देखकर *आगबबूला हो गयी और चिल्लायी, "तुम निकल जाओ,* हम लोग कुछ महत्वपूर्ण बात पर विचार कर रहे हैं।" मुझे भी गुस्सा आता है, लेकिन बचपन से मुझे इस बात की तालीम दी गयी है कि बडो के सामने अपने पर काबू रखना चाहिए। इसलिए बादशाह खाँ की मौजूदगी म गुस्सा दिखाने का कोई सवाल ही नही पदा होता था। मैं उनकी इतनी इज्जत करता था कि मैंने सुशीला नय्यर को उन्हीं के लहजे मे जवाब नही दिया। उनके आदेश पर कोई ध्यान दिये बिना मैं बाहर चला गया और जब वे लोग चले गये तभी वापस लौटा। बादशाह खा न मुझे गले लगा लिया और बोले, "मैं यह कभी नही समझता था कि तुम्ह अपने ऊपर इतना काबू है। तुम सही मान मे खुदाई खिदमतगार हो।" मुझसे बात करने के बाद उन्होंने खास तौर पर सुशीला, राधाकृष्ण[1] और हरिभाऊ जोशी[2] को झिडकने के लिए वापस बुलाया। दरअसल बादशाह खाँ की पौत्री के अनुसार, जो वहाँ मौजूद थी, उन्होन सख्त लहजे म उनसे कहा, "यूनुस तो गाधी भक्त नही, मगर आप लोग तो चिल्ला चिल्लाकर गाधीजी का नाम लेत हो। आज मैंने आप लोगो का अमल अपनी आँखो से देखा। अगर इसका नाम गाधी भक्ति है तो फिर गुडागर्दी किसको कहते है। आप लोगो को तमीज सीखनी चाहिए और जुबान पर काबू। इसका सबूत आज यूनुस न दिया। वह सफीर है, मगर उसका दिमाग नही फिरा।"

बादशाह खाँ को अभी तथाकथित गाधीवादियो के हाथो ऐसे ही आघात और लगने वाले थे। ये लोग एक अखबार के अपनी पसद के सवाददाता को बादशाह खा की पूरी यात्रा की खबरें देन के लिए तनात करवाने मे कामयाब हो गय, लेकिन उसकी कुछ सच्ची सच्ची खबरो से वे नाराज हो गय। इसलिए उन्होंने पत्रकार का मुह बद करने की कोशिश की लेकिन बेकार, क्योकि उसने खुद अपनी आखो से देखा था कि इन लोगो मे कितना ढोग और पाखड है। उदाहरण के लिए, प्यारेलाल, जो गाधीजी के सचिव रह चुके थे, अपनी नयी फियट कार मे राजेंद्र-

1 गाधी शाति प्रतिष्ठान के सचिव।
2 स्वागत समिति के सचिव।

बाप रे, बुड्ढा तो बहुत नाराज लगता है !"

दिल्ली म दो सप्ताह रहने के बाद बादशाह खा अहमदाबाद गये जहा कुछ महीन पहले साप्रदायिक दगे हुए थे। वह प्रभावित क्षेत्रो म गये, पीडित लोगा से बातचीत की और उपेक्षा करन के लिए मत्रियो और अधिकारियो को दोष दिया। उन्होने नगर की इस दुखद घटना के प्रति सतही रुख अपनाने के लिए तथाकथित रचनात्मक कायकर्ताओ की भी निंदा की। वह साबरमती आश्रम गये और वहा रहन वालो को सबोधित करते हुए उन्होने बहुत दुखी होकर कहा कि जब शहर मे बेचनी हो और भाई भाई को मारने लगे तो उनकी जगह चर्खे के पीछे नही है बल्कि उन्हे मुसीबतजदा लोगो के साथ होना चाहिए। ऐसी हालत म चर्खा फेंक देना चाहिए। उन्होने कहा कि गाधीजी यही करते और उनसे भी ऐसा ही करने के लिए कहते। "चर्खा किसी लक्ष्य को पान का साधन है। वह खुद लक्ष्य नही है। उन्हे नारे का गुलाम नही बन जाना चाहिए।" श्रीमन्नारायण उस समय गुजरात के राज्यपाल थे और उन्होने बादशाह खां को अपने साथ राज भवन म रहने के लिए राजी कर लिया था। अपने विशिष्ट अतिथि को हर मुम-किन आराम पहुँचाने के लिए वह जरूरत से ज्यादा खयाल रख रहे थे, इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि सडक के पार सर्किट हाउस से मासाहारी भोजन मँगाने का इतजाम किया जा सकता है। बादशाह खा ने थोडी देर तक उनकी बात सुनी और बोले, "इस घर मे जो पकेगा, वही मैं खाऊँगा। मैंने अपने मेजबान के खाने मे शरीक होना सीखा है। तुम लोगो की दिक्कत यह है कि तुम लोगो को इसी बात का खयाल नही है। मेरे घर म जो पकेगा, तुम वह नही खाओगे।"

अहमदाबाद म दगा पीडित मुसलमानो के एक शिष्टमडल ने बादशाह खा से अनुरोध किया कि वह यही रहे और उनकी हिफाजत करें। वे उन्हे 'बाबा' कहने लगे थ। वह उनकी बेमानी दलीलो से बुरी तरह चिढ़ गये और इन लोगो को धता बता देने मे उन्हे कोई हिचकिचाहट नही हुई। "आज आप मुझे बाबा कह रहे हैं," उन्होने कहा, "वे लोग कहा हैं जिनका अनुकरण आपने विभाजन से पहले किया था ? मुस्लिम लीग के नेता कहा ह ? उस वक्त तो आप मुझे 'हिंदू का बच्चा' कहते थे।" इस बात का फौरन ही असर पडा। मुसलमानो ने मुसीबतें झेली थी। बादशाह खा की बेलाग दोटूक बात से यह उनकी समझ म आ गया कि मुल्क के विभाजन के समय उनके बल पर और उनके नाम पर कितना गदा खेल खेला गया। बादशाह खा जब अहमदाबाद मे थे तो नागपुर के निकट पावनार आश्रम मे सर्वोदय कायकर्ताओ के सम्मेलन मे भाग लेन के लिए विनोबाजी और जयप्रकाश नारायण के अनुरोध उन्हे बार-बार मिलते रहे, लेकिन उन्होने तय कर लिया था कि जब तक मुमकिन होगा वह अहमदाबाद ही म रुकेंगे। वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि पीडितो को मुआवजा और न्याय मिल जाय। कितने ही लोग जख्मी हुए थे और बहुतो की इज्जत लुट गयी थी या उन्होने अपनी आखो से अपने परिवार को कत्ल होते देखा था। इसलिए वह चाहते थे कि विनोबा और जे० पी० भी उनके साथ वही आ जायें।

उनकी लखनऊ यात्रा के समय स्थानीय नगर महापालिका की ओर से औप-चारिक स्वागत करने के लिए उनका सावजनिक अभिनदन किया गया। मानपत्र क्लिष्ट हिंदी मे लिखा गया था। जब वह उर्दू मे बोलने के लिए खडे हुए तो बादशाह खाँ ने श्रोताओ को मुखातिब करते हुए पूछा आप मेरी बात समझ रहे है ? तत्कालीन मुख्यमंत्री चद्रभानु गुप्त मच पर बठे थे। उन्होने कहा, 'बादशाह

खाँ यह लखनऊ है। आप यहाँ की बोली बोल रहे हैं। हम कैसे न समझें?' बादशाह खाँ को इस तरह से अपनी बात कहने का मौका मिल गया और उन्होंने जोरदार हँसी के बीच कहा, "मगर मैं तो आपके सिपासनामे की जुबान नहीं समझा। पता नहीं आपने उसमें क्या लिखा है?"

जयप्रकाश नारायण बहुत उत्सुक थे कि बादशाह खाँ सेखूदेवरा में उनके आश्रम में आयें, जो पटना से लगभग 150 किलोमीटर दूर है। यह बहुत थका देने वाली यात्रा साबित हुई। आश्रम में ठहरने की, खान-पीने की जो शानदार व्यवस्था थी उसे देखकर पुराने नेता को और ज्यादा गुस्सा आया। निवास के सजे सँवरे रूप ने आग में ईंधन का काम किया। जे० पी० जब उनकी खैरियत मालूम करने के लिए आये तो बादशाह खाँ अपने आपको न रोक पाये और बोले, "इसको तुम आश्रम कहते हो? यह तो एक डाक बँगला है। मेज, कुरसी, पलंग और कालीन बैठने के लिए बिस्कुट, केक और हर किस्म का खाना खाने को। इतने लोग काम करने को। और क्या चाहिए?' जे० पी० बगलें झाँकने लगे। बाद में उन्होंने माफी का एक लंबा खत लिखा जो बादशाह खाँ ने मेरे पास भेज दिया।

बंगाल के तत्कालीन उप मुख्यमंत्री और मार्क्सवादी नेता ज्योति बसु कलकत्ते में बादशाह खाँ से मिलने आये। बादशाह खाँ ने उनसे पूछा कि ये सारी पार्टियाँ—कांग्रेस, कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट—आखिर दो टुकड़ों में क्यों बँट गयी? ज्योति बसु ने बड़े आडंबरपूर्ण ढंग से घटनाक्रम के बारे में बताया और यह कहकर अपनी बात खत्म की कि कम्युनिस्ट पार्टी में फूट एक अंतर्राष्ट्रीय घटना है।" बादशाह खाँ ने फ़ौरन ही पूछा "क्या सोवियत संघ और चीन में दो-दो कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं? आप अपनी हैसियत खुद क़ायम क्यों नहीं करते, दूसरों को पीछे क्यों चलते हैं? ज्योति बसु जब कमरे से निकले तो उन्होंने बाहर इंतजार करते हुए एक दोस्त से कहा, बूढ़ा बहुत तेज है।'

मुझे शुरू में कुछ दिन के लिए बादशाह खाँ के साथ ठहरने के लिए बुलाया गया था, लेकिन जब मेरा प्रवास बढ़ता गया तो मुझे यह खयाल आया कि मैंने ऐसे वक्त में एल्जियर्स छोड़ा है जब मोरोक्को में होने वाले इस्लामी शिखर सम्मेलन में भारतीय शिष्टमंडल का बहुत बेइज्जती का सामना करना पड़ा था। इसके नतीजे में वहाँ के राजदूत को दिल्ली वापस बुलाया गया। मैंने इसलिए प्रधानमंत्री से कहा कि अल्जीरिया ने रबात में हमारा समर्थन किया था। हो सकता है कि वे मेरी लंबी गैर मौजूदगी को अपना अनादर मानें और इसे गलत समझें। वह सहमत हो गयी कि मैं वापस चला जाऊँ और फिर अगर बादशाह खाँ की इच्छा हो मुझे बुलाने के लिए फिर संदेश भेज दिया जायगा। बादशाह खाँ को पहले तो मेरा जाना ही पसंद नहीं आया और मेरे बाद जो लोग उनके कार्यक्रम की व्यवस्था करते थे उनसे वह जल्दी ही ऊब गये। इसलिए उन्होंने श्रीमती इंदिरा गांधी को एक तार भेजा कि मुझे वापस बुलाया जाय। मैं तीन हफ्ते की गैर-मौजूदगी के बाद वापस लौट आया और जहाँ से मैंने अपना काम छोड़ा था, वहीं से फिर शुरू कर दिया।

बादशाह खाँ की यात्रा जब खत्म होने लगी तो मोरारजी देसाई गांधी शांति प्रतिष्ठान में उनसे मिलने आये। उन्होंने शिकायत की कि बादशाह खाँ के भाषणों से श्रीमती इंदिरा गांधी को मदद मिली है। बादशाह खाँ ने जवाब दिया लेकिन मैंने तो कभी उनका नाम नहीं लिया।" मोरारजी देसाई ने फिर कहा, "मैं उनके प्रभाव के बारे में आपको बता रहा हूँ।" बादशाह खाँ को भी जिद आ गयी और

उन्होंने कहा, "मैंने जनता को यह बताया है कि तुम सब गाधीजी के बताये रास्ते से हट गये हो। अगर वे इदिरा गाधी के बारे मे यह बात मजूर नही करते तो मैं क्या कर सकता हूँ? बेहतर हो कि आप जाकर जनता को यकीन दिलायें कि श्रीमती गाधी भी गाधी के रास्त से हट गयी हैं।" बादशाह खाँ के काबुल वापस जाने का जब वक्त आया तो गाधी शाति प्रतिष्ठान के राधाकृष्ण को मालूम हुआ *कि सरकार न विशिष्ट अतिथि को यह इजाजत दे दी है कि जो धन उनके लिए* एकत्रित किया गया है उसे वे अपन साथ ले जायें। शुरू मे 80 लाख रुपये जमा करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, लेकिन सिफ 30 लाख रुपये इकट्ठा हुए। आयोजको ने इस रकम को खच करन के लिए बहुत सारे मसूबे बना लिये थे। उन्होन सोचा था कि जो धन इकट्ठा किया गया है वह उनके लिय छोड दिया जायेगा कि इसे वे जिस तरह चाहे इस्तेमाल करें। राधाकृष्ण ने मुझसे बडी मासूमियत से पूछा, "बाबा रुपये का क्या करेंगे?" मैंने जवाब दिया, "जो आप करना चाहते हैं। उनको भी पसा नही काटेगा।"

बादशाह खाँ का विचार था कि चूकि स्वच्छिक चदे से यह धन खुले आम जमा किया गया है, इसलिए वह पाकिस्तान मे अधिकारियो को इसकी सूचना दे देंगे और लडको व लडकियो के लिए एक एक स्कूल खोलने के लिए यह रकम इस्तेमाल करेंगे। उन्होने एक स्कूल का नाम गाधीजी के नाम पर और दूसरे का जवाहरलाल नहरू के नाम पर रखने की सोची थी लेकिन अगस्त 1978 म जाकर वह इस ट्रस्ट के गठन का एलान कर पाये। उन्हाने अपने पूवजो की सारी जायदाद बेचकर उसका धन भी इस ट्रस्ट को दे दिया। वह पठानो की भलाई के लिए इसका इस्तेमाल करने की बात सोच रहे हैं।

भारत म पाच महीने व्यतीत करने के बाद वह दिल्ली से रवाना हुए। फ़रवरी 1970 मे काबुल के लिए रवाना होने के वक्त, जयप्रकाश नारायण और कई दूसरे गाधीवादी, जिन्होने उनकी भक्ति का इतना नाटक रचा था, उन्ह विदा करन भी नही आये। वे कडवी सच्चाई को हज़म नही कर पाये और चुपचाप खिसक गय। बादशाह खाँ को, जाहिर है, इससे बहुत मायूसी हुई। इसके विपरीत श्रीमती इदिरा गाधी, उनके मन्त्रिमडलीय सहयोगी व दूसरे लोगो की भारी भीड "गाधीजी के एकमात्र सच्चे उत्तराधिकारी' को विदा करन के लिए आये। मैं उन्ह काबुल तक पहुँचाने गया जहा वह निर्वासन का जीवन व्यतीत कर रहे थे। वहाँ भी उनका बडा स्नेहपूण स्वागत किया गया।

आठ साल की अनुपस्थिति के बाद वह 24 दिसबर, 1972 को पाकिस्तान लौटे। वह अपनी जनता और उसके हितो की सेवा के लिए उत्सुक थे, लेकिन जो लोग सत्ता मे थे उन्हे यह विचार पसद नही आया। इसलिए उन्ह बार-बार नजरबद किया गया और जब वह जेल म नही होते थे तब भी उनकी गतिविधिया पर तरह तरह की पाबदिया लगायी जाती थी। आखिरकार वह पाकिस्तान के शासको को यह बताने के लिए मजबूर हो गये कि वे या तो उन्ह बेकस लोगो की सेवा करने दें या उन्हे एक बार फिर स्व निर्वासन की इजाजत दें। मचा 1978 मे वह अफगानिस्तान वापस चले गय और तब से जलालाबाद ही मे रह रहे है। हाल ही म उनकी सेहत मे और ज्यादा गिरावट आयी है लेकिन फिर भी उन्हे यहा उपलब्ध इलाज की सुविधाओ का लाभ उठाने के लिए भारत आने की इजाजत नही दी गयी। हालाँकि पिछले 32 सालो से उनका जेल जाने आने का सिलसिला जारी है फिर भी किसी के आगे सिर न झुकाने वाला यह पठान कडी

मेहनत कर रहा है और समर्पित जीवन व्यतीत कर रहा है। वह थोडा सा पढ़ते हैं, अपनी जीवनी लिख रहे हु और विगत और वतमान म अपने रुख और कारवाइयो का जायजा ले रहे है।

भारत की इस व्यस्त और अविस्मरणीय यात्रा न मेरे अदर नयी आकाक्षा जागृत कर दी, शायद इसने राजनीति और सघर्षों म मरी शिरकत की याद ताजा कर दी। इसने निश्चित रूप स मरे लिए काम करने के नये क्षितिज खोल दिये। जब मेरे करोडा देशवासी अपने लिए एक जून खाना भी न जुटा पाते हो, उस हालत म मुझे अपनी सुख सुविधा के साधना पर शम आने लगी। मैंन इन मसलो पर गौर किया और इस नतीजे पर पहुँचा कि मुझे कोई दूसरा काम करना चाहिए। मैं इस हालत का पहुँच गया कि मैंने इसक बारे मे प्रधानमत्री को लिखा और इस्तीफा देन के लिए उनकी स्वीकृति मागी। लेकिन वह बहुत होशियार हैं और उन्होन मुझे पहले एल्जियस म अपना काम खत्म करने की सलाह दी। तब मैंन अल्जीरिया मे अपनी राजनयिक क्षमता की परीक्षा करने की ठानी और मैंने उन सबसे मिलना शुरू किया जिन्होन अल्जीरिया को, आज वह जो कुछ है बनाया— जो लोग सत्ता म थे, जो छिपकर जिदगी बसर कर रहे थे या जो लोग खामोश हो गये थे। हर एक की अपनी कहानी है। क्राति के सपूतो के साथ यही सुलूक होता है। क्राति के नायक अक्सर उन्ह निगल जाते है। इस मामले मे भी कोई दूसरी बात होना मुश्किल था फिर भी प्रशासक बन जाने वाले अल्जीरियाई क्राति कारियो से मिलना खुशी की बात थी। उन्ह तीसरे विश्व की समस्याओ म समान दिलचस्पी और समान चिंता थी। राजनीतिक तौर पर उन्ह यकीन था कि तीसरे विश्व से उन्हे विकास के अवसर मिलेंगे और वे भारत के रुख के साथ सहयोग करन के लिए उत्सुक थे। उनकी उपयोगवादी प्रवृत्ति को देखकर कभी कभी अचभा होता था। उन्होने जमनी के सघीय गणतत्र (पश्चिमी जमनी) को मान्यता देन से इकार कर दिया, लेकिन औद्योगिक समुच्चय की स्थापना के उनके प्रस्ताव को स्वीकार करने मे उन्ह हिचकिचाहट नही हुई। उन्होने 1967 के युद्ध के बाद अमरीका से राजनायिक सबध तोड लिये थ, लेकिन उन्होन अपनी नवनिर्मित तरल गस की बिक्री के लिए अमरीका से एक अरब डालर का सौदा कर लिया। उनका वामपथी रुझान उन्ह इरान के शाह या उनके अपन शब्दो म "ब्राजील के अत्यधिक घोर प्रतिक्रियावादी शासन" से सौहार्दपूर्ण सबध कायम करने से नही रोक पाया।

जिस पैमाने पर वे अपनी प्रायोजनाएँ बनाते थे उसे देखकर ताज्जुब होता था। वहाँ के भूतपूर्व नौजवान विदेशमत्री बूतफलिका ने जब भारत के साथ वाणिज्य सबध शुरू करन के लिए अपन ख्याल मरे सामने रखे तो मेरी ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की सास नीचे रह गयी। हमार दोनो देशो क बीच व्यापार की सभावनाओ को बढान के लिए उन्होन एक साहसी सुझाव रखा। "हमारे पास ओरन के निकट एक आधुनिक बदरगाह बेकार पडा है। यह जिब्राल्टर स बहुत दूर नही है। हम आपको इजाजत द सकते है कि आप अपना माल बेचने के लिए इसका इस्तेमाल करें बशर्ते कि आप एक स्वतत्र बदरगाह के रूप मे इसका विकास

मे बदरगाह होने से ऐसी दुश्वारियो को दूर करने मे मदद मिलेगी। यह एक भडार घर के रूप म काम करगा जिसके बल पर हम किसी भी माग को तेजी से पूरा कर सकेंगे। ऐसा इतजाम हमारी साख को बढ़ा सकता है, क्योकि खरीददारो को यह भरोसा हो सकेगा कि किसी भी माग को तेजी से पूरा करन की हममे क्षमता है। दिल्ली से जो जवाब आया वह अदूरदर्शितापूण था। इस सिलसिले म लगातार खतोकितावत होती रही जिसका नतीजा कुछ नही निकला और मैं अफसरशाही मे कौमी नजरिए, दूरअदेशी और सूझबूझ के अभाव पर मायूसी से तिलमिलाकर रह गया।

अल्जीरिया के नेताओ ने ही सबसे पहले प्रथम अखिल अफ्रीकी सास्कृतिक समारोह करन की सोची। यह समारोह एल्जियस मे 1969 मे हुआ था। यह याद रखन वाली घटना थी। इसमे मिस्र गिनी, केन्या, लीबिया, मोरोक्को, सनेगल, सूडान और ट्यूनीशिया के चार हजार स अधिक कलाकारा और सगीतनो ने हिस्सा लिया। अपनी अश्वेत विरासत को प्रमुखता देन के लिए अल्जीरियाई नताओ ने अपने अफ्रीकी व्यक्तित्व पर जोर देने का फैसला किया। इसलिए वे इस सम्मेलन मे भाग लेने के लिए सहारा से कलाकार और सगीतन लाये। बडे सिनेमाघरो को इस काम के लिए विशेष रूप से सजाया गया था। खुले रगमच का निमाण किया गया था और मुख्य सडकें अतहीन नाटकगृहा मे बदल गयी थी। दस दिन तक एल्जियसवासी ढोला और तुरही की आवाज पर जागते और नोते थे। रात भर भीड नाचती गाती और तालियाँ बजाती रहती। यह एक अनाखा समारोह था। इसका उद्देश्य यह था कि अफ्रीका की बुनियादी एकता व शक्ति उभरकर सामने आये और अफ्रीका अपनी नयी हैसियत पर गव अनुभव करे। अल्जीरियाई नेताआ को अपने उद्देश्य मे सफलता मिली और हर एक ने उन्हे ऐसा शानदार आयोजन करन के लिए मुबारकबाद दी। कभी-कभी एशियाई देश इतना भव्य समारोह करने की बात सोच सकते हैं। बदकिस्मती से हर दश को सस्कृति और कला के क्षेत्र म अपने योगदान पर इतना घमड है कि वे शायद ही सपूण एशियाई व्यक्तित्व को निखारन और उभारन के लिए तैयार हो।

जनवरी 1970 मे अफ्रीका का दौरा करने वाला एक यूगोस्लाव शिष्टमडल एल्जियस पहुँचा। इसके नता वार्तो उवालिक दिल्ली म उनके राजदूत रह चुके थे। उन्हान बताया कि जाम्बिया मे तीसरा गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन करने की तैयारिया हो रही है। यूगोस्लाविया से कहा गया कि इस अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन को सफल बनान के लिए वह लुसाका म सम्मेलन हॉल का निमाण करे प्रतिनिधिया के ठहरने का इतजाम करे और बिजली की माकूल व्यवस्था करे। चूकि अल्जीरियना ने 1965 म दूसरा बादुग सम्मलन करने क लिए चीनियो के सहयोग से ऐसे ही समुच्चय का निर्माण किया था और क्लब दे पेन मे सिर्फ इसी मकसद के लिए एक उपनगरी बसा ली थी इसलिए उन्हे स्वाभाविक रूप से यह जानन का कौतूहल था कि डॉक्टर केन्नेथ कौंडा के नेतृत्व म जाम्बिया क्या करता है। उस वक्त मुझे यह नही मालूम था कि मैं अपनी आखा से यह काम देखूगा, लेकिन दिल्ली से मुझे एक तार मिला कि मुझे भी भारतीय शिष्टमडल म शामिल कर लिया गया है और कुछ इतजाम की निगरानी करन के लिए मुझे कुछ दिन पहले ही लुसाका पहुँच जाना चाहिए।

लुसाका एक खूबसूरत शहर है। उसकी आबोहवा बेहद खुशगवार है। शहर

के नये विस्तृत इलाके का विकास शिखर सम्मेलन करने के लिए बहुत शानदार ढँग से किया गया था। प्रत्येक शासनाध्यक्ष के लिए एक बँगला दिया गया था। बाकी प्रतिष्ठित अतिथि शहर के दो आलीशान छात्रावासो मे ठहराये गये थे, जहाँ हर तरह की सुख सुविधा का सामान मौजूद था। विश्वविद्यालय बद था और उसके अनेक छात्रावासो म विदेशी सवाददाताओ का बडा दल और दूसरे गैर सरकारी शिष्टमडल ठहराये गये थे। छात्रो को खाना परोसने और खातिरदारी करने का सक्षिप्त प्रशिक्षण दिया गया था और आकर्षक कोठिया म ठहरे हुए शासनाध्यक्षो की देखभाल करने के लिए छात्रो को छह छह की टोलियो म बाँट दिया गया था। इन युवको को कर्मठता और लगन से अपने काम को करते देखकर बेहद खुशी होती थी। मैं अकसर सोचता कि क्या भारत मे भी ऐसा प्रयोग किया जा सकता है?

सम्मेलन बहुत सफल रहा। डॉक्टर कौंडा ने हद से बाहर जाकर शानदार तयारी और बेहतरीन मेजबानी की। उन्होंने श्रीमती इदिरा गाधी का खासतौर पर खयाल रखा। उन्हे बराबर जवाहरलाल नहरू की याद आ रही थी। श्रीमती गाधी ने बहुत ही खूबी और आकर्षक ढँग से अपनी भूमिका अदा की। विचार विमर्श के दौरान उन्होंने बहुत ही अच्छे भाषण दिये। उन्होंने सभी प्रमुख प्रतिनिधियो को आत्मीयतापूर्ण छोटे रात्रि भोज या दोपहर के भोजन पर आमन्त्रित करके उनका सत्कार किया। इससे अनौपचारिक स्तर पर सदभाव बढाने मे मदद मिली। वह इस बात के लिए उत्सुक थी कि सम्मेलन आर्थिक क्षेत्र मे ठोस माग का निर्माण करे। जनरल सुहार्तो, जिन्होने पहली बार इडोनेशिया का प्रतिनिधित्व किया था, यह साबित करना चाहते थे कि भारत इडोनेशिया मैत्री कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित नही है, बल्कि यह "दोनो देशो के बहुत हितो मे है।' इस काम म उनके विदेश मन्त्री आदम मलिक ने बडी योग्यता से उनकी मदद की। भारत के प्रधानमन्त्री के साथ पहली मुलाकात के सफल परिणाम से उन दोनो को खुशी हुई।

श्रीमती गाधी जब मार्शल टीटो से विदा लेने गयी तो मैं वह दृश्य भुला नही सकता। श्रीमती गाधी सबेरे विदा ले चुकी थी, लेकिन बाद मे जब वह हवाई अड्ड जाने के लिए कार मे बैठी तो उन्होंने अचानक कहा, "आइये चलिये, उन बुजुर्ग मे मिल लें।" टीटो इससे भाव विभोर हो गये। उन पर इसका बहुत गहरा असर पडा। 'प्रधानमन्त्री नही बल्कि मेरे मित्र जवाहरलाल नहरू की पुत्री, धन्यवाद और मेरा आशीर्वाद।" श्रीमती जोवानिका टीटो न श्रीमती गाधी को जब स्नेह पूर्ण ढँग स गले लगाया तो उनकी आखो म हर्ष के आँसू उमड आये।

कटागा काड के मोइस शाबे विमान द्वारा अपहृत करके 1967 म एल्जियर्स लाये गये थ। यह मेरे वहाँ पहुँचने के समय की ही घटना है। कोई भी देश जीवित शावे को अपन यहाँ नही चाहता था। इसलिए स्थानीय अधिकारियो को 1969 मे उनकी मौत के समय तक उन्ह अपनी हिरासत म रखना पडा लेकिन अल्जीरियाई उनका पूरा खयाल रखत थे और शावे को टेनिस खेलने कार पर घूमने और रेस्तराँ म भी जाने की इजाजत थी। ऐसे मौको पर वह सिर्फ यह सतर्कता बरतते कि दाढ़ी या मूछ लगाकर उनका भेष बदल देते थे। कोई उनकी तरफ दोबारा नजर उठाकर भी नहा देखता था। सारे मामले का इतने अच्छे ढँग स गुप्त रखा गया कि हालाँकि मेरे बँगले के निकट के एक बँगले म शावे को रखा गया था लेकिन बात जरा भी नहीं फली। यह अफवाह जरूर उडी थी कि वन

बेल्ला वहा पर कैद हैं, लेकिन शोवे के नाम का जिक्र तक नही आया। यह नियति का व्यग्य था कि ज़ैरे के, जिसे तब कागो कहा जाता था, राष्ट्रीय दिवस पर शोवे की मौत हुई।

अल्जीरिया के आजाद होने के समय से शीर्षस्थ स्तर पर भारत अल्जीरिया सबधो म उत्पन्न तनाव को दूर करने के वास्ते मेरी काशिशो के परिणामस्वरूप सरदार स्वर्णसिह प्रतिरक्षा-मत्री के रूप मे 1970 म एल्जियर्स आये। इसकी बहुत अनुकूल प्रतिक्रिया हुई और राष्ट्रपति व कई अ य मत्रियो से उनकी बहुत सौहार्दपूण वातचीत हुई। उन्होंने अल्जीरिया मे कुछ जगहो का दौरा किया और वह जहा भी गये वहा उनका स्नहपूर्ण स्वागत किया गया। उस समय एल्जियर्स अफ्रीका के कई स्वाधीनता सग्रामो, फिलिस्तीन मुक्ति सगठन और अमरीकी अश्वेत शक्ति का केद्र बना हुआ था। यह उनके कई नताओ का शरण स्थल भी बन गया था, इसलिए उनकी नजरो म स्वर्णसिह की यात्रा का महत्व और बढ़ गया। इसे उन्होंने अल्जीरिया का और अधिक ठोस तरीक से साथ दने के हमारे निश्चय का सबूत माना। इस यकीन का दूर करन की मेरी कोई इच्छा नही थी। कुछ राजनयिक, विशेषकर ब्रिटिश राजदूत चार्ल्स मार्टिन ला क्वेंज़े यह जानना चाहत थे कि क्या अल्जीरिया हमारे साथ फौजी सधि करने की दिशा म आगे बढ रहा है? मैन मजाक म जवाब दिया, 'जरूर यही आपको हमारे मसला मे दखलअदाजी करने से रोकेगा।' कुछ अरब राजदूता न 'मत्री की इस व्यावहारिक अभिव्यक्ति पर' सतोष व्यक्त किया।

अल्जीरियाई नेता कुछ महत्वपूण क्षेत्रा म ठोस सबध कायम करन क लिए उत्सुक थे, लेकिन हमारी अपनी सीमाएँ थी। इसके मायन यह थे कि उस मोर्चे पर बिलकुल तरक्की नही हुई, लेकिन उस जमाने म बनाये गये सपर्को से कुछ गलत फहमिया दूर करन मे मदद मिली। राष्ट्रपति न भारत आन का वादा किया और श्रीमती इदिरा गाधी के लिए अपना आमत्रण दोहराया। उन्होन सरदार स्वर्णसिह से कहा, 'मेहरबानी करक उनसे कहिये कि यहा आयें। हम उन्ह यह दिखान के लिए बहुत उत्सुक हैं कि हम क्या हासिल करन की कोशिश कर रहे हैं।"

स्वाभाविक रूप से मैं अधिकाश समय सरदार स्वर्णसिह के साथ रहा। मैं उन्ह 1947 से अच्छी तरह जानता था। मुझे भारतीय राजनीतिक स्थिति क बारे म उनसे बातचीत करन का मौका मिला। मुझे याद है कि उन्होंने उस यात्रा के दौरान मुझस क्या कहा था और श्रीमती गाधी ने जब सत्ता खो दी थी तो उनस अलग होने पर उन्होंने किस तरीके का व्यवहार किया था। सरदार स्वर्णसिह ने बहुत भावुक होकर कहा था, "पडितजी मेरे ऊपर बहुत दयालु थे। उन्होंने मुझे इतना दे दिया था कि मैं आराम स सतुष्ट जीवन व्यतीत करूँ। अगर इदिराजी ने मेरे लिए कुछ भी और न किया होता तब भी मैं उनके साथ रहता। लेकिन वह भी बहुत उदार हृदय हैं। उनके मातहत मुझे पहले के मुकाबले कही अधिक महत्वपूण विभाग दिय गय। मैं इसे कभी कस भूल सकता हूँ?' वह भूल गय। और मार्च 1977 के बाद बहुत आसानी से भूले। जब वह सत्ता म थी तब उनक साथ इतने साल काम करन के बाद उनक चुनाव हारन पर एकदम स उनका साथ छोड दना यह जाहिर करता है कि उनकी कृतज्ञता और निष्ठा मुफस्सिल के वकील की ज़ेहनियत से ऊपर नही उठ सकी जो सिर्फ यह देखता है कि कहाँ कम स-कम जोखिम मे ज्यादा-से-ज्यादा फायदा उठाया जा सकता है।

शायद मेरी मागो को आशिक रूप से मजूर कर लेने का श्रीमती गाधी का यही तरीका था। इसस मेरी स्वदेश वापसी म एक ऐसी दिशा जुड गयी जिसकी मुझे कोई उम्मीद नही थी। लेकिन जब मैंने अपना पद सँभाला तो इसमे पुराना सिलसिला भी जारी रहा। मुझसे भारत और विकासशील देशो के बीच व्यापारिक ढाचे को नयी दिशा देने और उसमे नवस्फूर्ति लाने के लिए कहा गया। इसका मतलब यह भी था कि मेरी कारवाई का क्षेत्र अब भी अतर्राष्ट्रीय ही था। इस पद पर नियुक्ति से मैंने अपन शुष्क और औपचारिक राजनय से विदा ले ली, लेकिन यह मेरी जिंदगी और पेश म एक दूसरा मोड बना। यह घरेलू मोर्चे पर समस्याओ को सुलझाने की चुनौती बना एक मायन मे यह ज्यादा अथपूण था और व्यापार के रूप मे इससे राष्ट्रीय हितो को आग बढाने के अवसर मिले।

दिल्ली मे

(1971-1977)

भारत सरकार के सचिव-पद पर मरी नियुक्ति आजादी के वाद पहला अवसर था जब भारतीय विदेश सेवा का कोई अधिकारी किसी दूसरे मत्रालय म नियुक्त किया गया था। इस व्यवस्था से भारतीय प्रशासकीय सेवा के सदस्यो को नाराजगी हुई। उन्होन इसे अपने अधिकारो मे दखलअदाजी माना। पिछले कुछ वर्षो म कनिष्ठ आइ० एफ० एस० अधिकारियो को वाणिज्य और वित्त मत्रालयो म नियुक्त करने का रिवाज सा बन गया था। लेकिन उनका कहना था खुदा के वास्ते सचिव तो नही नियुक्त होना चाहिए।" इसमे कोई शक नही कि जब कोई वाहरी व्यक्ति उनके पद अथवा वरिष्ठता का हनन करके उस पर कब्जा कर लेता है तो दूसरी सवाओ के सदस्यो की भी एसी ही तीव्र भावना होती है। इससे वह देश म कमचारियो व अधिकारियो की आम आवश्यकता का पता लगान स वचित हो जाते हैं। खर, जो भी हो, जनवरी 1971 म जब मैं एल्जियस स वापस लौटा तो मरा तबादला वाणिज्य मत्रालय म कर दिया गया। यह फसला प्रधानमत्री न किया था। वह महसूस करती थी कि व्यापार और वाणिज्य तकनीकी विषय नही रह गय हैं। इसके लिए राजनीतिक सूझबूझ और स्फूर्ति के पुट की भी आवश्यकता है। हमारे औद्योगिक व वाणिज्यिक उद्यमो मे, एशियाई और अफ्रीकी देशो के साथ, विशेषकर पडोसियो क साथ, हमारे सबधो म खामियाँ इतनी उभरकर सामन आ गयी थी कि उनकी उपक्षा नही की जा सकती थी। जिस पिस पिट ढंग स इन समस्याओ स निपटा जाता था वह उचित नही था। उसम बहुत कुछ सुधार जरूरी था। इसलिए श्रीमती गाधी चाहती थी कि और अधिक सकारा त्मक तरीके स वाणिज्य विनिमय का काम सँभाला जाय। इस काम को और अधिक जोरदार तरीके स करन की जरूरत थी। मुझ विकासशील देशो के साथ व्यापार कई गुना बढान का काम सौंपा गया। नवबर 1972 म ई० सी० सी० ए० पी० क तत्वावधान म तीसर एशियाई व्यापारिक मल की सफलता को भी सुनिश्चित करना था।

यह एक नाजुक काम था। विभिन्न निहित स्वार्थों और राजनीतिक आग्रहो स झगडे की सभावना इस काम को बरबाद कर सकती थी। मत्रालय पहल

एल० एन० मिश्र के पास और फिर डी० पी० चट्टोपाध्याय के पास रहा। मेरी दोनो से अच्छी तरह पट गयी और उनकी तारीफ करनी चाहिए कि उन्होने कभी मेरे रोजमर्रा के काम मे दखल नही दिया। उन्होन कभी मुझसे ऐसा काम करने के लिए नही कहा जिसे किसी भी तरीक से अनियमित कहा जा सके। यह बात जाहिर है कि अगर किसी सरकारी अफ़सर को अपना कामकाल बढाने या कोई दूसरा मामूली फायदा उठाने के लिए गिडगिडाने मे दिलचस्पी नही है तो उसे मन्त्री के इशारे पर *अनियमितताएँ करने की जरूरत भी नही है। काम के लिए* प्रतिबद्धता होनी चाहिए, न कि उस व्यक्ति के लिए जो कुछ समय के लिए आका बना हो। सबध लालच पर नही, भरोसे पर आधारित होने चाहिए। दानो पक्षो को नियमो का पालन करना चाहिए और पूरी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए। तिकडम करने के लिए राजनीतिक आका को दोष देने से कोई फायदा नही है। अधिकारी खुद अकसर रवया बिगाड देते हैं और राजनीतिक आका जल्दी ही मामले को भाँपकर अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए उनका इस्तेमाल करत है। लेकिन वाणिज्य मन्त्रालय मे सचिव की हैसियत से मैं कई अधिकारियो के साथ अपने सबधो के सिलसिले म खुशकिस्मत था। जिन बातो पर जब ज़ोर दिया जाने वाला था, उसे उन्हान सराहा। नये क्षेत्र म काम करना एक आनद बन गया।

पद सँभालने के कुछ ही दिन बाद वाणिज्य के क्षेत्र मे मेरे काम म एक बिलकुल अप्रत्याशित आयाम जुड गया। इसने मुझे राजनय की गोद म वापस लौटा दिया। कुछ हद तक तो इसकी वजह राजनयिक की हैसियत स मरा विगत था, लेकिन साथ ही इसकी वजह मेरा राजनीतिक आधार भी था। विदेश सवा म जो लोग मरे करीब थे, जिनम दूसरे देशो के राजनयिक भी शामिल थे, इस बात को जानते थे। उदाहरण के लिए, जून 1971 के शुरू मे मै एक व्यापारिक व्यवस्था पर हस्ताक्षर करने सूडान गया। एक सूडानी राजदूत, जो एल्जियस म राजदूत के पद पर काम कर चुके थे, खारतूम आये हुए थे। वह उन लोगो मे स एक थे जो मेरी पृष्ठभूमि को जानते थे और उन्हान मरे पूववत्त के बारे म बात फला दी। जो लोग सेवा म है व जानते है कि दूसरी जगहो की तरह राजनयिक क्षेत्रा मे भी इस बात का खयाल रखा जाता है। दुनिया के दूसरे देशो की तरह सूडान के नेता भी तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर होने वाले सकट की सच्चाई जानना चाहते थे। उनका खयाल था कि मेरे पास और ज्यादा विस्तृत सूचना हागी। इससे बातचीत *का ऐसा दौर शुरू हुआ जिसका वाणिज्य स कोई* सबध नही था। मैं विदेशी मसला के स्थानीय सचिव, कई मन्त्रियो व अन्य उच्च नताओ से मिला।

मैंने उन्हे विस्तार से घटनाक्रम बताया। मैंने उन्हे बताया कि पाकिस्तान के दोना पक्षो के बीच ईर्ष्या और सदेह बढ रहा था। आम चुनावो म निर्णायक विजय के बाद सत्ता पाने के प्रजातान्त्रिक अधिकार से बगाली वचित कर दिय गय थे *और पाकिस्तान म सत्तारूढ लोगो ने भयानक दमन का सहारा लिया था। यह* प्रजातान्त्रिक तरीकों का खुला उल्लघन था। बगालियो ने अभी तक पश्चिमी पाकिस्तान के प्रत्यक शासनाध्यक्ष को तस्लीम किया है, लेकिन जब इसकी बारी *आयी कि उनकी तरफ़ का कोई आदमी सत्तारूढ हो तो उन्हे* इसका अधिकार नही दिया गया। उनके प्रिय 'बगबधु' मुजीबुरहमान न पाकिस्तान के आम चुनावा म विजय हासिल की थी। इसे कोई भी व्यक्ति नकार नही सकता था। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान, *जिसका देश के शासक वग पर नियन्त्रण था,* प्रधानमन्त्री

बनने की एक बगाली की कोशिश को नाकाम बनाने पर तुला हुआ था। परिणाम एक भीषण विभीषिका के रूप म सामने आया। 30 लाख व्यक्ति मारे गये और एक करोड व्यक्तियो को वहाँ से खदेड दिया गया, जिन्हे भारत म पनाह लेनी पडी।

मेरी इस बात न सूडानी नेताओ को कायल कर दिया कि इतनी समानता होने के बावजूद अरब शातिपूण ढँग से एक राष्ट्र बनकर रहने का फैसला नही कर सके। फिर भी सभी देशो से ज्यादा अरबो को पाकिस्तान मे एक अस्वाभाविक कडी टूटने पर ताज्जुब हो रहा था। पाकिस्तानियो और बगालियो म कोई समानता नही थी, न तो भाषा की और न सस्कृति की, न रीति रिवाजो या उनकी सीमा की। पाकिस्तान के दोनो हिस्से दो हजार किलोमीटर दूर थे और बीच म भारतीय प्रदेश स्थित था। बाद मे मैने कई अरब राजधानियो म इसी तक का हवाला दिया।

सूडान शुरुआत थी। खारतूम म हमारे राजदूत ने विदेश मत्रालय को तार भेजकर हमारी मुलाकातो के बारे म बताया। मुझे मालूम हुआ कि उन्होने इस बात पर भी जोर दिया था कि मैंने भारत और बागलादेश के दृष्टिकोण को जिस प्रभावशाली ढँग से पेश किया था, उसस सूडानी बहुत प्रभावित थे। उनके अनुसार सूडानी नेताओ म इस सकट के बारे मे नयी चेतना आयी है और व इसम हमारी जिम्मेदारी को समझते है। इसस उत्साहित होकर तत्कालीन विदेश सचिव टी० एन० कौल न सुझाव दिया कि मैं एशिया, अफ्रीका और लटिन अमरीका के देशो म जाऊँ और उपमहाद्वीप के मसलो और हालात के बारे मे सही तसवीर पेश करूँ। व्यापारिक मसलो के सिलसिले म इन देशो की यात्रा करनी ही थी। हम उनमे से कई को दिल्ली म नवबर 1972 म होने वाले मेले म शामिल होने के लिए राजी करना ही था। लेकिन राजनीतिक रग ने मेरे काम का क्षेत्र और उसका महत्व बढा दिया। हमारे राजदूतो से कहा गया कि वे शीर्षस्थ स्तर पर मुलाकातो की व्यवस्था करे। कुछ देशो के शासन प्रधानो के लिए मैं प्रधानमत्री के व्यक्तिगत पत्र भी ले गया।

उस साल जिन 43 देशो की मैने यात्रा की और वहाँ जो बातचीत की उसकी याद से अब भी मुझे गहरा सतोष और आनददायक रोमाच होता है। हर मामले म मैंने देखा कि मैं जितना ही ज्यादा मुहफट होता, मेरे मेजबानो पर उतना ही ज्यादा असर होता। तमाम और मुश्किलो के बावजूद हम घबराहट जाहिर करने वाले नही थे। ब्राजील म विदेश मत्री ने बगाल की खाडी म सातवें अमरीकी जहाजी बेडे की मौजूदगी की चर्चा की और यह जानना चाहा कि क्या हमने इसके परिणामो के बारे में सोचा समझा है? मैं यह कहने से अपने को नही रोक सका कि बहतर हो कि वह हमारी जल सीमा से दूर ही रहे, लेकिन अगर वह आगे बढता है तो हम उस समुद्र-तल म पहुँचा देने को मजबूर हो जायेंगे। मैने अपने मन म सोचा कि यह काम हम कैसे पूरा कर सकेंगे यह तो खुदा और उसके बदे ही जानते हैं। कैनबेरा म 9 अगस्त, 1971 को एक सवाददाता सम्मेलन म एक अमरीकी पत्रकार ने मुझसे भारत सोवियत समझौते पर हस्ताक्षर की आवश्यकता और उसके परिणाम के बारे म पूछा। उसी दिन इसकी घोषणा की गयी थी। मैंने जवाब दिया, 'दुनिया म तीन दानव हैं, अमरीका, चीन और रूस। दो एक साथ मिल गये हैं। आप मुझसे क्या उम्मीद करते हैं—मैं खामोश बैठा रहूँ ताकि वे मुझे निगल लें? इसलिए अपने राष्ट्रीय हितो की रक्षा के लिए मैंने तीसरे से दोस्ती

कर ली।" नाइजीरिया म मैंने देखा कि वहाँ का फौजी नेतृत्व बागलादेश म हमारी भूमिका का बहुत कटु आलोचक है। मुझसे बार-बार कहा गया, 'हम अलगाव और जलहदगी के खिलाफ है। हमने अपने देश की अखडता कायम रखन के लिए जग लडी है।" मैंने उन्हे फौरन एक प्रसग सुनाया जिसका समझना उनक लिए लाजिमी था। मेरा जवाब था, "आपके अपने अनुभव को दखते हुए हम समझते थे कि आप आसानी से याकूबू गोवन और अलगाववादी कनल आजूकू म फक समझ लेंगे। मुजीब पाकिस्तान मे बहुमत का प्रतिनिधित्व करते है। आपको उनकी तरफ होना चाहिए।" वे हक्का बक्का रह गय। 'यह बात तो कभी हमार दिमाग मे नही आयी," उन्होने दबी जुबान से जवाब दिया। मैंने इन सत्तावान लोगा से जो कहा उसका उन्होंने बुरा नहीं माना, क्योकि मैने बिना किसी अदावत के, ईमानदारी स अपनी बात कही थी। ऐसा लगा कि उन्हाने इसे सराहा।

पाकिस्तान के साथ 3 दिसबर, 1971 को जग शुरू हो गयी और एक पखवाडे म ही खत्म हो गयी। फौजी दृष्टि से यह बहुत शानदार कमाल था। दोस्तो और दुश्मनो दोनो म भारत की साख बहुत बढ गयी। हमने एक साल स अधिक वक्त तक एक करोड से अधिक शरणार्थियो को खिलाने और उन्हें शरण देन का अभूतपूव बोझ उठाया था। हमने बहुत व्यथा से अपनी सीमा के पार तीस लाख बगालियो का कत्लेआम होते देखा था। हमने सभ्य दुनिया से इस सहार को रोकने और हमारा बोझ हलका करने का अनुरोध किया, लेकिन उनम स अधिकाश हमारी बात सुनना नही चाहते थे। अमरीका ने पाकिस्तान क पक्ष मे अपना कुख्यात रुख अपनाया था। हम बगाल की खाडी मे उनके सातवे जहाजी बेडे से डराया भी गया था, लेकिन हमने जो तेज और जोरदार कदम उठाया उससे भारी सफलता मिली। इससे हमारा सीना गव से चौडा हो गया हालाकि उत्तरी क्षेत्र म युद्ध विराम की एकतरफा घोषणा से हर एक भौचक्का रह गया।

भारत की प्रधानमत्री का बखान महान रक्षक कहकर किया गया। उसके बाद आयी पाकिस्तान मे नज़रबदी से शेख मुजीबुरहमान की रिहाई। इससे इस दश और बागलादेश म खुशी और कृतज्ञता की लहर दौड गयी। उन घटनाओ के विस्तार म जाना मुमकिन नही है, लेकिन एक छोटी-सी घटना जिक्र करन के क़ाबिल है। जिस दिन जग का एलान किया गया उस दिन मैं श्रीमती इदिरा गाधी से मिलन गया था। मैंने उन्ह अपन पौत्र राहुल के साथ खेलते पाया। राष्ट्रीय सकट के दौरान इस तरीके का हँसी खुशी वाला सामान्य दृश्य देखकर मुझे हैरत हुई। अभी मेरी हैरत दूर भी नही हुई थी कि श्रीमती गाधी न अपने एक सचिव को बुलाकर कहा, "आपका कमरा कितना गदा है। चलिय, देखें कि क्या किया जा सकता है!' और यह कहकर भारत की प्रधानमत्री मेजें साफ करने लगी। उन पर जमा कूडा हटाने लगी। उन्होन कमरे म कुछ तसवीरें भी टाँग दी। उन्हें बहुत इतमीनान और भरोसा था कि सही फ़ैसले ले लिये गये है और कारवाई की उपयुक्त व्यवस्था कर ली गयी है, लेकिन तभी उनके लिए एक 'अत्यत तात्कालिक' सदेश आया कि वह तीनो फौजी सेवाओ के प्रधानो की बठक की अध्यक्षता करन के लिए साउथ ब्लाक पहुँच जायें। वह उसी इतमीनान स चली गयी। सकट म भी श्रीमती इदिरा गाधी को इतमीनान रहता है और वह बिलकुल भी नही हडबडाती। उनकी यही क्षमता उनकी सबसे बडी शक्ति रही है और अब भी है। इसम और पाकिस्तान के जनरल के जुबानी प्रलाप शराब के दौर और भडकीली तडक भडक मे कितना अतर था, फिर भी याहिया की यह हिम्मत हुई

कि उन्होंने भारत मे अपने विरोधी को "वह औरत" कहा । 'उस औरत' के नतृत्व म हमारी फौजी कारवाई तज और जोरदार थी । आधुनिक शस्त्रो स लस 90 हजार सनिको की सशस्त्र पाकिस्तानी सना घबरा गयी । आधुनिक सनिक सज्जा स लस फ़ौज म लडन की हिम्मत ही नही रह गयी । जब उन्हें उसी औरत स हार माननी पडी और हथियार डालन पडे तो मजाक उडाने वाले याहिया को कसा लगा होगा और कस उसन अपने अहभाव को सतुष्ट किया होगा !

युद्ध-बदी 20 हजार नागरिक कमचारियो को देश रख म भारत लाय गये । लगभग ढाई साल तक उन्हें विभिन्न छावनियो के 12 शिविरो म रखा गया । उन्हें रहन के लिए बैरकें दी गयी जो हमार जवानो न खाली कर दी थी, व खुद इस पूरी अवधि म खेमो म रहे । फौजी प्रधान कार्यालय न हमम से कुछ लोगो से कहा कि हम युद्धबदियो के बीच जाकर उन्हें यकीन दिलायें कि हम उन्हें जल्द से जल्द वापस भेजन के लिए तयार हैं । इस बात की भी सभावना थी कि उनकी आंखो पर से विद्वेष का वह परदा हट जाय जिससे वह भारत को देखत थ । मैं अधिकाश शिविरो म गया और युद्धबदियो को बताया कि क़िस्मत न उनके साथ कैसा खेल खेला है । कुछ और लोगो ने भी एसा ही किया । लेकिन युद्धबदियो से पहली टक्कर के बाद वे हिम्मत हार बठे । उनका खयाल था कि युद्धबदी लाइलाज है, क्योकि व उनकी वाकपटुता स नही पिघल । लेकिन मैं जमा रहा । इसम कोई शक नही कि उनके मुकाबले म मुझे एक सुविधा थी । वे जानत थे कि मैं उनकी पृष्ठभूमि और सोचन के तरीको स परिचित था । मैं उनस कहता था कि अपनी हालत के लिए व सिफ हम दोष न दें । "पिछले 25 वर्षों म हमने नफरत का जो अविवेकपूण रवैया अपनाया था, उसका यह लाजिमी नतीजा था । अगर हम इस हादसे से कुछ सीख सकें तो बेहतर होगा ।" हमार सोचन और काम करन के तरीको म परिवतन की जरूरत है । इस रवय पर उनकी प्रतिक्रिया बिलकुल नकारात्मक नही थी । उन्होने मेरी जो खातिरदारी की, उसस इसका सबूत मिलता है । अकसर उनके साथ एक प्याला चाय पीने या खाना खाने के दौरान वे मेरे सोचने के तरीके से सहमति जाहिर करते थ और उसकी कामयाबी के लिए दुआ मागने लगते ।

युद्धबदियो के एक दल से बातचीत करत हुए मैंन कहा, "हिंदुस्तान की आजादी की लडाई के दौरान जब मैं जेल गया था तो मैंने कभी ख्वाब म भी नही सोचा था कि एक दिन ऐसा आयगा जब जिन लोगो के साथ मैं बचपन म खेला था या जिनके साथ मैंन मुसीबतें झेली थी, वे मुझे दुश्मन समझेंगे । लेकिन ऐसा हुआ । इसस वाकई मुझे खुशी नही हुई ।" एक दूसरे शिविर के बारे म, जहां भारी सख्या मे नौजवान अधिकारी कद थ, मुझे मालूम हुआ कि वे बहुत रोष म हैं और उन्होन मेरी सभा से उठकर चले जान की धमकी दी है । मैं फिर भी वहां गया और सलामवालेकुम कहन के बाद मैंन कहा कि जो कोई जाना चाहता है वह चला जाये । मैं उन लोगो को जो सुनना नही चाहते थे जबरदस्ती अपनी बात सुनाना नही चाहता था । कुछ देर की खामोशी क बाद पीछे स एक आवाज सुनायी पडी, हम आपको सुनन के लिए आये है । आप खुद भी कदी रह है । आपको मालूम होना चाहिए कि यहा रहन से मायूसी होती है । हमारे शुरू के रवये के बारे म आपने जो सुना है मेहरबानी करके उससे नाराज मत होइय । हम आपको देखकर

बहुत खुशी हुई।"[1]

यह बहुत ही जानदार मुकाबला साबित हुआ। दिल्ली से मेरे साथ आने वाले फ़ौजी अधिकारियों को तो इस मुकाबले म मुझसे भी ज्यादा मजा आया।[2]

जिसे पाकिस्तान कहा जाता है उसमें गहरी जड़ें होने के कारण उत्पन्न दिलचस्पी के कारण इस उप महाद्वीप के घटनाक्रम को देखने के बाद हमारे तनावपूर्ण सबधो के बारे म मेरे अपने खयाल बने। मैंने यह भी सोचा था कि इन सबधो मे कैसे सुधार किया जा सकता है। बाजी इतनी बडी थी कि हलके दिल स उसे नही ...ा सकता था। पाकिस्तान के साथ दोस्ती जरूर हो, लेकिन किसके साथ ...सके लिए? हो सकता है कि इस सिलसिले म मैं भावुक हो उठा हूँ, लेकिन ...न मे कोई तक है। उस उपद्रव ग्रस्त देश म कौन सी ताक्तें हैं जो महत्व ...र कौन-सी ताक्तें हैं जिनकी अहमियत नही हैं? यह बहुत साफ था कि ...न मे विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओ के दौरान एक ही-सा रवया अप...ा रहा। इसीलिए सघप का क्रम जारी था। भारत विरोध उस देश के ...न का तकियाकलाम बन गया था। भुट्टो का भी यही रवैया था। ...विश्वास के विपरीत जिन्ना, लियाक्त, नाजिमुद्दीन, इसक्दर मिर्जा, ...र्दी, मोहम्मद अली बोगरा, अय्यूब और याहिया सिर्फ शासन के प्रतीक थे। ...यत यह थी कि वे सिविल और फौजी सेवाओ, जागीरदारो और एक छोटे-...ोगिक वग के साथ सत्ता म साझेदार थे। यह वग मुख्यत पजाबी था। शेख ...को सत्ता पर कब्जा करने से रोकने के लिए वे 1970 मे भुट्टो को सामने ...उसके बाद पूर्वी हिस्से मे सशस्त्र सघप और देश का बँटवारा इसका तक-...रिणाम था। इससे जो परिस्थितियाँ पैदा हुई उनके बल पर भुट्टो पहले ...जाबी नेता थे जिन्होने निहित स्वार्थों के प्रभाव को चुनौती दी थी। कट्टर ...ी माफिया को अपने पजे निकालने का मौका दिये बिना राजनीतिक क्षितिज ...ावी होने की इच्छा स उनकी ज्यादातर मुश्किलें शुरू हुई।

पाकिस्तान के कुछ पश्चिमी विशेषज्ञ भी उसी भ्रम का शिकार हुए जो इस ...के कुछ दभी लोगो के दिमाग़ पर छाया रहा। उनका खयाल था कि "भुट्टो के अभ्युदय का मतलब सेना की राजनीतिक भूमिका का पूरी तरह खात्मा है, जिसने दुखद और विनाशकारी परिणामो के साथ 13 साल की लबी अवधि तक देश की राजनीति पर नियत्रण रखा था और उस पर हावी रही थी।"[3] यह गलत नतीजा था, क्योकि जनरल जिया उल-हक जुलाई 1977 मे सेना को सत्ता म वापस ले आये। उन्होने अपने राजनीतिक आका को विस्मृति के गत मे फेंक दिया और सत्ता म बने रहने के लिए धार्मिक चालो का इस्तमाल किया। नये शासक दलदल म फँसे रहे और बाहर निकलने का रास्ता ढूढते रहे। *यह नही भुलाया जा सकता कि अतिवादी कारवाइयो पर भरोसा पाकिस्तान म सव-*स्वीकृत आचरण रहा है। उच्च राजनीति एक छोटे-से गुट की इजारेदारी रही है। कभी किसी ने पजाब म व्यापक आधार की पार्टी बनाने को प्रोत्साहित नही

---

1 कई लोगो ने मेरी उर्दू की किताब पढ़ी के खत पढ़ी थी और उन्होने उस किताब मे कही गयी बातो के लिए मुझसे तीखे सवाल पूछे।

2 *कनल एस० पी सालके ने अपनी पुस्तक 'पाकिस्तानी पी० ओ० ड्ब्लूज इन इडिया'* (भारत में पाकिस्तानी युद्धबदी) (विकास पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली 1976) मे एक युद्धबदी शिविर में ऐसी ही एक मुलाकात का सजीव विवरण दिया है।

3 इरविन आइसेनबग, द नेशस आफ द इडियन सब-काटीनेंट।

किया। पाकिस्तान के निर्माण से उस पर पजाब का नियत्रण रहा है। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रात और बलूचिस्तान के जन आदोलनो को छोडकर बाकी सब जगह जनता पर शक्तिशाली सामती तत्वो का प्रभुत्व था। 1967 मे अय्यूब या 1976 म भुट्टो के खिलाफ जो विद्रोह हुआ उसम राजनीतिक दिशा का अभाव था। भुट्टो न गरीब और अभावग्रस्त लोगो की हिमायत हासिल करन की कोशिश की, लेकिन हिमायत हासिल करन के तरीके पर अमल करन की रफ्तार जरूरत से ज्यादा तेज थी और कभी कभी वह भोडी हो जाती थी। इसलिए पहल के शासको के मुकाबले उनके शासनकाल म अस्थिरता और कटुता बढी। फिर भी अत्याचार के विरुद्ध आवाज बुलद करने वाले अपने सघष को उसके तकसगत अत तक पहुँचान म वह नाकाम रहे। दुविधा और अनिश्चय के दौर म फौजी एक बार फिर रक्षक बनकर सामने आये। उन्होने अपने स पहले के राजनीतिक शासको को कूडेघर म फेंक दिया और जनता पर उद्दडता से हुकूमत करके ऐंठने लगे। पजाब और सिध म उचित व्यापक आधार की राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना जितनी जरूरी है, उतनी ही फौजी पक्ष को नियत्रण मे रखने की आव श्यकता है।

1971 म अपनी विजय को ध्यान म रखकर मैंने यह तक दिया कि हम भुट्टो से कोई सबध नही रखना चाहिए। हमारे पास ऐसे साधन थे कि हम ऐसी स्थिति पैदा करते जिससे ज्यादा ईमानदार और दूरअदेश राजनीतिक तत्व उभरकर सामने आते। इससे एक नय प्रकार के नेतत्व को शासन की बागडोर सँभालने का मौका मिल जाता और देश को न सिफ प्रजातात्रिक बल्कि विवेकपूण शासन भी मिल जाता। इस सरकार को अपने ऊपर ज्यादा भरोसा होता और शायद वह आक्रामक रवये के शिकजे स अपने को निकाल सकती। लेकिन कश्मीरी गुट जिस आम तौर पर राजनीतिक और अफसरशाही क्षेत्रा म पजप्यारे कहा जाता था, दूसरे ढँग से सोचते थे। इसम विदेश मत्रालय म नीति नियोजन समिति के अध्यक्ष डी० पी० धर, प्रधानमत्री क विशेष सचिव पी० एन० हक्सर, विदेश सचिव टी० एन० कौल, आर्थिक सलाहकार पी० एन० धर और अनुसधान एव विश्लेपण इकाई (रा) के प्रधान आर० एन० काओ शामिल थ। इस गिरोह क भुट्टो के बारे मे अलग अलग विचार थे, लेकिन इन लोगा और भुट्टो मे एक समा नता थी, और वह थी उनके विशेषकर डी० पी० धर के, सोचने और समझन क तरीके मे। सिखो के आखिरी गुरु गोविंदसिंह के सच्चे चेलो के विपरीत, जिन्हान उनके आदेश पर अपनी जिंदगी कुर्बान कर दी थी इन लोगो ने अपने जलील वजूद की हिफाजत करने के लिए अपने आका को कुर्बान करना बेहतर समझा।

हम जानत थे कि सोवियत सघ और अमरीका पाकिस्तान के प्रति और ज्यादा दोस्ताना नीति अपनान क लिए हम पर और ज्यादा दबाव डालन की कोशिश कर रहे थे। रूसी पाकिस्तान का चीनी असर स दूर करने क लिए उत्सुक थे जबकि अमरीकी चाहते थ कि इस उपमहाद्वीप म शाति कायम हो जाये ताकि उन्हे अपन फौजी हथियार जो हमे मिलने वाल थे, एशिया और अफ्रीका म दूसरा को दो का मौका मिल जाय। इसलिए व अपनी जरूरता के लिए दोस्ती कराना चाहत थे। लेकिन हमारे कश्मीरी पडित उन दोनो महाशक्तियो को खुश करन के लिए सर के बल खड़े हो गये। व उनके तर्को को दोहरान लग और नपथ्य म मौजूद दोस्ती क सूत्रधारा स भी ज्यादा भुट्टो स समझोता करने के लिए व्यग्रता दिखान लग। उन्हान समाचारपत्रा मे अपन कुछ चहेता को चुना और उनको 'भुट्टो की

अजेयता, प्रजातंत्र के प्रति निष्ठा और वकल्पिक नतत्व के अभाव" के बारे मे लिखने के लिए पाकिस्तान भेजा। अखबारी दुनिया क ये सयान लोग भुट्टो की खातिरदारी और मेहमानवाजी के बारे मे मुह से लार टपकाते लौटे। भुट्टो की तारीफ करने म उन्होंने ईमानदारी और सयम को ताक पर रख दिया। पाकिस्तान मे कोई भी पत्रकार अपन राष्ट्रपति की इतनी चापलूसी नही कर सकता था जितनी हमारे पत्रकारो ने भुट्टो की की। उन्होन कहा कि पाकिस्तान मे भुट्टो के अलावा बाकी सब लोग सियासी तौर पर खत्म हो चुके हैं। उनका मकसद बहुत साफ था—भारत म एक ऐसा हल्का तैयार करना जिसकी मदद से यह गिरोह एक ऐसे पाकिस्तानी नेता के साथ मामला निबटाने के माग पर आगे बढता जो अपन पूवगामी शासको से किसी हालत मे भिन्न नही था। भुट्टो सयुक्त राष्ट्रसघ मे याहिया के प्रवक्ता थे। उन्होन पूर्वी पाकिस्तान मे, जिसे आज बागला देश कहा जाता है, फौजी कारवाई का स्वागत किया था। जब उनकी फौजो ने बगालियो को तहस-नहस करना शुरू कर दिया था तो 25 माच, 1971 को भुट्टो के वास्तविक शब्द थे 'खुदा का शुक्र है, पाकिस्तान को बचा लिया गया।" याहिया न 1978 के अत मे इसी नजरिए का और भी खुला प्रमाण दिया। उन्होने कहा, "बगालियो के विरुद्ध फौजी कारवाई भुट्टो की सलाह पर की गयी थी। और भुट्टो ही ने बाकायदा निर्वाचित प्रधानमत्री के रूप म मुजीब को मान्यता देने पर आपत्ति की थी।"

भारत पाकिस्तान को दोस्ताना पडोसी मानने और बेहतरीन सबध कायम करने के लिए हमेशा तयार रहा है। इसलिए भुट्टो समथक हल्का तैयार करने का काम नामुमकिन नही था। इन्ही पत्रकारो ने अपने कश्मीरी सरपरस्तो की तारीफ मे जमीन आसमान के कुलाबे मिला दिये। इसी प्रक्रिया के दौरान उन्होने अपनी साजिश का जाल इतनी तेजी से फला दिया कि किसी भी विरोधी राय का सरसरी तौर ही रद्द कर दिया जाता था, या उसका मजाक उडाया जाता था। खुशकिस्मती से प्रधानमत्री यह समझ गयी थी कि मेरे रुख म दम है और मैंने नये तरीक़े के नेतत्व को प्रोत्साहन देने के लिए जो विचार पेश किया है उसे ध्यान मे रखना जरूरी है। इसलिए उन्होने इस गरोह की इस दलील को अनसुना कर दिया कि शिमला मे मेरी मौजूदगी साड को लाल कपडा दिखाने जैसी बात होगी। उन्होंने उनसे बहुत दढता से कहा, "अगर मैं भुट्टो जसे सबसे बडे भारत विरोधी को बरदाश्त कर सकती हूँ तो उन्हे भी यूनुस को बरदाश्त करना होगा। उन्हाने मुझसे जून 1972 म शिमला वार्ता के दौरान मौजूद रहने के लिए कहा।

हालाकि मैं प्रतिनिधिमडल का सदस्य नही था, लेकिन पाकिस्तान के हमारे दोस्त मेरी मौजूदगी पर ध्यान दिये बिना नही रह सके। हो सकता है कि उनके मन म यह डर हो कि मेरा नजरिया उनके लिए असह्य हो और हो सकता है कि उसी पर ध्यान दिया जाये। मै उनमे स कई को अच्छी तरह से जानता था। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रात के गवनर अरबाब सिकदर खा खलील और पाकिस्तानी मत्रिमडल के सदस्य मोहम्मद हयात खा शेरपाव मेरे रिश्तेदार थे। मैंने अरबाब के साथ काफी लबी बातचीत की और उनके दुख दद को सुना। कई अधिकारी और **पाकिस्तान टाइम्स** के मजहर अली जसे कुछ पत्रकार भी आये थ। मजहर अली मेरे रिश्तेदार थे और छात्र जीवन से मेरे दोस्त थे। वह एक जाने माने वाम पथी थे और उनकी दलीलो स सहानुभूति की जा सकती थी। विभाजन से पहल

के भारत मे एक छात्र-नेता के रूप म उन्होने 1940 41 म ब्रिटिश युद्ध प्रयासो का समथन किया था। नयी नीति के लिए उनके उत्साह को कम करने के लिए मुझ उन्हे इसकी याद दिलानी पडी। अधिकारियो का दल स्वाभाविक रूप से पहले से तय किया हुआ राग अलाप रहा था। इन सपर्कों और वातचीत से मुझे भुट्टो की योजनाएँ समझने मे मदद मिली। मेरे दोस्त बहुत सोच समझकर बातचीत करते थे और उनसे राजनीतिक भूल चूक होनी मुश्किल थी, लेकिन हमारी पृष्ठ भूमि समान थी और मैं उनके सोचने के तरीके से परिचित था। मैं उन मसला को भी अच्छी तरह समझता था जिन पर बातचीत होती थी। इससे मुझे राज नीतिक असलियत का पता लगाने मे सहायता मिली। भुट्टो के साथ जो 80 लोग आये थे उनम से अधिकाश को सिफ एक ही धुन सवार थी। व इस बात पर जोर देते रहे कि भुट्टो ही एकमात्र व्यक्ति हैं जो राजनीतिक सत्ता सँभाल सकत हैं। उनके लिए पाकिस्तान के बाकी नेता किसी गिनती मे नही थे।

उनकी चाल समझना मुश्किल नही था। जब कभी उनके तर्कों की खामी बतायी जाती तो वे यह कहते, "आप तो सब कुछ जानते हैं। हमारी खातिर काम पूरा करा दीजिये।" यह बात दिन की रोशनी की तरह साफ थी कि भुट्टो मसला तय करने के लिए व्यग्र थे और वह खाली हाथ वापस जाने की स्थिति म नही थे। मै उनके रुख के बारे म इतनी सामग्री इकट्ठा कर सकता था कि उनका भाँडा फोड देता, लेकिन मुझे खास तौर पर हिदायत दी गयी थी कि मैं कोई ऐसा काम न करूँ जो किसी को नागवार हो। इसलिए मुझे खास सयम बरतना पडा।

प्रधानमत्री, जिन्हे छोटी से छोटी बात का खयाल रहता है, इस बात के लिए उत्सुक थी कि भुट्टो के रहने का न सिफ आरामदेह इतजाम किया जाये, बल्कि उन्हे शानदार तरीके से ठहराया जाये और उन्होन खुद इतजाम की निगरानी की और विशिष्ट अतिथियो के लिए जो कमरे तय किये गये थे उनकी सजावट और रग रोगन आखिरी वक्त मे भी बदलवाये। उन्होने मुझसे भी कहा था कि मैं सारी व्यवस्था पर एक नजर डाल लू कि सब ठीक ठाक है। इसकी वजह से मैं भुट्टो के और घनिष्ठ सपर्क मे आया। मैंने उन्हे घमडी, व्यग्यात्मक, चालाक और आत्म केंद्रित पाया। हर वक्त वह यह दिखाते रहते कि वह एक आदशवादी हैं, जिनके अपन सिद्धात है लेकिन बुनियादी तौर पर वह पल-पल बदलने वाले, अस्थिर, महत्वाकाक्षी और अवसरवादी थे। उनके बारे म किसी को यह शक नही रह गया कि जरूरत पडने पर वह गदी राजनीति का सहारा भी ले सकते हैं या जान बूझकर राजनीति को गदा बना सकते है। उनके कपडे हमेशा बेहतरीन होते, लेकिन उनकी बातचीत नही। उदाहरण के लिए, जब उन्होने यह देखा कि उनके कमरे मे शराब की अलमारी म बेहतरीन किस्म की शराबें रखी हुई है तो उन्होन कहा मैंने यह कभी नही सोचा था कि य गँवार हिंदू इन सब चीजा स मरी खातिर करेंगे।

मैंन सोचा कि भुट्टो से निबटन का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उनसे नम लेकिन साफ बात की जाये। इस प्रक्रिया म वह यह बताने से अपने-आपको नही रोक पाय कि वह क्या सोच रहे हैं। आने के दूसरे ही दिन वह बोल पड, 'मैं यहाँ युद्धबदियो की रिहाई की माँग करन नही आया हूँ। वे ऐस इलाका क लोग हैं जो सौ साल से अधिक तक अग्रेजा की खातिर आग म झोके जान के लिए तयार रहे और अगर अब एक लाख पाकिस्तान की खातिर मर जाते हैं तो क्या फ़र्क

पडता है ?" मैंने फौरन जवाब दिया,"यह तो बहुत ही अच्छी खबर है। अब बात चीत और ऊँचे स्तर पर हो सकती है। इससे हम कुछ और नाजुक मसलो को तय करन म मदद मिलेगी।" मैंन इसके बाद उनसे पूछा कि क्या यह खबर प्रकाशन के लिए है तो वह अचानक बदल गये। 'यह सिफ आपके सुनने के लिए है," उन्होंने कहा।

उन्होंने फिर यह दिखावा किया कि बातचीत की विफलता उनके लिए बेहतर साबित होगी। जब उनसे कहा गया कि आप जरा इसके बारे मे तफसील से बतायें तो वह बहुत नवाबी लहजे म बोले, *'मैं वापस जाकर अपनी जनता से कहूँगा कि मैं उन कायर जरनलो की तरह नही था जिन्होंने ढाका मे आत्म समपण कर दिया था। मैंन डटकर श्रीमती गाधी को मुह चिढाया।"* मैं चुपचाप सुनता रहा। फिर मैंने धीमे से कहा, "जनाब राष्ट्पति क्या आपको पता है कि हमारी प्रधान मत्री ने आपके साथ बात करन मे कितनी जोखिम उठायी है ?" वह आग बबूला हो गये और उन्हान पूछा, "क्या ?" मैंने कहा, "क्योकि भारत मे सबसे ज्यादा आपसे नफरत की जाती है। खुदा न करे, अगर बातचीत विफल रहती है तो उन्ह सिफ यह करना पडेगा कि सवाददाता सम्मेलन बुलाकर यह एलान कर दें कि 'मैंन भुट्टो को बुलाया और उनकी इतनी पिटायी की कि वह उस जिंदगी भर नही भूलेंगे।' उनके सबसे बडे दुश्मन भी उनके पाव चूम लेंगे। यही बात ज्यादा तर भारतीय सुनना चाहते है।'

भुट्टो यह नही समझ पाये कि वह क्या प्रतिक्रिया दिखायें। वह साच रहे थे कि क्या वह सही सुन रहे हैं ? उन्हान विषय बदल दिया और हमारे उन पत्रकारो के बारे म अपमानजनक बातें करने लगे जो उनसे मिलन के लिए पहले पाकिस्तान गये थे। जिस आसानी से वह उन पत्रकारा को अपनी उँगलियो पर नचाने म कामयाब हो गये थे उसकी वजह से उन्हाने उनके बारे मे बहुत हिकारत से कहा, "मैंने उन सबको अपने पेशाब का मजा चखा दिया है।"[1]

पहले ही दिन बातचीत मे गतिरोध हो गया। श्रीमती गाधी ने अपनी प्राथमिकताएँ बतायी और भुट्टो से कहा कि वह अपनी प्राथमिकताएँ बता दे। उन्हाने कहा, "जब तक यह न मालूम हो कि किन बुनियादी मसला पर बातचीत करना है तब तक विस्तृत विवरण के बारे म विचार करने से क्या फायदा ! एक बात साफ हो जानी चाहिए कि एक दूसरे के बारे म हम लोगो के नजरिये क्या हैं ?" भुट्टो के पास इसका कोई जवाब नही था और तीन दिन तक कोई विचार विमश नही हुआ। स्वाभाविक रूप से कुछ मजाकिया किस्से फलने लगे। इनम स एक भुट्टो के सूट के कपडे के बारे मे था जो बताया जाता है कि वह अपने साथ लाये थे। पाकिस्तानी दर्जी यह कपडा सूट के लिए कम समझते थे, लेकिन शिमला के एक दर्जी ने कहा कि कपडा काफी है और वह सूट सिल देगा। भुट्टो ने जब यह पूछा कि पाकिस्तान मे उनके दर्जी इतने कपडे मे सूट नही सिल पाये तो यहा कसे मुमकिन है, तो बताया जाता है कि शिमला के दर्जी ने जवाब दिया 'जनाब वहा आप बहुत बडे आदमी ह।'

हमारी अपनी मुश्किलें भी थीं। वे या तो इसी बातचीत की उपज थी या उनका बातचीत पर असर पडा। डी० पी० धर को दिल का दौरा पडा और 25

1 उस जमाने मे जो पत्रकार पाकिस्तान गये थे उनम कुलदीप नय्यर रूसी करंजिया दिलीप मुकर्जी इद्र मल्होत्रा और खुशवतसिह थ।

साल म पहली बार मेरा पी० एन० हक्सर से झगडा हो गया। हम लोग विदेश सेवा म सहयोगी और अच्छे दोस्त रह चुके थ। राजवाडे के साथ मिलकर हम लोगो की तिकडी बन गयी थी। शाम को इकटठा होकर हम लोग गप लडाते और हक्सर के बनाए हुए विशेष खाना का मजा लेते। उन्ह अपने खाना पकाने पर नाज था। वह फोटोग्राफी के भी शौकीन थे। शिमला शिखर सम्मेलन ने इसे खत्म कर दिया। हालांकि हम लोगो म राजनीतिक मुद्दो पर झगडा हुआ था, लेकिन हक्सर के तक इतने व्यक्तिगत हो गये कि पहले वाली दोस्ती का क़ायम रहना नामुमकिन हो गया। शिमला म वह और उनके जसे विचारो वाले अधिकारियो ने अपनी इजारेदारी क़ायम कर ली थी और वह किसी भी एस सुझाव पर चिढ़ जाते थे जो उनके विचारो और हितो के प्रतिकूल हो। मन्त्रिमडल के फखरुद्दीन अली अहमद, जगजीवनराम, स्वर्णसिंह और वाई० बी० चव्हाण जसे वरिष्ठ सदस्यो को सलाह देने के वास्ते मौजूद रहने के लिए कहा गया था। राजनीतिज्ञो के रूप म, प्रतीत होता था व समस्या के दूसरे ही विश्लेषण स सहमत हैं, लेकिन उन्होने मूकदशक बने रहना बेहतर समझा। व अपनी बात पर ज़ोर देना नही चाहते थे कि कही यह गिरोह उसका प्रतिवाद न कर दे।

आखिर म भुट्टो की समझ म यह आ गया कि उन्ह हालात का सामना करना पडेगा और वह जो कुछ करने को मजबूर हैं, उसे करना ही पडेगा। बातचीत खत्म होने के एक दिन पहले मुझे शिमला छोडना पडा, क्योकि मुझसे अल्जीरिया के राष्ट्रीय दिवस पर एल्जियस मे भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए कहा गया था। गिरोह जीत गया और वार्ता सफलतापूवक समाप्त हुई। भुट्टो को इज्जत के साथ शाति मिल गयी। इसस पाकिस्तान म उनके हाथ मजबूत हो गये। उन्होने फौरन यह डीग मारनी शुरू कर दी कि पाकिस्तान हालाकि जग के मदान म हार गया है लेकिन उन्होने बिना कोई रियायत दिये भारत से सब कुछ हासिल कर लिया है। उन्होने इस हकीकत का कहीं जिक्र नही किया कि भारत की बेपनाह उदारता की वजह स ही यह मुमकिन हो सका। मुझ पहले से ही इसका अदाजा था। उनसे और किसी क़िस्म के जवाब की उम्मीद करना बेकार था। भुट्टो के बारे म इस गिरोह की उम्मीदो के मुकाबले म मेरा अनुमान सही निकला। इस गिरोह को भुट्टो से बहुत उम्मीदें थीं, लेकिन भुट्टो के घमड ने उन उम्मीदो को बेकार साबित कर दिया। भुट्टो जब कभी भारत विरोधी हरकतें करते तो यह गिरोह असमजस की स्थिति म पड जाता था और भुट्टो अकसर ऐसा करते थे।

कई साल से मेरी आदत थी कि जब कभी मैं मद्रास मे होता राजाजी से जरूर मिलता था। इसलिए 1972 के बसत म हम लोग एक बार फिर मिले। वह कमजोर थे, लेकिन दिमागी तौर पर सजग। लगता था कि उस वक्त यह बात उनकी समझ म आ गयी थी कि स्वतत्र पार्टी के रूप मे एक सशक्त प्रतिपक्ष बनाने की उनकी कोशिशें नाकाम रही है। यह वह समय था जब श्रीमती इदिरा गाधी ने कांग्रेस को शानदार विजय दिलायी थी। उन्होने कहा "तुम इदिरा के भाई की तरह हो। जाओ, उन्ह बता दो कि भगवान उन पर बहुत मेहरबान रहा है और उन्ह बहुत ज्यादा सहज बुद्धि दी है। उन्ह अपनी सहज बुद्धि पर भरोसा करना चाहिए न कि सलाहकारो की राय पर। सलाहकारो को न तो इतिहास की कोई समझ है और न उन समस्याओ को समझने की क्षमता है जिनका सामना इस देश को करना है। उन्ह चाहिए कि वह अपनी अतरदृष्टि से काम करें। उन्ह मेरा

आशीर्वाद देना।" उन्होंने बादशाह खाँ के बारे मे भी बहुत स्नेहपूर्ण ढँग से पूछताछ की, जिनसे वह कई साल बाद 1968 के जाडो मे मिले थे। राजाजी के साथ यह मेरी आखिरी मुलाक़ात साबित हुई, क्योकि उसी साल 25 दिसबर को उनका देहात हो गया। इदिराजी के बारे मे राजाजी की बातो से पता चला कि उनकी नज़र कितनी पनी है। मैं डॉ० एस० राधाकृष्णन से भी मिला। भारत के भूतपूर्व दार्शनिक राष्ट्रपति मद्रास म अपन निवास म बीमार पडे हुए थे। जब उनका राष्ट्रपति का कायकाल समाप्त हो रहा था तब वह भी राजनीति की लालच मे पड गए थे, लेकिन वह यहाँ मूक पडे हुए थे। एक महान दार्शनिक और वक्ता का यह कसा दुखद अत था। 87 वष की उम्र मे 17 अप्रल, 1975 को उनका निधन हो गया। इससे निश्चित रूप से भारतीय राजनीति का एक युग खत्म हो गया। अब सिर्फ़ इदिरा गाधी की नवोदित छवि बची थी जिन्ह बिलकुल निकम्मे और बेकार लोगो ने निराशा के वातावरण स घेर रखा था। यही लोग थे जिन्होंने बाद मे परेशानी पैदा की।

यह सोचा गया था कि एशिया '72 (व्यापारिक मेला) दुनिया के इस हिस्से मे सबसे बडी व्यापारिक घटना बने। अपने सभी पडोसियो को इस मेले म शरीक होने के लिए राज़ी करने के वास्ते जून 1972 म मेरी बागलादेश, बर्मा, भूटान और श्रीलका की यात्राएँ निश्चित कर दी गयी थी। लेकिन मेरी पहले की भूमिका जारी रखन के क्रम म प्रधानमत्री से यह अनुरोध किया गया था कि वह शेख मुजीबुरहमान के लिए मुझे एक परिचय पत्र दे दें। जब उनका बद लिफाफा मुझे दिया जा रहा था तब हक्सर और दोनो धर को मेरी योजनाओ की खबर मिल पायी। उन्होंने इसे अपने अधिकार क्षेत्र म अतिक्रमण माना। ये मृदुभाषी पडित अपने को सवज्ञानी मानते थे। उनको बडी उद्दडता से राजनीतिक सलाह दने की हिम्मत हुई। उन तीनो न मेरे विगत का हौआ खडा करके प्रधानमत्री को यह यकीन दिलाने की कोशिश की कि मेरा बागलादेश जाना खतरनाक साबित होगा। उन्होंने उनसे कहा कि वहाँ पजाबियो और पठानो के विरुद्ध रोष है। उन्होंने यह भी ज़ाहिर किया कि कही मेरा क़त्ल न कर दिया जाये। मुझे अपनी असलियत मालूम थी, लेकिन एक लम्हे के लिए भी मेरे दिमाग़ मे मुजीब की प्रतिक्रिया के बारे म डर नही पैदा हुआ। दोना धर और हक्सर का रवया ऐसा था जिससे मुझे झुझलाहट आ गयी। इसलिए मैंने अपनी योजनाओ के पूरा किय जाने पर ज़ोर दिया। मैंन श्रीमती इदिरा गाधी से कहा कि अगर मैं वहाँ नही गया तो यह बात मुझे बुज़दिल बना देगी। इन निंदको को चिढाने के लिए मैंने तय किया कि मैं शलवार कमीज पहनकर आऊँगा और असली पठान चप्पल भी पहनूगा जो मैंन बचाकर रख छोडी थी। यह देखकर कि मैं जान पर तुला हुआ हूँ श्रीमती गाधी ने मुझे इजाज़त दे दी।

मुजीब मुझे फ़ौरन पहचान गय और उन्होने "एक अच्छे दोस्त से मिलने के लिए' अपने कई मत्रियो को बुलाया। उन्होने मेले म अपने देश को शरीक होने के आदेश दिये और मुझसे कहा कि यह बहुत शानदार समारोह होना चाहिए। उन्होने मुसकराकर कहा, "यह हमारी पहली कोशिश होगी।" राजनीति के बार म उन्होंने बहुत खुलकर साफ बातचीत की। उन्होने मुझे राजदूत सुबिमल दत्त के शब्दो म 'वहाँ के हालात के बारे मे एक भारतीय को बहुत सफाई से अदरूनी बाते बतायी।' बागलादेश दूसरे मित्र भी इतने ही सौहार्द से मिले। विदेश और वाणिज्य मत्रालयो मे वरिष्ठ अधिकारियो के साथ उच्चाधिकार-सपन्न बैठकें

हुइ, ताकि उनके शीपस्थ स्तर के लोग हमारी कायप्रणाली से परिचित हो जायें और दोनो मे समन्वय स्थापित हो।

मैंने तय किया कि ढाका मे अपने अनुभवो के बारे म मैं सीधे स्टाकहोम म प्रधानमत्री को तार भेज दू। वह वहाँ राजकीय यात्रा पर गयी हुई थी। मैं जब भारत लौटा तो मुझे सही सलामत देखकर गिरोह का चेहरा फक पड गया। उनके खयालो के ओछेपन पर तरस आता था। उन्होने बहुत राजनीतिक अपरिपक्वता दिखायी थी और व्यक्तिगत द्वेष ने उनके विवेक पर पर्दा डाल दिया था।

तीसरे एशियाई व्यापारिक मेले का आयोजन करने के लिए गठित सचालन समिति के अध्यक्ष की हैसियत से मैंने यह समझ लिया कि इस क्षेत्र म दीघकालीन नियोजन का वक्त आ गया है। इस योजना को सफल बनाने का एक ही तरीका था कि भारत मे भारी मशीनो व अय साज-सामान के सरकारी व निजी खरीदारो को राजी किया जाय कि वे भारत मे मेले के जरिए अपनी खरीदारी करें। इसको मुमकिन बनाने के लिए हमने वित्त मत्रालय के साथ बठके की और उनसे कहा कि वे व्यापारिक मेले के आयोजको को काफी मात्रा म विदेशी मुद्रा दे दें ताकि विदेशो के मुख्य निर्यातको को बिक्री होने का लालच हो। इससे स्थानीय ग्राहको को भी मौका मिलेगा कि वे सबसे अच्छा सामान चुनें और हाथ के हाथ सौदा पक्का कर लें। बदकिस्मती से इस सिलसिले म सबसे बडी अपराधी खुद सरकार थी और है। वह वतमान व्यवस्था के पक्ष म है। इसके बजाय कि बाहरी देशो के विख्यात निर्माता भारत म आकर अपना सामान प्रदर्शित करे, वह यह बेहतर समझती है कि विशेषज्ञो का दल सौदा पक्का करने के लिए किसी देश विशेष को भेज दिया जाये। सरकारी और निजी खरीदार एक ऐसी व्यवस्था बदलने म हिचकते हैं जो उन्ह बार बार विदेश यात्रा का मौका देती है। इस तरह के कुछ लोगो का निहित स्वाथ राष्ट्र की भलाई मे बाधक बन जाता है। बडे पैमाने पर मेला के जरिए खरीद फरोख्त के विचार के बारे म नयी समझ से ही यह कमी पूरी हो सकती है। इस समझ म राजनीति का पुट है और शीपस्थ स्तर पर राजनीतिक तौर पर ही इस समस्या का निराकरण किया जा सकता है। ये फैसले अधिकारियो के भरोसे नही छोडे जा सकते। विदेश यात्रा म उन्ह मजा आता है और वे देश के हितो की बलि देकर निजी फायदा उठाते है। व कई विख्यात फर्मों से रिश्वत के जरिए धन कमाने के लालच के शिकार हो सकते है।

विगत म भारत म अस्थायी मडपो मे मेले किये जाते थे। इनमे आवश्यक सुविधाओ का अभाव होता था और यह देखने मे भौडे लगते थे। लकडी, टीन और मिट्टी की ये भद्दी दुकानें हर मले के बाद तोड दी जाती थी और मलवा नीलाम कर दिया जाता था या यहीं उसके ढेर पडे रहते थे। हर बार यह बकार की कारवाई की जाती थी। मैं एल्जियर्स मे काम खत्म करके अभी हाल ही म वापस आया था जहाँ एक विशाल प्रदशनी समुच्चय बनाकर तयार कर लिया गया था। एक अल्जीरियाई दोस्त ने मुझे उसम घुमाया था और उसकी उपयोगिता समझायी थी। मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ था लेकिन मैंने कभी ख्वाब म भी नही सोचा था कि मुझे ऐसी ही अपनी किसी प्रायोजना म शामिल होना पडेगा। यह जिम्मेदारी सँभालने के बाद मैंने कुछ स्थायी इमारतें बनाने की इजाजत मांगी। किस्मत से इनके लिए अतिरिक्त धन देने का वादा कर लिया गया और हालांकि हमने फौरन ही निमाण काय शुरू कर दिया था लेकिन वास्तविक इजाजत मई 1972 तक नही मिली। मैंने अपनी गरदन फँसा दी थी लेकिन उससे फायदा

हुआ जिसकी वजह से निष्ठावान लोगो का एक दल बन गया। उन सब ने कम से-कम वक्त मे एक मुश्किल काम को खत्म करने के लिए रात दिन काम किया। एक वक्त तो इस काम मे पचास हज़ार आदमी जुटे हुए थे। इस स्थल का नाम 'प्रगति मदान' रखा गया। मथुरा रोड की बहुत सुदर सजावट हो गयी। स्मारको के आस-पास की गयी थोडी-सी सफाई से यह शहर के सबसे खूबसूरत मार्गों मे से एक बन गया। 'मटका पीर की' पुरानी मजार और फारसी के मशहूर शायर 'बेदिल' का मकबरा खूबसूरत पाक बन गये। पुराने किले की दीवार की मरम्मत की गयी और खाई पानी से भर दी गयी। साथ ही इस बात का इतज़ाम कर दिया गया कि पानी उसमे से न रिसे। शेरशाह के फाटक के पास बनी झोपडिया साफ कर दी गयी ताकि उसके दोना बुर्ज साफ दिखायी पडें। उसके आस पास पडी ज़मीना को बहुत आकषक ढँग से सजा दिया गया। इडिया गेट के चारा ओर की सडको को एक और बडे गोल दायरे म मिला दिया गया ताकि आने जाने म और ज्यादा आसानी हो। प्रगति मैदान और चिडियाघर के बीच के निचले भाग को ऊँचा करके वहा गाडियो के ठहरने का स्थान बना दिया गया। इन कोशिशो की वजह से मेले की स्थायी समुच्चय की कीमत 1972 म किय गये खच से कई गुना ज्यादा हो गयी।

एशिया '72 कई नयी बातो के लिए मशहूर हो गया। दो मजदूरा ने, एक मद और एक औरत न, ज़मीन तोडन के समारोह का श्रीगणेश किया। इसी तरीके से लगभग 500 मज़दूरो न समुच्चय का शुभारम्भ देखा। वे विशिष्ट अतिथिया के साथ ही बिठाये गये थे। भविष्य म थोडे दिन पहले ही सूचना मिलन पर मेलो का आयाजन करने के लिए हाल ऑफ नेशस (राष्ट्र सभा भवन) व दूसरे भव्य मडपो का निर्माण कर दिया गया था। क्षेत्रीय जलपान गह, सिनेमा और एक खुला स्टेडियम भी जल्दी ही बना दिया गया। एक बडा भवन, जो हमारे भारत के बारे म दृश्य श्रव्य कायक्रम दिखाने के लिए तीन भागा म विभाजित कर दिया गया था, आकषण का केंद्र बन गया। इसी तरह से नेहरू सग्रहालय, प्रशासकीय दफ्तर व अन्य सुविधाएँ निर्धारित कायक्रम के अनुसार पूरी कर दी गयी। सावजनिक सूचना प्रणाली और रोशनी की बेहतरीन व्यवस्था से रात मे यह जगह स्वप्न देश सी लगती थी।

जब मेरे दिमाग मे यह खयाल आया कि प्रगति मदान की सडको का नाम देश की नदिया के नाम पर और जलपान गृहो व छतरीनुमा स्टालो के नाम ऐतिहासिक स्मारको या भारतीय फूलो के नाम पर रखे जायें तो प्रधानमत्री के उत्साह का ठिकाना न रहा। मेले म आन वाला कोई भी दशक यह महसूस करता कि वह लघु आकार के भारत को देख रहा है या भारत को नये सिरे स देख रहा है। हमारे देश और उसकी जनता की विविधता और विभिन्नता न हमम से हर एक म ओछे द्वेषो से ऊपर उठकर काम करने की क्षमता और इच्छा पदा कर दी। 3 लाख 50 हज़ार वग फुट म बना स्थायी समुच्चय राजधानी के लिए हमारा योगदान था। बहुत कल्पनात्मक ढँग से 120 एकड भूमि का उपयोग किया गया था। समुच्चय का निर्माण इस ढँग स किया गया था कि भावी आयोजक बिना किसी परेशानी के मले कर लें। नयी चीज़ो को शामिल करन के लिए इसम काफी गुजाइश छोड दी गयी थी। बडी सख्या म पेड, फूलदार झाडियाँ और फूल लगाये गये थे। बडी बडी इमारतें इस ढँग स ऐसी जगहो पर बनायी गयी थी कि मले के लिए अस्थायी कक्षो के निर्माण म कोई कठिनाई न आये। इस पूरे इलाके को

समतल करने और सजाने का काम विशेषज्ञों के एक दल को सौंपा गया था। पहली बार इस जमीन में पानी की पूर्ति, गंदगी की निकासी, टेलीफोन, बिजली और स्थायी मार्ग प्रणाली जैसी बुनियादी सुविधाओं की व्यवस्था की गयी। इनकी व्यवस्था भी इस ढंग से की गयी कि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उनका विस्तार किया जा सके। 2 हजार कारों और बसों के खड़े होने का स्थान बनाया गया। संकटकाल के लिए कुछ झीलों में पानी भर दिया गया। हरे भरे लॉन थके हुए इंसान को राहत पहुँचाते। पेरिस में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मेले के संघ ने जो मानदंड निर्धारित किया था उसे पूरा करने से हम उस प्रतिष्ठित संस्था के सदस्य बनने के योग्य हो गये। शुरू से ही यह इरादा किया गया था कि एक अति आधुनिक केंद्र की स्थापना कर दी जाय ताकि बरसात को छोड़कर बाकी साल वहां प्रदर्शनियां की जा सकें। हमने यह तय किया था कि नाम रखने में राजनीतिक हवालों का इस्तेमाल न किया जाये। चार मुख्य द्वारों के जो कल्पनात्मक नाम रखे गये उनसे जन आकांक्षाएँ प्रतिध्वनित होती थीं। दर्शकों की भारी संख्या आशा द्वार, सौहार्द द्वार, बंधुत्व द्वार और मैत्री द्वार से प्रवेश कर सकती थी। ग्रामीण समुच्चय में विभिन्न इलाकों के ग्रामीण जीवन का चित्रण किया गया था जहां कारीगर अपनी परंपरागत पृष्ठभूमि में अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। यह एक अद्भुत दृश्य बन गया। इससे आज भारत जो कुछ है और जिसके बल पर हम सदियों से अपनी हैसियत कायम किये हुए है, उसकी निरंतरता और गर्व की नयी भावना पैदा हुई।

इस अवधि में मेरे राजनीतिक कार्यकलाप मेरे असली काम से अलग थे। पाकिस्तान के साथ लड़ाई से कई लोगों के दिमाग में यह शक पैदा हुआ कि हम मेला कर भी पायेंगे या नहीं? लेकिन मुझे परिणाम के बारे में कोई डर नहीं था और मैं संदेह करने वाले लोगों से यही कहता रहा कि जल्दी ही एक नया देश मेले में आने वाले लोगों में शामिल हो जायगा, इसलिए दूसरों को मेले में आने के लिए राजी करने की जो कोशिशें की गयीं उसके नतीजे में 48 देशों ने मेले में आने का फैसला किया। वे सिर्फ आये ही नहीं, बल्कि उनमें सर्वोत्तम बनने की होड़ लग गयी। मेला तीन सप्ताह चला और हर रोज अभूतपूर्व भीड़ मेला देखने के लिए आती थी। यह मेले की सफलता के बारे में जनता का प्रमाण पत्र था। लाखों लोगों के लिए यह वास्तव में "एक याद रखने वाला मेला" था। यह अविस्मरणीय घटना भारत की स्वाधीनता की रजत जयंती के साथ साथ हुई थी। इस मेले में 70 करोड़ रुपये का व्यापार हुआ। यह व्यापार मेले जैसी संस्था के इस्तेमाल और उसकी वास्तविक क्षमता के बारे में चेतना पैदा करने का प्रयास था।

मेले में सारी दुनिया से जो सांस्कृतिक दल आये उन्होंने देशों के बीच एक आश्चर्यजनक कड़ी का काम किया जो सिर्फ व्यापार और वाणिज्य तक ही सीमित नहीं थी। उत्साही भीड़ ने उनके बेहतरीन कला प्रदर्शन की सराहना की। प्रमुख राष्ट्रीय कलाकारों, नर्तकों, संगीतज्ञों और गायकों ने नाट्यशाला अथवा खुले स्टेडियम में अपने बेहतरीन प्रदर्शन किये। उनका प्रदर्शन देखने के लिए भारी संख्या में दर्शक जमा होते थे। प्रदर्शन में भाग लेना कलाकार जगत की विशिष्ट घटना बन गयी। उनमें से बहुतों ने यह महसूस किया कि एशिया'72 के दौरान अपनी कला का प्रदर्शन एक याद रखने वाली घटना थी। बेगम अख्तर ने, 'जो भारत में मलिका ए-गजल कहलाती थीं कभी खुले में नहीं गाया था और वह ऐसा करने को तैयार भी नहीं थीं, लेकिन वह आखिर में राजी हो गयीं। अपने

प्रदशन के बाद वह इतनी रोमांचित हो उठी कि उन्ह यह कहते हुए सुना गया, "आज गान म खास मजा आया। जी चाहता था कि उड जाऊँ।" कई राज्यो के मडप (पवलियन) प्रभावशाली थे और भारत के विभिन्न भागो मे हुई औद्योगिक प्रगति दिखाते थे। जो स्थानीय व विदेशी दल निजी तौर पर मेले मे शामिल हुए थ, वे बहुत उच्च स्तर के थे। मेला देखने के लिए आने वाली भीड को यह मौका मिला था कि वह खुद तय करे कि अच्छे, वेहतर और वेहतरीन म क्या फक है।

विकासशील देशो क साथ व्यापार म वृद्धि पर जोर दिये जाने के अपने फायदे हुए। इस तथ्य ने कि हमने अरबो के साथ तेल की कीमता मे वद्धि से पहले यह नीति अपना ली थी, हमारी स्थिति अच्छी कर दी। इससे यह पता चलता था कि हम सचमुच आत्म निभरता प्राप्त करना चाहते है और यह कि हम अरबा की नयी दौलत के लालच से प्रेरित नही हुए है। हमने अल्जीरिया, इराक मिस्र, सूडान लीबिया, जोडन, ईरान और अफगानिस्तान के साथ परपरागत व्यापार को नया आयाम दिया। मेरी इस प्रारभिक टिप्पणी को कि "हम चाय के वदले खजूर और मेव का सौदा करने से आगे जाना चाहिए हम उन चीजो को वेचने की भी कोशिश करनी चाहिए जो हम अपने कारखाना म बनाते है" कई राजधानिया म हुई व्यापारिक वार्ता म वहुत सराहा गया। उन्ह यह वताने की कोशिश की गयी थी कि हम जो मशीनी चीजे बनाते ह वे देखने म भले ही अच्छी न लगे लेकिन व उनकी आवोहवा म वेहतर सावित होगी और बहुत सँभालकर उपभोक्ताओ द्वारा ठीक से इस्तेमाल न किये जाने पर भी ठीक से काम देती रहेगी। इसी तरीके स हमारे तकनीशियन भी उनके सतोष क मुताविक अत्यधिक निपुणता का काम पूरा करने म सक्षम हैं। हम सवका एक ही परिवार है और हमारे ऊपर एक दूसरे क हितो की सुरक्षा करने का भरासा किया जा सकता है। जव व अपने लाभ के लिए तर्क देते तो उन्ह बहुत सब्र के साथ सुनना पडता। ऐसे हालात म हमारे इन तर्कों के अच्छे परिणाम निकलते। उदाहरण के लिए, अफगानिस्तान की ओर से समझौता-वाता करने वाले एक व्यक्ति ने वहुत दुख के साथ कहा, 'भारत मवा क आयात को क्या सीमित कर रहा है? मेहरबानी करक अपने हिंदू दोस्ता को बताइय कि वेदा म भी वादाम के फायदा का जिक्र मिलता है। मैं अफीम नही बेच रहा हूँ बल्कि मवा बेच रहा हूँ। यह तो तदुरुस्ती के लिए फायदमद है।"

ऐसे कई उदाहरण है जहाँ व्यापारिक अदूरदर्शिता ने विदश नीति के सिल-सिले म की गयी पहलकदमी का नुकसान पहुँचाया, इसलिए अगर भारत न एक म फ़ायदा उठाया तो दूसरे म नुकसान। श्रीलका ने बार-बार यह अनुरोध किया कि हम उनसे सुपारी खरीदें लेकिन इस अनुरोध को मानने स हमारा इकार इस सिलसिले मे एक ज्वलत उदाहरण है। उसने दो प्रधानमत्रिया ने इसके बारे न हमारे तीन प्रधानमत्रियो को लिखा था। वाणिज्य मत्रालय म इसकी भारी भर कम फाइल दखकर हँसी भी आती है और झुझलाहट भी होती है। हमारे यहाँ सालाना एक अरब रुपय की सुपारी की खपत है, फिर भी उद्योग भवन मे वठे हुए हाकिम लोग मुसीवत म पडे पडोसी स दस लाख रुपय की सुपारी खरीदने के लिए तयार नही। हमारे शक्तिशाली सरकारी अफसरा न एक के वाद एक प्रधानमत्री के सामने जो मसविदे पश किय थ उनका मतलब यह था कि यह अनुरोध मान लेने स हमारी अथव्यवस्था तबाह हो जायगी जो बदल म श्रीलका की अथव्यवस्था को भी चौपट कर दगी। यह नामाकूल वात थी, इसलिए मैं जब

श्रीलका गया तो मैं यह अनुरोध मानने के लिए तयार होकर गया था। श्रीमती श्रीमावा बदारनायके ने सवाल उठाया कि व्यापारिक घाटे को कसे सतुलित किया जाय ? श्रीलका हमसे 20 करोड रुपय का सामान खरीदता है और बदल म केवल 50 लाख का सामान हम बेचता है। मैंने प्रस्ताव रखा कि उनके पास जो कुछ भी हम देने के लिए होगा वह हम खरीद लेंगे। वह और उनके साथ मौजूद वरिष्ठ अधिकारी एकदम से चौंक गये। उन्होंने कहा "आप एक भारतीय की तरह म बात नही कर रहे हैं।" मैंने जवाब दिया, "मैडम, हमने कई लाभदायक सबक सीखे हैं। आपका बोझ कम करना उनम से एक है।"

अफ्रीका म भी यही कहानी दोहरायी गयी। यहाँ व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र म हमारा सौदा कभी पट नही पाया। अफ्रीकी देश चाहते थे कि पहले हम उनसे कुछ खरीदें, उसके बाद ही वे हमसे अपनी जरूरत का सामान खरीदन के लिए बटुआ खोलेंगे। लेकिन उनके पास बेचने के लिए नाममात्र का सामान था। हस्त कला की वस्तुएँ अलबत्ता थी, लेकिन हमने उन वस्तुओ के आयात पर रोक लगा दी थी। इसलिए मैंने एक बीच का रास्ता निकाला। भारत का हस्तकला एव हथ करघा निर्यात कार्पोरेशन विदेशो म 'सोना शाप्स (केंद्र) चलाता है। ये केंद्र बड पमाने पर यूरोप और अमरीका म बचने के लिए अफ्रीकी माल ले सकते हैं। इस तरह अफ्रीकिया को हमारे इन केंद्रो के जरिए अपना माल बेचन के लिए बाजार मिल जायगा और हमे अपनी आयात नीति भी नही बदलनी पडेगी। लेकिन अमरीका के बारे म तो हालत और भी खराब थी। बुनियादी तौर पर इसकी वजह तटकर (टरिफ) की ऊँची दरें थी। बको और जहाजरानी की सुविधाओ के अभाव ने हमारे बीच व्यापार की सभावनाओ को और कम कर दिया था। वस्तुत इनकी वजह से हमारा निर्यात व्यापार अपाहिज सा हो गया था। सारे मामले की असगति सोचकर ही खून खौल उठता था। एक भारतीय को बबई से बसरा माल निर्यात करने के मुकाबले म एक आस्ट्रेलियावासी को अपना माल लदन भेजना सस्ता पडता था। इसी तरह से विकासशील देशो म हम अपनी उपज की कीमत से भी ज्यादा जहाजरानी तथा बको की सुविधा और बीमे के लिए अदा कर देते थे। सौ रुपये की कीमत की किसी चीज को एशिया या अफ्रीका मे किसी जगह निर्यात करने पर इन तीन मदो म 150 रुपय का अतिरिक्त खच उठाना पडता था। यह हमारे बूते के बाहर की बात थी। इस तरह हमे एक बहुत बडी खाई को पाटना था। हममे से जो सम्पन्न थे वे अपने वित्तीय साधनो को इकट्ठा करके यह काम पूरा कर सकते थे और हम अपने काम करने वालो की शक्ति से। फौरन इसका कोई ठोस परिणाम नही निकला, लेकिन कुछ बडी प्रायोजनाओ के लिए आधार तयार कर लिया गया था। इनम से कुछ की रूपरेखा तयार की गयी और उन पर बाद म अमल भी किया गया, लेकिन इस चुनौती का सामना करने और वास्तविक उपलब्धि के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

हमारी औद्योगिक प्रगति की तेज रफ्तार और उसकी विभिन्नता की कुछ ऐसी गुत्थियां थी जिन्हे सुलझाना जरूरी था। एक तरफ शराबबदी की नीति थी और दूसरी तरफ अपने उत्पादन का निर्यात करने की शराब निर्माताओ की उत्कठा। सरकारी नियमो को तर्कसगत बनाने के लिए वाणिज्य और वित्त मत्रालयो के बीच जो लिखा पढी हुई थी उसे ध्यान मे रखकर इस सवाल पर गौर करने के लिए एक समिति बना दी गयी। शराब के निर्यात की सभावना पर गहराई से गौर करना था। तत्कालीन वित्तमत्री ने, जो जानते थे कि मै शराब

नही छूना, मुझे इस समिति का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। वाणिज्य उद्योग, विदेश और गह मत्रालयो के अलावा इस समिति म उन राज्या के प्रतिनिधि भी शामिल कर लिये गये जहा शराव वनान के कारखान थे। शराव के कुछ प्रमुख निमाता भी समिति म रख लिय गये। विदेशी वाजारा म शराव के आयात को आमान वनान के लिए कुछ वाधाओ को दूर करना इस समिति का मुख्य उद्देश्य था। उपयोगितावादी हाने की जरूरत थी। शुरू म दिल्ली म तनात कुछ मैत्रीपूण राजदूता के साथ एक अनौपचारिक वठक की गयी और इस तरह के अभियान के वार म उनकी राय मागी गयी। उन्हान कहा कि हम भारतीय शराव खरीदन के लिए तयार है वशर्ते कि दूसरे देशो से मँगायी जान वाली शराव के मुकावले म इसे सस्ता वनान के लिए आवकारी शुल्क और चुगी हटा दी जाये। उन्हान हमारी वियर जिन और रम को खासतौर पर पसद किया। यह तय पाया गया कि राज्य सरकारा को चुगी रद्द करन के लिए राजी कर लिया जाय और केंद्र से वहा जाय कि वह भारत म विदेशी राजनयिक मिशनो की जरूरत की शरावपर सीमा-शुल्क न ले।

विदेशा म हमारे कुछ दूतावासा की तरफ से अगला सुझाव आया। वे यह चाहते थे कि शराव की मशहूर अतराष्ट्रीय किस्मो के मुकावले भारतीय शराव की वहा पहुँचन पर ली जाने वाली कीमत कम रखी जाये। इसका मतलव यह हुआ कि हम अपन कुछ पुराने नियमो को वदलें ताकि विश्व वाजार म भारतीय शराव दूसरी जगहा की शराव से टक्कर ले सके। उदाहरण के लिए, 1892 के तटकर कानून मे यह व्यवस्था थी कि भारतीय वदरगाह म किसी भी दूसरी चीज के मुकावले शराव की पेटियो की ढुलाई कई गुना ज्यादा थी। इसके साथ ही एसी ही एक और शत यह भी थी कि माल लकडी के वडे-वडे डिब्वा म ले जाया जाय। मजवूत दफ्ती के डिब्वा के इस्तेमाल पर रोक लगा दी गयी थी। अतिरिक्त वोझ का मतलव विदेशी जहाजा के लिए अतिरिक्त भाडा था। उस वक्त अँग्रेजो का इरादा वुनियादी तौर पर यह था कि ब्रिटेन का एसे भारतीय माल के निर्यात को निरुत्साहित किया जाय। भारत म शुरू शुरू म जो अँग्रेज आये उनम से कुछ को ये चीजें वहुत वढिया लगी और यह डर पदा हो गया कि राजा, महाराजा और नवाव आशा, कस्तूरी और गाजा जैसी जो भारतीय शरावें पश करते थे उनकी लोकप्रियता इस क्षेत्र म ब्रिटिश प्रभुत्व के लिए खतरा वन जायेगी।

इस समिति न इन सुझावा पर ध्यान दिया और महसूस किया कि इस क्षेत्र मे विदेशी मुद्रा कमान की सभावना है लेकिन सभावित नियातका को जोखिम उठान के लिए उत्साहित करने के वास्ते नये नियमो की जरूरत है। हमन कुछ मीटिंगें की। उत्पादको का यह अनुरोध मान लिया गया कि भारतीय शराव का लाकप्रिय वनान के उनके प्रयासा को सहायता दी जाये। उन्हे इसकी भी इजाजत दे दी गयी कि वे समथ खरीदारा को वियर, जिन, रम और ह्विस्की मुफ्त वाँटन के लिए पश करें। व यह भी चाहत थ कि कुछ विदेशी एयरलाइना को शराव की छोटी छोटी वोतलें उपहार म दी जायें, जो वे अतर्राष्ट्रीय उडाना म इस्तमाल करें। यह एक प्रचलित तरीका था।

इस मसले की छानबीन पूरी तेजी से हो ही रही थी कि अल्जीरिया की आर से एक आकपक प्रस्ताव आया। वे हम रियायती दर पर भारी मात्रा मे अपनी अगूर की शराव वेचना चाहते थे। यह वडे-वडे जहाजो मे भरकर लायी जान वाली थी और इस वोतला म भरन और लेवुल चिपकान का काम भारत म किया

जा सकता था। फिर हमारे व्यापारी इसे आस्ट्रेलिया व दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य दशो को निर्यात कर सकते थे। शीपस्थ स्तर पर इस प्रस्ताव को स्वीकृति दी गयी। भारत के एक शराब के उद्योगपति न, जो अल्जीरिया हो आय थे, कहा कि भारत म वढिया अगूर की शराब दो रुपये वोतल वेची जा सकती है। इसका नियात मूल्य और भी कम होता। इस लाभदायक सौदे क बारे म वातचीत करने पर सक्रिय रूप से विचार हो रहा था, लेकिन इसी बीच अल्जीरिया वाला न यह तय किया कि इसका व्यापार खुद ही करना उनके लिए अधिक लाभदायक होगा। मैंन भी उसी वक्त वाणिज्य मत्रालय छोड दिया था और इस तरह से इस "सुरा अभियान" का खात्मा हुआ। मोरारजी देसाई के नेतृत्व मे बनी नयी सरकार के जमाने म दूसरे सुस्वादु पेयो को प्रमुखता और सरपरस्ती मिली।

मैं जब वाणिज्य मत्रालय मे था तो दिल्ली के केंद्रीय कुटीर उद्योग एपारियम और अखिल भारतीय हस्तकला बोड म घाटे और गडबडी की लगातार रिपोर्ट आती रही थी। जिन मूल उद्देश्यो से इनकी स्थापना की गयी थी उनस व दाना दूर हट गये थे। इनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह था कि हमारे कारीगरा के उत्कृष्ट शिल्प कौशल को भावी पीढी के लिए सुरक्षित रखा जाय। इन कलाआ का विकास करन और उन्हे पुनर्जीवित करने के लिए चेतन दिशा की जरूरत थी, लेकिन 1973 तक इस पहलू की सारी सजीदगी खत्म हो चुकी थी। इस काम क लिए लगन बिलकुल गायब हो गयी थी। एक जनगढ और बोझिल व्यवस्था क अधीन अखिल भारतीय हस्तकला बोड के काम की देखरेख होती थी और भारी कारोबार के बावजूद एपोरियम घाट पर चल रहा था। श्रीमती इदिरा गाधी इन सगठना की कट्टर समथक थी। उन्हे भी इनके खराब कामन्काज क बारे म शिकायतें मिली थी। उन्होन वाणिज्य मत्री से इस मसले की जाच करने के लिए कहा। उन्होने मुझसे कहा कि म इन दोना का काम सँभालू और उन्हे कोई कडवी दवा दू। मैं एक का प्रेसीडेंट और दूसरे का चेयरमन बन गया। यह मत्रालय म मरे सचिव के काय के अतिरिक्त काम था। इन सगठना स सबद्ध कुछ विशिष्ट महिलाएँ बेचन हो गयी, लेकिन बुराई की जड पहचानन म कोई दिक्कत नही हुई। पुरानी बीमारी के इलाज का तरीका फौरन सोच लिया गया। मरे दो बुनियादी सुझाव थे कि दोना के लिए छोटे छोटे निर्देशक मडल बनाये जायें और एपोरियम मे जमा माल की तजी स निकासी के आदश दिय जायें। उनके गोदामा म 50 लाख रुपय का माल भरा पडा था। एपोरियम म माल की चद रियायती विक्रियो ने ही कमाल कर दिया। हस्तकला बोड द्वारा चलाय जान वाले विभिन्न प्रशिक्षण केंद्रो का और अधिक चुस्त और कारगर बनाया गया। साथ ही वहाँ काय प्रधान अनुशासन पर बल दिया गया। इसी तरह स एपोरियम को भी सलाह दी गयी कि वह व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाय और यह उम्मीद छोड दे कि उस हर बार बाहरी मदद स उबार लिया जायगा। यह मुश्किल काम नही था, क्योकि उस वक्त एपोरियम म 80 हजार रुपय रोजाना की फुटकर बिक्री होती थी। नयी नीति न यह उम्मीद पदा की कि मामला दुरुस्त होन लगगा।

1973 म एक दिन अचानक मुझस पूछा गया कि क्या मैं किसी और क्षेत्र म किसी और पद पर काम करन क लिए तयार हूँ? एल० एन० मिश्र न रेलवे मत्री का पद सँभाल लिया था। उन्होन मुझे बुलाया और वह दिल्ली के तत्कालीन उप-राज्यपाल बालश्वरप्रसाद के निराशाजनक कायकाल के बारे म बात करन लग। उन्होन सुझाव दिया कि मैं यह पद सँभाल लूँ। एसा लगा जस वह मजाक कर रहे

हो, लेकिन उसके कुछ दिन बाद ही प्रधानमंत्री ने मुझे बुलाया और पूछा कि क्या मैं इस पद पर काम करने के लिए राजी हूँ ? मुझे इतना ताज्जुब हुआ कि मेरे मुह से निकल गया, "अगर आप यही देखना चाहती हैं कि मेरे चेहरे पर कालिख लग जाय तो मैं जूते की काली पालिश की डिबिया खरीदकर अपने चेहरे पर मले लेता हूँ।" वह मुसकरायी और पूछा, "तुमने यह बात क्यो कही ?" मैंने उन्हे बताया कि मै क्या महसूस करता हूँ। दिल्ली का प्रशासन तीन हिस्सा मे बँटा हुआ था। मेट्रोपोलिटन काउंसिल (महानगर परिषद) पर काग्रेस का नियत्रण है, कार्पोरेशन जनसघ के हाथ मे है और नयी दिल्ली नगरपालिका नामजद है। मत्री और गृह मत्रालय के अधिकारी अपना रोब अलग दिखाते है और दखल-अदाजी अलग करते है। यह किसी को भी एक दिन मे पागल बना देने के लिए काफ़ी है।

अल्जीरिया मे उसी वर्ष सितबर मे चौथा गुट निरपेक्ष शिखर सम्मेलन हुआ। श्रीमती इदिरा गाधी की साख उस समय तक गगनचुबी हो गयी थी। उन्होने भी सम्मेलन मे भाग लिया। भारत मे आम चुनावो मे उनकी भारी विजय हुई थी और देश ने उनके नेतृत्व मे जग जीती थी। इस विभीषिका से दूसरे सबसे बडे मुस्लिम देश बागलादेश का उदय हुआ। गाथा पुरुष शेख मुजीबुरहमान "हमारी प्यारी बहन और हमारे महान नेता जवाहरलाल नेहरू की पुत्री" मे निष्ठा व्यक्त करने के लिए अल्जीरिया मे मौजूद थे। मुझे एक बार फिर शिष्टमडल मे शामिल कर लिया गया था और मुझे शासनाध्यक्षो के साथ प्रधानमत्री की बातचीत और मुलाकातो का बदोबस्त करने का काम सौंपा गया था। भूमध्यसागर के पूर्वी तट पर उनका खूबसूरत बँगला अनौपचारिक आदर सत्कार का केंद्र बन गया। निश्चितता और सुख चैन के वातावरण मे समस्याओ को हल करने के लिए छोटी छोटी सौहार्दपूर्ण व मैत्रीपूर्ण गोष्ठिया होती। उन्हें सम्मानजनक दरजा देने के लिए अल्जीरियाई मेजबानो ने कोई कसर उठा नही रखी थी। उन्होने भी बहुत ही खूबी से इस अद्वितीय सम्मेलन मे अपने विचार रखे। लोगो ने ध्यानमग्न होकर उनके भाषण सुने और इन भाषणो का जोरदार स्वागत और सराहना की। उन्होने सम्मेलन को दिशा प्रदान की और सम्मेलन मे एकत्रित लोगो ने यह स्वीकार किया कि सम्मेलन को सफल बनाने मे उन्होने बहुत योगदान किया है।

एल्जियर्स मे कुछ मनोरजक घटनाएँ भी हुई। एक दिन इदी अमीन भारतीय कर्मचारियो के एक बडे दल के साथ श्रीमती गाधी से मिलने आये। उन्होने कहा कि भारत के लिए उनके दिल मे बहुत सद्भावना है। उन्होने कहा कि उनके बारे मे पश्चिमी समाचारपत्रो व अन्य सचार साधनो द्वारा जो झूठी और मनगढत कहानिया फैलायी जाती थी, उन पर कभी यकीन न किया जाय। खुले अधिवेशन मे उनका भाषण उन्ही की तरह खोखला था। वह चाहते थे कि गुट निरपेक्ष आदोलन का एक स्थायी सचिवालय कायम कर दिया जाय और उन्होने उगाडा की राजधानी मे इसके लिए जगह देने का भी प्रस्ताव रखा। उनके अलावा लीबिया के तडक भडक वाले कर्नल मुअम्मर गद्दाफी भी थे। वह अपने सिद्धातो को बताने और उनका बखान करने के लिए इतने आतुर थे कि उन्होने सिद्धात अपनाने वालो को लालच भी दिये। गबन के राष्ट्रपति जिन्होने गद्दाफ़ी के कहने पर इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था, उनकी बहुत बडी सफलता थे। सम्मेलन मे भाग लेने के लिए जो लोग आये थे उनमे से अधिकाश परिणाम से बहुत प्रसन्न और सतुष्ट होकर लौटे।

मैं इसके लिए उत्सुक था कि प्रधानमन्त्री एल्जियस में अपने प्रवास के दौरान शाह फसल से भी मिल लें। हम सब जानते थे कि बागलादेश के सकट के दौरान वह हमारे सबस कटु आलोचको मे से थे। सऊदी अरब के एक मन्त्री ने उन दिनो सऊदी अरब की यात्रा करन वाले एक भारतीय प्रतिनिधि से कुछ अप्रिय बातें कही थी, लेकिन हवा का रुख अब हमारे पक्ष म था। यह शरीफ अरब बुजुग शाह फसल जवाहरलाल नहरू के बहुत बडे प्रशसक थे और उनके दिल मे नेहरूजी की एकमात्र पुत्री के लिए जगह थी। मैं यह जानता था कि कबायली मूल्यो का क्या अथ होता है। मै चाहता था कि वह (श्रीमती गाधी) उनस इसी हैसियत से मिलने जायें। खयाल यह था कि वह उनसे कह कि अपने पिता की मत्यु के बाद वह उन्हे परिवार का एक बुजुग समझती है और उनका आशीवाद लन आयी है। इस मान वीय रुख का शाह पर बहुत अच्छा असर पडता, लेकिन विचारक हक्सर और उनके जी-हुजूरियो की समझ थी कि सऊदी अरब ने हमारा विरोध किया है, इस लिए हमारी तरफ से पहलकदमी किये जाने की कोई जरूरत नही है। हक्सर चाहत थे कि शाह "अपना किया खुद भुगतें।"

मैंन प्रधानमन्त्री से आग्रह किया कि अरब लोग और उनके पूवज सदिया स रेगिस्तान की गरमी म झुलस रहे है, लेकिन वक्त बदला है और अब वे इस हैसियत मे है कि दूसरो को भट्टी म झाक दें। उन्होन जान के लिए रजामदी जाहिर की, लेकिन उस समय के विदेशमन्त्री स्वर्णसिह मुझसे एक बात कहत और उनस दूसरी। आखिर मे गिरोह एक बार फिर जीत गया। लेकिन इसका नतीजा क्या हुआ? दो महीना के अदर अरबो न तेल की कीमते बढायी और सऊदी अरब उनका सबस बडा प्रवक्ता बन गया। हम न सिफ यह चाहते थे कि हम लगातार तेल मिलता रहे बल्कि विदेशी मुद्रा की कठिन स्थिति देखते हुए हम भुगतान की आसान शर्तें भी चाहते थे। हक्सर को शाह के लिए खत का मसविदा तयार करना पडा और उसके साथ एक मुनासिब सौगात भेजन के बारे म मेरी राय माँगी गयी। अगर प्रधानमन्त्री फसल स ऐल्जियस म मिल ली होती तो गिडगिडाते हुए पत्र भेजने की जरूरत न पडती। ऐल्जियस म शाह के पास बैठे हुए मुजीब ने एक बार उन्हें बागलादेश के सकट के बारे म उनकी गलती की याद दिलायी थी। शाह ने दूसरो स भी सुना था कि पाकिस्तान म हालात ठीक नही हैं इसलिए तेल सकट म शाह न भारत से कुछ भी न माँगा होता। वह एक साल पहले के गलत विरोध की क्षति-पूर्ति करना चाहते। हकीकत म शाह गिडगिडाते, हमको गिडगिडाने की जरूरत न पडती। अगर गिरोह की राजनीतिक बेवकूफी आडे न आती तो भारत को उनकी सद्भावना मिल गयी होती।

शिखर सम्मेलन के साथ, जिसने सदस्य देशो के बीच आर्थिक सहयोग बढान का नारा दिया था, अल्जीरिया ने बहुत शानदार पमाने पर वार्षिक व्यापार मेला आयोजित किया था। हमने इस बात का ध्यान रखा था कि भारत इस मेले म बहुत प्रभावशाली ढंग स भाग ले। इस बहुत सराहा गया। हाथ स खुशखत लिखे गये कुरान ने, जिस पर शहशाह शाहजहाँ और औरगजेब की मुहर थी, भारी भीड को आकर्षित किया। इस देखन के आतुर रोमांचित अल्जीरियों को नियन्त्रित करने के लिए स्थानीय अधिकारियो ने सशस्त्र पहरदारो की व्यवस्था की थी। उनका टेलीविजन रोज कुरानशरीफ का दर्शाता। कई सरकारो और देशो के प्रधान इस अद्वितीय नायाब चीज को देखन के लिए भारतीय मडप में आये। इसस हमारा जो प्रचार हुआ उसस स्वाभाविक रूप स पाकिस्तानी राजदूत को क्षोभ

हुआ। उन्होने चिढकर पूछा, "क्या यह धर्म निरपेक्षता है ?" मैंने बहुत ठडे दिल से जवाब दिया, "धर्म निरपेक्षता का मतलब नास्तिकता नही है। इसके अलावा हमने आपसे नसीहत ली है। अगले साल मुसलमानो की भीड भारत से यहा आकर मडप के सामने बाजमात नमाज़ अदा करेगी। इससे भारत मे छ करोड से ज्यादा मुसलमानो की मौजूदगी साबित हो जायगी।" यह सुनकर वह खामोश हो गये।

कुछ महीने बाद प्रधानमत्री ने एक सुझाव दिया जिससे मैं सोच मे पड गया "क्या आप दोबारा राजनीतिक क्षेत्र मे आना चाहेंगे ?" विचार यह था कि मैं शुरू मे राज्यसभा का सदस्य बन जाऊँ। मैंने इस पर गहराई से सोचा विचारा। सरकारी अफसर के रूप मे 30 साल तक काम करने की वजह से प्रशासकीय मसलो के प्रति मेरा एक खास दृष्टिकोण बन गया था। उस पृष्ठभूमि से छुटकारा पाना और ससदवेत्ताओ मे घुल मिल जाना मेरे लिए आसान नही था। मुझे यह भी लग रहा था कि इस दिशा मे एक कदम उठाने से मुझे सभी तरह का दायित्व उठाना पडेगा। बहुत दिनो पहले ही मैं यह समझ चुका था कि ज़िदगी मे किसी न किसी वक्त इधर उधर भागना खत्म पडेगा, इसलिए मैं इस नये उलझाव को मजूर नही करना चाहता था। इसी बीच डी० पी० चट्टोपाध्याय ने इसे एक 'हकीकत' के रूप मे पेश करने की कोशिश की। वाणिज्य मत्रालय मे हम लोग यह गौर कर रहे थे कि भारत मे और विदेशो मे मेलो का आयोजन करने वाले कई सगठनो के कार्य-कलापो मे समन्वय लाने के लिए व्यापार मेला प्राधिकरण का गठन कर दिया जाये। एक दिन सवेरे मत्री महोदय मेरे कमरे मे आये और उन्होने मुझसे पाच वर्ष के लिए उसकी अध्यक्षता स्वीकार कर लेने को कहा। लेकिन तब तक मेरे विचार और भी दृढ हो चुके थे। मैंने नौकरी छोडने का फैसला कर लिया था। इसीलिए मेरे सेवाकाल मे विस्तार की कोशिश करने का सवाल ही नही पैदा होता था। मैंने जब यह बात उन्हें बतायी तो उन्होने जवाब दिया कि इस प्रस्ताव पर प्रधानमत्री की मजूरी ले ली गयी है और मुझे उनको निराश नही करना चाहिए। इसलिए उन्होने मेरे इकार को गभीरता से नही लिया और न मेरी जगह कोई दूसरा आदमी ढूढने की कोशिश की। मई 1974 मे मैंने अपने फैसले पर अमल किया और अपना कार्यकाल खत्म होने से कुछ पहले नौकरी छोड दी। चट्टोपाध्याय को सबसे ज्यादा ताज्जुब हुआ और उन्होने महसूस किया कि उन्हें उन्ही के शब्दो मे 'मँझधार मे छोड दिया गया है।' उसके कुछ दिन बाद उसी साल होने वाला अतर्राष्ट्रीय मेला बहुत ही बेतुके ढंग से रद्द कर दिया गया जबकि नवबर 1974 मे उसके शुरू होने मे कुछ ही महीने रह गये थे। मेला प्राधिकरण के गठन का विचार भी हवाई खयाल ही बना रहा।

मैंने गर्व की भावना और अपने जीवन को दूसरी दिशा देने की भारी उम्मीदो के साथ अवकाश ग्रहण किया। मैंने सोचा कि अब वक्त आ गया है कि सामाजिक दावतो का दौर सीमित कर दिया जाय और मैं अपनी दिनचर्या बदल लू। मुझे अपनी उर्दू किताब कैदी के खत को सँवारने सुधारने का मौका मिला। जल्दी-जल्दी उसका हिंदी सस्करण भी प्रकाशित हो गया। उसका अंग्रेजी सस्करण निकालने का दबाव पडा लेकिन योजना अधूरी रह गयी। मैंने अपनी आजादी का आनद लेना शुरू ही किया था कि शिक्षामत्री नूरलहसन ने जून 1974 मे एक दिन शाम को मुझे फोन किया 'प्रधानमत्री ने अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी मे राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत चार व्यक्तियो मे से एक आपको नामजद करने की इच्छा व्यक्त की है।" वह मेरी रजामदी चाहते थे। मैं चाहता

था कि पहले प्रधानमंत्री से पूछ लू कि मेरी किस बात से चिढकर मुझे शामिल किया गया है। उन्होने विवादग्रस्त मुस्लिम विश्वविद्यालय कानून के बारे म मुझसे बातचीत की। मेरी समझ थी कि शिक्षामंत्री ने शरारत से इसे लागू किया है। मैंने उनसे कहा कि कानून को रद्द करना पडेगा। प्रधानमंत्री ने कहा, "नूरुल हसन एक हद की ओर जा रहे है जबकि अलीगढ वाले उनका विरोध करते हैं और नूरुलहसन का बिलकुल प्रतिकूल रुख अपनाना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि आप बीच का कोई रास्ता निकालें। आम राय कायम करने की कोशिश कीजियेगा।"

इस काम को करने का लालच रोक सकना मुश्किल था, खासतौर पर इसलिए कि इसका सबध ताल्लुक उस सस्था से था जहाँ मैंन शिक्षा पायी थी। मेरे परिवार का सबध तो इस सस्था से 1875 म उसके शुरू होन के समय ही से था। उसके सस्थापक सर सयद अहमद खा लगभग उसी समय मेरे पिता स मिले थे। मेरे एक बडे भाई मोहमडन ऐंग्लो ओरियटल कॉलेज म भरती होने वाले पहल 92 छात्रो म से एक थे। वह एम० ए० ओ० कॉलेज के नाम स आमतौर पर मशहूर था। अलीगढ ने देश के जीवन मे महत्वपूण भूमिका अदा की थी। और लगभग एक सदी तक मुसलमानो के विचारो को प्रभावित किया था और वह उनके दिमाग पर छाया रहा था। इसने कुछ निश्चित मूल्य अपनाये थे, लेकिन 1940 के दशक के एक दौर म यह धार्मिक उन्माद का शिकार बन गया। लेकिन कुछ और सस्थाओ म भी ऐसा ही हुआ था। हमम से अधिकाश ने इसका नतीजा भुगता था। स्वाधीनता के बाद अलीगढ ने शक्षिक उत्कृष्टता के निरपेक्ष केंद्र के रूप म अपनी खोयी हुई परपराओ को फिर से कायम करने की कोशिश की। डाक्टर जाकिर हुसेन और फिर बाद मे कनल बी० एच० जदी ने इसके लिए आवश्यक नतृत्व प्रदान किया। लेकिन 1970 के दशक के प्रारभ म मुसलमाना म यह भावना पैदा हुई कि विश्वविद्यालय और उससे सबधित लोगो के बारे म जान बूझकर गलत बातें उडायी जा रही है और उन्ह साप्रदायिक व सरकार विरोधी बताया जा रहा है। यह एक विडबना थी कि विश्वविद्यालय जितना ही ज्यादा गर-साप्रदायिक बनने की कोशिश करता, उतनी ही ज्यादा उसे बदनाम करन की कोशिश की जाती।

मैं जब अपनी नयी हैसियत से अलीगढ़ गया तो मैंन कायकारिणी म प्राध्यापको के प्रतिनिधियो को जागरूक समझदार और सहयोग करन वाला पाया। लकिन दो अन्य नामजद सदस्यो—हुसन जहीर और बी०एस० झा—न कायवाहक कुल पति खलीक अहमद निजामी की तरफ बहुत बहूदा रवया अपनाया। हुसेन जहीर, जो शिक्षामंत्री के मामा थ हर एक को धौस दत थ। बताया जाता था कि उन्होन प्रागण म बड प्राध्यापको की बेइज्जती की थी। उन्ह हर जगह दगलबाजी करने व रोब डालन की आदत थी। कायकारिणी की पहली ही बठक म उन्होन इस रवय का काफी सबूत दिया। मैंने सोचा कि एसा व्यक्ति किसी शिक्षा-सस्था की प्रबध समिति म कस आ गया। मैंने जब प्रधानमंत्री को इसकी रिपोट दी तो उन्होंने खामोशी स उस सुना और कुछ क्षण बाद बोला मैं यह तो जानता थी कि हुसन जहीर कट्टर आदमी हैं लकिन मैं यह सोच भी नही सकती थी कि वह एस आपत्तिजनक तरीके अपनायेंगे।

मेरे विश्वविद्यालय के सपर्क म आन स हितो का ध्रुवीकरण हो गया। अधिकाधिक लोग सुलह-समझौत की बातें करन लग। [illegible] ेग चाहत थ

कि क़ानून के बारे मे विवादग्रस्त बातें तय हो जायें। छात्रो, प्राध्यापको और विश्वविद्यालयो के पुराने छात्रो ने मुझे आश्वासन दिया कि मुस्लिम बुद्धिजीवियो की इस मसले पर सरकार के साथ झगडा करने की कोई इच्छा नही है। वे बार बार कहते "हमें कगार तक धकेल दिया गया है और नकारात्मक रुख अपनाने के लिए मजबूर कर दिया गया है।" वे सक्रिय भूमिका अदा करना चाहते थे और विभिन्न सप्रदायो के बीच और अधिक सदभाव कायम करने म सहायता देना चाहते थे। यह एक अच्छी बात थी और मैंने प्रधानमन्त्री को सुझाव दिया कि हालात के बारे मे मेरी या नूरुलहसन की बात मानने की जगह, वह सरकार के कुछ और व्यक्तियो को इसमे शरीक करके उनकी सलाह ले लें। इसी के अनुसार के० सी० पत, आई० के० गुजराल और आर० एन० मिर्धा, जो सभी राज्यमन्त्री थे, मुख्य सचिव पी० एन० धर और मेरी एक समिति बना दी गयी। नूरुलहसन को इसमे शामिल न करके उनकी गैर मौजूदगी नुमाया कर दी गयी। समिति ने मोटे मोटे तौर पर मेरे विचारो को स्वीकार कर लिया, सिर्फ धर ने, जो शिक्षा मन्त्री के इशारे पर काम कर रहे थे, कुछ बाधा डाली। गुजराल भी अपनी आदत के मुताबिक दोरुखी नीति अपनाये हुए थे, मुझसे एक बात कहते और उसके बिलकुल प्रतिकूल प्रधानमन्त्री को जाकर बताते। धर ने एक रिपोर्ट दी जिसमे विश्वविद्यालय म कानून व व्यवस्था की भयावह तसवीर पेश की गयी थी और यह सुझाव दिया गया था कि कार्यवाहक कुलपति को अराजक तत्वो को नियत्रण म लाने के लिए अनुमति व सहायता दी जाय। यह बिलकुल मनगढत रिपोर्ट थी और मैंने उस पर कडी आपत्ति की। मैंने कहा कि नूरुलहसन ने अपने विरोधियो को बदनाम करने के लिए यह रिपोर्ट लिखवायी है। मैंने बताया कि वह वाम-पथियो का भेस रख हुए अपने कुछ समर्थको की स्थिति मजबूत करने के लिए इसे 'प्रगतिशील' बनाम 'प्रतिक्रियावाद' का झगडा बनाना चाहते हैं। उनका दाव यह था कि अगर वह दूसरे खेमे को घोर प्रतिक्रियावादी दिखा दें तो प्रधानमत्री की नजरो म उनकी और उनके समर्थको की इज्जत बढ जायगी।

यह सही है कि अलीगढ मे ज्यादातर लोग दिल से मुस्लिम सप्रदाय की भलाई चाहते हैं, लेकिन उनमे साप्रदायिकता की बू-बास भी नही है और वे साप्रदायिकता के पास भी नही फटकते हैं। मैं किसी भी शक्ल म साप्रदायिक दृष्टिकोण को पसद नही करता, लेकिन अच्छी नीयत और अच्छे मसूबे वाले ऐसे लोगो को "धर्मांध और उपद्रवी" कहना सारी चीज का मखौल उडाना था। मैं जानता था कि बागलादेश के सकट के दौरान अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के 874 प्राध्यापको ने भारत की तरफ से लडने के लिए अपने खून से दस्तखत करके कसम खायी थी। क्योकि इस खबर स प्राध्यापको को साप्रदायिक की जगह राष्ट्रवादी होने की प्रसिद्धि मिलती, इसलिए शिक्षामन्त्री ने इसको राष्ट्रीय समाचारपत्रो मे छपने ही नहीं दिया। वह चाहते थे कि उनके देशवासी यह यकीन करें कि उनके और उनके कुछ चाटुकारो के अलावा अलीगढ म पढने और पढाने वाले सभी लोग घोर साप्रदायिकतावादी हैं। मैंने इस इल्जाम को सच्चाई और मूल्या-यनो को तोड मरोडकर पेश करने की एक बेईमानी की हरकत माना। इससे उसी विश्वविद्यालय का विकास खत्म होने का खतरा पैदा हो रहा था जिसने दभी और स्वार्थी लोगो को मक्खन रोटी खिलायी थी। मैंने 'स्वार्थी' शब्द इस लिए इस्तेमाल किया है कि मार्च 1977 म मन्त्री की गद्दी से हटने से पहले नूरुल-हसन ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से कहकर सुपरनुमेरेरी (अतिरिक्त)

प्रोफेसरो के दस पदो का बदोवस्त करा लिया था। इसके बाद उन्होने उनम से एक पद दिल्ली विश्वविद्यालय म अपने लिए पक्का करा लिया। अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय से उनके अलग होने न यह साबित कर दिया कि बुनियादी तौर पर वह वहाँ अपनी स्थिति कितनी कमजोर समझते थे। दूसरी तरफ, उन्होन यह बदोबस्त करन म भी कामयाबी हासिल कर ली थी कि उनका नाम अलीगढ विश्वविद्यालय के प्राध्यापको की सूची मे बना रहे ताकि अवकाश ग्रहण करने पर उन्ह और ज्यादा पेशन मिले। वाह, सचमुच कमाल के वामपथी हैं वह !

मैंने अलीगढ के घोटाले के लिए शिक्षामत्री को जिम्मेदार ठहराया। उनके समथको के लिए इस्तेमाल किय जाने वाले विशेषण "प्रगतिशील" का मैं व्यग्यात्मक ढँग से इस्तेमाल करता था। विश्वविद्यालय के क्षेत्रो म यह मशहूर था कि प्रगतिशील वही व्यक्ति है जो व्हिस्की पीता हो, नमाज न पढता हो, रमजान म रोजा न रखता हो और हर वक्त राजनीतिक दाव पेच म व्यस्त रहता हो। नूरुल हसन इसकी एक बेहतरीन मिसाल थे। जितन दिन वह अलीगढ म प्राध्यापक रहे उसके दौरान उन्होन न तो कोई पुस्तक प्रकाशित की थी और न कभी कोइ शोध पत्र लिखा था, लेकिन दिल्ली मे चापलूसी और चाटुकारिता का उन्ह फौरन इनाम मिल गया। इसलिए यह देखकर ताज्जुब नही होता कि विश्वविद्यालय के प्रागण मे अधिकाश लोग उनकी भूमिका की निंदा करते थे। अत म यह तय पाया गया कि कायवाहक कुलपति को हटा दिया जाये और नूरुलहसन को विश्वविद्यालय के मसलो मे हस्तक्षेप करन से रोक दिया जाये।

मैंने जो रुख अपनाया था उससे मुसलमानो के सभी वग उत्साहित हुए। उनमे से कुछ तो जोश म इतने भर गये कि व कुलपति क पद पर मरी नियुक्ति पर जोर देने के लिए राष्ट्रपति के पास एक शिष्टमडल ले गये। मैंन उनसे कह दिया था कि इस जिम्मेदारी को सँभालन की मरी कोई इच्छा नही है। स्वभाव से मैं इस पद के लिए अपन को उपयुक्त नही समझता था, लकिन मरे प्रति सदभावना के इस प्रदशन से नूरुलहसन और उनके दोस्त चिढ गय। सबस पहले उन्होने मरे ऊपर यह इल्जाम लगाया कि मैं साप्रदायिकतावादियो से मिल गया हूँ। जो लोग मुझे जानते थे उन लोगो पर, खास तौर स प्रधानमत्री पर, इसका कोई असर नही पडा। इसके बाद उन्होन यह आरोप लगाया कि प्रतिक्रियावादी तत्वो को मरी मदद मिलन की वजह स विश्वविद्यालय म कानून व व्यवस्था की समस्या पदा हो गयी है। उन्होने प्रधानमत्री स मुझ पर अकुश लगाये जान का अनुरोध किया। इसी वजह स उन्होने मुझ एक पत्र लिखा जिसे पढकर लगता था कि उन पर नूरुलहसन के तर्कों का थोडा-बहुत असर जरूर हुआ है। प्रधानमत्री न विश्वविद्यालय म विभिन्न रुझानो की पृष्ठभूमि बतायी और तथाकथित 'प्रगतिशील' लोगो की भूमिका की सराहना की। उन्होन अपना खत इस शिष्ट लेकिन स्पष्ट सुझाव के साथ खत्म किया कि मैं इस मामले म थोडी सतकता बरतूँ। इसस मुझे बहुत निराशा हुइ। मैं पहले ही इस मसले पर उनस कई बार बातचीत कर चुका था और उनके सामन अपनी राय रख चुका था। मैंन उन्ह यह भी बता दिया था कि नूरुलहसन न कस अपन कुछ दोस्तो स कहा था कि प्रधानमत्री क पास जाओ और उनक सामन समस्या की झूठी तसवीर पश करो। उन्ह मिलन वाली कुछ दूसरी रिपोर्टों को भी इसी रग म रँग दिया गया था। लकिन यह जाहिर था कि उन्होने प्रधानमत्री क इतन अच्छे ढँग स कान भर कि उन्होन ऐसा खत लिखा। मैंन उन्ह जवाब दिया, 'आपको यह यकीन दिलाया गया

है कि विश्वविद्यालय मे अवाछनीय तत्वो की मदद करने मे मैं बहुत आगे बढ गया हूँ। मैं इस राय से सहमत नही हूँ लेकिन चूकि मैं कायकारिणी म सरकार का नामज़द सदस्य हूँ इसलिए मेरे सामने सिफ एक सम्मानजनक रास्ता रह गया है कि मैं इस्तीफा दे दू। मैं अपना औपचारिक इस्तीफ़ा भेज रहा हूँ।"

इसी खत मे मैंने यह भी याद दिलाया कि जून 1974 मे कार्यकारिणी मे नामजद किये जाने के वक्त उन्होने मुझे यह समझाया था कि नूरुलहसन मसले को एक दिशा मे घसीट रहे हैं और विश्वविद्यालय दूसरी दिशा मे। मुझे बीच का रास्ता ढूढने की सलाह दी गयी थी और मैं पूरे वक्त इसी कोशिश मे लगा रहा हूँ। यह देखकर मुझे बेहद मायूसी हुई कि नूरुलहसन और उनके साथियो न इस कोशिश का विरोध किया। इसलिए मैंने अपने खत मे लिखा

"आपको शायद यह मालूम नही है कि वह अत्यत अलोकप्रिय प्राध्यापक थे और शक्षिक वातावरण से कटकर अलग हो गये थे। दिल्ली मे एक शक्तिशाली सरक्षक की कृपा से तिकडम करके वह सयुक्त राष्ट्र सघ के लिए भारतीय शिष्ट-मडल म शामिल हो गये थे। इन्ही सज्जन की बदौलत वह राज्यसभा म नामज़द किये गय थे और अत मे मत्री बन गये थे। उन्होने अपने बदनाम अतीत का बदला लेने की जिंदगी भर की मुराद पूरी करने के लिए अपनी नयी हैसियत और रुतबे का इस्तेमाल किया। ससद के या विधानमडलो के मुसलमान सदस्या से सलाह मशविरा किय बग़र अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय कानून लागू कर दिया गया। उन्होने यह कानून अचानक उनक ऊपर थोप दिया। उस समय वे मन्त्रिमडल के वरिष्ठ मुसलमान सदस्य फखरुद्दीन अली अहमद को भी इसका पता नही था। इसलिए एक औसत मुसलमान के लिए मामला बिलकुल सीधा सादा था। मगर यह कानून इतना अच्छा है तो फिर इसे बनारस हिंदू विश्व विद्यालय पर क्यो लागू नही किया जाता? यह ताज्जुब की बात है कि सरकार म किसी ने भी उनकी नीयत पर शक नही किया। मैं करता हूँ और उन पर एक महान सस्था को तबाह करने का इल्ज़ाम लगाता रहूँगा। मैं विश्व विद्यालय और उसके छात्रो और प्राध्यापको की बडी सख्या की भी सही तसवीर पेश करने की कोशिश करूँगा। अन्याय का मर्यादित ढँग स लगातार विरोध करन के लिए इन लोगो को सामूहिक रूप से भारत-रत्न मिलना चाहिए।"

अभी यह विचार विमश हो ही रहा था कि पी० एन० धर और प्रधानमत्री सचिवालय के एक पस्ताक़द अफ़सरशाह ने 'नूरू' को, जसा कि लोग उन्ह पुकारते थ, बताया कि मुझे झिडक दिया गया है। नूरुलहसन ने सोचा कि यह झिडकी मुझे अपना नज़रिया बदलने के लिए मजबूर करेगी। उन्होने अलीगढ में अपने लोगो के पास खबर भेजी कि 'यूनुस को चेतावनी दे दी गयी है और उनसे विश्वविद्यालय के मामलो में आइदा दखल न देने को कहा गया है।' इस खबर से प्राध्यापक और छात्र परेशान हो गय और उनमें से कई ने मेरा समथन करते हुए तार भेजे।[1]

---

1 इनमे से एक तार पर कई छात्रा ने हस्ताक्षर किये थे। उसमें कहा गया था कि अधिकारी यह प्रचार कर रहे है कि प्रधानमत्री विश्वविद्यालय के मसलो के बारे म आपके रुख से अप्रसन्न हैं। अल्लाह बहुत बडा है और वह हमेशा सच्चे की ही मदद करता है। हमे अपने देश और अपने ऊपर भरोसा है।

मैंने प्रधानमन्त्री को ये संदेश दिखाये और उनसे कहा कि उन्हें खत लिखने के लिए राजी करने के बाद, नूरुलहसन ने यह अफवाह फैलायी है कि मुझे विश्व विद्यालय के मामलों से अलग रहने का हुक्म दिया गया है। उन्होंने कहा, "आपके इस्तीफा देने का सवाल ही नहीं पैदा होता।" गंदी तिकड़मों का भांडा खुद-ब-खुद फूट गया। मैंने सोचा कि इस मौके पर हालत को देखते हुए मुनासिब यह होगा कि मैं एक बार विश्वविद्यालय जाऊँ और उन लोगों को स्थिति के बारे में बताऊँ। इससे उन्हें बहुत राहत मिलेगी। मैंने जब उनसे अलीगढ़ जाने की अपनी योजना का जिक्र किया तो वह फौरन सहमत हो गयीं। अलीगढ़ पहुँचने पर मैंने छात्रों और प्राध्यापकों की एक बड़ी सभा में भाषण किया और उन्हें भरोसा दिलाया कि मैं नूरुलहसन द्वारा किये गये गलत कामों को ठीक करने के लिए लगातार सहयोग देता रहूँगा। बाद में कुलपति पद के लिए उनके उम्मीदवार को रद्द कर दिया गया और एक विख्यात अर्थशास्त्री ए० एम० खुसरो को इस पद के लिए चुन लिया गया। नूरुलहसन के खिलाफ जून में अभियान शुरू हुआ था और सितंबर 1974 में परिवर्तन हुआ। चक्र पूरा हो गया। यह भी उम्मीद हो गयी कि वक्त आने पर मुस्लिम विश्वविद्यालय कानून में मुनासिब संशोधन कर दिये जायेंगे। कुछ रचनात्मक रुझान उभरने लगे। इनसे मेरे पुराने विश्वविद्यालय का भविष्य सुधर सकता था। इसलिए टकराव और उससे उत्पन्न कटुता के बावजूद मेरे पास संतुष्ट होने के पर्याप्त कारण थे।

मई 1969 में कांग्रेस का विभाजन भारतीय राजनीति में एक निर्णायक मोड़ बना। घोर वामपंथियों से लेकर घोर दक्षिणपंथियों तक सभी ने मिलकर श्रीमती इंदिरा गांधी के नेतृत्व में गठित दल का विरोध करने के लिए जंगी गँठजोड़ बनाया। उन्हें फरवरी 1970 में होने वाले मध्यावधि चुनावों का सत्ता पर कब्जा कर लेने का पूरा भरोसा था। 'इंदिरा हटाओ' उनका नारा था। मसलों के बारे में भ्रम पैदा करने के लिए उन्होंने बहुत हुल्लड़ मचाया और बहुत कीचड़ उछाली। देश के अंदर और बाहर के तथाकथित स्वतंत्र समाचारपत्रों ने उनकी बेहद मदद की और इंदिरा गांधी का पूरा सफाया हो जाने की भविष्यवाणी की। वरिष्ठ सहयोगियों के साथ छोड़ देने के बाद उन्होंने अपने भयंकर दुश्मन के खिलाफ अकेले अपने बलबूते पर संघर्ष करना शुरू किया। उनके आर्थिक कार्यक्रम और दृढ़ निश्चय ने जनता को मोहित कर लिया और उनके विरोधियों का तख्ता उलट दिया। उन्होंने अपने दल के लिए शानदार दो तिहाई बहुमत हासिल कर लिया। इस परिणाम से सभी हक्का बक्का रह गये। चुनाव के परिणाम ने विरोधी नेताओं को झकझोर दिया। वे निराश हो गये। दिल बुझ गये और पूरे तौर पर पस्त हिम्मत हो गये। उनके लिए सही रास्ता यह होता कि वे फरवरी 1976 में होने वाले अगले आम चुनावों में अपनी संभावनाओं को उज्ज्वल करने के लिए अपने साधनों को जुटाते, लेकिन ऐसा लगा कि उनमें से अधिकांश को प्रजातंत्र या प्रजा तांत्रिक संस्थाओं में बिलकुल आस्था नहीं थी। हताशा और मायूसी में विधिवत निर्वाचित दल और वैधानिक रूप से गठित सरकार को बदनाम करने के लिए वे अवैधानिक तरीके अपनाने लगे। 1972 से 1974 तक विरोधी दलों की राज नीतिक ने जो रुख अपनाया उसे देखकर ही उस पर यकीन किया जा सकता है। इसने सरकार के लिए सामान्य ढंग से काम करना मुश्किल बना दिया। उन्होंने अराजकता पैदा कर दी और तबाही को प्रोत्साहन दिया। और यह सब-कुछ 'संपूर्ण क्रांति' के नाम पर किया गया जिसे बाद में एक व्यंग्य चित्रकार ने संपूर्ण

घणा' बताया था। बौद्धिक दृष्टि से भ्रमित और राजनीतिक दृष्टि से बेकार और निष्क्रिय विद्रोही जयप्रकाश नारायण न इस आदोलन का नेतृत्व किया था। उनकी राजनीति का मजाक उडाने वाला अकेला मैं ही नही था। स्वय चरणसिह ने इस ग़लती का काफी बाद मे स्वीकार किया। दिल्ली मे 14 जनवरी, 1979 को प्रेस क्लब म दोपहर के भोजन पर चरणसिह ने इसका जिक्र करते हुए कहा, "अगर सीधी कारवाई करने का आवाहन करन के बजाय जयप्रकाश नारायण ने विरोधी दलो को एक करने की कोशिश की होती तो देश आपातकालीन मुसीबतें झेलने स बच जाता।" चरणसिह ने अपनी बात के प्रमाण म जे० पी० के कथन का उद्धरण भी दिया और बताया कि खुद जे० पी० ने अपनी ग़लती मान ली थी।

मैं जयप्रकाश नारायण को 1937 से जानता था और मेर मन म उनके लिए बहुत इज़्ज़त और स्नेह था, लेकिन उनकी कई करतूतो, उनके साथियो और दोस्तो और बादशाह खा की यात्रा के दौरान उनके बरताव ने आखिरकार मेरी निष्ठा को डिगा दिया था। जब से भारत आज़ाद हुआ था तब से वह विभिन्न आदोलनो का प्रयोग कर रहे थे और दुनिया-भर के काम अपने सिर पर उठाये थे। नेहरू के जीवनकाल में उन्होने उनकी दोस्ती का बेजा फ़ायदा उठाया और बाद म उनके बार म अप्रिय बातें कहने लगे। वह ज़िम्मदारी उठाने और असलियत का सामना करने से हमेशा कतराते रह। वह चाहते थे कि उन्ह बुज़ुर्ग समझा जाय और वह गतिविधियो का केंद्र बने रहे। इस रुख से उनके जीवन म बहुत उतार-चढाव आय और उन्ह बेहद अवाछनीय सरक्षको से सहायता लेने के लिए हाथ फैलाना पडा। उनकी कारवाइया पर गहराई से नज़र डालने पर पता चलता है कि जनता की सद्भावना पान की उम्मीद मे उन्होंने 1959 60 म दलाई लामा का समथन किया। इसके बाद वह सर्वोदय आदोलन मे शरीक हो गय। एक समय वह आचाय विनोबा भावे के बहुत करीब हो गये। भूदान, ग्रामदान और श्रमदान के ज़रिए उद्धार करने म नाकाम होने पर वह अय्यूब के 'बुनियादी प्रजातन्त्र' के हामी हा गय। जे० पी० ने फौज द्वारा भारत की सत्ता पर कब्ज़ा करने का भी समथन किया। उसके बाद उन्होंने माओ त्से-तुग और जीवन की चीनी प्रणाली की तारीफ की, जिसने हर एक को हैरत मे डाल दिया। इन कलाबाज़िया के ज़रिए चोटी पर पहुँचन मे असमथ होने पर जे० पी० न 1969 म भारत मे ग़फ्फार खा की मौजूदगी का फायदा उठाने और जनता की नज़रो म चढ जाने की कोशिश की।[1] बादशाह खा श्रीमती गाधी के साथ जिस सरकारी कार म राजकीय सम्मान के साथ हवाई अडडे से शहर आने वाले थ, उसमे जयप्रकाश नारायण का ज़बरदस्ती चढने का दृश्य भुलाया नही जा सकता। बादशाह खाँ के लिए उसी तरह के स्वागत की तयारी की गयी थी जसी किसी सरकार क राष्ट्रपति के आगमन पर की जाती है। खयाल यह था कि स्वाधीनता सघर्ष के इस महान सेनानी के प्रति भारत अपना सम्मान प्रकट करे। इसलिए इस सारे मामले म एक निश्चित शिष्टाचार अपनाया गया था लेकिन जे०पी०स्वागत समिति के अध्यक्ष होने के नाम पर मोटर म ज़बरदस्ती घुस गय। एक बार कार म पहुँच जान पर उन्हाने भीड का अभिनदन स्वीकार करने के लिए बादशाह खाँ और श्रीमती गाधी क साथ खडे होने की भी काशिश की। सुरक्षा कमचारिया ने उन्ह कार मे घुस तो आने दिया था लेकिन

1 8 अक्तूबर 1979 को जयप्रकाश नारायण का देहांत हो गया। उनका दिन टूट चुका था और जो लोग उनके अलमबरदार होने का ढोंग कर रहे थे उनसे वह पूरी तरह मायूस हो चुके थ।

जब उन्होंने उठकर खडे होने की कोशिश की तो उन्हें धक्का देकर बिठा दिया गया। यह लज्जाजनक बात थी और उस व्यक्ति के लिए अशोभनीय थी जिसका यह दावा था कि उसमें कोई राजनीतिक आकांक्षा नहीं है। बूढ़े बादशाह खाँ यह चाल समझ गये और उन्होंने उन के या उनकी तरह के आदमियों के चक्कर में पड़ने से इंकार कर दिया।

इस असफलता के चार वर्ष बाद 1973 में जयप्रकाश नारायण ने फिर राजनीति में प्रवेश करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने चारों ओर विघटनकारी तत्व इकट्ठे कर लिये। उदाहरण के लिए, इस सिलसिले में संदिग्ध चरित्र के आदमी के साथ रहनेवाली औरत और बेईमान पूँजीपति और ऐसे ही लोगों के नाम आसानी से ध्यान में आते हैं। 1974 में उन्होंने 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दे दिया। उन्होंने संसदीय संस्थाओं की वैधता को ही चुनौती दे दी। उन्होंने गुजरात और बिहार में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों और अंततः संसद-सदस्यों से इस्तीफे देने को कहा। उन्होंने विधायकों और संसद सदस्यों को पस्त करने के लिए दबाव व शक्ति के प्रयोग की भी हिमायत की। उनके तथाकथित प्रजातंत्र के मित्रों को इसमें कोई गलत बात नहीं दिखायी दी। उन्होंने छात्रों से पढ़ाई छोड़ देने के लिए कहा। उन्होंने फौजियों से अपील की कि वे अनुचित आदेशों को मानने से इंकार कर दें। सामान्य जीवन को तहस नहस करने की कोशिश की गयी। अकेले 1974 की रेलवे हड़ताल से पांच अरब रुपये का नुकसान हुआ। हड़ताल के संगठनकर्ताओं को उम्मीद थी कि इससे अर्थव्यवस्था पंगु हो जायगी और देश का सारा काम काज ठप हो जायेगा। उनमें से एक ने बाद में डींग मारी कि उसने 52 बार गाडी को पटरी से उतारा था। उनके तत्कालीन समर्थकों ने इस खतरनाक तरीके की निंदा नहीं की। सच तो यह है कि सारे टुटपूंजिये असंतुष्ट राजनीतिज्ञ उनके साथ हो गये थे। उस वक्त जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व के बारे में आँखें खोल देने वाला सबसे बड़ा पहलू यह था कि उन्होंने एक ओर मार्क्सवादियों और दूसरी ओर जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी परस्पर विरोधी पार्टियों से गँठजोड़ कर लिया था। यह उनके राजनीतिक आदर्शवाद के ढोंग का मखौल उड़ाने के लिए काफी था। उनमें सिर्फ एक बात में समानता थी और वह थी श्रीमती गांधी के लिए घृणा।

लखनऊ में मई 1975 के शुरू में एक शादी के मौके पर कानपुर के जे० पी० श्रीवास्तव के परिवार के एक सदस्य ने आकर मुझसे कहा, "सिन्हा[1] अपनी बिरादरी का आदमी है। वह इतिहास में अपना नाम अमर करना चाहता है। वह फैसला मैडम के खिलाफ देने वाला है।" मैंने श्रीमती गांधी को यह सूचना दे दी, जिन्होंने कहा, "मैंने भी यह सुना है लेकिन गोखले यह महसूस करते हैं कि डर की कोई वजह नहीं है।" और फैसला उनके खिलाफ कर दिया गया। मुझे दिन में दस बजे राजीव का फोन मिला, "फैसला आ गया है। मम्मी का चुनाव रद्द कर दिया गया है।" मैं कुछ ही लम्हों के अंदर वहां पहुँच गया। बाकी लोग भी जमा हो गये। मंत्रिमंडल के करीब करीब सभी सदस्य दोपहर के 12 बजे तक वहाँ हाजिर हो गये थे। श्रीमती गांधी एक कमरे से दूसरे कमरे में आ जा रही थीं और लोगों की राय माँग रही थीं। जगजीवनराम सबसे पहले आदमी थे जिन्होंने सबसे पहले अपनी स्थिति स्पष्ट की। उन्होंने जोर देकर कहा, "अदालत का

1 जगमोहनलाल सिन्हा इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज थे। उनका निर्णय विचाराधीन था।

फ़सला हो या नही, वह प्रधानमन्त्री बनी रहगी।"

एन० एन० पालकीवाला को उन्ही के अनुरोध पर सलाह देने के लिए बुलाया गया। उनका खयाल था कि ऐस कठोर फ़ैसले का कोई आधार नही है। सर्वोच्च न्यायालय मे दायर करने के लिए अपील तयार करन के वास्त उन्ह वकील बना लिया गया, लेकिन कुछ दिन बाद उन्होन जो काम किया वह आघात पहुँचाने वाला था। श्रीमती गाधी की ओर से वकालत करन के लिए राज़ी हो जाने क बाद उन्हाने अपन पेशे की ज़िम्मेदारी पूरी करने स इकार कर दिया। यह उनक पशे की आचार सहिता के विरुद्ध था। कानूनी विशेषज्ञ एसा एक भी उदाहरण पेश नही कर सके, फिर भी पालकीवाला को रोब झाडन का मौका मिल गया। कुछ साल पहल न्यूयाक म भारत म ब्रिटिश योगदान के बारे म एशिया सोसाइटी म विचार-विमश के दौरान पालकीवाला ने यह कहन की जुरत की थी कि स्वाधीनता के बाद नहरू के आधीन भारत म जितनी स्वतन्त्रता थी, उससे ज्यादा ता आज़ादी अँग्रेजो के ज़माने मे थी। शाबाश ननी! यह कोई ताज्जुब की बात नही कि वह सबके सामने श्रीमती काटर के जूत का नाप लेन के लिए घुटन टेककर झुक गय थे। यह वह आज़ादी है जो यह शिक्षित और सुसस्कृत व्यक्ति जानता है।

इलाहाबाद हाईकोट के निणय न 12 जून, 1975 को प्रधानमन्त्री इदिरा गाधी का चुनाव रद्द कर दिया था। इससे आदोलनकारी वर्गों को उनके इस्तीफे के लिए शोर मचाने का मौका मिल गया। उन्हाने इस हकीक्त की उपेक्षा कर दी कि उसी अदालत न उसके पक्ष म स्थगन आदेश दे दिया था और अतिम निणय सर्वोच्च न्यायालय के विचाराधीन था। उन्हान सबस पहले इस्तीफा देना तय किया था। उन्हाने उसी दिन सवरे मुझे यह बताया था। में यह नही समझता था कि वह पद से चिपके रहना चाहगी, लकिन मै यह जरूर चाहता था कि वह कोई ऐसा निणय न लें जिसका मतलब विपक्ष के षडयन्त्र के आग झुक जाना हो। मैंने जवाब दिया, "इस तरीके से बात मत कीजिय। आप ज़िम्मदारी स नही बच सकती। आपको कानूनी चुनौती को मजूर करना है और शरारत को साबित करना है।" उन्हान स्वर्णसिंह से भी बातचीत की। वह समझे कि उनसे श्रीमती गाधी की जगह लेने को कहा जा रहा है। बताया जाता है कि उन्होन अपन मित्रा को इसकी सूचना दे दी और उन्ह अपनी नयी हैसियत स अवगत कराया। अपने बारे म यह मुगालता ही उनके पतन का कारण बना।

सर्वोच्च न्यायालय न अतत हाईकोट के निणय को रद्द कर दिया, लेकिन विपक्ष इसे मजूर नही करना चाहता था। उन्होंने धमकी दी कि अगर उनके हटन की उनकी माग मजूर नही की गयी तो वे देश म आग लगा देंग। उनमे से प्रमुख व्यक्तियो ने राष्ट्रपति भवन के बाहर फौरन ही धरना देना शुरू कर दिया। इस तरह एक अत्यधिक तकनीकी और कानूनी मसले को सडको पर घसीट लाया गया। खुद ब खुद इससे श्रीमती गाधी के समथको मे तीव्र प्रतिक्रिया हुई। व खामोशी से बैठकर विधिवत चुनाव मे जन साधारण द्वारा ठुकरा दिये गये इन व्यक्तियो को चोर दरवाजे से घुसकर सत्ता पर कब्ज़ा करन का मौक़ा नही दे सकते थे। इसलिए वे भी सडको पर निकल आय। उन्हाने कही अधिक शक्ति और आवेश के साथ जवाबी प्रहार किये। प्रधानमत्री के प्रति निष्ठा के जन-प्रदशनो से विपक्ष को खामोश हो जाना चाहिए था, लेकिन इसकी जगह उन्हान और अधिक आक्रामक असंसदीय तरीके अपनाय। गुजरात मे जब 1975 के मई और जून के शुरू म चुनाव प्रचार का समय आया तो विरोधी दलो ने पथराव

और हिंसात्मक प्रदर्शनों का सहारा लिया। प्रधानमंत्री, प्रतिरक्षा मंत्री जगजीवन राम व अन्य कई काग्रेसी नेता घायल हो गये। विपक्ष के नेताओं ने गुंडागर्दी की इन कार्रवाईयों की निंदा तक नही की। कहा जाता है कि मोरारजी देसाई ने श्रीमती गांधी का बिलकुल सफाया कर देने की बात की थी। उन्होने अपनी गिरफ्तारी से सिर्फ दो दिन पहले एक विदेशी पत्रकार से बातचीत में यह बात कही थी। 29 जून 1975 को आदोलन छेडने की तयारी शुरू कर दी गयी। जब तोड फोड के कुछ मामलो का पता चला तो उनके नेताओं ने पिछले वर्षों में की गयी तोड फोड की अपनी कार्रवाईयों की डीग मारी। कोई भी कायदा, स्तर या मानदड नही रह गया था, इसका कही कोई उदाहरण भी नही है।

पूरे 1974 के दौरान धन्नासेठो द्वारा चलाये जाने वाले राष्ट्रीय समाचार-पत्रो ने जे० पी० के प्रजातंत्र विरोधी तरीकों को बहुत बढावा दिया और उनकी तरफ से जमकर प्रचार किया। खैर, एक दौर ऐसा आया जब एक प्रमुख सपादक ने यह महसूस किया कि जिस बुराई ने हमको इस हालत तक पहुँचा दिया है उसकी तह में जाना जरूरी है। 'पिछली गलती का सुधार" शीर्षक के अतगत लिखते हुए गिरिलाल जैन ने जाहिर है कि फिर से अपनी राय[1] कायम की थी। उन्होने लिखा

"बडे शहरो में अधिकाश पढे लिखे लोग 26 जून से पहले ही प्रदर्शनो, हडतालो और सार्वजनिक सपत्ति पर हमलो के इतने आदी हो चुके थे कि उनमें से बहुतो ने यह सोचने का भी कष्ट नही उठाया कि इससे देश की अर्थव्यवस्था और पूरे समाज के लिए क्या दीर्घकालीन परिणाम होंगे। उन्होने हकीकत पर भी गौर नही किया कि किसी प्रजातत्र को इतनी लबी अवधि तक इतने अधिक आदोलनो से नही निपटना पडा था। उनमे से कुछ ने तो बहुत सराहना की दृष्टि से भारत के बारे में गलब्रेथ की इस बात का हवाला दिया कि 'भारत में अराजकता से भी काम चल रहा है। मानो यह हालत अनिश्चित काल तक कायम रह सकती थी। राजनीति के प्रति यह आदोलनात्मक दृष्टिकोण अचानक नही बन गया था। एक मायने मे यह स्वाधीनता से पहले के दौर की देन थी जब सार्वजनिक सभाओं जुलूसो और प्रदर्शनो के सहारे राजनीति चलायी जाती थी। गाधीजी ने निःसदेह सत्याग्रह की अपनी धारणा के बारे में बहुत कुछ लिखा था और बताया था और उन्होने यह सुनिश्चित करने की भरसक चेष्टा की कि उनके द्वारा चलाये गये आदोलन जहां तक मुमकिन हो उनके मानदडो पर खरे उतरें, लेकिन मोटे तौर पर भारत में राजनीति उनके निर्धारित मानदडो की तुलना में बहुत नीची रह गयी।

'काग्रेस के चोटी के नेता इस सच्चाई से परिचित थे। स्वाधीनता के बाद के नेतृत्व ने यह रुख अपनाने में देर नही की कि आजाद भारत में सविनय अवज्ञा की कोई जगह नही है। उनका कहना था कि जब तक देश मे विदेशी हुकूमत थी और अप्रजातात्रिक ढँग से कानून बनाये जाते थे तब तक उनका उल्लघन करने का औचित्य था। लेकिन अब चूंकि प्रजातात्रिक ढँग से निर्वाचित विधानमडल कानून बनाते हैं इसलिए इनका पालन होना चाहिए और जो इनका विरोध करते हैं, उन्हें मान्य प्रजातात्रिक तरीको से इन कानूनो को बदलने की कोशिश करना

---

1 टाइम्स ऑफ इडिया 30 जुलाई 1975

चाहिए। नेहरू ने 1950 के बाद के दशक में इन बातों पर बार-बार जोर दि
इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह बहुत विवेकपूर्ण और उचित नजरिया था
ब्रिटेन और अमरीका जैसे सुस्थापित प्रजातंत्रों में प्रचलित प्रणाली के अनुकू
और इसमें इस बात को भी महत्व दिया गया था कि विभाजन और एक
शरणार्थियों के आगमन से उत्पन्न तात्कालिक समस्याओं को और सैकड़ो
के आर्थिक व सामाजिक गतिरोध को दूर करने व देश की सुरक्षा मजबूत
की दीर्घकालीन समस्याओं का हल करने के लिए देश में शासन के काफी स
व सुदृढ़ ढांचे की जरूरत थी। लेकिन विरोधी दलों के कुछ नेताओं ने इस न
को इस आधार पर रद्द कर दिया कि सरकार जनता की मुसीबतों को दूर
के बारे में जागरूक नहीं है, निर्वाचित कांग्रेसी विधायक, जिनका संसद और
विधानमंडलों में बहुमत है दल के सचेतक के निर्देश के मुताबिक वोट देते हैं
जब तक कांग्रेस के पास सत्ता की इजारेदारी है तब तक दूसरे लोग या तो
पर हाथ धरे बैठे रहें या फिर क़ानून की अवज्ञा करें।

'जिन लोगों ने देश में राजनीतिक तंत्र पर इतना गहरा घाव लगाय
उनके चेहरे पोशीदा नहीं हैं। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग थे। लेकिन उ
आचरण चाहे जितना निंदनीय क्यों न हो, उससे ज्यादा महत्व की बात यह थ
गुजरात विधानमंडल का जबरदस्ती भंग करा दिया जाना, निर्वाचन प्रणाली
आधारित राजनीति के विरुद्ध विघटनकारी और आंदोलनकारी राजनीि
विजय थी। उस समय गुजरात के अंदर या उसके बाहर, इक्का दुक्का आदम
इस घटना के महत्व को समझ पाये। यह बात भी बेमानी थी कि इस कारव
पीछे जिन लोगों के दिमाग़ काम कर रहे थे वे कांग्रेस और उसके नेतृत्व के ि
अति तीव्र घृणा से प्रेरित थे, या राजनीति की वैकल्पिक व्यवस्था से।
उद्देश्य चाहे जो रहे हों, उन्होंने राजनीतिक तंत्र के बुनियादी आधार पर स
और विधिवत् निर्वाचित विधानमंडल के पूरे कार्यकाल तक काम करने के अधि
पर तथा वर्तमान नेता के अनुपयुक्त या अहितकर सिद्ध होने पर बहुमत दल
नया नेता चुनने के अधिकार पर कुठाराघात किया था। श्रीमती गांधी दूसरे
के मुक़ाबले फ़ौरन ही बात की तह में पहुंच गयीं। वह न सिर्फ बिहार मन्त्रि
और राज्य विधानमंडल को भंग न करने के मसले पर अड़ गयीं, बल्कि उ
सार्वजनिक रूप से यह भी कहा कि गुजरात के मामले में उन्होंने बहुत बड़ी ग़
की थी और वह उसे दोहराने को तैयार नहीं हैं।"

कानून व व्यवस्था की विस्फोटक स्थिति और हिंसात्मक उपद्रव, उथल
के खतरे को देखते हुए प्रधानमंत्री ने संविधान के अनुच्छेद 352 की धारा
का इस्तेमाल किया। 25 जून को दिन भर विचार विमर्श होता रहा। व
और सिद्धार्थशंकर राय ने इसमें प्रमुख भाग लिया। बाकी लोग भी आते
रहे। श्रीमती गांधी जब शाम के क़रीब छः बजे राष्ट्रपति से मिलने गयं
समाचारपत्रों ने यह अटकल लगायी कि वह इस्तीफ़ा देने गयी हैं। देश
धारणा को लेकर रात में सोया और सवेरे जागने पर उसने राष्ट्र के नाम श्री
गांधी का संदेश सुना कि आपातस्थिति लागू कर दी गयी है। इस भाषण के
उन्होंने मुझे टेलीफ़ोन किया और मुझे जन्मदिवस की बधाई देते हुए इस
दिन के बार-बार आने की कामना की। यह मेरा 59वां जन्मदिन था। इस
26 जून, 1975 को देश में आंतरिक आपातस्थिति लागू कर दी गयी। मो

और सक्रिय तोड फोड के लिए जिम्मेदार विपक्षी नताओ की गिरफ्तारी का तजी स समर्थित कदम उठाया गया। आर्थिक अपराधियो, कुख्यात तस्करो और चोर-बाजारी करने वालो को पकड लिया गया। अर्द्ध फौजी साम्प्रदायिक सगठन गर-कानूनी करार दे दिये गय। आदेश जारी कर दिय गय कि आपातस्थिति के दौरान हडतालें नही की जायेंगी। इरादा यह था कि इस अव्यवस्था को दूर करके व्यवस्था कायम की जाये। जनमत की जुबान बद करने का कोई इरादा नही था, बल्कि उसे जिम्मेदारी की भावना की ओर मोडना था। जल्दी ही यह परिवतन स्पष्ट हो गया। अनुशासन की भावना नज़र आने लगी जो सबसे बडी उपलब्धि थी। अगर ईमानदारी स यह गति कायम रखी गयी होती तो बहुत कम लोगो ने उसे नापसद किया होता। दरअसल इन कारवाइयो का व्यापक समथन किया गया और व्यापक रूप से यह टीका सुनन को मिलती कि 'यह आपातस्थिति पहले क्यो नही लागू कर दी गयी ?'

इस कडवी दवा के साथ प्रधानमत्री ने राष्ट्रीय अथव्यवस्था को समुन्नत करन के लिए 20 सूत्री कायक्रम घोषित कर दिया। राष्ट्र मे उद्देश्यपूणता की भावना दिखायी पडने लगी। सबधित लोग समपण के भाव से अपना काम करने लगे। इस नय वातावरण की बदौलत सत्ता म हमम स अनक लोग गरीब अभावग्रस्त लोगो को लाभ पहुँचान के लिए आर्थिक अभियान शुरू करन मे कामयाब हो सके। अनक खामियो को दूर करने के लिए एक सर्वांगीण कायक्रम लागू किया गया। नतीजे के तौर पर खुद ब-खुद उत्पादन बढा। तस्करो और असामाजिक तत्वो क विरुद्ध कारवाई का अच्छा हितकारी प्रभाव पडा। सरकारी नियमो की खामिया दूर की गयी और अधिकारियो के आचरण व काय करन क तरीके म स्पष्ट सुधार आया। सरकारी व्यवस्था को चुस्त बनाया गया, इसका नतीजा यह हुआ कि जिन नये कामो का निश्चय किया गया था, उनको तेजी से पूरा किया गया। कीमतो को नियन्त्रित कर दिया गया। मुद्रा प्रसार रोका गया। रुपये की स्थिति बहुत सुदृढ कर दी गयी और विदेशी मुद्रा का सुरक्षित कोष इतना बडा हो गया जितना इसस पहल कभी नही था। वृद्धि की उच्चतर दर सभव हो सकी। दो करोड टन के अतिरिक्त खाद्यान्न भडार स हमारी आत्म निभरता की भावना बढी व सुदढ हो गयी। सावजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानो न बहुत बेहतर परिणाम दिखान शुरू कर दिये। खेतो और कारखानो म काम करन वालो ने पहले की अपेक्षा ज्यादा उत्पादन किया। इस उपलब्धि को कोई नकार नही सकता था। विश्व बक व अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकारियो न इन उपलब्धियो की सराहना की। जे० आर० डी० टाटा ने भी, जो अन्यथा सरकारी नीतियो के आलोचक थे आपातस्थिति के समथन म बयान दिया। दिल्ली म उद्योगो की केंद्रीय सलाहकार परिषद को सबोधित करते हुए उन्होंन कहा "पिछले एक साल म अथव्यवस्था म सराहनीय परिवतन हुआ है। विभिन्न मत्रालयो ने, विशेषकर उद्योग मत्रालय ने गत वष जो काम किया है, उसके लिए उनकी तारीफ करनी चाहिए।" लाइसेंस, नियत्रण व नियमन की बोझिल व्यवस्था को सरल बनान के लिए उठाये गय कदमो का टाटा न स्वागत किया।[1]

इस चौमुखी शाति और प्रगति के प्रभाव न हमसे से अनेक लोगो को बडे पमान की प्रायोजनाएँ शुरू करन के लिए प्रोत्साहित किया। और बडे पमान की

1, हिंदुस्तान टाइम्स', नयी दिल्ली 28 जुलाई, 1976

योजनाओ की कल्पना करने का समय आ गया था।

लगभग इसी वक्त मेरे घर मे एक रोमाचक घटना हुई—29 सितबर, 1975 को सजय गाधी की मेनका आनद के साथ शादी। श्रीमती गाधी और खुद वर सादगी चाहते थे दोनो शोर शराबे या पहले से प्रचार नापसद करते थे। चूकि मैं वधू के परिवार वालो को भी जानता था, इसलिए उन्होने शादी के लिए मेरा घर इस्तमाल करने की इच्छा प्रकट की। इस बात को बहुत पोशीदा रखा गया। जब *बारात रवाना होने वाली थी, तो मैं 1, सफदरजग रोड पर मौजूद था और* फिर उसका स्वागत करने के लिए मैं तेजी से अपने घर पहुँच गया। दोनो घरो के बीच मुश्किल से 500 मीटर का फासला था। सिविल विवाह और विवाह-पत्र पर हस्ताक्षर करने मे कुछ ही मिनट लगे। वर और वधू की मांओ के साथ मैं भी एक गवाह था। विवाह स्थल को देखकर एक पत्रकार ने अपने आम रवैय के मुताबिक तथ्यो को ताड-मरोडकर पेश किया। उन्होंने कहा, "समारोह 1, सफदरजग रोड पर नही हुआ बल्कि मुहम्मद यूनुस के निवास-स्थान 12, विलिगडन क्रिसेंट म सपन्न हुआ।" इन सज्जन को, हालांकि वह भारतीय थे, लगता था कि यह पता नही था कि यह आम रिवाज है कि बारात लडके के मा बाप के घर से लडकी के घर जाती है। शायद ही किसी लडके की शादी उसके अपने मकान म होती है। उन्होने ऐसी ही कुछ और भद्दी भूलें की थी। लेकिन जिंदगी म यह सब कुछ तो होता ही रहता है। *वरना फिर हर वक्त हर मामूली सवाददाता के पीछे भागत* रह या स्पष्टीकरण जारी करन म वक्त बरबाद करें। यह तो मामूली सा व्यक्तिगत मामला था, लेकिन जब बडे महत्वपूर्ण मसलो म भी हमारे समाचारपत्र सतही रुख व लापरवाही बरतते है तो दुख होता है। हम इसके बारे मे कोई आचार-सहिता बना नही सक है। शायद ही कभी तथ्यों के महत्व के अनुरूप, अपेक्षित जिम्मेदारी के साथ उनका पता लगाया जाता हो। खैर, यह तो उस वक्त भारत म प्रचलित राजनीतिक, सामाजिक व सास्कृतिक नैतिकता की कई बातो मे से एक मामूली बात थी। इसने आगे चलकर और भी तबाही ढायी।

मैंने कुछ मूल्यो की प्रणाली के आधार पर अपनी जिंदगी का निर्माण करने की कोशिश की। शायद यह मानदडो और व्यवहार के उस लचीलेपन से भिन्न है जिसका प्रचलन रोज ब रोज बढता जा रहा है। मैं यह नही कहूँगा कि मैं कठोर *हूँ, लेकिन म जो ठीक समझता हूँ उसी पर दृढ रहना चाहता हूँ।* हर व्यक्ति के कुछ आदर्श होते है जिन्ह वह सँजोये रहता है और उसे सँजोये रहना चाहिए, भले ही इन आदर्शों के पालन से कोई फायदा नही हो। हालांकि 'फायदे' के लालच स ही आज का समाज परिचालित होता है। इसने राजनीति के क्षेत्र मे एक खास ढर्रा कायम कर दिया है जो आज हर जगह दिखायी देता है।

जब मैं खामोशी से अपने दिन काट रहा था, लगभग उसी वक्त जवाहरलाल नेहरू के नाम स स्थापित किये जाने वाले एक ट्रस्ट के काम का जिम्मा भी मैंने उठा लिया। मैं तन मन से इस काम मे जुट गया। पाकिस्तान म मेरी जो सपत्ति छूट गयी थी, उसके बदले मे पुनर्वास मन्त्रालय ने मुझे जो जमीन दी थी, उसम स यह ट्रस्ट बनाया जाना था। गाँव के लडको और लडकियो को दस्तकारी और शिल्प का प्रशिक्षण देने व उन्ह कुछ सास्कृतिक सुविधाएँ देने की बहुत महत्वाकाक्षी योजना बनायी गयी थी। इसके विभिन्न कामो और युवा छात्रावास की स्थापना के लिए धन की व्यवस्था करने म जरा भी अडचन नही पडी। कुछ प्रख्यात कलाकारो और परोपकारी व्यक्तियो ने हर तरह का सहयोग देने का आश्वासन दिया।

इससे उत्साह और बढ गया। ट्रस्ट के प्रबधक मडल म ऐसे युवक थे, जिन्ह अतत इसकी जिम्मेदारी सँभालनी थी। उबा देने वाली लिखा पढी और विभिन्न तकनीकी औपचारिकताओ को पूरा करने म बहुत वक्त लगा। इसम मैं एक साल स अधिक समय तक पूरी तरह व्यस्त रहा। लेकिन नियति ने मेरी और इस प्रयोजन की कुछ और ही परिणति निश्चित कर रखी थी।

मई 1975 म मैं एक नागरिक की तरह अपनी आजादी का आनद उठा रहा था। मैं सिफ अलीगढ व अपने ट्रस्ट के काम म लगा हुआ था। प्रधानमत्री ने मुझसे एक दिन पूछा कि क्या मैं काग्रेस कार्यालय मे काम करना और विदेशी मसलो, अल्पसख्यको, छात्रो व अन्य सबधित मसलो की देखरेख करना पसद करूँगा ? मैंने पहले तो "हा" कहना चाहा लेकिन मैं राजनीतिक जीवन की कठिनाइयो व खीचतान स परिचित था। इसलिए मैंने जानना चाहा कि क्या उ होने किसी और स भी इस प्रस्ताव के बारे म बातचीत की है ? वह फौरन बातचीत के लिए तैयार हो गयी। इसके कुछ ही दिन बाद डी० के० बरुआ न, जिन्होने उस समय तक काग्रेस अध्यक्ष का पद सँभाल लिया था, मेरे काम, उसके क्षेत्र और आयाम के बारे म कई बार मुझस बातचीत की। वह जानते थे कि मैं आजादी स पहले काग्रेस पार्टी के काम को और स्वाधीनता के बाद सरकारी काम-काज को अच्छी तरह जानता था। आखिर म यह तय पाया गया कि मैं काग्रेस अध्यक्ष का सलाहकार नियुक्त कर दिया जाऊँ। यह तय करना बाकी था कि वास्तव मे काम क्या होगा। लेकिन इससे पहले कि हम किसी निष्कष पर पहुँचते, काग्रेस के अध्यक्ष दौरे पर चले जाते। वापस आन पर वह टालमटोल की लबी चौडी बातें करन लगते, जिसके लिए वह काग्रेसी क्षेत्रो म बहुत बदनाम हो गये थ। अनिश्चित काल तक उनके चारो ओर मँडरात रहना मुमकिन नही था। प्रधानमत्री को यह बात मालूम हुई तो उन्होने एक सुझाव दिया जो मुझे भी पसद आया। उन्होंने कहा, 'अगर सलाहकार बनना है, तो आप मेरे करीब रहकर काम करें।" जल्दी ही उनके सुझाव पर अमल किया गया। तत्कालीन विदेश सचिव केवलसिह न मुझ बताया कि विदेश मत्रालय मत्री के स्तर का एक पद कायम करना चाहता है जिसका नाम 'प्रधानमत्री का विशेष दूत' होगा। मैं 5 अक्तूबर, 1975 को इस पद पर नियुक्त हो गया।

विशेष दूत का काम सिफ विदेश मत्रालय के काम से ही सबधित नही था। प्रधानमत्री न मेहरबानी करके बताया था कि उनके विचार म विशेष दूत को एसी भूमिका अदा करनी चाहिए जैसी कि विलियम एवरेल हेरीमन ने की थी। उन्होंने अमरीका के राष्ट्रपति के देश-देश घूमन वाले विशेष दूत की हैसियत से अपन देश को बहुत फायदा पहुँचाया था। वह यह भी चाहती थी कि मैं आतरिक मामलो म भी दिलचस्पी लूँ और उनको जरा झँझोड दूँ।' यह एक चुनौती थी और पिछले वर्षो म प्राप्त अनुभव का उपयोग करन की सभावना स मुझे बहुत खुशी हो रही थी। विदेशी मामलो के अलावा मैंने गुट निरपेक्ष देशो की समाचार समितियो के समूह की समन्वय समिति का अध्यक्ष-पद व्यापार मेला प्राधिकरण, भारत के सचार केंद्र, समाचार समिति 'समाचार', इस्पात प्राधिकरण टेलीफ़ोन उद्योग और सामान्य बीमा के निदेशक, व्यापार मडल, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्य, एसोसिएटेड जनल्स के प्रबध निदेशक और वक्फ (मुस्लिम धर्मादा) का सलाहकार के विशिष्ट काम सँभाले।

यह एक ऐसा पद था जिसम विभिन्न प्रकार के अनक काम शामिल थे। इन

विभिन्न जिम्मेदारियों के लिए मैंने एक रुपये महीने का प्रतीक वेतन लेने का निश्चय किया। रोजमर्रा की जिंदगी की नजर से इसका मतलब खर्च में कमी करना था। मैंने एक नौकर को अलग कर दिया। जिमखाना क्लब की सदस्यता छोड़ दी। एक वरिष्ठ सिविल अधिकारी के 3500 रुपये मासिक के वेतन से क्लब की सदस्यता के लिए 45 रुपये मासिक देना आसान था, लेकिन 900 रुपये मासिक की पेंशन में से यह रकम बचा लेना मुश्किल था। मैं गुजर-बसर करने में कामयाब रहा और मुझे खुशी है कि मैं ऐसा कर सका। इससे मुझमें आत्मविश्वास पैदा हुआ। मैंने अपने बचपन या किशोरावस्था में पैसे की कमी कभी महसूस नहीं की थी। वास्तव में, जब 'भारत छोड़ो आंदोलन' के सिलसिले में मैं जेल गया, तो मेरे बड़े भाई जायदाद के मेरे हिस्से की देखभाल करने लगे थे, उन्होंने ऊपरी खर्च इस हद तक कम कर दिया था कि जब 1945 में मैं जेल से छूटा तो ढेर-सारा नकद रुपया मेरे हवाले कर दिया गया। आजादी के बाद मेरी संपत्ति का जो भी नुकसान हुआ उससे ज्यादा मुझे जवाहरलाल और उनके परिवार से संग-साथ, प्यार और स्नेह के रूप में मिल गया। मेरे लिए वे भारत में एक लंगर की तरह थे और मैंने जो भी फैसले किये उन्हें उनके साथ ने सार्थक और लाभप्रद बना दिया। उनकी बेटी ने, जिन्हें मैं और भी अपने बराबर का समझता था, उनके लिए और उनके साथ उस देश के लिए काम करना सचमुच परितोषपूर्ण बना दिया, जिसकी आजादी की लड़ाई हम दोनों ने साथ साथ लड़ी थी।

शीघ्र ही नवंबर 1975 से काम की ऐसी व्यस्तता आयी कि सुकून, आराम, दोस्ती किसी के लिए फुरसत नहीं रही। सिर्फ एक उत्साह भरी लगन थी कि देश का काम ढंग और ढर्रे से चलने लगे। नया मूड यह था कि अपने में इतनी ताकत बनी रहे, बनती रहे कि सारे काम के लिए काफी हो। मेरे काम के सिलसिले में विदेशों से संपर्क संबंध बनाने की पहली मंजिल पश्चिम एशिया व उत्तर अफ्रीका के दस देशों का दौरा था। इसकी तात्कालिक प्रेरणा तो संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के आने वाले चुनाव थे और मुझे भारत की उम्मीदवारी के लिए इन देशों का समर्थन प्राप्त करना था। पर यह मुनासिब समझा गया कि दूसरे द्विपक्षीय मसलों पर भी बातचीत हो जाय। मेरा पहला पड़ाव एल्जियर्स में हुआ। अपने काम की शुरुआत के लिए इस राजधानी से बेहतर जगह का चुनाव मैं कर नहीं सकता था। विदेश मंत्रालय के अफसर, जिन्हें मैं पहले से जानता था, मुझे लेने आये और मुझे सीधे राष्ट्रपति बूमेदिन के पास ले जाया गया। उन्होंने मुझे गले लगाया और फिर दो घंटे तक बातें करते रहे। वहां से मैं ट्यूनीशिया, लीबिया, मिस्र, सूडान, सऊदी अरब, कुवैत, बहरैन, ईरान और अफगानिस्तान गया और वहां के राज्याध्यक्षों व शासनाध्यक्षों से मिला। उनसे मैंने आश्वासन ले लिये कि वे भारत का समर्थन करेंगे। हर जगह मेरा स्वागत बहुत गर्मजोशी से हुआ, हमारी नीतियों की गहरी समझ दिखायी दी और आर्थिक सहयोग के विस्तार की इच्छा व्यक्त की गयी। मैंने भी साफ साफ बातें कीं और कहा कि आप लोगों से हमेशा दोस्ती के रिश्ते रहे हैं, पर बीच बीच में इस रास्ते से आप लोगों के विचलित हो जाने से हमें गहरी निराशा होती है। मैंने कहा कि न तो सभी शैतान हिंदुस्तान में बसते हैं और न सभी फरिश्ते पाकिस्तान में। वे समझ गये कि जब भी हिंदुस्तान व पाकिस्तान के बीच मतभेद हो तो उन्हें बिना समझे बूझे भारत को दोषी नहीं मान लेना चाहिए। इसलिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भविष्य में इस

तरह की भूल न हो, इसके लिए नियमित रूप से विचार-विमर्श होना चाहिए। हमारे अनुरोध पर उनकी प्रतिक्रिया इतनी सकारात्मक हुई कि बाद म मुझे मालूम हुआ कि पश्चिम एशिया व उत्तर अफ्रीका न एकजुट होकर सयुक्त राष्ट्र-सघ में हम वोट दिया।

काहिरा म एक अजीब घटना घटी। मुझे राष्ट्रपति अनवर सादात से मिलना था। लेकिन वहाँ पहुँचन पर मरी मुलाकात उपराष्ट्रपति, मुहम्मद हुसैनी मुबारक से हुई। उन्होन माफी माँगते हुए सफाई दी कि अगली सुबह ही अमरीका रवाना होन की वजह से सादात मुझसे मिलने से मजबूर हैं। बात समझ म आती थी, लेकिन मैं यह मोका चूकना नही चाहता था। मैं मुसकराया, बडा शिष्ट और शालीन लहजा अपनाया और फिर भी वह बात कह गया, जिसका कि मैं जानता था कि उपराष्ट्रपति पर असर होगा। मैंने कहा कि भारत के लोगा को यह जान कर ताज्जुब होगा कि मैं लीबिया के गद्दाफी जसे आलोचक से तो मिल सका, पर काहिरा म सादात जस अच्छे दोस्त से नही मिल पाया। उपराष्ट्रपति ने फिर माफी मागी। जब मैं वापस लौटा तो मुझे मन ही-मन ऐसा लग रहा था कि मुलाकात जरूर होगी, हालाँकि राजदूतावास के लोगा का खयाल इसके विपरीत था। और मैं मुश्किल से अपने होटल वापस पहुँचा ही था, जहाँ मैं सरकारी अतिथि की हैसियत से ठहरा था, कि मुझे बताया गया कि सदेश आया है कि राष्ट्रपति शहर के बाहर अपनी आरामगाह म मरा इतजार कर रह हैं।

राष्ट्रपति सादात बडे सदभाव से मिले और बडी व्यवहार कुशलता से उन्होने पहले की चूक का कोई जिक्र नही किया। एक घटे की इस बातचीत के दौरान हुसनी मुबारक भी मौजूद थे। बात भारत के मौजूदा हालात के बाबत हुई और सादात ने श्रीमती गाधी की नीतिया का पूरा समथन किया। मरे खुल कर बात करने का अच्छा असर हुआ था। हालाकि सादात के पास भारत के एक प्रतिनिधि से न मिल पाने की माकूल वजह थी, पर इसके आसानी स गलत मायनी लगाये जा सकत थे और एक सकटमय वक्त पर भारत मिस्र सबधो म खिचाव पदा हो सकता था। हमारे राजदूतावास के लोग मेरी बातचीत के नतीजे और मेरे 'आभास' से बहुत ज्यादा खुश हुए। हमारी विदेश सेवा म एस बहुत स लाग हैं, जो दूसरा ही रवया अपनाते हैं। अगर किसी अमित्र देश मे झिडकी मिलती है तो वे कह देंगे 'प्रतिवाद से फायदा ही क्या? कोई असर तो होगा नही।" और अगर किसी दोस्त दश ने साथ न दिया, तो व कह देंगे 'दोस्तो के बीच ऐसी बातें नजरअदाज कर दी जा सकती हैं।" इस तरह अनेक बार हम दोहरी मार खाते रहे हैं। सचमुच यह श्रेष्ठ राजनय तो नही ही है।

एशिया, अफ्रीका व लटिन अमरीका के देशो में 1971 से 1974 के बीच क अपने दौरा के बारे म मैं लिख चुका हूँ। इन यात्राओ का असली मकसद व्यापार और व्यवसाय बढाना था पर हमेशा दूसरे मसले भी उठ जाते थे। बागलादेश का सकट सभी की याद मे ताजा था। मैंने बताया है कि मैं किस तरह इसम लिप्त हो गया था। लेकिन इन दौरो में एक बात जो हर बार नेताओ व अखबार वालो की ओर से उठा दी जाती थी वह थी समाचारो का नितात अभाव या पश्चिमी स्रोता स तोड मरोडकर पेश की गयी खबरो की बात। गुट निरपेक्ष देशो में इस क्षेत्र मे पश्चिमी इजारेदारी का चुनौती देन की एक तीव्र भावना बनती जा रही थी। उन्हे इस बात की शिकायत थी कि खबरा की दुनिया पर एस परदेसी तत्व हावी थे जो तीसरी दुनिया की समस्याओ को गहराइ व आत्मीयता स महसूस

कर ही नही सकते थे। इसलिए वे ग़रीबी को डरावना व सनसनीखेज रूप देते थे और राजनीति को भ्रष्ट बताते थे। सूचना को तत्काल उपनिवेशवाद से मुक्त करने का एक पक्का इरादा बन रहा था। बार बार इस ओर ध्यान दिलाया जाता था कि हम तीसरी दुनिया के देश एक दूसरे के बारे म इन शत्रुतापूर्ण व दूषित रुझानो वाली एजेंसियो के माध्यम से पढते है और इसके लिए भी हम भरपूर पसा अदा करना पडता है। इस तरह हमारे खिलाफ बदनामी और झूठी निंदा भरी खबरें धडल्ले से छापी जाती है। एल्जियस मे हुए गुट निरपेक्ष देशो के चौथे शिखर सम्मेलन मे पहली बार इस समस्या पर ध्यान केंद्रित हुआ। कुछ सदस्य-देशो ने सूचना प्रसार के लिए ठोस व व्यावहारिक विकल्पो की खोज म गहरी दिलचस्पी दिखायी।

एक और भी पहलू था। विकासशील देशा मे सूचना एजेंसियो के काम के लिए जिम्मेदार लोग अकसर पूछते थ कि गुट निरपेक्ष देश भारत की किस समाचार एजेंसी से सहयोग करें? इस सवाल न मुझे कुछ उलझन मे डाल दिया क्योकि भारत मे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इडिया, यूनाइटेड न्यूज ऑफ इडिया, समाचार भारती और हिंदुस्तान समाचार नामक चार समाचार एजेंसिया थी। मेरे लिए यह सभव नही था कि यू ही किसी एक एजेंसी के लिए अपनी पसद बता द। भारत वापस लौटकर मैंन सलाह ली। किसी का भी कोई स्पष्ट दृष्टिकोण नही था। सिफ एक अस्पष्ट सुझाव था कि इनमे से किसी एक एजेंसी को आधिकारिक मान लिया जाये। समस्या को हल करने का यह कोई ठीक तरीका नही था। इसलिए *1975 के जून के शुरू म मैंने प्रधानमत्री से बात की। मैंने उन्हे समस्या की* पृष्ठभूमि बतायी और सुझाव दिया कि अमरीका को छोडकर चूकि दुनिया के सभी दशो म—पश्चिमी देशा मे भी—सिफ एक एक ही समाचार एजेंसी है, इसलिए हम भी इसी के अनुरूप भारत के लिए एक अच्छी और अपने परो पर खडी हो सकन वाली एजेंसी स्थापित करनी चाहिए। सिफ कुछ लोगा को खुश करने के लिए हम अपन सीमित साधन बरबाद नही करन चाहिए। हिसाब लगाया गया कि चारो एजेंसियो की मिली जुली शक्ति से हम भारत का अच्छा सच्चा स्वरूप दुनिया के सामने पेश कर सकेंगे और पश्चिमी एजेंसिया की शरारत की काट भी कर सकेंगे। वह न सिफ समस्या के प्रति जागरूक थी, बल्कि वह बोली, 'मैं भी यही सोचती रही हूँ और जब मैं सूचना व प्रसारण मत्री थी, तब ऐसा ही कुछ करना भी चाहती थी। पर उसके बाद से सवाल यू ही टलता रहा है—हरएक का अपनी-अपनी एजेंसी कायम रखने मे निहित स्वाथ है और किसी म इतनी गहरी लगन नही है कि वह इन्हे मिलाकर एक एजेंसी सगठित कर सके।'

एजेंसियो के विलय के फायदे-नुकसान पर हम लोगा ने गौर किया। पता चला कि इनम से किसी एजेंसी न इस विचार का इस बुनियाद पर कभी विरोध नही किया था कि इससे समाचार विचार की स्वाधीनता पर असर पडेगा। वास्तव म, श्रीमती गाधी ने मुझे बताया कि प्रेस ट्रस्ट ने यूनाइटेड न्यूज की स्थापना का विरोध किया था और बाद में रायटस से और गहरे सबध बनाने की कोशिश भी की थी, ताकि उसकी बढी हुई साख व शक्ति से बाकी एजेंसियां अपन-आप निबल हो जायें। साफ था कि प्रेस ट्रस्ट उस समय स्वतत्र प्रतियोगिता का बहुत बडा हामी नही था, जब उसके स्वाथ सिद्ध हो रहे थे। विलय के सभी मुद्दो से भलीभाति परिचित होन की वजह से प्रधानमत्री न विलय के मेरे सुझाव को पसद किया। उन्होंने सूचना व प्रसारण मत्री से इस विचार को लागू करने के

लिए जरूरी कदम उठाने के लिए कहा।

तीन हफ्ते के अंदर मुझे विद्याचरण शुक्ल ने टेलीफोन किया। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री को मैंने जो सुझाव दिया था, उस पर अमल करने के लिए एजेंसियों से बात की गयी थी। "वे सभी राजी हैं। हमने एक छोटी सी समिति बना दी है। वे चाहते हैं कि हिंदू के जी० कस्तूरी इसके अध्यक्ष हों। पर हम समझते हैं कि आपका उसमें होना जरूरी है। क्या आप उसके निदेशक होना पसंद करेंगे?" "क्यों नहीं?" मेरा जवाब था। उन्होंने यह भी बताया कि समिति की पहली बैठक इंडियन ऐंड ईस्टर्न न्यूजपेपर्स सोसायटी की इमारत में होगी। 'मैं इसमें शामिल नहीं हूंगा। अब से यह सब आपकी जिम्मेदारी है।" उन्होंने अपने मंत्रालय के अफसरों से इस जिम्मेदारी के सिलसिले में मेरी पूरी मदद करने को कह दिया।

मद्रास के हिंदू के जी० कस्तूरी ने पहली बैठक की अध्यक्षता की। निदेशक मंडल में थे प्रेस ट्रस्ट के पूरनचंद गुप्त व के० एम० मैथ्यू, यूनाइटेड न्यूज के राम तरनेजा व आनंदगोपाल शेवड़े, समाचार भारती से एल० एम० सिंघवी, कलकत्ता के अमृतबाजार पत्रिका के तुहिनकांति घोष, हैदराबाद के सियासत के आबिदअली खां, भोपाल के हितवाद के ए० राजन, पटना के इंडियन नेशन के के० के० शा, दिल्ली के नेशनल हेरॅल्ड के बसंतकुमार जोशी और मैं। ऐसा कोई भी नहीं था जिसमें विलय के विचार को लेकर जोश न हो, सबसे ज्यादा उत्साह था प्रेस ट्रस्ट व यूनाइटेड न्यूज के प्रतिनिधियों में। उनकी सिर्फ एक मांग सामने आयी—सरकार चारों एजेंसियों की देनदारी भरने का जिम्मा ले। हमारा पहला फैसला यह था कि इस प्रस्तावित एजेंसी का नाम भारतीय हो। हमारा ऐसा कोई इरादा नहीं था कि उपनिवेशवादी मजबूरियों के सामने झुककर हम कोई अंग्रेजी नाम अपना लें। हिंदी के दोनों एजेंसियों के नामों में वह शब्द पहले से ही शामिल था जो हम इस प्रस्तावित एजेंसी के लिए उपयुक्त नाम समझते थे वह था समाचार। इस तरह भारत की पहली राष्ट्रीय समाचार एजेंसी का जन्म हुआ।

उस वक्त ऐसा कोई मसला नहीं उठाया गया था कि सभी एजेंसियों के एक में विलय से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए कोई खतरा पैदा हो जायगा। उस वक्त किसी ने यह आशंका नहीं प्रकट की कि इस पर सरकार का नियंत्रण हो जायगा या प्रतिस्पर्धा के अभाव में अकुशलता बढ़ेगी। ये बातें बाद में आपात स्थिति के दौरान किये गये हर काम को बुरा कहने के लिए उठायी गयीं। उस बैठक में और उसके बाद भी जो चिंता प्रकट की गयी वह सिर्फ इस एजेंसी की आर्थिक स्थिति के बारे में थी। इसे छोड़ दें तो उस धारणा के लिए अति उत्साहपूर्ण स्वागत व समर्थन ही सामने आया जिसके बारे में उन्होंने स्वीकार किया कि यह उनके कार्यकलाप के आयामों के बूते के बाहर की बात थी। वे बार बार कहा करते थे कि "यह सब हमारे किये न होता।" उनकी बात में वह चिकना चुपड़ा ढंग भी नहीं था जो टकसाली चापलूसों में होता है। ये अपने पेशे के सबसे ऊंचे लोगों में थे और सोचा यही जाता था कि जो कुछ ये कहते हैं, वही इनकी सही राय है।

हमने एजेंसियों की देनदारी अदा कर दी और जो थोड़े से पत्रकार दूसरी जगहों पर अच्छी नौकरियां करना चाहते थे, उनके पावने का भी भुगतान कर

दिया ।[1] निदेशक मडल से मेरी अच्छी निभी। उनमे से कुछ ने पेशे के सबधो से आगे बढकर मुझसे गहरा याराना बनाने की भी कोशिश की। वे अकस्मात चाय या नाश्ते के लिए या नसीहत भरी बातचीत' के लिए मेरे घर आ जाते। कस्तूरी, उनके स्थानीय प्रधिनिधि जी० के० रेडडी व तरनेजा इसी श्रेणी मे आते थे। सिंघवी इस हद तक गये कि मुझ पर जोधपुर विश्वविद्यालय की, जिससे वह सबधित थे सम्मानित उपाधि स्वीकार कर लेने के लिए जोर डाला। जो पेशे के प्रतिनिधि थे उन्होने बहुत साफ तौर पर अपनी राय बतायी कि 'समाचार' को एक कुशल व शक्तिशाली सगठन बनाने से भारत को जो लाभ होगे, उनके बारे मे उनके मन मे कोई भी शक शुबहा नही है। मै नही जानता कि वे असल मे क्या सोचते थे, पर मैं अपनी कल्पना मे उसका यह रूप स्पष्ट देखता था कि वह एक ऐसा उपकरण है जिससे भारत व उसकी जनता के स्वरूप को, किसी पार्टी या व्यक्ति के स्वरूप को नही, विदेशा मे उभारा जा सकता है।

अखबारी दुनिया मे आजादी के पहले से राजनीतिक कायकर्ता की और बाद मे सरकारी कमचारी की हैसियत से मर दोस्त थे। काम के ये तीनो क्षेत्र इस तरह एक दूसरे से गुथे-बँधे है कि तीनो मिलकर ही शासन बनते हैं। मुझे याद है कि राजनीतिज्ञ की हैसियत से लोगो को विदेशी सरकार के खिलाफ लडाई के वक्त राष्ट्रीय दृष्टिकोण पेश करने के लिए किस तरह अखबारो की खुशामद करनी पडती थी। सरकारी कमचारी की हैसियत से अधिकारी प्रवक्ता के रूप मे अखबारो को खबरे देनी होती है। मुल्क के बँटवारे के पहले हमारी गुप्त कारवाई का सबसे महत्वपूण काम किस तरह पेशावर मे आजादी के साहित्य की छपाई, प्रकाशन व वितरण का इतजाम करना होता था, इसके बारे मे पहले ही कहा जा चुका है। यह काम मेरे जिम्मे था और तभी से मैं इस पेशे के सारे उतार-चढाव व खतरे फन्दे जान गया था। तब से सवाददाता व सपादक अखबारी दुनिया की ताजी जानकारी बराबर देते रहे हैं। इसलिए 'समाचार' की स्थापना से सबधित समस्याओ की तात्कालिकता से ही मुझे भारत की समाचार एजेंसियो की कमजोरियो का पता नही लगा।

लेकिन सबसे ज्यादा साफ बात यह थी कि ये चारा एजेंसिया मुख्यत सरकारी दान पर टिकी हुई थी। जो अखबार इनकी सेवाएँ लेते थे, वे समय पर भुगतान नही करते थे। एजेंसियाँ वसूली पर ज्यादा जोर भी नही दे सकती थी, क्योकि हर एजेंसी को डर लगा रहता था कि अगर बहुत जोर डाला तो अखबार का भुगतान करने वाला मालिक दूसरी एजेंसी की सेवा लेने लगेगा। लेकिन मुझे जिस बात से सबसे ज्यादा खीझ हुई वह थी इन एजेंसिया का बौना आकार। ये चारो मिलकर देश के चौथाई हिस्से की खबरें भी नही दे पाती थी। सभी का जोर कुछ खास क्षेत्रो पर था और बाकी देश कोरा बचा हुआ था। एक बेकार की स्पर्धा दिखायी देती थी जिसमे अकसर उन लोगा की अक्षमता अकुशलता सामने

---

1 इनमे प्रेस ट्रस्ट के मी० राघवन भी थे। उन्होने एक लाख रुपये का अपना पावना बताया और मुझसे कहा कि यह फौरन अदा कर दिया जाये। उसके बाद वह ऊची तनख्वाह पर इटर प्रेस सर्विस के प्रतिनिधि होकर जनीवा चले गये। राघवन बहुत वर्षो तक चूपाक रहे थे और जिसे वह ब्लडी नटिवा का मुल्क कहा करते थे वहाँ वह बहुत आनाकानी करने के बाद वापस लौटे थे। एक प्रतिशोधपूण बाड ने बाद मे एस शख्स के मामले को सताये जाने और दडित किये जाने का उदाहरण बताया। जब उन्हे भारतीय पत्रकारिता के लिए नुकसान या कष्ट सहने वाला बताया गया तो मुझे हसी आ गयी।

आ जाती थी जो समाचार-सग्रह मे लगे होते थे। सभी एजेंसियो की विदेशी समाचार सग्रह की व्यवस्था दयनीय थी। दुनिया भर म कुल पाच प्रतिनिधि तनात थे। कमचारियो के वेतनमानो मे घोर असमानता थी। हर तरह के अश-कालिक कमचारी—गाव के अध्यापक, डाकिया, बीमा एजेंट या स्थानीय प्रतिनिधि बनाये गये थे। उन्हे 25 से 7० रुपय माहवार तक का वेतन या भत्ता मिलता था। भारतीय भाषाओ के पत्र पूजी से टूटे हुए थे और जो सेवाएँ उपलब्ध थी, उनका भी उपयोग नही कर पाते थे। उन्हे जिदा रखने की भी कोई उपयुक्त नीति नही थी।

सितबर 1975 मे चारो एजेंसियो का विलय हुआ। 'समाचार' दुनिया की छठी सबसे बडी एजेंसी बना। हमारा सकल्प यह था कि यह अव्वल हो। इसके लिए हमने कुछ दूरगामी निणय लिये। हम चाहते थे कि समाचार' के भारत के हर जिले मे प्रतिनिधि हो। किसी ने भी क्षेत्रीय पत्रो के लिए प्रकाशनीय ताजा समाचार इकट्ठे करने के बारे मे नही सोचा था। इसलिए हमने भाषाई पत्रो के लिए 'लघु सेवा की योजना बनायी। इसी तरह दुनिया की 50 राजधानियो मे दफ्तर खोलन का निश्चय किया—15 एशिया म, 15 अफ्रीका म, 10 यूरोप मे और 10 अमरीका मे। यह सोचा गया कि एसी जोरदार व्यवस्था से ही दुनिया की बडी एजेंसियो से टक्कर ली जा सकती है। विचार यह था कि गुणो के आधार पर उनसे बाजी मार ली जाये और उन समाचार क्षेत्रा पर जोर दिया जाये जिनकी पश्चिमी एजेंसिया न उपेक्षा की है—विकास पत्रकारिता एक एसा ही क्षेत्र था। इससे हमारे देशवासियो को विकासशील दुनिया की बडी परियोजनाओ के बारे म जानकारी रहती और वे उनम भाग ले सकते। पहल कदम क रूप मे हमन वेतनक्रमो म सुधार किया और सेवा शर्तें निर्धारित की। 'समाचार' ने 31 गुट-निरपेक्ष देशो से खबरो के आदान प्रदान की एसी व्यवस्था की कि उसका खच अपने-आप निकलता रहे। भेजने वाला ही अपने सदेश का खच उठाता था। इससे हिसाब रखने और वक्त लगन वाली प्रक्रियाओ स छुटकारा मिल गया।

जब मैंने पत्रकारो को बताया कि समाचार' के गठन को अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे उसकी भूमिका से आका जाना चाहिए तो इस व्यापक परिप्रेक्ष्य को देखकर उनकी आँखें खुल गयी। मैंन यह तथ्य उभारन की कोशिश की कि काम और अवधारण के दृष्टिकोण से यह बिलकुल भिन्न स्तर का प्रयोग है। उस समय पाकिस्तान एक मुस्लिम समाचार एजेंसी कायम करन क सुझाव क पक्ष मे समथन जुटान म लगा था। युगोस्लाविया और ट्यूनीशिया ने गुट निरपेक्ष देशो की एजेंसिया का एक 'पूल' (निकाय) बनान मे पहल कर ली थी। उनका उद्देश्य राजनीतिक कम और व्यावसायिक ज्यादा था। उनका विचार था कि युगोस्लाविया की एजेंसी 'तान्युग' को प्रस्तावित पूल का केंद्र मान लिया जाय। लेकिन उसम गतिशीलता नहीं थी। हम तो एसे समन्वित प्रयास की जरूरत थी जिससे अति शक्तिशाली प्रतिद्वद्वी का सामना किया जा सके। हम आग सिफ इसलिए बढ सके कि समाचार' जसी सशक्त एजेंसी कायम कर ली गयी थी। माच 1976 म ट्यूनीशिया म एक गोष्ठी हुई तो एक सबल प्रतिनिधिमडल यहाँ स गया। दूसरे देशो के प्रतिनिधि तकनीकी स्तर के थे और उनकी बात दबी-दबी-सी थी। कारवाई कुछ फीकी-सी रही, हालाकि समाचार सग्रह के प्रसार व विनिमय के लिए एक लाभदायक योजना बनायी गयी। हमारे दृष्टिकोण का वाछित प्रभाव पडा और जो लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे व ज्यादा विश्वास के साथ और अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य म इस चुनौती का

देखने समझने के लिए राजी हो गये। अधिकाश प्रतिनिधियो ने हमसे सक्रिय सहयोग का वादा किया।

'समाचार' की स्थापना का सवत्र स्वागत हुआ। पहले वाली एजेंसियो के प्रतिनिधि नयी व्यवस्था पर हावी होन की कोशिश कर रहे थे। लेकिन वे "एक सशक्त एजेंसी स्थापित करने म पूरा सहयोग देन के लिए तत्पर थे, क्योकि यह काम हम अपने बूत पर नही कर सकत थे।" शुरू से ही यह बात साफ थी कि इस प्रयोग की सफलता इस बात पर निभर होगी कि शीषस्थ स्थानो पर उपयुक्त लोग नियुक्त किये जाये। सरकारी या अफसरी हस्तक्षेप कभी भी कही भी घुस आ सकता था। लेकिन तब भी हम बहुत हद तक अपनी स्वतत्रता और विश्वसनीयता बना सकते थे और कायम रख सकते थ। सपादकीय व प्रशासकीय विभागा के शीपस्थ पदो पर जो दो नियुक्तिया हुई थी उनसे मैं सतुष्ट नहा था। दोना म विशेषज्ञता का अभाव था, एक तो एजेंसी के दरवाजे म घुसन योग्य भी नही था। लेकिन एसी दुघटनाआ को अकसर बरदाश्त करना ही पडता है। भारत म व बाहर निहित स्वार्थों द्वारा इस प्रयोग की जो निंदा माच 1977 के बाद हुई वह उसी कोशिश का एक हिस्सा थी कि आपातस्थिति के दौरान जो भी हुआ, उसे पलट दिया जाये। लेकिन, एक ऐसे सपादक से इसकी निंदा सुनकर अचभा ही हुआ, जो अयथा युक्तिपूण राय प्रकट करता हो।[1] खुदा ही जानता है कि गिरिलाल जन को ऐसी क्या परेशानी हुई कि उन्होने लिखा, 'पिछले शासन मे श्रीमती इदिरा गाधी के विशेष दूत, मुहम्मद यूनुस, साफगा थे। जिन लोगा को वह समाचार' के प्रतिनिधियो की हैसियत से विदेशा म नियुक्त करना चाहत थे, उनसे उह उन देशा स सामायत वस्तुनिष्ठ खबरा की अपक्षा नही थी। वह चाहते थ कि ये प्रतिनिधि उन देशो म भारत की साख को निखारें। इन लोगा को राजदूतो से अच्छे वतन भत्ते मिलने वाले थे—कम से कम अपने विश्वासपात्र लोगो से उहोन यही कहा था, जिसका तात्पय यह था कि वे उसी पमाने पर खातिरदारी पर खच करें, जिस पमाने पर पश्चिम के पत्रकार कर सकत है और करते हैं—और शायद उह या किसी सरकारी एजेंसी को गुप्त रिपोर्टें भेजें जिसस कि स्थिति के आकलन के लिए सरकार को सिफ अपने राजदूता पर निभर न रहना पडे। वह सी० आई० ए० (अमरीकी जासूस एजेंसी) का उदाहरण अपना रहे थे, सिफ ज्यादा भोडे ढँग से।'

इस विद्वान सपादक को वतनो के बारे मे यह दूर की कस सूझी, यह मरी समझ मे नही आता। 'समाचार' के प्रतिनिधियो के वेतन भत्ते इस दृष्टिकोण स निश्चित करने का कभी कोई विचार भी नही हुआ। इसम शक नही कि मैंन सुझाव दिया था कि जो लोग विदेशो म तैनात किये जायें उह उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए और उनके यात्रा-व्यय की भी व्यवस्था होनी चाहिए। यह सुझाव इसलिए दिया गया था कि मैं जब सान फ्रासिस्को म कौंसल-जनरल के पद पर तनात था, तब उस पद की जिम्मेदारिया निभान म मुझे खुद कुछ रुकावटें आयी थी। कौंसल जनरल का काम अमरीका के 23 राज्या म भारत के आर्थिक व वाणिज्यिक हिता व राजनयिक कायकलाप का देखना था। लेकिन बजट म यात्रा-व्यय की मद में कुल 20 000 रुपये रखे गये थ। हवाई जहाज से किसी दूर क राज्य मे जाने-आने और कुछ दिन किसी माकूल होटल म टिकन म इस रकम का

1 टाइम्स आफ इडिया' नयी दिल्ली, 18 अक्तूबर 1978

चौथाई हिस्सा तो एक दौरे म ही निकल जाता। इसलिए न्यूयाक म तनात कोई पत्र प्रतिनिधि अमरीकी घटनाओ के बारे म वस्तुनिष्ठ खबरें कसे भेज सकता था, अगर यात्रा-व्यय के रूप म उस बहुत छोटी रकम ही मिलती ? टाइम्स के हमारे इन दोस्त की तरह के आलोचको को क्या यह मालूम है कि विदेशी पत्रकारो के भारत म तनात होने पर उन्ह कितने साधन मुहैया रहत हैं ? हम चाहत थ कि हमारे लोग 'आजाद प्रेस' के इन खबर योजन वाला स बराबरी के दर्जे पर होड कर सकें, नही तो उनकी खबरो की कोई विश्वसनीयता नही रहेगी। यह तो हो नही सकता कि कजूसी भी बरती जाय और खबरें भी बढ़िया मिलें। विचार यह था कि 'समाचार' के विदश स्थित प्रतिनिधियो को ज्यादा सफर भत्ते दिय जायें, यह विचार नही था कि उन्हे ज्यादा वतन दिय जायें। जो भी हो, अगर कोई योग्य पत्रकार किसी कजूस, गँवार राजपूत से ज्यादा पाता है तो इसम बुराई क्या है ? वक्त आ गया है जब हम प्राथमिकताओ को ठीक स तय कर लें। जहा तक इन सपादक महादय के सर पर सवार सी० आई० ए० क भूत और सी० आई० ए० से उनके लगाव का सवाल है, उसके बारे म कुछ भी न कहना ही बेहतर होगा। उन्होने अपने ही पेशे के लोगो क प्रति कोई हमदर्दी भी तो नही दिखायी। मैं समझता हूँ कि भारत म अखबारनवीस गरीबी म रहन के इतन आदी हो गय हैं कि अगर कोई उनके लिए रहन सहन का बेहतर बदोबस्त करन की सोचता है तो उस पर शक किया जान लगता है। हमारे इन सपादक मित्र की तरह के लोगो को यथास्थिति म किसी भी परिवतन म सी० आई० ए० के० जी० बी० यहा तक कि 'रॉ' और आई० बी० की छाया दिखायी पडन लगती है।

अगस्त 1975 म, लीमा म गुट निरपेक्ष देशो के विदेश मन्त्रियो के सम्मेलन की काय सूची मे अफसरो के स्तर पर एक सम्मेलन करन का सुझाव शामिल था। हमने न्यूयाक स्थित समन्वय ब्यूरो को राजी करन म कामयाबी हासिल कर ली कि यह सम्मेलन अफसरो के स्तर का न होकर मन्त्रि स्तर का हो। यूगोस्लाविया और ट्यूनीशिया इसके खिलाफ थे और इसे रोकन की उन्होन हर कोशिश कर डाली। वे चाहते थे कि ट्यूनिस मे जो गोष्ठी हुई थी, उसी के फसले को अतिम मान लिया जाये। यह गलत था। हमने जिस तरह मसले को पेश किया उसके आगे उनकी एक न चली। एक ओर सूचना मत्रालय के अफसरो और मत्री (विद्याचरण शुक्ल) ने और दूसरी ओर विदेश मन्त्रालय के अफसरो व सबधित देशो मे हमारे राजदूतो ने मिल जुलकर मसले को आगे बढाया। मिलकर काम करके उन्होने कमाल कर दिखाया। सदस्य देशो के बडे बहुमत न इसम भाग लेन के लिए सहमति प्रकट की। जुलाई 1976 म हमन 62 देशो को इसमे शामिल करा लिया था जिनम से 32 मन्त्रि स्तर के प्रतिनिधि थे। सूचना मन्त्रियो का इतना बडा व प्रतिनिधित्वपूर्ण सम्मेलन पहले कभी कही नही हुआ था। समाचार एजेंसी पूल का काम सँभालने के लिए 14 सदस्यो की एक समन्वय समिति बनी, भारत इसका अध्यक्ष था। मैं भारतीय प्रतिनिधिमडल का नेतृत्व कर रहा था, इसलिए इस पद के लिए मैं चुना गया।

पश्चिमी प्रचार तन्त्र ने एल्जियर्स, लीमा व ट्यूनिस म पहले उठाये गये कदमो की उपेक्षा की थी। लेकिन वह ऐतिहासिक दिल्ली से आँखें नही मूद सकता था। उनकी इजारेदारी पर आच आने का डर हुआ तो रायटस और अमरीका के 'एसोसिएटेड प्रेस' के अध्यक्ष यह दुखडा रोने के लिए मजबूर हो गय कि पूल व्यवस्था से समाचार पाने वालो की विश्वसनीयता बाकी नही रहेगी।" उनकी

स्थानीय कठपुतलियो ने तोतारटत की तरह यही भावना दोहरायी। यह उद्दडता बरदाश्त के बाहर थी और मैं जवाब म वक्तव्य देने के लिए मजबूर हो गया, 'पश्चिम की एजेंसियाँ खुदा ने नही बनायी थी और यीशु मसीह उनके प्रबध-निदेशक नही थे। वे ऐसे लोगो ने बनायी थी जिनकी साख सदिग्ध थी और व ऐसे लोगो के नियत्रण म थी जो और भी ज्यादा बदनाम थे। अगर उनकी विश्वसनीयता है तो हमारी भी हो सकती है।" यह वक्तव्य न सिफ गुट-निरपेक्ष देशो म बल्कि पश्चिम के अखबार मे भी बडी बडी सुर्खियो से छपा। यह तो जानी मानी बात थी कि वे इस वक्तव्य से खफा होगे। पर जिस बात से मुझे भी ताज्जुब हुआ वह यह थी कि खुद पश्चिमी अखबारो के पाठको ने मुझे शाबाशी व तारीफ के अनेक सदेश भेजे। इन पाठको ने इन एजेंसियो के निदेशको का कच्चा चिट्ठा मुझे लिख भेजा जो प्रशसनीय कतई नही था। यह बात साफ हो चुकी थी कि इन लोगो ने खुद अपने पाठको को बहुत नाराज कर दिया था।

हमारे दूतावासो की उदासीनता के कारण विदेशो मे भारतीय प्रचार को अकसर धक्का लगता रहा था। भारत के बारे म बुनियादी मिथ्या धारणाएँ दूर करने मे भी व अक्सर असफल रहते थे। इग्लड म स्कूली बच्चो की पाठय पुस्तको मे हमारे धार्मिक विश्वासो, हमारी सामाजिक प्रथाओ और आदतो के बारे म गलत विवरण छपे रहते थे। इस तरह के पक्षपातपूण और विकृत विवरण एशिया अफ्रीका, अमरीका व यूरोप के देश इन्ही पुस्तको से ले लेते थे। वे सोचते थे कि भारत के बारे म जो भी जानने योग्य है, वह इग्लड जानता ही होगा और जो कुछ उसकी पाठय पुस्तको म लिखा जाता है, वह सही होगा। यह हमारे लिए और हमम से उन लोगो के लिए, जिनकी भारत के लिए प्रतिबद्धता बहुत मजबूत थी, एक चुनौती थी। हम समझते थ कि सच्चाई के प्रकाशन का काम किसी सरकारी सस्था की जगह कोई गैर-सरकारी एजेंसी ज्यादा अच्छी तरह कर सकती थी। इसलिए 1 दिसबर, 1975, को 'कम्यूनिकेशन सेंटर इडिया' नामक एक सगठन की रजिस्टरी हुई। इसके निदेशक मडल म शिक्षाविद, ससद-सदस्य और पत्रकार थे। मैं इसका अध्यक्ष था।

शुरू म हमारे पास पसा नही था। इसलिए मेरे मकान के कुछ कमरे इसके अस्थायी दफ्तर बन। इसके बाद विदेश व सूचना मत्रालयो से बात शुरू हुई। पहला फ़सला यह हुआ कि हम लोग उन क्षेत्रो मे काम न करे जहा पहले से इस तरह की कोशिश या काम हो रहा हो। इस पर सभी सहमत थे कि सारी दुनिया की पाठय पुस्तको मे जो गलतियाँ पहुँच गयी थी, उन्ह ठीक करान का काम उठाकर केंद्र सचमुच बडा उपकार करेगा। यह सुधार करवाने के बारे म पहले किसी न सोचा तक न था और इस बडे पमाने पर तो हरगिज नही, जिसके लिए हम प्रयत्नशील थे। यह शीघ्र ही पता लग गया कि ऐसी पाठय पुस्तको की सख्या हजारो मे है और इस काम को हाथ म लेने के लिए हम पैसा चाहिए था। इसका खुशी खुशी वादा कर दिया गया। इसक बाद हमन लेखको, पत्रकारो व शिक्षाविदो म श्रेष्ठ लोगो का सहयोग मागा। योजना यह थी कि इन लोगो से विदेशी स्कूलों म पढायी जा रही पाठय-पुस्तकें पढ जाने और उनम जो भी आपत्तिजनक अश हो उनक सशोधन तयार करने के लिए कहा जाय। सोचा यह गया कि सरकार की जगह अगर किसी विषय का प्राध्यापक अपन ही विषय की पाठय-पुस्तक क सबध म इग्लड या अमरीका के किसी प्रकाशक को लिखे और आवश्यक सशोधन कर लेन का अनुरोध करे तो उसका ज्यादा वजन होगा। हमन अपने दूतावासो से भी अनुरोध

किया कि वे अपने-अपने क्षेत्रो के महत्वपूर्ण व्यक्तियो की सूची बनायें और हमें बतायें कि किस देश मे क्या करना अपेक्षित है। इतना काम शुरू म कर डालन के बाद हमने 24 मई, 1976 को एक प्रतिनिधित्वपूर्ण पर अ राजनीतिक बैठक बुलायी। जो लोग आय, उनमे से अनेक ने हमारे प्रशसनीय उद्देश्य की सराहना की और पूरे सहयोग का आश्वासन दिया। उसी बैठक म हमने अपनी इस योजना की घोषणा की कि आजादी की लडाई के हर ढँग और मजिल का चित्रण करते हुए हम एक प्रतिष्ठाजनक पुस्तक पाँच भाषाओ म प्रकाशित करेंगे। इसकी भी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। सूचना व प्रसारण वित्त तथा अय सबधित मत्रालयो से सलाह के बाद हम कुछ पैसा 1975 व 1976 के लिए मिला। इसका पूरा उपयोग हुआ। 1977-78 के लिए अनुदानस्वरूप 15 लाख रुपये की रकम भी मजूर हो गयी। पर इस बीच आ गया मार्च 1977 और एक युग का अत।

देश हित को ध्यान मे रखने की जगह नयी सरकार द्वेष की ओछी भावना से ऊपर न उठ सकी और उसने सारी सहायता बद कर दी। इसलिए जिन्हे हमने केंद्र चलाने के लिए रखा था उनकी सेवाएँ खत्म करने के सिवा हमारे पास कोई चारा न था। स्टेनोग्राफर व एकाउंटेंट दोनो का काम करने वाला सिर्फ एक व्यक्ति दफ्तर सँभालने के लिए बचा। चूंकि मेरे अध्यक्ष बने रहने से कोई खर्च नही होने वाला था, इसलिए मैंने अपने पद पर कायम रहने का फैसला किया। निदेशक मडल बहुत उत्सुक था कि यह संस्था तब तक जीवित रखी जाय जब तक सत्ताधारी व्यक्तियो की समझ मे उसकी उपयोगिता न आ जाये। अपनी तरफ से मैं तैयार था कि मैं इस्तीफा देकर किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जगह खाली कर दू जो सरकार को ज्यादा स्वीकार्य हो ताकि काम चलता रहे। मैं बहुत चाहता था कि, जैसा कि शायर ने कहा है, 'मैं रहूँ या न रहूँ, यह चमन आबाद रहे।'

आपातस्थिति के दौरान अखबारो पर लगाये गये सेंसर का एक इतिहास है। शुरू मे इसका कुछ उपयोग भले ही रहा हो, पर जल्दी ही यह उपयोग खत्म हो गया और सेंसर से लाभ की जगह हानि ज्यादा होने लगी। पत्र पत्रिकाओ के पाठक उन बातो पर भी सदेह करने लगे जो सही सही छापी जाती थी। वक्त गुजरने के साथ यह स्वाभाविक रूप से अप्रासगिक और अति आपत्तिजनक हो गया। कई सपादको और पत्रकारो ने स्वीकार किया कि पिछले कुछ वर्षो म उन्होंने अतिवादी रवैया अपनाया था। कुलदीप नय्यर ने इससे भी एक कदम आगे बढकर कहा, 'सिर्फ हम ही क्यो दोष देते है? पेशेवर राजनीतिज्ञ भी यही गलती करते हुए पकडे गये। हमने सबक सीख लिया है। हमे हमारी आजादी वापस दीजिये ताकि हम बेहतर काम करके दिखा सकें।' प्रधानमत्री को इसके बारे म बताया गया और वह सेंसर खत्म करने के लिए राजी हो गयी। वह इस सबध में खुलकर बात करना चाहती थी। समाचारपत्र-जगत के कुछ दिग्गजो के बारे म मैं क्या सोचता था—यह उन्हे बताने म मुझे कोई झिझक नही थी। उनके कोई सिद्धात नही थे। वे क्या रुख अपनाते हैं, यह इस बात पर निर्भर था कि उन्हे क्या सुविधाएँ दी जाती हैं या नही दी जाती यह उनके विश्वासो पर निर्भर नही था। वे अपना ज्यादा वक्त कोई शिकायत दूर करवाने, कोई तकलीफ रफा करवाने या कोई विशेष सुविधा माँगने मे खर्च करते थे। मैं शायद ही किसी ऐसे सपादक या पत्रकार से मिला हूँ जिसने अपने हितो पर आँच आते हुए भी राष्ट्रपति को प्राथमिकता दी हो। भारत की विशाल जनता के सदर्भ मे कुछ अँग्रेजी पत्र पत्रिकाओ और उनके पाठको की कोई गिनती नही थी। इस तरह से न उनके समर्थन का ही

महत्व था और न उनके विरोध का कोई मूल्य। वे पूरी तरह सरकार का विरोध भी करते तो भी उनकी निंदा से कोई अतर न पडता।

तो 1976 की मई के शुरू मे कई मत्रालयो के प्रतिनिधियो की एक बठक प्रधानमत्री के दफ्तर हुई। सूचना और प्रसारण मत्री व उनके मत्रालय के अफसर, जी० पी० पाथसारथी, प्रधानमत्री के सचिव और प्रेस सलाहकार, विदेश सचिव व विदेश मत्रालय के प्रवक्ता और मैं इस बठक मे शामिल थे। यह निश्चय हुआ कि कुछ पत्रो की अनगल बकवास के लिए पूरे समाचारपत्र जगत का दडित नही किया जाना चाहिए। विद्याचरण शुक्ल से सेंसर पद्धति खत्म करने के लिए कहा गया। पर पूरे एक महीने तक कुछ नही हुआ। जून के अत म मैंने प्रधानमत्री को याद दिलायी। इसके बाद 7 सितबर, 1976 को मैंने एक लबी टिप्पणी लिखी जिसम मैंने कहा, "समय आ गया है कि गतवप लागू की गयी सेंसर-प्रणाली पर फिर स विचार हो। इसके जारी रहने से भारत व विदेश के अखबारा मे छपने वाली अच्छी और प्रामाणिक खबरो की विश्वसनीयता पर असर पड रहा है। इसकी वजह से विदेशी पत्रकारो न हमारे खिलाफ युद्ध छेड रखा है। उनम से अधिकाश उन पाँच पश्चिमी देशो से आये हुए हैं जो हमेशा ही हमारे खिलाफ रहे है। व आगे भी हमारे विरुद्ध रहगे और हमे उनके इस रवय का आदी हो जाना चाहिए। किंतु, इस बीच हमने गुट निरपेक्ष देशो की एजेंसियो के पूल के रूप मे एक ताकतवर हथियार तैयार कर लिया है। हम पश्चिमी प्रचार-तत्र के झूठ और तोड मरोडकर पेश की गयी खबरा का पर्दाफाश कर सकते हैं और पश्चिम के पत्र अब अपना पुराना राग बिना दड पाये अलाप नही सकते। सेंसर खत्म होने से वातावरण निश्चय ही बदलेगा। स्थानीय पत्रकार सोचेंगे कि उनकी वस्तुनिष्ठता और विश्वसनीयता का आदर होगा, जबकि विदेशी पत्रकार समझ लेंगे कि वे कुछ भी लिखते-पढते रह, हम उनकी परवाह नही है।"

प्रधानमत्री मरे दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत थी और गलती सुधारने मे देर होते देखकर उन्ह दुख था। उन्होने एक बठक फिर बुलायी, जिसम वे ही लोग मौजूद थे जो पहली बठक म थे। शुक्ल ने फ़ौरन वादा किया कि वह कुछ निर्देशक तत्व बना लेंगे और कहा कि अभी तो चूकि वह कनाडा जा रहे थे, इसलिए वहा से लौटने पर सेंसर खत्म कर देंगे। मैं भी समाचार एजेंसी पूल की एक अनौपचारिक बैठक मे शामिल होने मक्सिको जान वाला था। वापसी मे मैंने टोकियो म सुना कि सेंसर खत्म हो गया है, पर सिफ विदेशी पत्रो के लिए। म स्तभित रह गया। मेरी समझ मे नही आया कि यह भेदभाव बरतने की क्या जरूरत थी? मुझे यह सिर्फ असगत और बेतुका ही नही लगा, बल्कि नीति की दृष्टि स ग़लत भी, अपन आदमियो के खिलाफ़ हम मोर्चा जमाये रह और विदेशिया को परकटी उडान दे—यह सरासर गलत रवया था। उस वक्त हम इसकी सख्त जरूरत थी कि फौरन तनाव कम किये जाये। इसके अलावा, दिल्ली पहुँचन पर मैंने प्रधानमत्री को बताया कि टुकडे टुकडे करके फसले करने से हम बिलकुल हास्यास्पद लगने लगते हैं। वह भी खीझी हुई थी। वह बोली, "वह यह सब क्यो कर रहे है? अगर अ'या व सरकार की अनुचित आलोचना करते भी है तो कोई आसमान तो फट नही पडेगा। मैं शुक्ला से बात करती हूँ।' लेकिन अखबारो पर यह आशिक पाबदी तब तक लगी रही जब तक जनता ने माच 1977 म चुनाव म अपना स्पष्ट मत कुछ अन्य बाता क अलावा इसके विरुद्ध दे नही दिया। यह उस समय का एक टकसाली उदाहरण है कि प्रधानमत्री न बडे स्पष्ट शब्दा म मौखिक रूप से और

सरकारी फाइल पर लिखकर किसी निर्णय के पक्ष मे अपना मत व्यक्त कर दिया, लेकिन तब भी अमल म यह निर्णय टाला गया, तोडा-मरोडा गया और मोडा-झुकाया गया—इस हद तक कि काम करने की प्रणालियो पर इसका घातक असर पडा।

6 मार्च, 1976 को दक्षिण एशिया के विदेशी पत्रकार सघ की दिल्ली शाखा ने मुझे अनौपचारिक बातचीत के लिए बुलाया। अशोका होटल मे हुई इस बैठक मे तय हो गया कि सारी बात अनौपचारिक होगी, छापी नही जायेगी। जो 60 पत्रकार वहा मौजूद थे वे जो पहली बात जानना चाहते थे वह यह कि भारत सरकार विदेशी पत्रकारो को विरोधी या विद्वेषी क्यो समझती है? सवाल सुनकर मुझे खुशी हुई। इससे मुझे यहा के चिंतन की पृष्ठभूमि समझाने का मौका मिला। सामान्यत हमारे और विदेशियो के सबध ऐसे रगो मे रँग जाते हैं कि वास्तविकता पर पूर्वाग्रह हावी हो जाते है। उदाहरण के लिए, जिस पहली बात की सफाई जरूरी है, वह यह कि हमारे मन म 'विदेशी' का मतलब अमरीकी, ब्रिटिश, जमन और कभी-कभी फ्रासीसी अखबारो का एक विशेष गुट होता है। बाकी दुनिया से हमारा कोई झगडा नही। हमारे सबधो म खिचाव या टकराव को आपातस्थिति की घोषणा या नागरिक अधिकारो के तथाकथित हनन से कुछ नही लेना देना। पश्चिमी प्रचारतत्र हमेशा ही हमारा आलोचक रहा है। मैने उन्हे बताया कि यह देखकर अचभा होता है कि यही अखबार और उनके देशो की सरकारे भी एशिया अफ्रीका लटिन अमरीका व यूरोप तक म तानाशाही शासनो का समर्थन करती है, उनसे सौदे पटाती है और फ्राको के स्पेन या सालाजार के पुर्तगाल से समझौते व सधियाँ करती ह। इसलिए भारत म आजादी के अभाव पर उनका रोना धोना एक ढोग भर लगता है। आपातस्थिति से बहुत पहले की उनकी प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाये तो पता चलेगा कि हर आम चुनाव के पहले व हम तान मारते थे कि यही आखिरी चुनाव हैं, मानो व चाहते हो कि निर्वाचन की पुनीत पद्धति को हम त्याग दें, यह हमारे मान की नही है। वहाँ पर मौजूद पत्रकारो मे से कुछ सहमत हुए कि इस तरह की खबरो से खीझ होती ही है पर इसे माफ कर दिया जाना चाहिए। मैंने कहा कि हमे यह तो कभी खयाल भी नही आया कि उनकी राय पर आपत्ति की जाये, लेकिन तथ्यो को तोड मरोड-कर पेश करने का उन्हे कोई हक नही है। फिर मैंने पूछा कि क्या यह दावा करना नैतिक दृष्टि से उचित है—जैसाकि प्रसिद्ध अमरीकी फिल्म आलोचक, रेक्स रीड ने किया—कि "हवाई यात्री कलकत्ता के दमदम हवाई अड्डे पर नही उतरते क्योकि वहाँ कीचड और जानवरो के बीच हाथी घूमते रहते है', कि "भारतीयो को दिन मे एक बार अपने को साँप से कटवाना ही पडता है', कि 'कलकत्ता मे लोगो को लाशो के ऊपर चलना पडता हैं", या कि, "ताजमहल के नीचे गगा बहती है।' बहुत हँसी हुई और कुछ लोगो ने ऐसी खबरो के हास्यास्पद बेतुकेपन को स्वीकार किया।

मैंने बताया कि आपातस्थिति के बहुत पहले एक प्रसिद्ध अमरीकी साप्ताहिक ने भारत को 'एक गदा दलदल जिसके ऊपर मक्खियाँ भिनकती है' कहा था। इस तरह का विद्वेष बार बार दिखायी पडता था। जहाँ तक सरकारी दुराव का प्रश्न है मैंने बताया कि अमरीकी राष्ट्रपति फोर्ड ने आपातस्थिति के कारण भारत की यात्रा स्थगित कर दी थी पर चीन और पाकिस्तान जाने म उन्हे कोई आपत्ति नही हुई। तब क्या चीन लोकतत्र का नया गढ बन गया था? इसी तरह ब्रिटिश

सरकार ने युवराज चार्ल्स की भारत-यात्रा स्थगित कर दी थी, पर उनकी मा पाकिस्तान गयी। उन्होने 'बुनियादी लोकतन्त्र' के विचार का समर्थन किया था, जिसे खुद पाकिस्तानियो ने कठिन सघर्ष के बाद खत्म कर दिया था। इस तरह की गदी, झूठी और एकतरफा खबरो की कुछ और मिसालें देने के बाद मैंने पूछा कि वे जीवन के भारतीय ढँग के खिलाफ ऐसा विद्वेष क्यो प्रकट करते है—भारत के सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक व राजनीतिक पहलुओ के प्रति द्वेष भावना क्यो रखते है? "आप हमारी सस्थाओ का मजाक उडाते है और हमारी परियोजनाओ के सबध मे सदेह प्रकट करते है। भारत मे स्वस्थ जनतन्त्र था पर आपने पाकिस्तानी तानाशाही का समर्थन किया और हमे बदनाम किया। हमे मालूम है कि लोकतन्त्र का अभाव आपको नही खलता, आपको खलती है हमारी स्वाधीनता की भावना। आप इसे बरदाश्त करने के लिए तयार नही है। अगर एक बदनाम और निकाला जा रहा राष्ट्रपति फोर्ड को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता है तो लोकतन्त्र सुरक्षित हो गया। यदि लेबर या कजरवेटिव पार्टी हाउस आफ कामस मे एक का भी बहुमत पा जाये तो उसे पूरे इग्लड की तरफ से बोलने का अधिकार है। लेकिन, अगर भारत मे काग्रेस पार्टी ससद मे दो तिहाई बहुमत पा जाय, तो आप अल्पमत का समर्थन करते हैं और इस बात से सतोष पाते है कि यह अल्पमत जनता से शासनाधिकार प्राप्त निर्वाचित सरकार के रास्ते मे रोडे अटका रहा है। यही 1971 के मध्यावधि चुनाव के बाद हुआ।"

तो इसी तरह दो घटे तक बातचीत चलती रही। बाद मे हम लोगो ने साथ चाय पी और हँसी मजाक चलता रहा। यह बातचीत अप्रकाशनीय थी, लेकिन तब भी कुछ पत्रकारो ने अपनी खबरो मे मेरे कुछ जुमले इस्तेमाल करके उन मुद्दो पर जोर दिया जो मैंने उठाये थे। शाखा के अध्यक्ष ने बाद मे मुझे एक पत्र भेजकर कहा कि सदस्यो ने उस दिलचस्प बातचीत को और मेरे दोस्ताना पर दो-टूक जवाबो को पसद किया। "आप घुमा फिराकर बात नही करते। हम यह पसद है। आपके साथ हमे अपनी स्थिति साफ मालूम रहती है। भारत मे हम लोग जिस बीमारी से ग्रस्त हैं उसके कारण समझने मे आपके विचारो से हमे मदद मिली है।"

और फिर 31 जुलाई, 1976 को मुझे भारतीय प्रेस क्लब मे दोपहर के भोज के समय एक बैठक मे भाषण देने की दावत मिली। वहा बहुत बडी सख्या मे पत्रकार मौजूद थे। वे बहुत चुस्त और मुस्तद थे, पर प्रतिपक्षीय। सवालो की बौछार हो गयी, खास तौर पर 'समाचार' के बारे मे। हमारे समाचारपत्र-जगत मे भी ऐसे लोग है जिनका राष्ट्रीय समाचार एजेंसी को बदनाम करने मे उतना ही स्वार्थ निहित है जितना कि किसी पश्चिमी पत्रकार का। ब्रिटन या अमरीका के पत्रो मे लिखकर वे अपने पत्रो मे लिखने से ज्यादा कमा लेते हैं। अपने देश मे सपादक सहायक सपादक या विशेष सवाददाता के प्रतिष्ठित पदो पर काम करते हुए भी वे विदेशी पत्रो के टटपूजिये सवाददाता बनना पसद करते हैं। अपने पद का गर्व उनके पैसे के लालच या पश्चिम मे ख्याति की भावना पर काबू नही पा पाता। मेरे लिए 'समाचार' मूलत राष्ट्रीय स्वाभिमान की अवधारणा था। एक ही राष्ट्रीय समाचार एजेंसी होने का अपने-आप यह अर्थ तो नही हो जाता कि वह पूरी तरह सरकार के नियन्त्रण मे है। आखिरकार रायटर्स या 'एसोसिएटेड प्रेस' या 'एजेंसे फ्रास' क्या थे? सिर्फ अमरीका मे ही दो एजेंसियाँ हैं जसाकि मैं पहले कह चुका हूँ। इसके अलावा मैं यह हमेशा मानता रहा हूँ कि अगर कोई सरकार समाचार-तन्त्र का दुरुपयोग करना चाहे तो उसके पास इसके लिए अनेक तरीके रहते हैं,

जो इतने स्पष्ट नही होते, पर प्रभावकारी इतने ही होते हैं। मैं यह सोच भी नही सकता था कि चारो एजेंसिया स्वतत्र कैसे हो गयी, जबकि वे लगभग पूरी तरह सरकारी मदद पर आश्रित थी। किसी भी सस्था का चरित्र सस्था-मात्र से नही, उन लोगो से बनता है जो उसे चलाते हैं। मैं 'समाचार' को कैसा बनते देखना चाहता था, इसके बारे मे मेरे विचार साफ थे और पत्रकारो को मैंने यह तसवीर बतायी। मैं इसे सत्तारूढ दल, सरकार, प्रधानमत्री या उनके सहयोगियो की साख बढाने का यत्र नही मानता था। मैं अपने देशवासियो के उज्ज्वल स्वरूप को सामने पेश करना चाहता था। "इसका काम होगा भारत के बारे म सच्चाई पश करना और हमारे औद्योगिक विकास को उजागर करना। यह हमारे और अय विकास शील देशो के बीच सहयोग के क्षेत्र भी बतायगा। इसकी विशेष प्रासगिकता इस बात म भी है कि पश्चिम के अखबारो म पक्षपातपूण खबरें छपती हैं और हम चाहते हैं कि हम उनके झूठ का पर्दाफाश करे।"

लेकिन राजनीति से अलग, एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड से और फिर 'समाचार' से अपने लगाव के कारण मैं अपने को कुछ कुछ पत्रकार जगत का ही सदस्य मानन लगा था। किसी को भी एक भारतीय होन के नाते पत्रकार-समुदाय पर गव होना चाहिए, हालाकि इसके कई सदस्यो ने बडी ही ओछी रुचि का परिचय दिया। सबसे ज्यादा जरूरत इस बात की थी कि इह एक एसी अच्छी इमारत मिले जिसमे ये काम कर सके और विश्राम भी। प्रेस क्लब को उस विस्फोटक गोष्ठी म एक सवाल यह भी उठा कि इनकी इमारत कहा होगी और इस सबध म सरकार की नीति क्या है? चारो एजेंसियो के विलय से रुकी माग पर उनमे से एक की इमारत फालतू हो गयी थी। प्रेस-क्लब क नये व पुरान अध्यक्षो को वह दिखायी गयी तो यह सोचकर कि प्रेस-क्लब टूटी-फूटी इमारत से हटाकर यहाँ ले आया जायेगा, वह बहुत खुश हुए। यह इलाका भी बहुत बढिया था। तब मैंने प्रधानमत्री से बात की। वह न सिफ इस बात से सहमत थी कि प्रेस क्लब के लिए अच्छी इमारत होनी चाहिए, बल्कि वह प्रस्तावित इमारत के लिए पसद की गयी जगह से खुश भी हुई। आवास मत्री रघुरामया को तब वह इमारत दिखायी गयी और उनसे उसे प्रेस-क्लब के लिए एलॉट करन के लिए कहा गया। उन्होने कहा कि क्लब की वतमान इमारत छोड दी जाये तो नयी बिल्डिंग एलाट कर दी जायगी। कुछ अखबारो के मालिक पहले से ही राजी थे कि व एक पाच मजिला इमारत बनान म पसा लगा देंगे जिसम उनके कमचारियो के लिए क्लब भी रहे और बाहर स कुछ दिनो के लिए आन वाले पत्रकार भी आकर टिक सकें। योजना यह थी कि यहा विदेशी अतिथि भी आकर टिक सकें और ऐसी व्यवस्था हो कि भारतीय पत्रकार भी ऐसी ही सुविधा विदेशो म पा सकें। प्रेस समुदाय के लिए ऐसी सुदर व्यवस्था विदेशो म है और कोई वजह नही है कि दिल्ली म न हो।

यहाँ तक तो ठीक था। कुछ दिन बाद रघुरामया से मुलाकात हुई तो मैंने एलॉटमट के बारे म पूछा। उनका जवाब इस बात की एक मिसाल था कि हमारे अनक राजनीतिज्ञो के व्यवहार मे किस तरह की गुलामी की बू वाली चापलूसी भरी थी। यह प्रवृत्ति आपातस्थिति के दौरान और भी उभर आयी थी। उन्होंने अपन टकसाली लहजे म सिर्फ यही नहा पूछा कि प्रधानमत्री न इस बाबत अपनी स्वीकृति द दी है या नहा उन्होन यह भी कह डाला कि भाई जान, सजयजी स भी क्यो नहा पूछ लेते?" इसम मुझे ताज्जुब हुआ और मैंने पूछा, उन्हें प्रेस क्लब

से क्या लेना देना ? मेहरबानी करके उन्हे बिना बात इसमे न डालिये।" एक पखवाडे के बाद शुक्ला ने मुझे टेलीफोन किया, 'मेहरबानी करके इतने बडे प्लाट को प्रेस-क्लब को देने के लिए ज़ोर न दीजिये। ये अखबार वाले वहा बैठकर शराब ही तो पियेगे।' मुझे एकदम गुस्सा आ गया 'तो क्या हुआ ? और लोग भी अपने अपने क्लबो मे बैठकर शराब ही तो पीते हैं। मैं शराब नही पीता, पर उन्हे रोकने वाला मैं कौन होता हूँ ?" तो यहाँ आकर पूरी योजना भरभरा गयी, आवास मंत्री उसमे फालतू बातें घुसेडने लगे और सूचना मंत्री को शराब पीने पर चिंता हो गयी। पत्रकार उसी टूटी फूटी इमारत मे जमा होते रहे। आवास मंत्री सजय की तीन पुश्तो की अपनी तावेदारी का ज़ोर शोर से बखान करते रहे पर चुनाव के बाद सत्ता के नये जूतो को चाटने लगे। शुक्ला को शायद अपनी बेकार ज़िद का अहसास हो गया था। एक बेहतर क्लब मे शायद बहतर लोग आते, बेहतर नतीजे निकलते। यह शर्म की बात है कि प्रेस-क्लब के लिए आज भी कोई अच्छी इमारत दस्तयाब नही हुई। अगर ठीक इमारत मिल जाती तो शायद यह कहावत सच साबित हो जाती, 'खूबसूरत काम करने वाला ही खूबसूरत होता है।"

पश्चिम के कुछ अखबार हमारे बारे मे किस तरह झूठ लिखते हैं, इसकी सबसे बढिया मिसाल एक प्रमुख जर्मन साप्ताहिक के दिल्ली स्थित संवाददाता द्वारा मेरी प्रेस क्लब की गोष्ठी के बारे मे भेजी गयी खबर थी। इस गोष्ठी की प्रतिक्रिया पर लिखते हुए इस सवाददाता ने कहा कि पश्चिमी प्रचारतत्र के बारे मे मैंने जो कुछ कहा था उससे विदेश मत्रालय बहुत चिंतित था और उसने राजदूत से इसके लिए माफी माँगी थी। इस पर विदेश सचिव जर्मन राजदूत का ध्यान इस खबर की ओर आकृष्ट करने के लिए मजबूर हुए। राजदूत ने इस खबर पर अफसोस और अचभा ज़ाहिर किया। विदेश मत्रालय के प्रवक्ता ने इस खबर को "सरासर गलत, झूठी व शरारत भरी" बताया। बाद मे मुझे इस मिसाल को मेरे तर्कों की पुष्टि के रूप मे पेश करने का मौका मिला। ऐसे चीथडो के विश्वसनीयता के दावो का मज़ाक उडाना आसान हो गया। इस 'दुर्भाग्यपूर्ण ग़लती' के लिए अनेक विदेशी सवाददाताओ ने अफसोस ज़ाहिर किया।

जब मैं वाणिज्य मत्रालय मे था तब विदेशो मे भारतीय किताबो की बिक्री का एक अजीब इतज़ाम मेरी नज़र मे आया था। हर चीज़ के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए एक काउसिल (परिषद) बनी हुई थी। हर काउसिल किसी एक वस्तु के निर्यात का प्रबध करती थी। किसी अजीब कारण से किताबों का निर्यात रासा-यनिक द्रव्यो के निर्यात के साथ जोड रखा गया था। यह काउसिल किताबों के सबध मे कुछ भी जानती समझती नही थी। तब भी, जो लोग किताबें विदेश भेजना चाहते थे उन्हे प्रमाणित करने का काम इसी के जिम्मे था [illegible] किताबों के बारे मे रिपोर्टें भी प्राप्त करती थी। वाणिज्य मंत्री ने यह इंतजाम बदल दिया और उन्होने किताबो के लिए एक अलग काउंसिल बनाने के आदेश दिए। कुछ बड़े प्रकाशको को भी इसकी सूचना दे दी गई। यह 1973 के शुरू की बात है। अगली मई मे मैंने यह मत्रालय छोड दिया।

कुछ दिन बाद प्रधानमत्री के विशेष दूत के रूप में नियुक्त होने पर मुझे ऐसी कई बातो पर फिर से ग़ौर करने का मौका मिला। वाणिज्य मत्रालय में काम करने और उसके ढंग से वाकिफ होने की वजह से नौकरशाही की उन विशेषताओं से मैं परिचित था—मेरा अनुमान था कि वही विलम्ब व [illegible]

दिल्ली मे

पडे होंगे। यही हुआ भी था। इसलिए कई मंत्रालयों के प्रतिनिधियों की बैठक बुलायी गयी। इसमें वाणिज्य, शिक्षा, विदेश, सूचना व प्रसारण और वित्त मंत्रालयों के प्रतिनिधि शामिल हुए। निर्यात प्रोत्साहन काउंसिल और भारतीय प्रकाशक संघ के प्रतिनिधियों से भी आने के लिए कहा गया था। यह बड़ी उत्साहजनक बैठक साबित हुई। निर्यात काउंसिल के प्रतिनिधि इस उच्चस्तरीय गोष्ठी में कुछ अटपटा सा अनुभव कर रहे थे। किताबों व रसायनों के इस अजीब गँठजोड़ पर हर किसी को हँसी आ रही थी। उन्हें आश्चर्य हुआ जब मैंने बताया कि विभाजन के पहले कुरान पाक की छपाई की इजारेदारी भारत के पास ही थी और दक्षिण पूर्व व पश्चिम एशिया में इसके निर्यात से खूब मुनाफ़ा होता था। ताज्जुब यह था कि यह लगभग पूरा व्यापार ग़ैर मुसलमानों के हाथों में था। जर्मनी और जापान के तेज प्रकाशकों ने विभाजन के बाद इस क्षेत्र में पैदा हुए शून्य को भाँपा और 1947 व उसके बाद की उथल-पुथल में यहाँ से कुछ कातिबों को अपने यहाँ ले गये। तब से यह बाज़ार तो हमारे हाथ से निकल ही गया, साथ ही यह कला भी गायब हो गयी और भारत में जिसकी इजारेदारी थी, वह प्रकाशन व व्यापार भी समाप्त हो गया। हमने दूसरों को हावी होने का मौक़ा दिया। मैंने यह भी बताया कि खाड़ी के कई देशों में पाठ्य-पुस्तकें छापने की सुविधा नहीं है इसलिए वे उन्हें ब्रिटेन या अमरीका से मँगाते हैं। अगर छपाई उद्योग को कुछ सुविधाएँ दे दी जायें और कुछ नयी मशीनें लगा दी जायें तो यह सारा व्यापार भारत को मिल सकता है। किताबों की पाठ्य सामग्री ठीक हो और छपाई सुंदर हो, यह तो निश्चित रूप से होना ही चाहिए। खरीदार देश सिर्फ़ सर्वोत्तम चीज़ें लेने के आदी हैं। इस योजना का राजनीतिक पहलू भी मैंने बताया और इसके दीर्घकालीन परिणाम बताये। भारतीय लेखकों और प्रकाशकों के लिए इसमें अपार संभावनाएँ थीं। यह अनुमान भी लगाया गया कि इस तरह की किताबों के निर्यात का लक्ष्य दो अरब रुपये का हो सकता है। उस समय यह निर्यात सिर्फ़ 50 लाख रुपये का था।

भारतीय प्रकाशकों के लिए यह एक ऐसा नया आयाम था, जिसका उन्होंने सपना तक नहीं देखा था। पर वे इस विचार से इतने प्रभावित व प्रोत्साहित थे कि उन्होंने इसे व्यावहारिक रूप देने का प्रण कर लिया। यह 1976 के शुरू जाड़ों की बात है। काम की शुरुआत हुई और मुझे आश्वासन दिया गया कि किताबों के लिए अलग काउंसिल जल्दी ही काम करने लगेगी। फिर आ गये चुनाव। निर्यात काउंसिल के मेंबर किताबों के थोड़े से निर्यात पर अपना दो फ़ीसदी कमीशन छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। नयी व्यवस्था से देश हित होता और निर्यात बढ़ता, इसकी उसे फ़िक्र नहीं थी। इसलिए नयी सरकार बनने पर उनकी पूरी योजना की तसवीर को तोड़ मरोड़कर पेश करने की हिम्मत हो गयी। उन्होंने नये मंत्री से कहा 'इस मामले में ग़ैर जरूरी तौर पर मनुस दखल दे रहे थे और उलझनें पैदा कर रहे थे।' जनता को गुमराह करने के लिए एक अखबार में एक लेख भी छपवा दिया गया। नतीजा यह हुआ कि पूरी योजना खत्म कर दी गयी। सबसे हास्यास्पद बात यह लगती थी कि प्रमुख प्रकाशक, जो इस योजना से मुख्यतः लाभान्वित होते, खामोश रहे और उन्होंने इस नयी शरारत का भंडाफोड़ नहीं किया। पर यहीं एक और घृणित पहलू सामने आ गया। भारत के लगभग सभी बड़े प्रकाशकों के विदेशी संबंध हैं। वे अपने विदेशी स्वामियों के हितों से प्रभावित होते हैं। आयात की हुई किताबों की बिक्री और विदेशों में प्रकाशित

पुस्तको के भारतीय संस्करण छापकर वे भारी मुनाफे कमाते हैं। तो फिर उन्ह भारतीय लेखको पर भरोसा करने और और स्थानीय प्रकाशन प्रोत्साहित करन की क्या जरूरत ?

अपने पयटन व सरकारी यात्राओ के दौरान मुझे व हीरे जवाहरात देखने का मौक़ा मिला था जो लदन टावर, क्रेमलिन, आस्ट्रिया जमनी व ईरान मे प्रदर्शित हैं। मुझे लगा कि भारत में हम इससे भी ज्यादा शानदार वेशकीमत व कलापूण सग्रह बना सकते है। आभूपणो व कला-शिल्प का हमारा सग्रहालय अनोखा हो सकता है। मैंने अनुमान लगाया कि 50 अरब डालर के आभूपण इकटठे करके उन्ह दिल्ली के किसी महल म प्रदर्शित करना कठिन नही होगा। इस सग्रह से हमारी मुद्रा की साख बनती समद्धि का नया राष्ट्रीय स्वरूप उजागर होता और देशी विदेशी पयटन को बढावा मिलता तथा लोग आकर बहुमूल्य आभूषणो को देखते। हमलोग फिर से तख्ते-ताऊस का निर्माण भी कर सकते थे और शायद ईमानदारी से कह भी सकते थे कि नादिरशाह जो तख्त ईरान ले गया था, यह उससे बेहतर है। ऐसे सग्रह की कला-प्रतिष्ठा असीम होती। इसलिए 2 जनवरी, 1976 को मैंने निम्नलिखित पत्र प्रधानमत्री को भेजा

"भारत के हीरे-जवाहरात म कारीगरी व डिजाइन की समद्धि है। इनम से बहुत से जवाहरात अब भी पुरान राजे रजवाडो और रईसो के पास मौजूद है। यह बेशुमार दौलत और कला-परपरा अंग्रेजी शासन म सर जॉज वाटस द्वारा प्रदर्शित हुई थी। उन्होने 1902 म दिल्ली म भारतीय कला की प्रदशनी की थी। तब से इस राष्ट्रीय सपदा के इस पहलू को उजागर करन की कोई कोशिश नही हुई। इधर, पहले के राजा महाराजा और दूसरे धनी लोगो मे यह प्रवृत्ति हो रही है कि इन ज़ेवरो को स्थानीय या विदेशी खरीदारा के हाथ बेच दिया जाय। मुझे मालूम हुआ है कि हाल म ही त्रावणकोर महल मे एक बडा नीलाम होने वाला है। अब समय आ गया है जब हम इन बहुमूल्य सग्रहो को बिखरने स बचाना चाहिए। एक बार ये खजाने तितर बितर हो गये तो भविष्य के कला इतिहासकार और शोध छात्र उस सामग्री से वचित हो जायेंगे जो अमूल्य हैं। भारत व इन देशो के बीच कला के मूल भावा का जो आदान प्रदान हुआ, जो मूल भाव बाहर गये, वहाँ आत्मसात हुए और अपनाये गये, उनकी खोज शोध कठिन हो जायेगी।

'मैं कुछ समय से सोच रहा हूँ कि जितने भी हीरे-जवाहरात मिल सकें, उन्ह दिल्ली में इकटठा करने के प्रभावकारी कदम उठाय जायें। यह सग्रह एक बडा पयटक आकषण हो सकता है, जसे ईरान के शाही आभूपण है। यूरोप के कई देश शाही जवाहरात की नुमाइश करके राष्ट्रीय गव का अनुभव करत हैं। जिस तरह क सग्रहालय की मैं कल्पना करता हूँ उसमे थोडे थोडे समय के लिए मदिरो से भी आभूषण लाकर प्रदर्शित किये जा सकते हैं। मैं इस मामले म जनता की भावना समझकर ही यह थोडे समय का सुझाव दे रहा हूँ। थोडे समय के लिए प्रदशन पर एतराज न होगा। इसी तरह कुछ भूतपूव राजे महाराजे अपने आभूषण देन मे आपत्ति कर सकत हैं, लेकिन उन्ह ये ज़ेवर अस्थायी रूप से प्रदशनाथ देने के लिए राज़ी किया जा सकता है। जो लोग अपने ज़ेवर बेचना चाहते हैं या भेंट मे देना चाहते हो, उन्ह करो मे रियायत और स्वण नियत्रण आदेश आदि से छूट देकर प्रोत्साहित किया जा सकता है। ऐसा सग्रह हमारी मुद्रा व अथव्यवस्था को मजबूत करन का देखा जा सकने वाला कारक बन सकता है।

"इस सग्रह को दिल्ली के किसी एक महल मे स्थापित किया जा सकता है।

प्रदर्शित वस्तुओं को इतिहास के काल-क्रम से सजाया जा सकता है और ईसा से 5000 वर्ष पूर्व की कृतियों से शुरुआत की जा सकती है। हमारे कुशल कारीगर आसानी से उन कृतियों की जो गायब हो गयी है, अनुकृति बना सकते हैं, जिससे कला की इस कहानी की सभी कड़ियां इकट्ठी हो जायें और संग्रह सचमुच विस्मय-कारी बन जाये। यदि इस संग्रहालय को कुशलतापूर्वक संगठित किया जाये और इसका प्रबंध सक्षम हो तो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह प्रतिष्ठित और प्रख्यात हो सकता है। यदि प्रधानमंत्री इस योजना को सिद्धांततः स्वीकार करें तो वित्त, वाणिज्य व गृहमंत्रालयों के मंत्रियों व अफसरों, हैंडलूम एण्ड हैंडीक्राफ्टस एक्सपोर्ट कार्पोरेशन की अध्यक्ष श्रीमती पुपुल जयकर, व प्रबंध निदेशक श्री बी० रामादोराई तथा पुरातत्व के महानिदेशक सी० शिवराममूर्ति, से आगे के ब्योरे पर विचार विमर्श किया जा सकता है।"

मुझे बहुत खुशी और आश्चर्य हुआ जब यह फाइल उसी दिन लौटकर मेरे पास आ गयी। प्रधानमंत्री ने योजना को स्वीकार कर लिया था और फाइल पर अपने हाथ से लिखा था

"भूतपूर्व राजे महाराजे इधर कई वर्षों से अपने हीरे-जवाहरात व अभिलेख बेचते रहे हैं। बहुत सी चीजें विदेशी अभ्यागतों, विशेषकर अंग्रेज सामंती कुलीनों को दे दी गयी हैं, कुछ बेच भी डाली गयी है। मैंने मन्त्रिमंडल में यह सवाल कई बार उठाया है। अगर कुछ सचमुच बेशकीमत चीजें अब भी मिल जायें तो मैं समझती हूँ कि उन्हें पर्यटक आकर्षण ही नहीं, राष्ट्रीय धरोहर के रूप में भी प्रद र्शित करने का विचार अच्छा है। असली कठिनाई वित्तीय होगी—इन जेवरों को हस्तगत कैसे किया जाये, आदि। जो भी हो, ऊपर बतायी गयी समिति इस मामले पर प्रारंभिक विचार तो कर ही सकती है और वित्त-मंत्रालय से भी स्थिति जान सकती है।"

प्रधानमंत्री ने मुझसे यह योजना पूरी कर डालने के लिए कहा। इस संग्रहालय की स्थापना की संभावनाओं से मैं उमंग से भर उठा और इस अभूतपूर्व संग्रहालय की परिकल्पना करने लगा। कार्यप्रणाली तय करने के लिए मंत्रि-स्तरीय बैठक हुई, मेरे पत्र और प्रधानमंत्री की उस पर टिप्पणी के आधार पर कार्य योजना बनी और संबंधित मंत्रालयों के अफसरों की एक विशेष समिति स्थापित की गयी। शिक्षा मंत्री ने इस योजना के बारे में सुना तो पूछा कि उन्हें इसमें क्यों नहीं शामिल किया गया? नूरुलहसन के बारे में मेरे मन में संकोच था। यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं था कि उन्हें कैसा लगा होगा और उनके अहम् को ठेस पहुँची होगी। लेकिन जेवरों से मसला शिक्षा मंत्रालय के अधीन आता नहीं था, फिर पुरातत्व के महानिदेशक समिति में थे ही। नूरुलहसन से कह दिया गया कि अनावश्यक बात का बतंगड़ न बनायें। उन्हें पता लग गया होगा कि पत्र व प्रधानमंत्री की टिप्पणी में उनका नाम नहीं था, इसलिए वह जल्दी से खामोश हो गये। उनका चरित्र (या उसका अभाव) एक बार फिर स्पष्ट हो गया। एक चीनी कहावत है—"वह शेर की तरह गरजते हुए आये और साँप की दुम की तरह चुप-चाप गायब हो गये।" वह यहाँ सटीक सिद्ध हुई।

कुछ बैठकों के बाद आभूषण संग्रहालय के लिए एक ठोस योजना तैयार हो गयी। इसके लिए पटियाला हाउस आदर्श जगह थी। दिल्ली हाई कोर्ट ने इसे खाली कर दिया था और आवास मंत्रालय से इसे खाली रखने के लिए कह दिया गया था, ताकि वह संग्रहालय के लिए आरक्षित रहे। इससे देश की अनोखी दौलत

और समृद्धि की एक शानदार झलक दिखाने का नायाब मौका मिल रहा था। निज़ाम के विस्मयकारी ज़ेवरात और 150 अतिथियों को भोजन कराने के लिए काफी सोने के प्रसिद्ध बरतनों के सेट से किसी भी डाइनिंग हाल में चकाचौंध पैदा हो जाती। अन्य रियासतों से हीरे जवाहरात जड़ी कुरसी मेजें व दूसरे फर्नीचर से दूसरे कमरे चमक उठते। एक महाराजा हॉल की भी कल्पना थी जहां प्रसिद्ध राजाओं की आदमकद मूर्तियाँ अपनी मशहूर पोशाक, मुकुट, हार व बाकी सज धज के साथ स्थापित होतीं। कुछ राजाओं महाराजाओं के पास सोने चांदी के फाटक पड़े हुए थे, उन्हें यहाँ लगाकर उसी ज़माने का वातावरण पैदा किया जा सकता था। देश में उपलब्ध सोना-चाँदी यहां जमा करके अमरीका के फिले फोर्ट नॉक्स की समृद्धि से टक्कर ली जा सकती थी। इस महत्वाकांक्षी योजना के लिए मन्त्रिमंडल ने दस करोड़ रुपये की स्वीकृति दी, हालांकि मेरा सुझाव एक अरब रुपये का था।

यह खबर फैल गयी कि राजधानी में हीरे जवाहरात का संग्रहालय बनने-वाला है। कई भूतपूर्व राजों महाराजों ने—खास तौर पर निज़ाम व जयपुर के कर्नल भवानीसिंह ने—इसकी सफलता के लिए पूरा सहयोग देने का वादा किया। विदेश सेवा के सदस्य एक युवक राजा ने अपना सजावटी फर्नीचर देने का वादा किया। करणसिंह उस संग्रहालय के पर्यवेक्षण की ज़िम्मेदारी लेना चाहते थे और चाहते थे कि मैं प्रधानमन्त्री से कहूँ कि स्वयं करणसिंह को एक बेशकीमत हीरे की शक्ल में ले लिया जाये। करों में छूट व रिआयत के हमारे प्रस्ताव में निज़ाम की गहरी दिलचस्पी थी। वह अपने महल और दौलत देने के लिए फौरन तैयार हो गये, ताकि संपत्ति-कर से बच सकें। वित्त मन्त्रालय के अफसरों की एक टोली वहां की अथाह दौलत का अंदाज़ा लगाने और चीज़ों की कीमतें तय करने के तरीके पर विचार करने हैदराबाद गयी। तैयारियाँ ज़ोर शोर से चल रही थीं और हम लोग संग्रहालय की घोषणा करने ही वाले थे, जब सारा नियोजन और उच्च-स्तरीय चिंतन एकाएक ठप हो गया। इसकी जगह आ गये मार्च 1977 के चुनाव। नयी सरकार ने शुरू में कुछ दिलचस्पी दिखायी, पर उसके लिए दाँव पर तो कुछ और ही लगा हुआ था। राष्ट्र की यह अथाह दौलत अब भी बिखर रही है, गायब हो रही है।

कुवैत और बहरैन के शासक और इराक की सत्ताधारी पार्टी के अध्यक्ष, सद्दाम हुसैन ने बंबई के बढ़िया स्कूलों की मुझसे बहुत तारीफ की थी और व हमारे डॉक्टरों से भी बहुत प्रभावित थे। इसकी प्रेरणा था बंबई के डॉक्टर रुस्तम पटेल द्वारा सद्दाम हुसैन का इलाज और उनका तुरंत स्वास्थ्य-लाभ। 1976 भर लेबनान में अशांति व उपद्रव का जो वातावरण रहा वह दूसरा कारण था। अरब-धनिक छुट्टियों में लेबनान जाते थे और वहां के मशहूर स्कूलों में अपने बच्चे भेजते थे। बहुत साफ इशारों में हमें यह बताया गया कि इस शून्य को हम आसानी से भर सकते हैं। उस समय मैं पश्चिम एशिया के दौरे पर था। वहीं से मैंने प्रधान-मन्त्री को तार भेजा कि शिक्षा व स्वास्थ्य के मन्त्रियों से इन प्रस्तावों पर विचार करने का अनुरोध किया जाय और महाराष्ट्र सरकार को राज़ी किया जाये कि वह तत्काल अस्थायी रूप से इनके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करे। मेरे दिल्ली लौटने पर प्रधानमन्त्री ने मुझसे प्रस्तावों के ब्योरे पर संबंधित मन्त्रियों के साथ बैठकर विचार करने के लिए कहा और फिर कहा, ' बंबई जाइये और देखिये कि ये बढ़िया प्रस्ताव किस तरह लागू किये जा सकते हैं ?"

मैं दोनो मन्त्रियो, नूरुल हसन व करणसिंह, से मिला। उन्हें सबसे पहले जिस बात की चिंता हुई वह यह थी कि मैंने बम्बई के स्कूलों को प्राथमिकता क्यों दी थी, "दार्जिलिंग, शिमला, ऊटी में भी बहुत अच्छे अच्छे स्कूल हैं।" और वहाँ नये बच्चे भरती करने के लिए अतिरिक्त स्थान भी हैं। इसी तरह, चंडीगढ जैसी जगहों पर अच्छे अस्पताल करीब-करीब खाली पडे हैं। इन दोनों को—दोनों अपने शाही संबंध भूल नहीं पाते—समझाना मुश्किल था कि यह (बंबई की) पसंद मेरी नहीं थी। अरबों के, विशेषकर खाडी के देशों के अरबों के, बंबई से पुराने संबंध थे। वे वहाँ के वातावरण से परिचित थे। लेकिन, शिक्षामंत्री से व्यंग्यात्मक ढंग से यह पूछने से मैं अपने को रोक न सका, "आपने अपनी बेटी की शिक्षा के संबंध में क्या कभी किसी अरब शेख से राय ली थी? तो वह अब आपसे क्यों राय लें?"

इस बेकार की मगजपच्ची में कुछ महीने गुजर गये, हालाँकि करणसिंह ने प्रधानमंत्री को यह बताने की कोशिश जरूर की कि इस योजना पर उन्होंने बहुत मेहनत की है। उन्होंने एक टिप्पणी यह लिख भेजी कि "मैं यूनुस के बहुत ही दूरदेशी से भरे प्रस्ताव पर गौर कर रहा हूँ और योजना के श्रीगणेश के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।" बहुत सक्रियता दिखाते हुए भी कुछ न करने का यह बेहतरीन तरीका था। इसकी परिणति उनके एक दिन मुझे चाय पर बुलाने में हुई जब उन्होंने खुद विदेश मंत्री बनने की संभावना पर मुझसे बात की। उन्होंने कहा कि विदेशमंत्री की हैसियत से वह ऐसे प्रस्तावों पर—जैसाकि मैंने रखा था—तेजी और ताकत के साथ अमल करा सकेंगे। वह उत्सुक थे कि मैं प्रधानमंत्री से इस संबंध में बात करूँ। इसके पहले भी वह प्रधानमंत्री के सचिवालय में काम कर रहे एक कश्मीरी ब्राह्मण से मदद माँग चुके थे कि पर्यटन व नागरिक विमानन की जगह उन्हें कोई दूसरा मंत्रालय दिला दिया जाये। लगता है उस वक्त हवाई जहाज उनके लिए बडे सिरदर्द बने जा रहे थे।

करणसिंह का उस तरह का नकारात्मक रवैया था जो किसी भी रचनात्मक योजना को उदासीनता से समाप्त कर देता है। लेकिन अपने लिए अनुग्रह माँगने का वह कोई मौका नहीं चूकते थे, चाहे इस माँगने का ढंग भले ही बहुत परिष्कृत रहा हो।

जब यह सब हो रहा था, संसद व समाचारपत्रों में इस बात की बडी आलोचना हो रही थी कि मेलों और प्रदर्शनियों के लिए विकसित प्रगति मैदान बेकार पडा था। इसलिए 1976 के शुरू में वाणिज्य मंत्री ने मुझे व्यापारिक मेला प्राधिकरण की अध्यक्षता स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। उन्होंने कहा कि वह चाहते थे कि मैंने जो "लंबा चौडा साज सरंजाम तैयार किया है, उसका पूरा पूरा इस्तेमाल हो सके।' तब मेरे पास और भी बहुत-सा काम था और मैं इस जिम्मेदारी से बचना चाहता था। पर आखिर में जब मैं राजी हो गया तो यह काम एक चुनौती बन गया। दो साल पहले सिलसिला जहाँ छोडा गया था, उसे वहीं से फिर से जोडा गया। नयी योजनाओं के लिए कुछ अंतर-विभागीय बैठकें हुई। यह तय हुआ कि प्रगति मैदान पूरे साल इस्तेमाल होता रहे। अंत में, 1976 में ही, 'व्यापार मेला प्राधिकरण' कायम हुआ और प्रदर्शनी निदेशालय, व्यापार मेला के लिए भारतीय परिषद आदि अनेक संगठनों को समाप्त कर दिया गया। एक ऐसा एकीकृत संगठन कायम हुआ जो भारत व विदेशों में व्यापार मेले व प्रदर्शनियों का प्रबंध करे। अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों के संगठन के लिए जो बहु विभागीय व बहु

आयामी कार्रवाई होती है उसके लिए जैसी पेशेवर विशेषज्ञता चाहिए, उसके लिए इस तरह की सस्था बहुत जरूरी थी।

अनेक सुझाव, विचार, सगठन और योजनाएँ लेकर आने वाले लोग थे। एक निजी सगठन ने वहाँ बच्चा के लिए मनोरजन पाक चलान का वादा किया। वहा पाच जलपान घर पहले से ही मौजूद थे, पर सोचा गया कि बहुत सारी गुमटिया बना दी जायें ताकि कितने भी लोग आयें उनके खाने पीने का इतजाम हो सके। वहा जो सिनेमा व खुला मच था, वहा बेहतरीन कलाकारो के रोजाना प्रदशन हो सकते थे और इस तरह साधारण लोगा के दनिक मनोरजन की व्यवस्था हो सकती थी। कुछ मडपो को सक्रिय करके वहाँ मनोरजन का प्रबध करने की योजना बनी और कुछ मे उदीयमान ललित व वास्तु कलाकारो को कम खच म अपनी कृतिया का प्रदशन करने की व्यवस्था की। हमने मैक्सिको की तरह वा एक स्थायी शिल्प सग्रहालय बनाने की पुरानी योजना को भी फिर जिदा कर दिया। इस सग्रहालय मे प्रदशन योग्य कीमती और बहुमूल्य चीजे वर्षों से अलमारिया म बद पडी थी। इस सबके लिए खच मजूर हो गया और हमसे आवश्यक कदम उठान के लिए कहा गया। एक आधुनिक और सुसज्जित सम्मेलन कक्ष की योजना भी बनी जहा राष्ट्रीय व अतर्राष्ट्रीय गोष्ठिया हो सकें। दफ्तर के लिए एक नयी इमारत बनान के लिए भी पसा मजूर हो गया। सुरक्षा के लिए नियुक्त पहरेदारो के लिए भी प्राचीन पद्धति की रग बिरगी पोशाको के डिजाइन भी तयार कर लिये गये। लोगो को आकर्पित करने के लिए कुछ और नयी तरकीबो पर सक्रिय विचार शुरू हुआ।

यह दिखाने के लिए कि हम अपनी याजना को ठोस अमली रूप देन के इरादे मे पक्के है नवबर 1977 मे एक कृषि मेला लगाने का पहला ठोस क़दम उठाया गया। उस पूरे वष कुछ विशिष्ट मेले लगाने की जो योजना पहले थी, उसके अतिरिक्त इस कृषि मेले की व्यवस्था थी। विचार यह था कि व्यापार मेला सस्था अपने खच के लिए अपन-आप काफी पसा जुटाती रहे और इस मामले म वह पूरी तरह स्वाधीन व स्वायत्तपूण हो।

आपातस्थिति के दौरान मैं तीन विवादा मे घसीटा गया। ये मुख्यत मुसलमानो से सबधित थे। पहला था विश्व प्रसिद्ध जामा मसजिद की शानदार सीढिया से 450 दुकानें हटाने के बारे म। इन ग़ैर कानूनी कब्जो से शाहजहा की सुदर कृति बदनुमा बन चुकी थी। पिछले 20 वर्षों से इन कब्जा को हटाने और वहा के दुकानदारो को कही और बसाने की कोशिशो को स्थानीय राजनीतिक नता तरह-तरह के अडगे लगाकर लगातार नाकामयाब करते रहे थे। इस दर की वजह से समस्या हल करना और भी मुश्किल हो चुका था। प्रधानमत्री न एक दिन मुझे बुलाकर कहा, "क्या आप जामा मस्जिद जाकर पता लगा सकते है कि वहा हो क्या रहा है? मेरे पास परस्पर विरोधी खबरें आ रही हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि असलियत क्या है।"

तो अगस्त 1975 म एक सवेरे तडके वक्फ विभाग के मत्री शाहनवाज खा और दिल्ली मेट्रोपोलिटन काउसिल के अध्यक्ष मीर मुश्ताक़ अहमद मेरे साथ वहा पहुँचे। हम लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि मसजिद की सीढियाँ और उनके एकदम आसपास के इलाक़े को उनकी शानदार शक्ल सूरत फिर से देन के लिए इस क्षेत्र की सफाई जरूरी है। पर यहाँ से हटाये गये लागा का क्या होगा? वे लोग बहुत शोर मचा रहे थे, क्याकि इतन बरसो म उन्होंने यहाँ अपना व्यापार जमा लिया

था और उनके ग्राहक स्थायी हो गये थे। उन्हें डर था कि व्यापार की जगह बदल जाने से उनके कारोबार पर आंच आयेगी। पर जाना तो उन्हें था ही, यह तो तय हो चुका था। जहां तक मसजिद की खूबसूरती का सवाल था, उस पर कोई समझौता नहीं हो सकता था। मसजिद का अति सुंदर स्थापत्य, इस बाजार को पनपने देने से, जिसकी वजह से पूरे अहाते में गंदगी पैदा हो गयी थी—हालांकि उसकी वजह से चहल पहल भी बहुत रहती थी—बिलकुल दबा ही नहीं जा सकता था। दुनिया के किसी और देश में ऐसा कभी होने ही नहीं दिया जाता। मसजिद सोलहवीं सदी की पत्थर की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। इसकी आकृति की शोभा और भव्यता निखारने के लिए उसके चारों ओर के इलाके का नियोजन जरूरी था।

हम इस मसले के मानवीय पहलू को भी नजर-अंदाज नहीं करना चाहते थे। उसी इलाके के करीब एक पुरानी इमारत पाईवाला थी। काफी दिनों से प्रस्ताव था कि इस इमारत को गिराकर वहां 400 दूकानें बना दी जायें। मेरा सुझाव था कि दूकानों का आकार छोटा कर दिया जाय ताकि वहां 1000 दूकानें बन सकें। मौलाना आजाद की कब्र के सामने, उर्दू-बाजार से लगे क्षेत्र में दो मंजिला दूकानों दफ्तरों का एक लंबा सिलसिला बनाने की भी योजना थी। इस दो मंजिले सिलसिले को चौमंजिला करके वहां मौजूद दूकानों और छज्जों के समानांतर उर्दू-बाजार तक बढ़ाया भी जा सकता था। पाईवाला के विकास और नयी दूकानों में वे सब तो आ ही जाते जो जामा मसजिद इलाके की सफाई से हटाये जाते, भविष्य में आने वाले दूकानदारों के लिए भी वहां जगह हो जाती।

जल्दी ही अफवाह फैल गयी कि मेरी सिफारिश प्रधानमंत्री ने मान ली है। असलियत यह है कि मेरी सिफारिशों के बारे में उन्होंने सिर्फ इतना कहा था कि "ये काफी दिलचस्प हैं और मैं देखूंगी कि क्या हो सकता है।" वहां के बाशिंदे इससे निश्चित रूप से खुश थे। मैं प्रधानमंत्री को राय देकर खामोश बैठ गया। आखिरकार 450 दूकानदार हटा दिये गये। जामा मसजिद के इलाके में दूकानों की संख्या बढ़ाने के लिए कुछ नहीं किया गया, जहां इन दूकानदारों को आसानी से बसने की दूसरी जगह मिल जाती। इसके बदले उन्हें तहखानों में बनी दूकानें दी गयीं या कहीं और हटा दिया गया, जहां वे अकेले पड़कर खो से गये और असंतोष के एक स्थायी कारण बन गये। पार्टियों ने उनकी शिकायतों और तकलीफों का इस्तेमाल सरकार को बदनाम करने के लिए किया। दिल्ली की झुग्गी झोंपड़ियों में रहने वाले पांच लाख लोगों को फिर से बसाने की जो महत्त्वाकांक्षी योजना थी वह भी एक डरावना सपना बन गयी, हालांकि अब उसकी उपयोगिता सबकी समझ में आ रही है।

एक दूसरे अवसर पर राष्ट्रपति को इत्तिला मिली कि मुनिरका के पास शहर के चारों ओर जाने वाली बाहरी रिंग रोड पर स्थित एक मसजिद बिना बात गिरा दी गयी है। उन्हें शिकायतें मिली थीं, इसलिए उन्होंने इसके बारे में प्रधानमंत्री से बात की। उन्होंने फिर मुझे बुलाया और कहा, 'क्या आप वहां जाकर पता लगा सकेंगे कि असल में हुआ क्या है?' राष्ट्रपति ने भी मुझसे टेलीफोन पर बात की और कुछ और ब्योरा दिया। उस जगह जाकर देखने से पता चला कि तथ्य किस तरह तोड़ मरोड़कर या बढ़ा चढ़ाकर पेश किये जा सकते हैं। मेरे दृष्टिकोण को कट्टर और हठधर्मी वाला बताकर तरह-तरह की बातें कही गयीं। इस घटना के कारण मुझे अधर्मी राक्षस का रूप दिया गया। मैंने वहां पहुंचकर

जो असलियत देखी वह थी एक पुरानी मीटर भर ऊँची, कोई दस मीटर लबी टूटी फूटी दीवार जिसे दिल्ली विकास प्राधिकरण की करीब 3000 वग मीटर जमीन दाव लेने के लिए चालाकी से इस्तेमाल किया गया था। वहा कई दूकानें, स्टोर, रिहायशी कमरे बना लिये गये थे और उनकी छत पर एक बिलकुल नयी मसजिद बना ली गयी थी। नयी इटें, ताजा सीमेट और सफेद पुताई उस मटमली पुरानी असली दीवार से कोई मेल नही खाती थी। एक दढियल मेरे पास आकर कहने लगा, "मैं आपका मुसलमान भाई हूँ और जल्दी ही सरकारी मुलाजमत से फरागत पा लूगा। अगर आपन साथ दिया तो यह दो गज जमीन मेरे वाल वच्चो की रोटी का सहारा वन जायगी। डी० डी० ए० वाले मेरे पीछे पडे हुए है। खुदारा उनसे वचाइय।"

लेकिन डी० डी० ए० (दिल्ली विकास प्राधिकरण) उनके पीछे ठीक ही पडी हुई थी। इसमे कोई शक नही कि यह गैर-कानूनी कब्जे और इमारत बनान का मामला था। उस कम्बख्त ने कानून की गिरफ्त से बचने के लिए ही मसजिद गिराय जाने का मामला गढ लिया था। लेकिन मैने तब भी डी० डी० ए० स नरम रुख अख्तियार करने का सुझाव दिया था। इसलिए, मसजिद, बिलकुल नयी तैयार वार्निश व पालिश के साथ, खडी रहन दी गयी और अब भी अपनी जगह खडी है। वह दढियल बाबू अब कहीं और गर कानूनी कब्जा कर रहा होगा! मसजिद बनाने का उसका असली इरादा कभी भी नही था। वह तो सिफ झूठ बोलकर जमीन-जायदाद हडपना चाहता था। शायद ऐसे ही लोगो से खीझकर ही 'इकबाल' ने कहा था

> मसजिद तो बना दी दम भर म ईमा की हरारत वाला न,
> मन अपना पुराना पापी था, सौ साल मे नमाजी वन न सका!

अप्रैल 1976 मे तुकमान गट पर जो मकान गिराये गये, उनकी कहानी की और ही रगत है। कई निवासी पीढिया से वहा रह रहे थे। इसलिए उन्ह 'झुग्गी वाला' नही कहा जा सकता। वहाँ का वातावरण गदा हो चुका था और जिन ढाचा म व रहते थे, वे खतरनाक हद तक बिलकुल गिरन वाले थ। उन्ह कई बरस पहले मुआवजा दे दिया गया था और उनस उन घरो को खाली कर देन के लिए कह दिया गया था। पर, किसी नयी जगह जान म व आनाकानी कर रह थे और प्रशासन सख्ती बरतन मे झिझक रहा था। आखिरकार उस काम का पूरा करने के लिए, जो बहुत दिनो से टलता आ रहा था, ताकत से काम लेना पडा। उन्ह हटान के लिए पुलिस को जो कारवाइ करनी पडी उसकी खबर चौंका दने वाली थी। खबरो के मुताबिक़ पुलिस की गोलियो से मरन और घायल होन वालो की सख्या एक बार पाँच और 350 के बीच म बतायी गयी, फिर यह बढकर 613 और फिर उससे भी आगे बढकर 1611 हो गयी। लेकिन जो लोग घटना-स्थल पर मौजूद थे, उनमे से अनक के अनुसार ये खबरें बहुत अतिरंजित थी और मरन वालो की सख्या सिर्फ़ तीन थी और घायल होन वालो की ग्यारह। इस सख्या के बारे म परस्पर विरोधी खबरो और दावो की वजह से बहुत लोगो को चिंता थी और शेख अब्दुल्ला बहुत परेशान थे। वह प्रधानमत्री स मिल और उनस शिकायत की। उन्ह सलाह दी गयी कि खुद जाकर असलियत देख लीजिय। उन्होंने मुझे भी बुलाया और कहा, "मुझे कई खबरें मिली हैं आप भी शेख साहब के साथ जाकर पता लगायें और मुझे बतायें कि असलियत क्या है?"

हमने अगले सवेरे ही उन दिनो बसी बस्तियो का दौरा शुरू कर दिया। इन बस्तियो में आकर बसे लोगो म ज्यादातर लोगो न अपनी नयी हालत पर सताप व्यक्त किया। आखिर म हम खिचडीपुर पहुँचे जहाँ तुकमान गेट से हटाय गय लोग बसे हुए थे। वे सचमुच बहुत परेशानी म थ और उन्ह फौरन मदद की जरूरत थी। दिल्ली विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष जगमोहन हमारे साथ थ। उन्होने तुकमान गेट के घर गिरवाये थे। उन्होंने हम बताया कि वहाँ से हटे लोगो को क्या क्या और कैसी-कैसी सुविधाएँ मिल रही हैं। हमने उनसे सिर्फ इतना कहा कि तुकमान गेट से हटाये गये लोगो की सहायता करने में वह और ज्यादा उदारता से काम लें। स्पष्ट था कि जिनके पास कुछ भी नही था और जो झुग्गियो से आये थे व अब बीस-बीस वर्गमीटर के जमीन के टुकडो के मालिक थे, वे भविष्य के बारे म विश्वास के साथ सोच सकते थे। इस जमीन को वे अपना कह सकते थे। समस्या उन लोगो की थी, जो वर्षों के परिश्रम के बाद जीवन का एक अपेक्षतया अच्छा स्तर बना चुके थे। उनके पास कुछ बुनियादी आवश्यक सुविधाएँ व साधन थे। उन्हे इस बात की फिक्र नही थी कि रहने के लिए उन्होंने जो ढाँचे खडे कर रखे थे, वे गैर कानूनी थे। एक नयी जगह म जाकर रहने के आदी होने म दो तरह की शर्म थी—एक तो उनका वर्ग नीचा हो रहा था और दूसरे व अब अपेक्षतया कम भूमि पर रहने को मजबूर थे। मैंने सोचा कि इस तरह की बस्ती का नाम खिचडीपुर उपयुक्त नही है, 'हिम्मतपुर' ज्यादा बेहतर नाम होता।

तुकमान गेट-क्षेत्र में खबर पहुँच चुकी थी कि हम लोग आयेंगे। इसलिए गली-कूचो मे बडी सख्या म हम लोग इकट्ठे हो गये थे। हमने अनेक लोगो से बात की, उनके घर गये और एक लडके से मिले जिसके कुछ दिन पहले चोट आ गयी थी। हमे एक दीवार पर गोलियो के निशान दिखाये गये और एक दरवाजा यह कहकर दिखाया गया कि पुलिस ने यह तोडा है। एक मसजिद भी थी जिसके बारे मे कहा गया था कि वह बिलकुल गिरा दी गयी है। मसजिद बदस्तूर वहीं थी, उसके सहन मे रँगाई पुताई का नया काम चल रहा था। न हमने कहीं मुसलमानो के कत्लेआम की बात सुनी और न देखी ही, जैसी कि अफवाह उडी हुई थी। न हमने कहीं सुना कि पिछले कुछ दिनो म बलात्कार, लूट या आगजनी का कोई वाकया हुआ था।

लेकिन जिस बात से शेख साहब को और मुझे सबसे ज्यादा तकलीफ पहुँची वह यह थी कि हमे गली कूचे बताने वाला गाइड बशीर हमारी आँखो के सामने ही स्थानीय पुलिस वालो द्वारा उडा ले जाया गया। वह उन लोगो मे से था जो थोडे ही दिन पहले यहाँ स खिचडीपुर ले जाया गया था। वह खिचडीपुर से आकर हमे दिखा रहा था कि तुकमान गेट पर क्या हुआ था। शायद पुलिस को अदेशा था कि गोलीकाड म उसकी गदी भूमिका के बारे मे वह बहुत कुछ बता देगा। अभी वह हमारे साथ था और अभी एकदम गायब हो गया। यह तो हम तब पता चला कि पुलिस उसे ले गयी है जब तुकमान गेट के निवासी ही चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे कि बशीर पुलिस की हिरासत म है। शेख साहब को और मुझे बहुत गुस्सा आया। बशीर हमारे पास वापस आ गया, पर उसके पुलिस के पास होने की जो सफाई दी गयी उससे हमे और ज्यादा गुस्सा आया। पुलिस ने कहा कि बशीर आराम कर रहा था। उसकी ढिठाई की कोई सीमा नही थी।

पृथ्वीराज रोड पर गेस्ट-हाउस म शेख साहब को छोडने के बाद मैंने दिल्ली के लेफ्टिनेंट गवर्नर को टेलीफोन किया और कहा कि पुलिस के उस अफ़सर के

खिलाफ सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए जिसकी यह हिम्मत पडी कि उसी आदमी को ले जायें जो हम इत्तिला दे रहा था। वहा के गरीब बाशिदो के साथ उसका क्या सलूक होगा यह सोचा भी नही जा सकता। यह दोपहर को करीब दो बजे की बात है। साढे चार बजे शाम तक दिल्ली प्रशासन एक कहानी गढे तैयार था। लेफ्टिनेंट गवनर पुलिस के महानिरीक्षक और मीर मुश्ताक न प्रधानमत्री से कहा कि बशीर के पर से मीर मुश्ताक के पाव की उँगलिया कुचल गयी थी और पुलिस वाले ने बशीर से सिफ इतना कहा था कि ज़रा देखकर चलो। यह सरासर झूठ था। एक स्थानीय राजनीतिक नेता से साठ गाठ करके पुलिस व प्रशासन के सर्वोच्च हाकिम सच्चाई का छिपान की साज़िश कर रहे थे। मैन सोचा कि अगर ये लोग शेख अब्दुल्ला और मेरे जस गवाहा के सामने यह सब कर सक्ते हैं तो दूसरे मामलो म तो कई गुना आगे बढ जात होगे। इसकी वजह स प्रधानमत्री को सच्चाई का पता नही लग सका। मैं जब उनसे मिला, तो आवश म कहा, "अगर एक अदना पुलिस अफसर के खिलाफ ऐसे जुम के लिए भी कारवाई नही हो सकती तो मेहरबानी करके मुझे ऐसे मौका पर न भेजा करें। एसे वाक़या से शर्मिंदगी उठानी पडती है।" प्रधानमत्री भी कुछ परेशान सी लगी और धीमी आवाज म बोली,' मैं क्या करूँ ? आप देखें कि लेफ्टिनेंट-गवनर से पुलिस महानिरीक्षक तक सब क्या कह रहे है।" मैंने जवाब दिया, "वे जायें जहन्नुम म, मैं फिर नही जाने वाला ऐस काम के लिए।" इस तरह की कुछ घटनाओ को तोड मरोडकर और सदमहीन ढँग से बढा चढ़ाकर उनका प्रचार मुसलमाना के दिमाग मे सरकार के खिलाफ़ जहर भरने के लिए किया गया था। बदकिस्मती से, एसे झूठ का पर्दाफाश करन के लिए कुछ नही किया गया। कुछ दिनो बाद हुए चुनाव मे कांग्रेस के भाग्य पर इन बातो का असर पडा।

मैं कुछ बरसा तक जेल म रहा हूँ और ऐसे बहुत से लागो का जानता हूँ जिन्हे जेल जाने का मुझसे ज्यादा तजुर्बा है। जेल खौफनाक जगह होती है। अगर आपको घर मे ही नज़रबद कर दिया जाये तो वह भी खौफनाक हो जायेगा। बादशाह खाँ हम पेशावर म बताया करते थे, 'मैं क़दी होना पसद नही करता, पर एक बार जेल के भीतर पहुँच जाता हूँ तो जेल के अधिकारी जो भी पाबदियाँ लगाते हैं, मैं उन्हे मान लेता हूँ। इनसे कोई बचाव तो है नहा और सक्ल्प से ही तकलीफें बरदाश्त की जानी चाहिए। सुविधाओ की माँग ग़लत है और हार मानकर किसी शत पर रिहाई पाना शमनाक है।" फिर, ऐसे भी लोग थे जो कि कांग्रेस जन के जेल जान का मजाक उडाते थे और कहते थे, "जेल म सजा काटने मे ऐसी क्या खास बात है ? हम जब कहो, जेल काट सकते हैं।' और यही लोग थे जो बहुत जल्दी ऊब जाते थे और थोडे वक्त के लिए भी कठिन परिस्थितिया का सामना नहीं कर सकत थे।

राजनीतिक आदोलन बढाव पर हो ता राजनीतिक कदी का मनोबल कायम रहता है, लेकिन जैसे ही आदोलन शिथिल होता है, कदिया म निराशा छा जाती है और वे आपस म झगडन लगते हैं। जो खुदाई खिदमतगार गोलियो का सामना करने म भी नही डरते थे, वे जेल की निराशा स मानसिक रूप स टूट जाते थे। अँग्रेज़ी राज म जेल जाना एक विकट काम था और भविष्य भी अधकारमय लगता था। हालत तब से बहुत बदल गयी है, पर तब भी कुछ दिग्गजो न आपातस्थिति के दौरान जो कुछ किया, उससे ताज्जुब ही हुआ। इससे साफ़ हो गया कि राजनीतिज्ञ, पत्रकार, व्यापारी और किसी उद्देश्य के नाम पर उनके आस-पास

इकट्ठे होने वाले अन्य लोगों म उस उद्देश्य के लिए कष्ट सहन का बूता नही था। उनम कही गहरे विश्वास की झलक नही मिलती थी और न उनम कष्ट सहन का साहस ही था। इसलिए 1975 के अगस्त व सितंबर म ही जब सदेश आने लग कि श्री 'अ' या श्रीमती 'ब' को पैरोल पर रिहा कर दिया जाय तो ताज्जुब नही हुआ। कुछ बहुत बडे बडे लोग इतने पस्त हिम्मत हो गये थे कि व जाकर अनुनय पूर्ण ढंग से कहते, 'अब मुझे कुछ बाकी साल आजाद रह लेन दीजिये। राजनीति तो मुझ पर सचमुच थोप दी गयी थी, मुझ अब इसस कुछ भी नही लेना-देना।"

राजनीतिक विचार विमश म मेरा इसी समय प्रवेश हुआ था। इस सबसे स्पष्ट हो गया था कि हमारे राजनीतिक जीवन म कितना बडा शून्य है। पूरे 1976 भर मैं बीजू पटनायक स मिलता रहा था और उनके कहने पर चौधरी चरणसिंह स भी। दोनो पैरोल पर छूटे हुए थ और विपक्ष के कुछ तत्वो की हर कता से परेशान थ। चरणसिंह बहुत कडवाहट-भरे लहजे म जयप्रकाश नारायण की 'सपूर्ण क्राति' की अवधारणा और फौज व पुलिस स हुक्म-उदूली करने का उनकी अपील के बारे म बातें किया करत थ। पटनायक ने मुझसे कई बार कहा था कि उनकी राजनीति म रहने की कोई इच्छा नही थी। उनकी सेहत भी ठीक नही थी और वह अपने कारोबार की देखभाल करना चाहते थे। वह इसस भी आगे बढ गये और भुवनेश्वर मे उन्होने समाचार' द्वारा एक सावजनिक वक्तव्य भी प्रकाशित किया। अनक दनिक पत्रो की तरह 16 अक्तूबर, 1976 को हिंदुस्तान टाइम्स ने यह खबर छापी। इसम सरकार की प्रशसा के सिवा कुछ भी नही था

"सरकार न जो असाधारण अधिकार हासिल कर लिये थे, उनसे बडे स्पष्ट और विशिष्ट लाभ हुए थे। करीब बीस अरब रुपये, जिनका कोई हिसाब किताब नही था, अब जाब्ते स हिसाब म ले आय गये थे, विदेश व्यापार का सतुलन हमारे पक्ष मे हो गया था और खनिज तल की कीमतें बढ जाने के बावजूद निर्यात के मुकाबले आयात 11 अरब रुपये कम था, खाद्यान्न का सुरक्षित भडार इतिहास म इससे पहले इतना अधिक कभी नही था। तस्करी पर अकुश लग गया था। तब तक बेतहाशा दर स बढ रहा मुद्रा प्रसार कम हो गया था और अतर्राष्ट्रीय बाजार म रुपये की कीमत दिनोदिन मजबूत होती जा रही थी। इसके अतिरिक्त अनु शासन की आम भावना मजबूत हुई थी और हजारो अयोग्य कमचारी बर्खास्त कर दिये गये थे। बीस सूत्री आर्थिक कायक्रम एक स्वस्थ सामाजिक आर्थिक कार्य क्रम था और इसे लागू करने के लिए सरकार ने असाधारण जोर लगाया। यदि अखबारो व ससद को पहले की तरह ही काम करन दिया जाता और सरकार न कुछ न किया होता तो उसे काले धन की समथक विपथगामी, समाजवाद विरोधी, मजदूर विरोधी आदि कहकर बदनाम किया जाता। मैं इस बात पर विश्वास नही कर सकता कि जवाहरलाल नेहरू न आजाद लोकतत्र की जो महान धरोहर छोडी थी उसे उनकी बेटी प्रधानमत्री ज्यादा दिन के लिए त्याग सकती थी जो कि बराबर इस बात पर जोर द रही थी कि भारत जनतत्र के रास्ते से विचलित नही होगा।'

बीजू पटनायक और चरणसिंह दोनो किसी-न किसी तरह का समझौता चाहते थे। पटनायक इस बात पर जोर दे रहे थे कि वे लोग चूकि श्रीमती गाधी से सीधे-सीधे बात नही कर सकते थे, इसलिए इस काम के लिए मैं मौजूद रहूँ। मैंने अपनी ओर से कह दिया कि व और लोगो का इसम साथ न लायें। इसलिए

बातचीत पटनायक के दिल्ली के घर म इन दोना लोगो तक ही सीमित रही। इस बातचीत के पीछे इरादा यह था कि इससे ऐसा वातावरण बन जाये जिसम वे अपने काम का ढंग बदल सकें और ज्यादा सम्मानपूर्वक काम कर सकें। उनम आम सहमति थी कि पिछले कुछ वर्षों म लाकतात्रिक सस्थाएँ व प्रक्रियाएँ बिगड गयी थी, जिससे पूरी तरह से गडबड व अराजकता फैल गयी थी। फिर से व्यवस्था मर्यादा व शालीनता की स्थापना का सिफ एक ही उपाय यह था कि कुछ निर्देशक नियम बना दिय जायें। उन्होंने विपक्ष के अ य नेताओ के दृष्टिकोण को एक टिप्पणी के रूप म पेश किया, जिसे 'एप्रोच पेपर' (मागदशक या प्रवेश पत्र) कहा गया। वह चाहते थे कि सरकार अधिक सवदनशील हो और विपक्ष अधिक उत्तरदायी। लोकतात्रिक विपक्ष को—वह अपन को यही कहते थे—आदोलनात्मक हिंसा से घणा थी। वह पूरी तरह से इसके पक्ष म थ कि सरकार और विपक्ष के बीच बातचीत शुरू हो और सहमति के व्यापक क्षेत्र को, जो दोना पक्षो के बीच मौजूद था, सगठित करके मजबूत बनाया जाये और जिन प्रश्नो पर मत-भेद थे, उ ह आपसी बातचीत से सुलझाया जाये। चौधरी साहब पूरी तरह इसके पक्ष म थे कि राष्ट्र के राजनीतिक जीवन मे अनुशासन की भावना आये। उ होने मुझे बताया, "जब मैं उत्तर प्रदेश का मुख्यमत्री था, मैंन अपन मित्र व सहयोगी, राजनारायण, को जेल म डाल दिया था। शाति व व्यवस्था का पालन होना ही चाहिए और हरएक को स्वीकृत तरीको को अपनाना ही चाहिए। इस मामले म मैं श्रीमती गाधी से सहमत हूँ। मैं अराजकता के विरुद्ध हूँ।"

उन नताओ मे अनेक ऐसे थे जो प्रधानमत्री के पक्ष म आने को आतुर थे। उन्होन प्रधानमत्री के समथन की उत्कट अभिलाषा प्रकट की थी।[1] लेकिन जनवरी 1977 मे आम चुनाव की अचानक घोषणा से यह समझौता-वार्ता एकाएक ही समाप्त हो गयी। राष्ट्रीय दृश्य एकदम बदल गया।

लेकिन, उसी समय पटनायक की कही एक बात मुझे बार बार याद आती रही। उन्होने बार-बार कहा था कि श्रीमती इदिरा गाधी को सही परामश नही मिल रहा है और सकट के समय उनके सलाहकार उनके साथ दगा करेंगे। जब वह यह कहते तो चौधरी चरणसिंह सहमति से अपना सिर हिलाते। षड्यन्त्रकारियो की तरह वह दबी आवाज म कहा करते "इन लोगा म से अधिकाश लोग सच्चे और ईमानदार नही हैं, उनम निष्ठा नही है। व आज मौज कर रहे हैं लेकिन जब श्रीमती गाधी पर कोई मुसीबत आयेगी तो वे डूबते जहाज से चूहा की तरह भाग खडे हागे। उनके काई सिद्धात नही ह। व डरपोक व कायर और अव्वल दर्जे के चालबाज है।' मरा जवाब होता था कि उनके साथी होन के नाते, शायद वे सच ही बोल रहे थे। इसके बाद कुछ मुसकराहट के साथ और आख मारकर वे इस बात की स्वीकृति व्यक्त करते। बाद म मैं सोचता था कि चरण-

1 उत्तर प्रदेश विधान परिषद मे विपक्ष के नेता ब्रह्मदत्त ने एक पुस्तक इसी विषय पर लिखी है— द फाइव हेडेड मास्टर। इस पुस्तक म जल के भीतर और बाहर जनता पार्टी के अनेक नेताओ न जो भूमिका अदा की उसके निश्चित प्रमाण दिये गये हैं। इससे साबित होता है कि वे श्रीमती इदिरा गाधी के साथ आने के कितने इच्छक थे। उन्होने जो पत्र एक दूसरे को लिखे थे और जो पत्र श्रीमती इदिरा गाधी को लिख थे उनसे उनके डाँवाडोल चरित्र का पूरा कच्चा चिटठा मिल जाता है। उ होने श्रीमती गाधी क साहसिक नतत्व की सराहना की थी और उनके समथन के लिए अपनी सहमति प्रकट की थी। इस पहलू पर अ य लोगो ने भी प्रकाश डाला है। उनके लेखो से इस पहलू पर काफी प्रकाश पडता है।

सिंह और पटनायक की यह तोहमत क्या सही थी ? बाद की घटनाओ ने इन दोना की बात सही साबित कर दी।

मुझे 1972 के बसत की याद आयी। तब इदर गुजराल निर्माण मत्रालय मे राज्यमत्री थ और उन्ह आभास हो गया था कि श्रीमती गाधी उनसे अप्रसन्न हैं। उन्हे अपना मत्री पद खोन का डर था। वह मेरे पास आय। उन्होने आजादी और विभाजन के पहले की घटनाओ का जिक्र करके पुराने सबध जोडने की बेकार कोशिश की। लेकिन उनके बारे मे मेरी पहली याद 1952 की थी। दिल्ली से ससद के लिए चुने गये काग्रेसी उम्मीदवारो की सफलता पर उनको बधाई देने के लिए एक समारोह का आयोजन हुआ था। आज जो कस्तूरबा गाधी मार्ग है, उस पर 'कास्टीटयूशन हाउस' नामक इमारत म यह समारोह हुआ था। चुने गय लोगो म मेहरचद खन्ना भी थे। दिल्ली के मुख्यमत्री ब्रह्मप्रकाश भी वहाँ थे और खन्ना ने देखा कि इदर उनकी चापलूसी म लगे हैं। अपने मजाकिया लहजे म मेहरचद ने इदर की खिचाई करते हुए बहुत जोर से ककश आवाज म पूछा, "इदर ! तुम ब्रह्मप्रकाश से इतना डरते क्यो हो ?" इदर के लिए शम की बात यह भी हो गयी कि मेहरचद माइक्रोफोन के पास बैठे थे और उनकी बात हर किसी ने सुन ली। इसके बाद इदर ने मेहरचद की चापलूसी शुरू कर दी, पर वह उन्ह 'जूता चाटने वाला' कहने स नहा चूके। लेकिन बाद के वर्षों म बार बार मिलते रहने की वजह से इदर की और मेरी अच्छी जान-पहचान हो गयी। इसलिए जरूरत पडन पर मैं उनकी मदद करने के लिए तैयार था।

जब 1972 मे वह मेरे पास आये, मैंने सुझाव दिया कि सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि वह प्रधानमत्री के पास जायें और सीधे सीधे कह दें कि, अगर आपको मुझमे विश्वास नही है, तो मैं इस्तीफा दे दू।" उनके जवाब स मुये अचभा हुआ, "और अगर उन्होन इस्तीफा मजूर कर लिया तो ?" वह जोर देते रहे कि मैं उनके बारे मे बात कर लू। जब मैंने प्रधानमत्री स पूछा कि क्या इदर सचमुच निकाले जान वाले है, तो उन्होंने मुझसे ही पूछा कि मैं इदर को कब से जानता हूँ ? मैंने कहा "बहुत दिनो से तो नही, पर इतना जरूर जानता हूँ कि आपसे पूछ सकू।' वह बोली, "वह बिलकुल बेकार आदमी है।" मैंने कहा, 'आपके मत्रिमडल म कुछ और भी बेकार लोग हैं। एक और रह जायगा तो क्या फक पडेगा ?' यह कोई नयी बात नही थी। मुझे हमेशा यह लगा कि कुछ ऐसे बेकार लोगो को छाट लेने की उनकी आदत है, जिनकी कोई नीव बुनियाद नही होती और इसलिए जिनमे कोई साहस नही होता।[1] और हर बार कधे मिटक्कर कह देती थी 'मैं क्या करूँ, मुझे लोग उन्ही म से तो छाँटने पडते हैं, जो उपलब्ध है।" पर जब मैंने यह जानने पर जोर दिया कि इदर गुजराल के खिलाफ उन्ह क्या शिकायत है, तो वह बोली, 'वह काहिल हैं, झूठे हैं और दिनेश स मिले हुए हैं।"[2] इस पर मेरा तक था, "आप ही तो दिनेश को लायी

---

1 ओम मेहता का मामला ध्यान में आता है। यह मामूली से भी कम दर्जे के आदमी थे जिन्हें इतना विश्वास दिया गया कि मत्री बना दिये गये। उनमें किसी भी हालत म श्रीमती गाधी के नाम के साथ जुडन की योग्यता नही थी।

2 दिनेशसिंह उत्तर प्रदेश के एक बड़े जमीदार के बेटे हैं। इस परिवार की नेहरू-परिवार से जान पहचान थी। श्रीमती गाधी के जमाने मे जिस तेजी से उनकी तरक्की हुई उतने ही अचानक वह गिरे भी। बाद के वर्षों म वह अपना ओछापन और अपनी अवसरवादिता का भोडा प्रदर्शन करते रहे।

थी। शायद इसके लिए आपको खुद गद्दी छोड देनी चाहिए। क्या आप समझती हैं कि यह जानकर कि दिनश को आपका पूरा समथन प्राप्त है, य छुटभय अलग रह सकते थे ? आखिरकार, उन्ह तो आपके इशारे पर ही चलना है।" वह चुप हो गयी, फिर एकाएक बोली, "आप ठीक कहते हैं।" और उन्होने इदर को मन्त्रि-परिषद मे कायम रखने का फसला कर लिया।

इदर गुजराल न सिर्फ़ मत्री ही बने रहे, बल्कि उन्ह अपना प्यारा मत्रालय—सूचना व प्रसारण भी मिल गया। स्वाभाविक था कि वह बहुत खुश हा, उन्होने हमशा हमेशा के लिए मरा कृतज्ञ रहन की बात की और फिर एक जुमला जोड दिया अपनी राजनीतिक सफ़ाई मे, जिससे उनकी कायरता की और भी कलई खुल गयी, "मुझे दिनेशसिंह से क्या लेना-देना ? वह हमेशा मेरे खिलाफ रहे हैं। तीन साल पहले मेरे कबिनट स्तर का मत्री बनन म वही बाधक हुए थे। मैं बेवकूफ़ हो सकता हूँ, पर इतना मूख भी नही हूँ, जो यह भी न समझ पाऊँ कि मेरा हितकारी कौन है। मैं ही नही, मेरे भाई और मेरा पूरा परिवार श्रीमती गाधी का अहसानमद है। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि मैं दिनेश से फिर कभी नही मिलूगा।" बाद के वर्षों म इदर ने अपना सच्चा चरित्र दिखा देने मे कोई कसर नही छोडी। बहुत से अय लोगो की तरह उनके लिए पदलिप्सा ही सबसे बडी चीज थी। अपनी निराशा और गुस्से के क्षणो म भी श्रीमती गाधी ने सिफ इतना किया कि उन्ह नियोजन मत्रालय मे भेज दिया और फिर सोवियत सघ मे राजदूत बना दिया। और इदर ने क्या किया ? यह जानत हुए भी कि श्रीमती गाधी उनसे नाखुश हैं, उन्होने इस्तीफा नही दिया। उन्होने सोवियत सघ म भारतीय राजदूत के पद से इस्तीफा नही दिया, हालाकि परपरा का यही तकाज़ा था। जिसकी नियुक्ति राजनीतिक होती है, वह उस सरकार के पतन के बाद, जिसन नियुक्ति की हो, हमेशा स्वय इस्तीफा दे देता है। लेकिन उन्होंने अपन नय मालिको की खुशामद की और उनके भले बन गये, और इन नये मालिको को खुश करने के लिए शाह आयोग के समक्ष श्रीमती गाधी के खिलाफ गवाही भी दे आये। इसे ही कृतज्ञता कहते है।

श्रीमती गाधी के 1976 के सोवियत सघ के दौरे के समय उनके दोनो बेटो और बहुओ को भी निमत्रण मिला था। गुजराल ने खुद देखा था कि सोवियत नेता सजय की कितनी इज्जत करते है। इसलिए जब उन्होंने मेनका को मेक्सिको की छोटी नस्ल के कुत्ते चीहुआहुआ की तारीफ करत सुना तो इदर न इसे गाठ बाँध लिया। बाद म उन्हान मनका को लिखा कि उन्हान उस नस्ल के कुत्ता का ढूढ लिया है और उनके बच्चे होन पर वह एक कुत्ता उन्हे जरूर भेज देंगे। मेनका ने एक शिष्ट उत्तर मे कह दिया कि वह कुत्ता न भेजें। ऐसे लोगो को यह कहते हुए सुनकर अचभा होता है कि उनके श्रीमती गाधी स मतभेद थे, या उन दिना उन्होने सजय का विरोध किया था। कोई उनका नाम भी ले देता था, तो ऐसे लोग काँप काप जाते थे। शम की बात यह है कि इन लोगा मे कोई निष्ठा नही थी।

हेमवतीनदन बहुगुणा इन सबसे भिन्न थे। इदर गुजराल के विपरीत, वह श्रीमती गाधी के पास गये जब वह 1975 में उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री की हैसियत से उनके कामकाज से नाराज मालूम ऐती थी, और कहा, 'अगर आपको मुझ पर विश्वास नही है, तो मैं इस्तीफा दे दूगा।" और उन्होने इस्तीफा दे भी दिया। उसके बाद एक समय वह पूरी तरह निराश हो गये। पर वह बीच बीच म मेरे

पास आकर प्रधानमंत्री के लिए अपनी पूर्ण निष्ठा बताते रहे और इच्छा प्रकट करते रहे कि वह प्रधानमंत्री के पक्ष में सार्थक भूमिका अदा करने के लिए उत्सुक हैं। वह इस बात पर बहुत जोर देते थे कि वह नेहरूजी के भक्त हैं और अपने और मेरे बीच इसी को कड़ी बताते थे। मैंने श्रीमती गांधी से हमेशा उनकी तारीफ़ की क्योंकि जब मैं 'नेशनल हेरॅल्ड' से संबद्ध था, मैंने उन्हें पूरी तरह सहायता करते हुए पाया था। लेकिन उन्होंने बहुत लोगों को नाराज कर रखा था और उनके बारे में हर तरह के किस्से उन्हें बदनाम करने के लिए श्रीमती गांधी के पास तक पहुँचाये जाते थे। फिर भी आखिरकार, श्रीमती गांधी ने मेरा सुझाव मान लिया कि इलाहाबाद के आसपास के क्षेत्र में चुनाव का प्रबंध उन्हें सौंप दिया जाय। मैं 1977 की जनवरी के शुरू में उनसे मिला जब वह दिल्ली में यू० पी०-निवास में थे। वह बीमार थे और उन्हें बुखार आ रहा था। मैंने उनकी बीमारी पर चिंता व्यक्त की और जल्दी स्वास्थ्य लाभ करने की कामना की। मैं उस सुझाव के बारे में कोई पक्का वादा करने में झिझक रहा था। बाद में यह सूचना उन तक पहुँचने में कुछ देर हुई। लेकिन आखिर वक्त तक टिके रहने का बूता उनमें भी नहीं था। जब उनकी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के दावे पर आँच आती दिखायी दी तो उन्होंने भी विद्रोह अपना तरीका ढूँढ़ लिया। इसकी घोषणा 2 फरवरी को हुई। जगजीवनराम के साथ उन्होंने अलग पार्टी बनायी—कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी (लोकतांत्रिक कांग्रेस) या संक्षेप में सी० एफ० डी०। वह अंतत जनता पार्टी में शामिल हो गये।

इसी तरह श्रीमती गांधी के गतिशील नेतृत्व के लिए जगजीवनराम हमेशा उनकी प्रशंसा करते रहते थे। उन्होंने कई बार नेहरू के प्रति आजन्म कृतज्ञता प्रकट की थी। मई 1975 में, उन्होंने बड़ौदा में मुझसे जो कहा था, वह मुझे अब तक याद है। यह गुजरात के चुनाव की बात है। विपक्ष के खरीदे हुए कुछ लोगों द्वारा फेंके गये पत्थरों में से एक उनके लग गया था और उन्हें चोट आ गयी थी, कुछ दिनों के लिए उन्हें आराम करने के लिए कहा गया था। श्रीमती गांधी ने मुझसे उसकी देखभाल करने के लिए कहा था। इससे स्वाभाविक रूप से उन पर गहरा असर हुआ। वह इस बात पर बहुत खुश हुए कि मैंने उनके माथे पर मलने के लिए 4711 ओडीकोलोन की एक शीशी दी। बाद में, उनके बेटे सुरेश ने मुझे बताया कि यह उनका प्रिय सेंट (इत्र) था। उस समय बाबूजी ने मुझसे जो कहा वह मैं भूल नहीं सकता 'मुझे सिर्फ थोड़ी सी चोट लगी है और बिस्तर पर पड़ा हूँ। पर उन्हें देखिये। उन्हें किसी चीज का डर नहीं। नेता हो तो उनकी तरह का। मेरी इच्छा है कि जीवन के शेष दिन उनकी सेवा में गुजार दूँ।' संसद में आपात स्थिति का समर्थन करने वाले भी वही थे। उन्नीस महीनों तक उन्होंने आपात-स्थिति के खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहा। जिस नेता की सेवा में और जिसकी प्रेरणा से वह शेष जीवन गुजारने वाले थे, उसके प्रतिवाद में उनका जो व्यवहार था वह अब सभी को मालूम है।

प्रधानमंत्री द्वारा 18 जनवरी, 1977 को आम चुनाव की अकस्मात घोषणा से सभी को आश्चर्य हुआ। पहले वाली लोकसभा की अवधि बढ़ायी जा चुकी थी और अभी उसके खत्म होने में एक साल बाकी था। पर वह चुनाव कराने के बारे में कुछ दिन से सोच विचार कर रही थीं। अपने राजनीतिक जीवन में उन्होंने लोकतंत्र की अवधारणा या व्यवहार का कभी भी परित्याग नहीं किया था। एक अति विस्फोटक स्थिति से बचने के लिए एक कड़वी दवा की तरह उन्होंने आपात-

ाल नहरू सिगरेट पीत हुए।
वादु ग 1955।

अमराह' की रस्म अदा करत हुए
स्क्का, सितम्बर 1956।
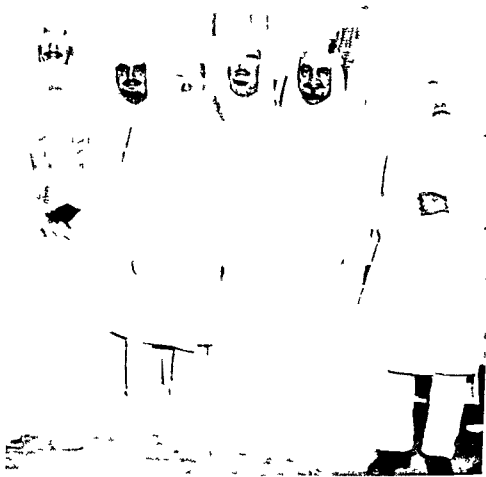
लेखक भूतपूर्व शाह फसल जवाहरलाल नेहरू, सऊद बिन मुहम्मद बिन अब्दुरहमान, सलमान बिन अब्दुल अज़ीज़, मिशाल बिन अब्दुल अज़ीज, फहाद बिन अब्दुल अज़ीज़, अली रज़ा और डा० सैयद महमूद के साथ। रियाद, सितम्बर 1956।

लेखक निज़ाम मीर बरकत अली खां के साथ। नयी दिल्ली, मार्च 1956।

लखक सोफिया लारेन और उनके
पति के साथ।
मद्रिड, मार्च 1956।

जैकलीन कनेडी, जवाहरलाल नेहरू,
इंदिरा गांधी, श्रीमती किट्टी
गैलब्रेथ और लेखक।
नयी दिल्ली, अप्रैल 1962।

लेखक जवाहरलाल नेहरू
और ब्रेझनेव के साथ।
नयी दिल्ली, 1962।

जवाहरलाल नेहरू के
अंतिम दर्शन।
नई दिल्ली
28 मई, 1964।

लेखक का बेटा मान्ति
शहरयार बादशाह खाँ
के साथ।
काबुल, मई 1965।

चालटन हुस्टन के साथ।
लॉस एंजेल्स
दिसंबर 1965।

राजीव, सोनिया संजय
और लेखक राजीव की
शादी के बाद एक फैंसी
ड्रेस पार्टी में।
नयी दिल्ली, फरवरी 1968।

बादशाह खा, इदिरा गाधी, जयप्रकाश नारायण और लेखक पालम हवाई अड्डे पर।
नयी दिल्ली सितबर, 1968।

लेखक इडोनेशिया के राष्ट्रपति सुहार्तो श्रीमती गाधी और अफगानिस्तान के नूरी एतमादी के साथ। लुसाका शिखर सम्मेलन, 1969।
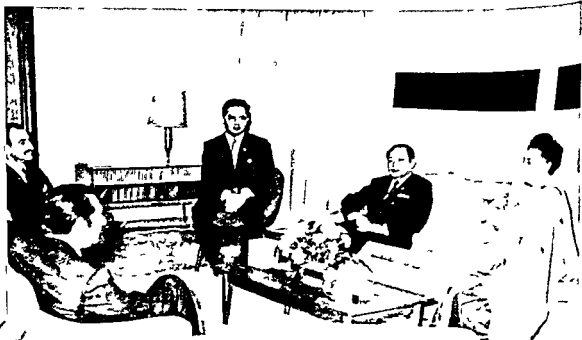
लेखक अल्जीरिया के राष्ट्रपति बूमदीन के साथ। एल्जियर्स दिसंबर 1970।

'एशिया '72 में भाषण देते हुए। "एक काम सौंपा गया था। हमने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की है। अब आप देखकर फैसला कीजिये।' नयी दिल्ली, 3 नवंबर, 1972।

जनरल मोबूतू और उनकी पत्नी के साथ।
नयी दिल्ली, दिसबर 1972।

भारत म इडोनेशिया के राजदूत अपनी सरकार की ओर स पुरस्कार दे रहे है।
नयी दिल्ली, अगस्त 1973।

स्थिति की घोषणा की थी। आपातस्थिति की अवधि स्वास्थ्य लाभ की अवधि जसी थी। और इससे जादू जसा असर हुआ भी। राजनीतिक वातावरण एकदम बदल गया। इसलिए, स्थिति अनुकूल होते ही उनकी ओर से पुराने आजमाये हुए रास्ते पर लौटने मे कतई देर नही की गयी। उन्होने शुरू म फरवरी 1976 मे ही चुनाव कराने की सोची थी। मुझसे उन्होन इसके बार मे कई बार बात भी की थी, '*हमे जन समथन जानन के लिए चुनाव कराना चाहिए। अस्पष्टता मुझे* अच्छी नही लगती। जनता को राय देने का मौका मिलना चाहिए।" यह बात वह बार-बार दोहराती थी। वह पिछली ससद के कायकाल के भीतर ही चुनाव कराने के लिए उत्सुक थी। पर सिद्धाथशकर राय, देवकात बरुआ, रजनी पटेल व कुछ मुख्यमन्त्रियो जस उनके सहयोगियो न उन्ह इसके खिलाफ राय दी। उन्होन श्रीमती गाधी से कहा कि विकास कार्यों मे लगे सभी अफसरो को वहा से हटाकार चुनाव के काम मे लगाना पडेगा। इस तरह सब काम अधूरा रह जायेगा। वह सुनती, कुछ दिन खामोश रहती, और फिर उनकी जनता की राय जानने की बुनियादी इच्छा उभर आती। एक बार जब पाकिस्तान म चुनाव की घोषणा हुई, वह खीझ और व्यथा से उबल सी पडी, "अब वे तक हम लोकतान्त्रिक न होने का ताना दे रहे हैं। हम चुनाव करा ही लेने चाहिए।" पर उनके अपने *दोस्त ही जनता के सामन जाने के मूड म नही थे।*

मैं भी उस समय चुनाव के खिलाफ था। कई ऐसे कदम उठाये जा चुके थे जिन्ह आम तौर पर पसद नही किया जाता, या जो अरुचिकर थे और ऐसे समय चुनाव कराने से स्थिति सँभलती नही। इन कदमो के बाद दूसरे कदम उठाने की जरूरत थी, होशियारी के साथ उन्ह पोसने की जरूरत थी। उस वक्त चुनाव कराना वसा ही था, जसे किसी बीमार बच्चे से पूछना कि क्या वह कडवी दवा खायगा। जिस तरह बीमार को अच्छे होन के लिए तीमारदारी की जरूरत होती है, उसी तरह उस वक्त की स्थिति म देखभाल जरूरी थी। पर मैं जो चीज बहुत निश्चित रूप से चाहता था, वह थी आपातस्थिति और सेंसर व्यवस्था की समाप्ति और सामान्य जीवन की वापसी।

इससे हमे वास्तविकता जान लेने का मौका मिल जाता। क्या कुछ ग़लत हो रहा है इसके बारे म मैं बहुत से किस्से सुन चुका था। एक टकसाली किस्सा यह था कि बेईमान अफसरो ने दमन का वातावरण बना रखा था और वे आपातस्थिति का लाभ उठाकर पसा बना रहे थे। एक बार हवाई जहाज म बबई से *दिल्ली आते वक्त एक सहयात्री ने बताया कि उनकी जान पहचान वाला एक* आयकर अफसर पहले छोटी छोटी रकमे रिश्वत मे लेकर असामिया के काम कर देता था। आपातस्थिति के दौरान वह एकाएक बहुत सख्त हो गया। जब उससे *पूछा गया तो वह अपने दोस्त से बोला, 'मैं क्या करूँ? रिश्वत लेते पकडे जान का* खतरा बहुत बढ गया है। इसलिए मैं अब बडी रकम ही रिश्वत मे लेता हूँ।' जनता खीझ चुकी थी, डरी हुई थी और उसके मन मे शिकायत भर रही थी। ऐसी हालत मे उससे वोट माँगना वसा ही था, जसा कि कहावत है— 'आ बल, मुझे मार।" श्रीमती गाधी की अतरात्मा और जनता की आवश्यकता—दोनो का सहज इलाज यह था कि आपातस्थिति के पहले की आजादी फिर कायम कर दी जाती। जहाँ तक चुनाव का सवाल है, उसे उस विशेषाधिकार के अतगत तय किया जा मकता था, जो राजनीतिक नेता को प्राप्त रहता है—बस शत यही होती है कि कानूनन अवधि समाप्त होने के पहले चुनाव हो जायें। श्रीमती गाधी

के पास यह विकल्प था।

लेकिन पी० एन० धर के नेतृत्व म अफ़सरा के एक छोटे-से गुट न—स्पष्ट है कि शरारती इरादो से प्रेरित होकर—श्रीमती गाधी से कहा कि बेहतर यही होगा कि पूरा काम एक साथ कर लिया जाय और जल्दी से जल्दी। उनका तक आर्थिक स्थिति के इस विश्लेषण पर आधारित था कि नवबर 1977 म हालत बिगडेगी। उन्होने कहा कि दो वष अच्छी वर्षा होन के बाद तीसरे साल अच्छी वर्षा न होने की आशका रहती है और सूखे की सभावना से इकार नही किया जा सकता। "इस विषम परिस्थिति का मतदाताओ पर बुरा असर पडेगा।" और 'सामान्य' स्थिति लाने का उन्होने एक सत्यानाशी कायक्रम बना डाला।

यह स्वीकार करन के बाद कि चुनाव तभी करा लिये जायें, प्रधानमत्री ने दूसरी ग़लती यह की कि ब्योरा तैयार करने का काम उन्ही पर छोड दिया। आपातस्थिति के दौरान गिरफ्तार किये गये लोगो की रिहाई और चुनाव की तारीखो का ऐलान एक साथ करने के परिणामा को धर और हक्सर ने जान-बूझ कर नज़रअदाज़ किया। यह बडी ही कुटिल चाल थी। जिस किसी म ज़रा भी राजनीतिक सूझ बूझ या निष्ठा की भावना होती, वही बिलकुल दूसरे रास्ते का सुझाव देता। श्रीमती गाधी के खेमे के कुछ राजनीतिज्ञ राजनीतिक और दिमागी तौर पर इतने कमज़ोर हो गये थे कि व एक साथ घोषणा करने के खतरे उन्ह समझा नही सके। उनसे हर मौके पर 'हां' कहने के वे इतने आदी हो चुके थे कि वास्तव म वे लोग श्रीमती गाधी को इस बात की बधाई देन पहुँचे कि वक्त पहचानने म उन्होने एक बार फिर बडी सूझ बूझ का परिचय दिया है। जब मैंने उनसे अपनी आशकाओ के बारे म कहा तो वह बोली कि बाकी सब लोगो की राय तो इसकी उलटी है। मैं समझता था कि पहला कदम राजनीतिक बदियो की रिहाई होना चाहिए था। इससे इन्ह अपना गुस्सा और भडास निकाल लेने का मौका मिल जाता। राजनीतिक वातावरण का तनाव कम हो जाता। तब आपात स्थिति खत्म कर ली जाती और सेंसर समाप्त कर दिया जाता। यही मैं उनस लगातार कहता आ रहा था। सही रास्ता यही होता कि रिहाई और चुनावो के बीच एक साल या कम से कम छ महीने का समय रखा जाता।

इस रणनीति से विपक्ष के बेमेल गुटो के मतभेद खुलकर सामने आ जाते। एकता स्थापित करन की उनकी कोशिशें वक्त की चट्टान से टकराकर चूर चूर हो जाती। इससे चुनाव मे काग्रेस के खिलाफ सयुक्त मोर्चा बनान की कोशिश नाकाम हो जाती। लेकिन जो सलाह श्रीमती गाधी को दी गयी—और जिसे उन्होने अपनी तीक्ष्ण राजनीतिक प्रवृत्ति का प्रयोग किय बिना मान भी लिया—वह इसके बिलकुल विपरीत थी। विपक्ष के गुटो को हडबडी मे जो चुनौती मिली, उससे उन्ह अपने अपने दावे पेश करने, आपस मे लडने झगडने या एक-दूसरे पर दोषारोपण करने का मौका न मिला। उनके विचारधारा-सबधी और स्वभावगत विरोध इतने तीव्र थे कि उनमे मेल हो ही नही सकता था, लेकिन अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए वे तात्कालिक रणनीति बनाने को बाध्य हुए। यह नीति थी, 'अपने सब मतभेद भूलकर इदिरा गाधी को हराओ।" इस एक दुश्मन के खिलाफ उनमे उन्माद की हद तक एकाग्रता थी और उन्ह इस उन्माद को एक दिशा म केंद्रीभूत करने की इतनी सुविधाएँ दी गयी थी कि जो सत्ता मे थे वे घुडकी धमकी मे आ गये। राजनीतिक विपक्ष की मुक्ति और आम चुनाव इतन निकट रहे कि उनकी शहीद बनन की बात ताज़ी रही। उन्ह (जेल जाने का) यश मिला था

और इसकी चमक दमक का उन्होने भरपूर इस्तेमाल किया। प्रधानमत्री का दी गयी सलाह ने और जिस ढँग स इस पर अमल हुआ उस ढँग ने इस बात को गारटी कर दी कि काग्रेस चुनाव हार जाये। इसम कोई आश्चय नही कि प्रधानमत्री के प्रमुख सलाहकार पी० एन० धर को इसका इनाम मिला। जनता पार्टी की सरकार ने उनकी सेवाओ की सराहना की और सयुक्त राष्ट्र सघ मे एक बढिया नौकरी के लिए उनकी सिफारिश की।

प्रधानमत्री को यह विकल्प मिलता है कि वह चुनाव के लिए सबसे अधिक उपयुक्त अवसर छाट ले, इस विकल्प को कुछ लोगा की मूखता और शायद कुछ लोगा की जान बूझकर की गयी साजिश ने हाथ से जाने दिया गया। इस सबमे एक स्थायी तत्व था श्रीमती गाधी का अपना सकल्प कि यह जानते हुए भी कि वह एक खतरा मोल ले रही ह, वह चुनान के अपने निणय को नही बदलेगी।

जब परस्पर विरोधी तत्व मिलकर मोर्चा बनान मे लगे थे, जगजीवनराम न काग्रेस छोडकर दल बदलने की घोषणा की। यह 2 फरवरी, 1977 को हुआ। विपक्ष को मुहमागी मुराद मिल गयी। इससे शासक दल मे घबराहट फल गयी और यह आभास जड पकडने लगा कि काग्रेस के तिरगे झडे के तले राज्यसत्ता का जहाज डूबने ही वाला है। उसी समय राष्ट्रपति, फखरुद्दीन अली अहमद, जिनकी सेहत ठीक नही थी, मलेशिया और फिलिपीस की अनावश्यक औपचारिक यात्रा पर गये। यह यात्रा उनके लिए बहुत थका दने वाली साबित हुई। वहा की नम आब हवा से उनकी बीमारी और बढ गयी। कुआला लम्पुर मे अपने प्रवास के आखिरी दिन उन्ह दिल का दौरा पडा। फिलिपीस की यात्रा स्थगित कर दी गयी और वह भारत वापस आ गये। अपने विशेप हवाई जहाज से उतरते वक्त वह स्वस्थ लग रहे थे, लेकिन वह स्वस्थ बिलकुल नही थे। अगले दिन बहुत सबेरे उन्ह दूसरा दौरा पडा। मुझे मेरे दोस्त आगा नासिर ने टेलीफोन किया, जिनकी सबसे छोटी बेटी की फखरुद्दीन अली अहमद के सबसे बडे बेटे से शादी हुई थी। तब सबेरे के छ बजे थे। मैं वही मौजूद था जब सबेरे सवा सात बजे के करीब वह चल बसे। यह 11 फरवरी, 1977 की बात है। फखरुद्दीन साहब के न रहन का प्रधानमत्री को गहरा सदमा हुआ। वह उनके परिवार के एक सदस्य की तरह थे। उनके लिए शक्ति स्तभ और बहुत ही विश्वसनीय सलाहकार थे। उनकी मौत ने हम लोगो को भी हिला दिया, वह बहुत लोगो के प्रिय थ।

उनकी मौत क बारे म जो ऊल-जलूल झूठी अफवाह उडायी गयी वे स्तभित करने वाली थी। इससे स्पष्ट था कि कुछ राजनीतिज्ञ एक तक जीतन के लिए कितन नीचे स्तर पर उतर सकते हैं और कितने ओछे व बेशम हो सकते हैं। इन अफवाहो के अनुसार प्रधानमत्री रात के दो बजे उनस मिलन गयी थी और उनके बाद सजय गय थे। दोनो का फखरुद्दीन साहब से जोरदार झगडा हुआ था। यह ओछे और गदे स्तर के झूठ की एक मिसाल थी। इस तरह के पापमय निंदात्मक झूठ पर बेगम आबिदा की प्रतिक्रिया बहुत शिष्ट थी, 'इन कमबख्त लोगा ने फ़खरुद्दीन को न जिंदगी म आराम दिया, न अब मौत मे उसका पीछा छोडत हैं।" वह उन लोगा के बारे म बात कर रही थी जो हमेशा फखरुद्दीन साहब का विरोध करते रहे थे। इसकी एक वजह वक्फ बोड का एक विवाद थी। फखरुद्दीन साहब 1970 स 1974 तक वक्फ विभाग के मत्री भी रहे थे। उनकी मत्यु के बाद बात एकदम बढ गयी। लोगो ने पहले श्रीमती गाधी और सजय के राष्ट्रपति से उग्र विवाद की बात गढी और फिर बडे ब्योरे के साथ उसे फलाया। यह सब सरासर

चूक था। और जसाकि बेगम आबिदा न इशारा किया था, सिफ एक आदमी की व्यक्तिगत शिकायत से शुरू हुआ था। उस समय राजनीति के ऐस ही 'सिद्धात' उठाये जा रहे थे। जो भी हो, इससे राष्ट्रपति न जामा मसजिद जाना छोड दिया था नमाज़ के लिए वह या तो पार्लियामट भवन के सामने वाली मसजिद म जाते थे, या फिर ईदगाह चले जाते थ। इसीलिए जब यह सवाल उठा कि उनकी कब्र कहा बने, तो मैंने सोचा कि सबसे बेहतर जगह वह मसजिद ही होगी, जिससे वह इतना प्यार करने लगे थ।

मैंने प्रधानमत्री स बात की। उन्होंने कहा कि मैं बेगम आबिदा अहमद स बात कर लू और उनकी राय ही मानी जाय। इसका सबध सबसे ज्यादा उन्ही से था भी। मैंने बेगम साहिबा से जब इस जगह का सुझाव दिया तो वह सोचती हुई मेरी तरफ देखती रही, फिर बोली, "यह तो बहुत बढ़िया प्रस्ताव है, फखरुद्दीन को भी यह पसद आता। मेहरबानी करके वही इतज़ाम कर दीजिये और किसी और की कतई मत सुनिये।' इस तरह जगह का चुनाव हो गया। मन्त्रिमडल के सचिव ने सबधित लोगो की बैठक बुलाकर जगह की सफाई व राष्ट्रीय सम्मान के साथ अत्यष्टि का प्रबध करने का आदेश जारी कर दिया। बाद म, निर्माण मत्रालय न जिसे कब्र वगैरह बनाने की ज़िम्मेदारी लेनी थी, मुझे उस समिति का अध्यक्ष बना दिया जिसे कब्र के लिए उपयुक्त डिजाइन तय करने का काम सिपुर्द किया गया था। हमारा विचार था कि डिजाइन ऐसा हो कि उस खूबसूरत मसजिद व उस शानदार, प्रतिष्ठित इलाके से मेल खाये। हम लोगो ने कुछ बठकें की, कुछ कब्रे देखी और जल्दी से-जल्दी यह काम पूरा कर डालने का निश्चय किया। लेकिन भाग्य म कुछ और बदा था। जो राजनीतिक परिवर्तन आया उसने सभी सुझावो व तयारियो को धूल मे मिला दिया। दो साल तक कुछ नही हुआ। जब इस गैर मामूली देर पर जनता ने आलोचना शुरू कर दी, तब जाकर जनता पार्टी की सरकार न आखिर म बात वहा से शुरू की, जहाँ हमारी समिति ने छोडी थी। तब भी काम बहुत ढीले ढाले ढंग से शुरू हुआ और अब भी कछुए की चाल चल रहा है।

कहते है कि दुर्भाग्य कभी अकेला नही आता। राष्ट्रपति के गुज़र जाने की दुखद घटना के कुछ दिन बाद ही प्रधानमत्री को हर्पीज़ की बीमारी हो गयी। उन्हे बहुत ज्यादा तकलीफ थी। पर उन्हे काग्रेस पार्टी के उम्मीदवार छाँटने के लिए बहुत बडी भीड से निपटने के काम म लगना पडा। बाद मे, उन्हें चुनाव प्रचार के लिए इतना लबा, थका देने वाला देशव्यापी दौरा करना पडा जो किसी भी व्यक्ति ने पिछले तीस सालो म नही किया था। वह हवाई जहाज़ से, मोटरकार व ट्रेन से और पैदल चलकर देश के कोने कोने म पहुँची और इतनी चुनाव-सभाएँ की जितनी कि कोई कल्पना तक नही कर सकता था। उनके वरिष्ठ मत्री और पार्टी के नता अपनी लोकप्रियता खो चुके थे। वे सिफ अपने को चुनवा लेने के काम म अपन ही क्षेत्रो म फँसे रह गय। जब कि विपक्ष न एक दजन जाने माने लोगो को चुनाव प्रचार म लगा रखा था,[1] काग्रेस को सिफ श्रीमती गाधी की लगन और साधना का भरोसा था। इस कमज़ोरी पर काबू पाने के लिए उन्होने भरपूर कोशिश की,

1 ये नता चरम दक्षिण पथ से लेकर उग्र वामपथ तक की विचारधारा वाले थे जयप्रकाश नारायण मोरारजी देसाई जगजीवनराम चरणसिंह कृपलानी अटलबिहारी वाजपेयी श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित हेमवतीनदन बहुगुणा लालकृष्ण आडवाणी बीजू पटनायक, ज्योति बसु व ई० एम० एस० नम्बूदिरीपाद।

लेकिन झूठ के सहारे उभारी गयी जनता की अवरुद्ध भावनाएँ, कुछ गलतिया और 30 साल तक शासन मे रहने से बहुत से गलत सही कामो की जिम्मेदारियाँ— सभी मिलकर काग्रेस के खिलाफ पडी, और उसे चौपट कर दिया। काग्रेस का उत्तर भारत मे सफाया हो गया, स्वय श्रीमती गाधी रायबरेली चुनाव-क्षेत्र म चुनाव हार गयी।

स्थिति का आकलन और विश्लेषण बहुतो ने किया है और अपन-अपन अलग अलग निष्कष निकाले हैं। जहाँ तक मेरा सबध है, मैं समझता हूँ कि इतन लब समय तक सत्ता मे रहना ही काग्रेस का सबसे बडा दुश्मन साबित हुआ। वह अपने ही बोझ से चरमरा गयी। उसका सगठनात्मक ढाँचा बिलकुल घिस पिट चुका था। उसके पदाधिकारी न सच्चाई का पता लगा पाते थे और न उसकी अभि-व्यक्ति ही कर पाते थे। बडे महत छोटे कायकर्ताओ की उपेक्षा करते थे। मत्री अफसरो पर ज्यादा भरोसा करते थे, जिससे उनम जो बेईमान थे, व और ज्यादा दभी और भ्रष्ट हो रहे थे। हर तरह के लोग सत्तारूढ दल से फायदा उठान के उद्देश्य से उसकी सदस्यता के लिए आकर जम गये थ। काम करन के ढँग मे नयी तरह की होड शुरू हो गयी थी, जिससे नेतृत्व की एक नयी शली उभरी थी। राज-नीतिक चितन मे आमूल परिवतन आ गया था। अब कोई आदर्शों के लिए सघष नही करता था। अब सघष था सत्ता के लिए और हर कोई सिफ अपना स्वाथ देखता था। सत्ता भ्रष्ट करती है, पूण सत्ता इसान को पूरी तरह नीच बनाती है। यही नतिकता जीवन के हर क्षेत्र मे नीचे तक उतरती चली गयी थी। मानवीय मूल्यो का पतन स्पष्ट देखा जा सकता था। ज्यादातर नेता जनता की शिकायतो और आलोचनाओ के प्रति सवेदनशील नही रह गये थे। चापलूसी का बोलवाला था। इससे ईमानदार कायकर्ता कटकर अलग हो गये थे। इसलिए निहित स्वाथ वाले ही मैदान मे रह गये थे और बहुत बेशर्मी के साथ सत्ता मे जडें जमाये हुए थे।

सन 1967 के बाद से एक कोशिश यह शुरू की गयी थी कि सरकार के उच्च स्तरो पर प्रविधिज्ञो को लाया जाये। नौकरशाही को भी और ज्यादा शक्ति और प्रतिष्ठा दी गयी थी। दोनो की कलई जल्दी ही खुल गयी। यह बात साफ हो गयी कि किसी विषय की प्राविधिक जानकारी का मतलब उसके पूरे महत्व को समझन की योग्यता नही होता। राजनीतिक समझ के अभाव के कारण ऐस लोग एक बोझ बनकर रह गये। इसी तरह भलेमानस राजनीतिज्ञ या उनके बुद्धिजीवी प्रति रूप हानि पहुँचाने वाले गरोह ही साबित हुए। कहने के लिए तो वे एक नयी समाज व्यवस्था लाने के लिए प्रतिबद्ध थे लेकिन व्यवहार मे वे पूरी तरह निकम्मे साबित हुए। वे अपन कल्पनालोक मे ही मगन रहते थे और उन्ह यह भी पता नही चलता था कि उनके आसपास हो क्या रहा है। जरूरत इस बात की थी कि एक बार फिर से नीचे के स्तर से जनता के बीच जाकर सपक स्थापित किया जाये। नि स्वाथ और लगनशील कायकर्ताओ का ही भविष्य उज्ज्वल था। वे ही सगठन मे बढ़ती हुई सडन से उसे बचा सकते थे। उनकी ईमानदारी और निडरता ही योग्यता और प्रतिबद्धता पदा कर सकती थी। उनसे ही यह समझने की अपेक्षा की जा सकती थी कि स्वाथ लोभ व लालच को मिटाकर सेवा, विनय और त्याग की भावना पदा की जानी चाहिए। पर उनकी जगह तो चापलूस बठे हुए थ।

इन मानवीय मूल्यो के अभाव न ही अनक बडे बडे राजनीतिक नेताओ के दिमागो को बौना बना रखा था और उन्ह जन-मानस म शून्य बना दिया था।

उनमे से अनेक अपनी राय देने मे भी डरते थे कि कही उसस सत्ता क पद पर बठा कोई व्यक्ति बुरा न मान जाय और नेता के सामने उनका स्वरूप विकृत न हो जाये। ऐसा लगता था कि व अपनी परछाईं तक स डरते थे। इसस वे कभी बिलकुल दयनीय लगते और कभी हास्यास्पद। उनकी राजनीतिक बुनियादें नही थी और व खुलकर किसी बात के लिए लड नही सकते थ। अधिकाश वरिष्ठ साथी आरामतलब हो गय थे। सिद्धाता और विचारधाराआ के लिए उठ खडे होने और लडने का उनका पुराना उत्साह और पहले वाली क्षमता नही रही थी। जब वे दौरा पर जाते तब भी वे अफसरा स ही मिलना पसद करते, पार्टी क काय कर्ताआ से नही। इसस असलियत से टकराव कम होता था, आराम ज्यादा मिलता था। किसी साधारण कायकर्ता के घर की जगह सर्किट हाउस या कोई बढिया होटल ही ठहरने के लिए चुना जाता। मुझे याद है कि एक बार श्रीमती गाधी न बडे दुख के साथ मुझसे कहा था, "वे हर बात के लिए मेरे पास दौडे चल आते हैं। मैं उनसे कहती रहती हूँ कि जाकर अपने-अपने इलाक़ा मे काम करें। पर वे जा कर शहरो म ही सभाएँ कर लेते है।" इस तरह के जीवन से अपने-आप ही आम आदमी और राजनीतिक कायकर्ता की नयी नस्ल के बीच एक गहरी खाई पदा हो चकी थी। मैं इस सिद्धात का कट्टर समथक हूँ कि किसी भी राजनीतिज्ञ को दोहरी ज़िदगी नही अपनाना चाहिए—एक अपन विलास के लिए और एक सावजनिक स्वरूप निखारने के लिए। यह दोहरापन बहुत जल्दी स्पष्ट सामने आ जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि पार्टी का आम कायकर्ता ऐसे नेताआ से नफ़रत करने लगता है और फिर उसे पूरी तरह छोड देता है। और तब भी ऐसे दिग्गज अपने राजनीतिक सामाजिक सर सपाटो स लौटकर आते और कहते हैं कि पद यात्रा करके लौटे हैं। सचमुच !

इस कोटि के राजनीतिज्ञो म विदेश जाने का उन्माद भी ज़ोर पर था। गतव्य स्थान हमेशा ही पेरिस, लदन, रोम, न्यूयाक या टोकियो ही होते। कुछ मुख्यमनिया का ज्यादा वक्त दिल्ली म कटता, अपन राज्यो म कम। मन्त्रिमडल के सदस्य जन सपक के लिए आम दौरो पर शायद ही कभी निकलते। इसम कोई अपवाद था तो सिफ प्रधानमत्री। वह दिल्ली के अपने निवास पर भी, जो कि मत्रियो के बँगलो मे सबसे छोटा था, बडी-बडी भीडा से मिलती। उनकी अपनी जरूरतें बहुत ही कम थी। अपन व्यापक और थका देने वाले दौरो तक म वह हर उस भीड से बचती थी जिससे शान शौकत की बू आती हो। इसे जनता समझती और पसद करती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि दल म और सरकार पर उनका नियत्रण बढता गया। जितना ही उनका राजनीतिक कद बढता गया, उतने ही और लोग बौने होते गये और अपन-आपको बौना समझते भी गये। इस प्रक्रिया मे उनके लिए ऐसा कोई नही बचा जो उनकी सर्वोच्चता को चुनौती दे सके, या उनसे बराबरी का बरताव कर सके। उनके अधिकाश सहयोगी राजनीति मे हलके और शरीर से भारी होते गय ! वे स्वय अपने म भी विश्वास प्रकट नही कर पाते थे। उनकी कमजोरी उस लबी प्रक्रिया का नतीजा थी, जिसम व और पार्टी दोनो पूरी तरह आत्मतृप्ति और आत्मसुख मे लिप्त हो गय थ। राजनीति मे खडे रहने के लिए और इतिहास के घूरे पर फेंक दिय जान स बचने के लिए वे लगातार बाहरी मदद की जरूरत महसूस करत थे। फिर चुनाव की बडी हार से ताज्जुब क्यो हो ?

इनके रहन सहन के ढँग और आज़ादी की लडाई के दिग्गजो ने जो ढँग

अपनाया था, उनमे इतना अतर था कि औसत कार्यकर्ता इसे आँख से ओझल नही कर पाता था। अपने बुढ़ापे और कमजोर सेहत के बावजूद गाधीजी सारी जिंदगी जनता के साथ ही रहे। बादशाह खाँ एक गाव से दूसरे गाँव तक पैदल जाते, दिन भर म दस-बारह सभाएँ करत, मामूली किसान के साथ बठकर उसका खाना खाते और घरो के मर्दो के तग कमरो हुजरो मे ही सो जाते, जहा मामूली से मामूली सुविधाओ का भी अभाव रहता। मैं जब उनके साथ जाता तो नहाये और दाढी बनाये बिना ही रह जाना पडता। इस कठोर जीवन पर शिकायत का तो सवाल ही नही पैदा होता था, इसका तो स्वागत किया जाता था। जवाहरलाल के दौरे न तो इतने देहाती होते और न थका देने वाल ही, जितन कि बादशाह खाँ के, पर वे हमेशा गहमा गहमी भरे और व्यापक होते और हमेशा आम जनता के बीच। अन्य नेताओ की भी अपनी-अपनी विशिष्टताएँ थी, पर आम जनता से सपक और उसकी गहरी समझ से वे कभी दूर नही हुए। जो लोग राजनीति मे जडें जमाना चाहत थे, कुछ बनना चाहते थे, उन्ह इन्ही बडे लोगो का अनुकरण करना चाहिए था। जो भी जन सपक से बचने की कोशिश करता वह या तो पीछे छूट जाता या फिर मैदान से निकाल बाहर किया जाता।

आपातस्थिति के दौरान सजय के उद्भव को उन सब बातो के सदभ म देखा जाना चाहिए जो उनके बारे मे 1970 से 1976 तक कही जाती रही थी। वह राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ और जनसघ के गँठजोड द्वारा निम्नतम कोटि के चरित्र-हनन के शिकार बनाये गये थे। जिन लोगो ने चरित्र हनन के इस अभियान को देखा समझा था, या जो उन सालो के अखबार पढने के इच्छुक है, व ही इसकी व्यापकता और गहराई का अदाजा लगा सकते हैं। किसी भी व्यक्ति पर इसका विनाशकारी प्रभाव पडता। 1971 मे सजय की प्रतिक्रिया आक्रोश की थी। उनके खिलाफ आलोचना और विद्वेष का जो अभियान चलाया गया था, विशेष कर ससद मे, उससे लडने के लिए ही वह राजनीति मे आये। उन्होने काग्रेस के पोस्टर आदोलन की देखभाल करने का निश्चय किया। उन्होने पटियाला मे कुछ सावजनिक सभाओ म भाषण भी किये। श्रीमती गाधी की पहली प्रतिक्रिया गुस्से की थी। उन्होने राय दी कि वह राजनीति से अलग रहकर अपन व्यक्तिगत मामलो की ओर ध्यान दें। अतत, उन्होन वही किया। बुनियादी तौर पर वह अपनी प्रिय योजना से विचलित नही होना चाहते थे। पर उनके निंदक उन्ह चैन से बैठने नही दे रहे थे। इन निंदको मे जल्दी ही एक वामपक्षीय गुट भी शामिल हो गया। यह अजीब लग सकता है, पर उन्हे प्रेरणा मिली परमेश्वर नारायण हक्सर और उनके रक्षित पी० एन० धर से। इसका कारण आम धारणा के विपरीत व्यक्तिगत था। मारुति से हक्सर की अपनी जमीन पर आँच आती थी। उन्होने गुडगाँव रोड पर जमीन का एक टुकडा खरीद रखा था। अगर वहाँ मारुति की स्थापना होती, तो उनकी जमीन चली जाती। उन्होंने मारुति योजना रुकवाने की पूरी कोशिश की। जब अतत हरियाणा प्रशासन ने मारुति के लिए उस जमीन का अधिग्रहण कर लिया तो हक्सर ने चुपचाप अपने कुछ वामपक्षीय मित्रो को मारुति के खिलाफ आदोलन छेडने के लिए उकसाया। उन्होने हर तरह की झूठी कहानियाँ गढकर प्रचारित की। हक्सर पहल ही मुझस कह चुके थे, कि 'उस लडके से अपनी पागलपन की योजना को छोड दन के लिए कह दीजिय, या फिर वह उसके परिणाम भोगने के लिए तयार रहे।" लेकिन उनक उद्देश्य पर मुझे शक हो गया। उनके विरोध का श्रीगणेश किसी सिद्धात से नही, बल्कि व्यक्ति-

गत मनमुटाव से हुआ था।

इस बीच कई राज्य सरकारें सजय पर दबाव डाल रही थी कि वह अपना कारखाना उन्ही के राज्य म लगायें। उत्तर प्रदेश न गाजियाबाद के करीब जगह दन को कहा जब कि राजस्थान ने हरियाणा की सीमा से लग क्षेत्र म एक औद्योगिक केंद्र बनाने का प्रस्ताव रखा ताकि यह कारखाना वहा लग जाय। लेकिन बसीलाल इन सबसे तेज निकले। फुरती और कुशलता से काम करने की उनकी अपनी शली थी और उसी से उ होन यह कारखाना हरियाणा के लिए ले लिया। हो सकता है कि बसीलाल श्रीमती गाधी के बेटे के माध्यम से उनकी कृपा पाने के लिए इस कारखाने के प्रति उत्साहित हुए हा, लेकिन उनम यह समझन का साहस था कि व्यवसाय की दृष्टि स इस कारखाने का उनके राज्य के लिए बहुत महत्व होगा। मारुति की परिकल्पना बडे पमान पर की गयी थी। इस बडे कारखाने के लिए छोटे पुर्जे बनाने वाले छोटे उद्यमियो के लिए वही आस-पास बस जान की सुविधाएँ थी। इससे रोजगार के ढेरो क्षेत्र बनत। कोई भी राज नीतिज्ञ, खासतौर पर बसीलाल जसा गतिशील राजनीतिज्ञ, इस सभावना को नजरअदाज नही कर सकता था।

सजय गाधी से उमा वासुदेव की भेंट-वार्ता उनकी पत्रिका सज म अगस्त 1975 म छपी और उसन एकदम सनसनी पदा कर दी। मारुति के खिलाफ घोटालो की जो अफवाह थी और नागरिक मामलो म सजय की जो दिलचस्पी थी, उस देखकर उमा वासुदेव ने इस उद्देश्य से भेंट-वार्ता का थी कि उनकी कार के बारे मे असली स्थिति का पता लग सके और विभिन्न राजनीतिज्ञ व आर्थिक प्रश्नो पर उनकी राय मालूम की जा सके। उ होने चलते चलाते भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के बारे म जो बात कही, वही फलकर लहरें मारने लगी। उस भेंट वार्ता के इन्ही अशो को निकालकर राष्ट्रीय दनिक पत्रो ने खूब प्रचारित किया। विदेशी समाचार एजेंसियो ने इसका दुनिया भर म प्रचार किया। ऐसा लगा मानो मधुमक्खियो के छत्ते को छेड दिया गया हो। सजय ने कम्युनिस्ट पार्टी, जो कि काग्रेस की मित्र पार्टी थी, व मुक्त उद्योग व्यापर के सबध म जो विचार व्यक्त किये थे, उन्हे इस बात का इशारा माना गया कि वह अपनी माँ की उद्योगो क सावजनिक क्षेत्र स सबधित नीतियो के विरुद्ध है। उनके विचारो स निकाला गया यह निष्कप बहुत शरारत भरा था, जिसने खडन के बावजूद वामपक्षीय गुट म खलबली पदा कर दी। उन्होंने सजय के खिलाफ निंदात्मक प्रचार शुरू कर दिया। बाद म यही प्रचार श्रीमती गाधी क खिलाफ हो गया।

वामपक्षीय विचारधारा वाले लोग मुझसे लगातार आकर कहा करते थे कि सजय को नियत्रित प्रतिबधित करो।" इसलिए उनका प्रचार मुझे मनोरजक ही लगा। कम्युनिस्ट पार्टी म मैं अधिकाश दोस्तो का बहुत अर्से स जानता हूँ, कुछ को बहुत नजदीक से। उनके विश्वास की अवधारणाओ के मैं कभी खिलाफ नही था और न मैं किसी अन्य विचारधारा का समथक ही हूँ। लेकिन मैंने लब अनुभव स देखा है कि जो लोग अपनी विचारधारा का जोर शोर स प्रदशन करत हैं व अपने 'वाद' क लेबिल म एस फँस जात हैं कि मुख्यधारा स पूरी तरह अलग पड जाते हैं। भारत म कम्युनिस्टो की दुदशा इसकी सबस बढिया मिसाल है। अपनी लबी चौडी बातो की लफ्फाजी क बावजूद व जन मानस म अपने लिए कोई जगह नही बना सके हैं। सजय ने मुख्यत उन कम्युनिस्टो पर आक्षेप किया था, जो सदहास्पद धामो म फँसे थ, जो गरीबो की बात करत थ पर निजी तौर पर

दौलत जमा करने पर तुले हुए थे। कम्युनिस्टो के बारे मे उनका कथन इस सदर्भ मे देखा जाना चाहिए था। वह भी 'वाद' से दूर रहते हैं, पर गरीब के मददगार हैं।

वामपक्षीय गुट दिखावे के लिए ऊपर से प्रधानमत्री का शुभचितक बना रहा, पर सजय को बदनाम करने के लिए कहानिया गढ गढकर फलाता रहा। उनका खेल बडी चतुराई का था और उनका निंदात्मक प्रचार लगातार और ज़ोर-शोर से जारी रहा। वे काल्पनिक तथ्यो और हक्सर द्वारा दिये गय आकडो पर अपनी बातो की बुनियाद बनात थे। बबई के एक साप्ताहिक के सपादक ने एक बार मुझसे साफ साफ कहा कि उन्ह सारी खबर हक्सर ने दी थी। 'मैं समझता था कि वह प्रधानमत्री की स्वीकृति से ऐसा कर रहे थे। मै क्या करता? अब आपने सच्चाई बतायी है। मैं अपनी गलती को सुधार लूगा,'' वह बोले। और सचमुच उन्होने अपनी ग़लती को सुधारा भी। उस अखबार की धुन एकदम ऐसी बदल गयी जिसकी कि कोई उम्मीद भी नही थी। इस बेचारे सपादक को कई क्ला बाजियाँ खानी पडी। एक बार माच 1977 मे, फिर एक बार और 1979 के मध्य म।

सजय के बारे मे जो कहानियाँ गढी जाती थी, उनका ज़िक्र क्लबो और सामाजिक गोष्ठियो मे हुआ करता था। जब भी पूछा जाता कि यह किसन बताया, जवाब होता था, ''हमे सीधे बिलकुल 'टाप' स्रोत से पता चला है। खुद प्रधानमत्री के लोग हम ये तथ्य बताते हैं।' दिल्ली के एक बडे उद्योगपति की बीवी श्रीमती सुमित्रा चरतराम, एक बार उनके बारे मे बहुत ज़ोर शोर से बोले जा रही थी। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या उ होने खुद सजय को 'इटरकाटिनेटल होटल के गलियारो मे शराब के नशे में धत पडे देखा है?'' जैसाकि वह उस वक्त कह रही थी, तो उन्होन जवाब दिया, 'मैंने ही क्या, सारी दुनिया ने देख रखा है।'' सिर्फ होटल के प्रबधको ने ही सजय को कभी होटल के आस पास भी फटकते नही देखा था। इस तरह के झूठ फलाने के मुख्य दोषी हक्सर अखिरी वक्त तक 'घर के भेदी' की तरह मौजूद रहे।

यह बात अजीब ही है कि आपातस्थिति के दौरान जिन लोगो ने सजय से सबसे ज्यादा लाभ उठाया, वे ही बाद में सबसे ज्यादा भौकने लगे। दवराज अस पहले मुख्यमत्री थे, जिन्होन जनवरी 1976 म सजय को बगलौर बुलाया। उ होन बडी मेहनत से उनके शानदार स्वागत की तयारी की थी। दूसरा न देखा कि भीड इकटठी करने का यह नया जादू है। यह कहना आसान है कि सजय की सभाआ के लिए लोग पसे देकर बसो मे ढोकर लाये जाते थ। इस तरह कुछ हज़ार लोगो को इकटठा करना तो मुमकिन है, पर लाखो की भीड इस तरह जमा नही की जा सकती। सजय म कोई जादू नही था, लेकिन जनता म उत्सुकता थी, उनके बारे मे जिज्ञासा थी, यही जिज्ञासा लोगो को खीचकर उनकी सभाआ म लाती थी। जनता के मन म तब की काग्रेस के डावाडोल, बासी, घिसे पिटे नताआ क लिए कोई जिज्ञासा नही थी। कोई उन्ह सुनना ही नही चाहता था। पहले य नता सावजनिक सभाआ मे सजय का भाषण सबसे पहल करवा देते थे पर उन्होन देखा कि सजय के भाषण के बाद भीड छँटने लगती है, ता उन्होंने पहले खुद बोलकर सजय को सबसे बाद मे बुलवाना शुरू किया, इससे भीड सभा के अत तक टिकी रहती थी। और इस तरह सजय को राजनीति म घसीट लाया गया। मुझे याद है कि विभिन्न राज्या के मुख्यमत्री मुझे टेलीफ़ोन करके कहते थे यूनुस साहब! सजयजी इतनी बार हरियाणा और पजाब गये हैं। क्या वह सिर्फ़ वही के लिए

हैं? क्या हमारा कोई हक नही है? मेहरवानी करके उन्हे हमारे राज्य म आन के लिए भी राजी कर लीजिय।" इस तरह आध्र प्रदेश क वेंगलराव, तमिलनाडु क राज्यपाल या महाराष्ट्र के एस० बी० चह्वाण खुशी खुशी उन्ह बुलाते। एस०बी० चह्वाण तो सजय की बहुत ज्यादा तारीफ करते थे। वह कहते, "वह सिफ नौजवानो के नही, पूरे राष्ट्र के नेता हैं।" उन दिनो सजय को आमत्रित करन की उनकी उत्सुकता का सिफ चापलूसी कह देना मुश्किल है। यह बात विश्वास के याग्य नही है। इसे समझने के लिए उस समय की काग्रेस पार्टी की दयनीय स्थिति के सदभ म इसे देखना होगा। काग्रेसजन की आदशवादिता खत्म हो चुकी थी। ज्यादातर नेता जल्दी जल्दी अपनी जेबें भरने म लग थे। इससे ज्यादा आसानी उन्ह किस बात से हो सकती थी कि किसी एसे व्यक्ति का पल्ला पकडे रह, जिसम लोकप्रियता का जादू हो। इससे उनका काम आसान हो जाता था। वे शायद इस तरह सोचते थे कि एक तीर से दो निशान लगाये जा रहे है—बेट की चापलूसी करके प्रधानमत्री को खुश कर लेना और खुद उनकी भीडा स अपन लिए लोकप्रियता प्राप्त कर लेना। यह तो दूसरा का नाम या प्रसिद्धि अपने लिए इस्तेमाल करन से ही सभव था।

मै 1969 के पहले बसीलाल को नही जानता था और शायद ही कभी उनस मेरी बात हुई हो। लेकिन उनम ऐसी दो बातें थी, जिनसे मैं उन्ह पसद करने लगा। बादशाह खा न अपनी भारत-यात्रा के समय उनके बारे म मुझस जो बात कही थी वह मुझे हमेशा याद आती थी, 'अगर काग्रेस म तुम्हारे पास अब भी ऐस आदमी है ता अब भी उम्मीद बाकी है।' उन्ह बसीलाल की सादगी और साफगोई पसद थी। दूसरी बात थी उनकी निष्ठा। जब श्रीमती गाधी की कटु आलोचना की लहर पूरे उभार पर थी तब उन्होन एक बार मुझसे कहा था, 'मैं तो उनका बाल भी बाँका नही होन दूगा।" पर, शायद, आजकल निष्ठा को लोग गुण ही नहीं मानत। लेकिन मरे लिए यह मनुष्य के चरित्र की बात है। इस मामले म, बाद म भी, जब अवसरवादियो ने साथ छोडकर भागन का चलन चला दिया था, उन्हान मुझे निराश नही किया। उनके बारे म बहुत सी गलतफहमियाँ फलायी गयी हैं। इसम शक नही कि वह परिष्कृत शासन मे खपते नही थ और रक्षामत्री की हैसियत से सफल नही हुए। यही उनकी अवनति का कारण बना। उनके रूखे और दबग तौर तरीको से कई वरिष्ठ अधिकारी अप्रसन्न हो गय थ। यह दुख की ही बात है कि हरियाणा को एक अग्रगामी राज्य बनान म उन्होन जो नाम कमाया था वह रक्षामत्री बनकर खो दिया। मारुति के कारण उनका नाम सजय के साथ अभिन्न रूप से जुड गया था, लेकिन असली निशाना सजय ही बन रहे। बसीलाल पर यह भी आरोप लगाया गया कि उन्होन शासन की ससदीय प्रणाली खत्म करन की साजिश की थी। वह इस पक्ष म थ कि एक नया सविधान तयार करन के लिए विधान निर्मात्री परिषद गठित की जाय। इसस चुनाव दस साल के लिए टल जात। श्रीमती गाधी न इस धारणा को एकदम खारिज कर दिया, बल्कि आश्चय प्रकट किया कि एसी बात उठायी भी गयी। लेकिन यह नासमझी की याजना थी और जा लोग श्रीमती गाधी क खिलाफ थ, उनके मन म अकारण ही शक सुबहे पदा हो गय।

करणसिंह की भूमिका का विस्तार स वणन जरूरी है। वह साथ छोडकर दूसरी ओर चल गय, पर इस कलाबाजी म उन्होंने उस जोश का खयाल नहा किया, जिसस वह प्रधानमत्री के परिवार क साथ व्यक्तिगत सबधा पर जोर दत

थ। वह कहा करत थ कि 'सजय की वजह स ही स्वास्थ्य जसा महत्वहीन मत्रालय राष्ट्रीय रगमच पर हावी हो रहा है।" और न वह सजय और उनकी बीवी मेनका के कही दावत पर बुलाय जान पर खुद भी निमत्रण मागन स चूकते थे। एक बार एक महिला से उन्हान कहा, "अगर सजयजी आ रहे हैं, ता मुझे वहाँ होना ही है", और वह बेचारी महिला करणसिंह को बुलान के लिए मजबूर हो गयी। वह अतरग गोष्ठी का हिस्सा बनना चाहते थे। उन दिना की एक और अतरग मित्र, अबिका सोनी, सजय के प्रति अपना रवया बयान करने के लिए कहा करती थी, "उनके बिना एक कदम भी नही।" एक बार जब उन्ह युवक काग्रेस के अध्यक्ष पद से हटाने की बात उठी, तो वह काँपने लगी, रोयी और सजय से गिडगिडायी, 'मैंने क्या ग़लती की है? आप जो भी कहग, मैं करूँगी।' पर उन्ह अध्यक्ष पद स सजय नही हटा रह थे और न वह उनके खिलाफ थे। मुझे याद है, बरुआ ने एक दिन मुझसे कहा था, "वह झूठी है और मैं उन्ह हटाना चाहता हूँ। सजय खुद युवक काग्रेस के अध्यक्ष क्यो नही बन जात?" उनके (श्रीमती सोनी के) खिलाफ व्यक्तिगत ढँग की कई शिकायतें थी। बरुआ का खयाल था कि युवक काग्रेस के अध्यक्ष पद की प्रतिष्ठा उनके कारण गिरेगी। वह युवक काग्रेस मे रहने की उम्र भी पार कर चुकी थी। अबिका भी पीछे नही रही और उन्होने भी सजय के खिलाफ अविश्वसनीय आरोप लगा दिया। उन्होन बाद म जो कुछ कहा उससे उनके सगे-सबधी भी आश्चय मे पड गये।

सन् 1976 की दुर्भाग्यपूण घटनाएँ उन लोगो के सिरो पर बडे नाटकीय ढँग से मँडराती रही जो उन दिनो सत्ता म थे। भीतर स चीजे जसी दिखायी देती थी, बाहर से जरूर ही उनका भिन्न स्वरूप रहता है। इस अनुभव न मानव स्वभाव व मानव उद्देश्या की गहरी समझ तो निश्चित रूप से दी ही। कुछ लोगो की चालबाजी, चापलूसी, शमनाक कमजोरियाँ और लालच और ऊपर पहुँचने की उत्कट लालसा व महत्वाकाक्षा देखकर अचभे म पड जाना पडता था। जब आपातस्थिति थी तब मुखौटे लगे हुए थे। जो कीडे सत्ता के सूरज की धूप म मौज कर रहे थ, वे ही कीडे इस सत्ता के हटने पर पलटकर खतरनाक राक्षस बनने की कोशिश करन लग। आपातस्थिति जैसे काल के मूल्याकन म फायदे और नुकसान के बारे मतभेद हो सकते है पर आपातस्थिति के बाद जो कुछ देखने मे आया—मनुष्य व उसके मूल्या का घोर पतन, उनकी घोर विकृति—उसके बारे मे दो रायें नही हो सकती। हमम स कुछ की व्यक्तिगत क्षति हुई। लेकिन दोस्त और दुश्मन अपने असली चेहरो म सामने आ गये, उनकी असलियत खुल गयी। मैं यह कहने के लिए मजबूर हूँ कि कुछ मामला म दुश्मन बेहतर साबित हुए।

मैं श्रीमती गाधी को पिछले 40 साल से जानता हूँ। हम लोगो को राजनीतिक कठिनाइया का सामना करने की ऐसी ट्रेनिंग मिली है कि ऐसी आधियो को हम पार कर सकते है। उनके स्वभाव म विशेषकर ऐसा लचीलापन है जो सिफ गहरे विश्वास और ईमानदारी से ही आ सकता है हालाकि काग्रेस की हार की व्यापकता एक गहरे धक्के की तरह थी, उनम इसे बर्दाश्त करने की ताकत थी। लेकिन इस घटना से राजनीतिक व व्यक्तिगत व्यवहार म जो प्रतिक्रिया व प्रवृत्तिया जागी उनसे इसान का दहल जाना स्वाभाविक था। पुराने-पुरान राजनीतिज्ञ इस हार की वजह से चहो की तरह भाग खडे हुए। दोस्त दुश्मन बन गये। मूल्या का पतन हो गया। लेकिन जो एक सवाल उठता था वह यह कि परिवतन इतने उग्र ढँग से क्या आया? दूसरा सवाल था—इतन विश्वासघात क्यो हुए?

दोनों कालावधियों में और पार फैले हुए विवादों के बीच इंदिरा गांधी जैसी एक महिला खड़ी थी। विभिन्न स्थितियों में अपने लंबे साथ में मैंने हर तरह के मसले और सवाल उठते देखे। उनसे निपटते देखकर मुझे उन्हें पास से समझने का मौका मिला। मैंने देखा कि वह बहुत ही लिहाज करने वाली, दूसरों के लिए कष्ट सहनेवाली और अपने दोस्तों के सुख दुख में साझेदार होने वाली हैं। वह घर पर घरेलू समस्याएँ हल कर रही हों, कोई दावत दे रही हों, कहीं मुख्य अतिथि हों, दफ्तर में काम निपटा रही हों या राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की अध्यक्षता कर रही हों, भारत में सार्वजनिक सभाओं में या लुसाका, एल्जियर्स या कोलंबो में गुट निरपेक्ष देशों के शीर्षस्थ सम्मेलनों में भाषण कर रही हों, सारी दुनिया से आये प्रमुख प्रतिष्ठित लोगों से मिल रही हों और समस्याओं पर विचार विनिमय कर रही हों, भारत के किसी दूर के गाँव में किसानों से शांति से साथ बातें कर रही हों, दोस्तों या दुश्मनों का सामना कर रही हों, छात्रों के किसी छोटे-से दल से मिल रही हों, किसी दंगाग्रस्त इलाके के लिए रवाना हो रही हों या लाल किले के परकोटे से तिरंगा झंडा फहरा रही हों, वह हर काम बड़ी आनबान और बहुत शालीनता से करती हैं। जनरल, एयर मार्शल, एडमिरल—सब उनकी तुरंत बुद्धि, बात की पकड़ और अनजाने विषयों को भी आसानी से निपटाने तथा युद्धाभ्यास, हवाई प्रदर्शन या नौसैनिक कवायद देखने के ढँग पर अचंभा करते थे।

श्रीमती गांधी अपने अनेक सलाहकारों की बात शांति से सुनती हैं, लेकिन अपनी प्रतिक्रिया नहीं बताती। एक बार एक मंत्री किसी घटना के गंभीर परिणामों के बारे में उद्विग्न होकर उनके पास गये। जब वह लौटे तो किसी ने प्रधान मंत्री की प्रतिक्रिया जाननी चाही। मंत्री ने कहा, "बात तो अच्छी तरह सुन ली, मगर बोली कुछ नहीं, न मालूम क्या करेंगी!" यह सही है कि वह फैसला करने में कुछ वक्त लगाती हैं, लेकिन एक बार फैसला हो जाये तो उसे सशक्त ढंग से लागू करती हैं। उनमें संतुलन है भरपूर आत्म विश्वास है और वह कभी धीरज नहीं खोती। इससे वह अपने व्यवहार में एक सहज भाव प्राप्त कर लेती हैं। जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय जगत का संबंध है यह उनकी खुशकिस्मती थी कि अपने पिता के साथ वह बांडुंग गयी, गुट निरपेक्ष सम्मेलन में बेलग्राद गयी, दुनिया की प्रमुख राजधानियों में गयी और दुनिया के उन अनेक बड़े नेताओं से मिलीं जो प्रधान मंत्री के पद पर नेहरू के लंबे व स्मरणीय कार्यकाल में भारत आये। अपनी इस ऐपरेंटिसी का उन्होंने बड़ी गरिमा के साथ उपयोग किया और प्रयत्न किया कि एक अधिक प्रगतिशील पार्टी बने और इसके माध्यम से भारत एक नया आधुनिक राज्य बने। वह सांप्रदायिकता, जातिवाद व अलगाव वाली अन्य प्रवृत्तियों को खत्म करना चाहती थीं। लेकिन पार्टी बहुत आरामतलब और आत्मसंतोषी हो गयी थी। इसके बड़े-बड़े नेता भी उन नीतियों तक के पालन के मूड में नहीं थे, जो कानूनों का रूप ले चुकी थीं। वे वह रास्ता पसंद करते थे जिसमें उन्हें परेशानी न हो और हर बात उन्हीं पर छोड़ देते थे। इस प्रक्रिया में वे अपनी जड़-बुनियाद खो बैठे थे और महत्वहीन हो गये थे। इससे वह अकेली पड़ गयीं और उन्हें समझदारी की सलाह देने वाला कोई नहीं रह गया।

आजादी की लड़ाई में उनके साथी, उनके पिता के अधीन और बाद में उनके अधीन सरकारी अफसर और फिर उनके विशेष दूत की हैसियत से मुझे उनके काम करने का ढँग समझने का मौका मिला। अक्सर ही मुझे अरुचिकर बातें उन्हें बतानी पड़ी थीं। अगर जरूरी होता तो उनसे अपनी असहमति प्रकट करने

म भी मैं कभी नही हिचकिचाता था। उन्होंने कभी एक बार भी मुझसे कोई ऐसा काम करने के लिए नही कहा जो निंदनीय हो। उन्होंने न तो मुझे कभी कोई सुझाव देने से रोका और न मुझे अपने किसी सहयोगी से अपने ढंग से निपटने से रोका। कभी-कभी किसी सबल महत या अतरग मडली या किचेन कैबिनेट' के किसी सदस्य के खिलाफ़ सख्त बात कहनी पड़ती थी। वह जानती थी कि उनके दो रिश्ते के भाइयो—आर० के० व बी० के० नेहरू—से मेरी बोलचाल नहीं थी। दोनो ही अभिमानी और उद्धत थे। मेरी समझ मे 1970 के आसपास जो प्रमुख भूमिका दिनेशसिंह को निभाने के लिए दी गयी उसके लिए वह बहुत छोटे पड़ते थे। डी० पी० धर से मेरे मतभेद उनके राजनीतिक पाखंड के कारण हुए, पी० एन० हक्सर से मेरा विवाद हुआ उनके अपनी सीमाओ से बाहर जाने पर। अलीगढ़ मे उनकी भूमिका पर मैंने नूरुल हसन का विरोध किया। कुछ वरिष्ठ अधिकारी, जो अपने को 'ईश्वर द्वारा चुने गये' मानते थे इसी कारण मुझसे अन बन बनाये रहे। मुझे लगता था कि वे अपने बौद्धिक विगत से दगा कर रहे थे। प्रधानमत्री के निकट के ऐसे लोगो के साथ मतभेदो के परिणाम तो होते ही थे, पर इनसे उनके साथ मेरे सबधो मे कोई अतर नही आया।

खुद श्रीमती गाधी ने उनकी राय के खिलाफ़ मेरे कोई सुझाव देने का कभी बुरा नहीं माना। मैं हमेशा अपनी बात कह कर फ़ैसला उन पर छोड देता था, वह उसे मानें चाहे न मानें। इससे उन्हे विश्वास हो गया था कि मेरा इसमे कोई स्वार्थ नही था। उनके साथ महत्वपूर्ण मसलो पर बात करने या किसी विवाद ग्रस्त मुद्दे को हर पहलू से जाचने मे मज़ा आता था। वह ध्यान से सुनती, तर्क देती या 'हू' कह कर चुप हो जाती, इस 'हू' को मैं कभी कभी स्वीकृति मान लेता था। मैं यह सोचने को और विनयपूर्वक कहने को मजबूर हूँ कि अगर विशेष दूत की हैसियत से मैं काम कर पाया तो दूसरे भी कर सकते थे, शर्त यही थी कि वे भी निडर और स्पष्टवादी होते। हर इसान का पहला और सबसे बडा गुण उसका साहस होता है। काश, काग्रेस के आज के उन बडे नताओ ने, जो बडे लोकतात्रिक स्वभाव के बनते हैं, चापलूसी के उन दिनो मे इस गुण के सत्य का परिचय दिया होता तो राष्ट्रीय राजनीति ने दूसरा ही मोड ले लिया होता।

परिवर्तन के बाद

(1977-1979)

इस बात का पहला संकेत कि श्रीमती गांधी स्वयं चुनाव हार सकती हैं, 19 मार्च को शाम के चार बजे मिला। अचानक खबर आयी कि रायबरेली में वह अपने प्रतिद्वंद्वी से पीछे चल रही हैं। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी धवन ने उस कमरे में आकर खबर दी, जहां हम लोग बैठे हुए थे—श्रीमती गांधी, बच्चे व मैं। हम स्तब्ध रह गये, पर वह शांत रहीं। उन्होंने धवन से कहा, "रायबरेली टेलीफोन करके सही सही पता लगाओ।" शाम को आठ बजे के करीब जब यह पक्की तौर पर पता लग गया कि वह काफी वोटों से हार रही हैं तब भी मैं वहीं था। मेरी आंखों के सामने वे बरस गुजरने लगे जो हमने उनके पिता के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई में साथ बिताये थे और वे बरस भी जब हम लोगों के रास्ते जुदा हो गये थे पर हमारी दोस्ती पर इसका कोई असर नहीं पड़ा था। वह मुसकरायीं और बोलीं, 'मैं समझती हूं कि आप खुश होंगे कि अब आप राजनीति में नहीं हैं, है न?' परिवार की अच्छी दोस्त और प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता, पुपुल जयकर, उसी वक्त आ गयीं। वह बहुत परेशान और घबरायी हुई लग रही थीं। सांत्वना देने का काम श्रीमती गांधी के जिम्मे पड़ा, "होता है पुपुल, यह होता है।" आंखों में आंसू भरे, पुपुल चिल्ला सी पड़ीं, "पर तुम्हें नहीं, इंदु तुम्हारे लिए नहीं।'

कुछ देर हम लोग ड्राइंगरूम में ही बातें करते रहे। तब श्रीमती गांधी की बड़ी बहू सोनिया हम लोगों को खाने के कमरे में ले गयीं। वहां भी श्रीमती गांधी ही ने चुपचाप खाना खाया। और सभी की भूख मर सी गयी थी। इस घटना के आशय वह समझ गयी थीं और उनका दिमाग उन कामों मे लगा था जो किये जाने थे। रात के साढ़े दस बजे मंत्रिमंडल की बैठक हुई। उसने आपातस्थिति समाप्त करने का निर्णय लिया। बैठक आधी रात को खत्म हुई। तब तक उनकी हार की खबर पक्की हो चुकी थी। संजय और उनकी पत्नी अमेठी से क़रीब 11 बजे रात को हवाई जहाज से लौटे थे। घर में घुसते ही उनका पहला जुमला था, "तो बदतरीन हो गुजरा।" राजनीतिज्ञ आधी रात को चले गये। लेकिन श्रीमती गांधी दो बजे तक वरिष्ठ अफसरों से घिरी रहीं, जिनमें कैबिनेट के सचिव, गृह सचिव व उनके अपने सचिवालय के कुछ अफसर भी थे। आपातस्थिति समाप्त करने का निर्णय राजनीतिक था। किंतु उसकी प्रक्रिया से संबंधित औपचारिकताएं

पूरी करना अहलकारो का काम था। उन खवरा के विपरीत जो टाइम व "न्यूजवीक जसी पत्रिकाओं मे छपी थी जिनमे उन्हे रोते, घवराते, झल्लाते, अपने प्यारे वेटे का इतजार करते चित्रित किया गया था वह उन महत्वपूर्ण घटा मे भी राज्य के आवश्यक कामकाज म व्यस्त रही थी। वह कागजो पर दस्तखत कर रही थी, विचार विमश कर रही थी, अपने अफसरा से मिल रही थी और वीच वीच म पास खडे मित्रो व सबधिया से वातें कर रही थी उन्हे ढाढस वँधा रही थी।

मैं भी अफसरा के जाने के बाद करीव दो वजे घर गया था। सवेरे साढे छ वजे जव मैं फिर 1, सफदरजग रोड पहुँचा, तो पूरा घर जागा हुआ था और सामान वाधा जा रहा था। उन्होने वड शात भाव से घरवालो को समझा दिया था कि जरूरत से एक क्षण भी ज्यादा वे उस घर म नही रुकेंगे जिसमे वे 11 साल तक रहे थे। मेरी भी ऐसी भावना थी। असल मे, उस रात मैं सो नही सका था और सामान वाँधता रहा था। मैं सरकारी मकान पर कब्जा रखन की सोच भी नही मकता था जसाकि अधिकाश मत्री व अफसर किसी-न किसी वहान किया करते थे। मेरी इच्छा वस यही थी कि जल्दी से जल्दी सामान वाँधू और घर खाली कर दू। मैं सोच रहा था कि अगर कही अपना सारा समान रखने की जगह न मिली तो मैं उसे वेच डालूगा या किसी को दे डालूगा। इसलिए मुझे मकान छोडने मे सिफ एक हफ्ता लगा।

यह कुछ चकि सयोग सा ही रहा कि मैंने 12 विलिग्डन क्रेसेंट का मकान जल्दी खाली कर दिया था, इसलिए श्रीमती गाधी को रहने के लिए वही मकान दे दिया गया। और यह मकान भी 1, सफदरजग की तरह महत्वपूण हो गया, उनकी पराजय के बावजूद लोगो की भीड वहाँ आती रही, चहल-पहल जारी रही। और मुझे लगा मानो मुझसे यह घर कभी छूटा ही नही था। किन्तु, मैं सोचता रहा कि जवाहरलाल नहरू की वेटी के स्वभाव से, जो खुद 11 वर्षों तक प्रधानमत्री रही थी, यह कितना मेल खाता था कि उन्होने आलीशान महल सा 'आनद भवन' राष्ट्र को समर्पित कर दिया था और अव अपना कहलाने वाला उनका कोई घर नही था। मैं उन्हे जानता था, इसीलिए यह भी जानता था कि वह सब कुछ वर्दाश्त कर सक्ती हैं, क्योकि मैंन उनम एक चीज की कमी कभी नही देखी—हिम्मत की।

राष्ट्रीय दृश्य एकाएक वदल गया तो मुझे भी जल्दी जल्दी अपने रहन सहन का ढँग वदलना पडा। मैंन प्रधानमत्री के विशेष दूत के पद से तथा उन दूसरे सगठना से इस्तीफा दे दिया जिनका मैं अध्यक्ष था। मैंन एक कमरा किराये पर ले लिया और पूरा घर वसाने के साज सामान व झझट स छुट्टी पा ली। एक तरह से मुझे खुशी हुई कि मैं ऐसा कर सका। उसके बाद म हवा वदलने पहाड चला गया। वफ स ढँकी पहाडी चोटिया और साफ हवा ने दवा का काम किया और जव म दिल्ली लौटा तो दिमागी सुकून के साथ। राजधानी मे जो कुछ हो रहा था वह सचमुच धक्का पहुँचाने वाला था। जिन्हे भी श्रीमती गाधी के निकट माना जाता था, उन सभी के खिलाफ हर तरह के आरोप लगाये जा रहे थे। अखवार वाले नयी सरकार को खुश करने के लिए कुछ भी करन के लिए तैयार थे। एक वार कहा गया कि मैं श्रीमती गाधी के 70 करोड रुपये लेकर पूजी की तरह लगाने लिए वेनेजुएला खिसक गया हूँ। यह उस वक्त के लिए वताया गया जब मैं पहाड पर गया हुआ था। कुछ भोले भाले विश्वासी लोगा के एक गुट स तो मेरे एक दोस्त

को कहना पडा कि अगर सच्चाई जाननी है तो मेरे घर आइये, जहाँ मैं रात को खाना खाने वाला था। एक दूसरी अफवाह यह फैलायी गयी कि "कुछ अरब नेताओं को रिश्वत देने के लिए" मुझे बहुत बडी रकम दी गयी थी। इस पर एक अरब नेता को इतना गुस्सा आया कि उसने अपने देश म तैनात भारतीय राजदूत से कहा कि या तो इस आरोप का खडन करवाओ या परिणाम भुगतने के लिए तैयार हो जाओ। तत्कालीन उद्योगमत्री, जॉर्ज फर्नाडीज, को इस झूठ का खडन राज्यसभा मे करना पडा। उन्हे स्वीकार करना पडा कि "भूतपूर्व प्रधानमत्री के विशेष दूत को खर्च करने के लिए ऐसी कोई राशि नही दी गयी थी।"

मैंने लोगो से मिलना जुलना कम कर दिया था। अफसर व विशिष्ट वर्ग के लोग स्वाभाविक रूप से चौकन्ने थे तो जान पहचान के लोगो से मिलने की जरूरत ही क्या थी? इसलिए मैंने विभिन्न घटनाओ के बारे मे अपनी यादें ताजा करने की कोशिश की। तीनमूर्ति हाउस मे नेहरू स्मारक पुस्तकालय इसके लिए आदर्श जगह थी। इसके एक से अधिक आकर्षण थे। यह बहुत अच्छी तरह सगठित है और शोध छात्रो को अनेक सुविधाएँ देती है। पुस्तकालय के अधिकारी स्वभावत हर तरह की मदद करने को तैयार रहते है। इसके शात वातावरण म अध्ययन करने से मुझे पिछली यादें ताजा करने, ब्योरा इकट्ठा करने और कुछ घटनाओ के बारे म मैं व्यक्तिगत रूप से जो कुछ जानता था, उससे इनका मिलान करने म सहायता मिली। उसी अध्ययन से मुझे यह किताब लिखने की प्रेरणा मिली।

सत्ता का हस्तातरण इतनी सहूलियत और करीने से हुआ कि किसी भी सभ्य, आधुनिक देश को इस पर गर्व हो सकता था। प्रधानमत्री ने कार्यकारी राष्ट्रपति, बी० डी० जत्ती को 22 मार्च, 1977 को अपने मत्रिमडल का इस्तीफा दे दिया। उनसे वकल्पिक सरकार बनने तक काम करते रहने का अनुरोध किया गया।

सन 1977 के वसत म चुनाव की जो सरगर्मी थी वह वर्षों तक याद रहेगी। यह एक असाधारण मोर्चा था और राजनीतिक तनाव के वातावरण म लडा गया था। आपातस्थिति खत्म की जा चुकी थी और उसका जिन पर कष्टदायक प्रभाव पडा था, उन्हे इसका पूरा लाभ उठाने की खुली छूट मिली हुई थी। लगभग अपाहिज काग्रेस की ओर स चुनाव आदोलन का सारा भार श्रीमती गाधी पर पड गया था। जिन दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादी और वामपक्षीय अवसरवादी ताकतो की वह पहले स आलोचक थी, उनके खिलाफ उनका प्रहार जारी रहा। उनकी गतिशीलता और सहनशक्ति पर सभी को ताज्जुब था। तानाशाही के आरोप चुनाव के नतीजो से झूठे साबित हो गये। कोई भी तानाशाह चुनाव म हारना पसद नही करता। लेकिन, श्रीमती गाधी अपनी पार्टी के साथ इसके लिए तयार थीं। खिलाडियो की जिस श्रेष्ठ भावना से उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार की उसस अतर्राष्ट्रीय जगत म उनकी प्रतिष्ठा एकदम बढ गयी। सिर्फ काग्रेस ही भ्रम म नही पडी थी, औरो का भी यही हाल था। मतदान के कुछ दिन ही पहले तक जनता पार्टी के दिग्गज नेताओ के सबस अधिक आशापूर्ण अनुमान भी 'विपक्ष की अधिक मजबूत स्थिति' से आगे नही जाते थे। उनमे स कई ने सार्वजनिक रूप स भविष्यवाणी की थी कि 'लोकसभा म काग्रेस की शक्ति कुछ कम हो जायगी।' लेकिन जो वास्तव म हुआ उस पर विश्वास नही होता था। इस व्यापक, विस्तृत क्षेत्र म काग्रेस एक भी सीट नही जीत सकी। बगाल और पजाब म, जनता पार्टी स चुनाव समझौता करके क्षेत्रीय पार्टियाँ भी चुनाव जीत गयी। इस तरह पजाब म अकाली

और बगाल म मार्क्सवादी सर्वोच्च स्थान पा गय। कश्मीर मे नेशनल कार्फ्रेंस ने जनता पार्टी का बहादुरी से मुकाबला किया और शान स जीती। दक्षिण के आध्र व कर्नाटक राज्या मे काग्रेस को भारी बहुमत मिला और केरल, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र व असम म भी उसकी स्थिति अच्छी खासी रही।

आम चुनाव के बारे म हर भविष्यवाणी के विपरीत परिणाम के फलस्वरूप कुछ "जवान बूढा' की एक अजीब खिचडी उभरकर सामने आयी। इससे सत्तारूढ दल का उत्तर की क्षेत्रीय पार्टी होने का रूप सामने आया। आगे आने वाले महीना मे यह तथ्य और भी उजागर होता गया। जनता पार्टी के नाम से फुटकर लोगो के एक झुड ने 24 माच का सत्ता सँभाली। उन्होन गाधी समाधि पर शपथ ली और तरह तरह की बहादुराना और नेक घोषणाएँ की। उन्होने जनता से चमत्कार कर दिखान के वादे किये और वडी आशाएँ जगायी उन्हे जो जन समथन मिला था उसकी उन्होने सपने मे भी कल्पना नही की थी। एक महान, विशाल देश उनके सामने तश्तरी मे रखकर पेश कर दिया गया था। इतने दिना तक काग्रस की आलोचना करत रहने या काग्रेस से निराश होकर उसे छोड देने के बाद जन साधारण के प्रति इनका कतव्य यही था कि वे कुछ करके दिखाये। लेकिन उनके काम न इस सबको झुठला दिया। उन्होने कुछ भला करन म अपनी अक्षमता साबित कर दी। यह परस्पर विरोधी गुटो का गँठजोड था जिसका कोई लक्ष्य नही था। पहले दिन से ही ये गुट अपनी अपनी ढपली लेकर अलग अलग राग अलापने लगे थे। उनकी कोई नीति नही थी। उनम कल्पना शक्ति तक नही थी और जिन्ह--इदिराजी को--वे समान रूप से अपना सबका शत्रु मानते थे, उनके खिलाफ वे अपनी ओछी से-ओछी प्रवत्तियो का प्रदशन कर रहे थे। उनके प्रति घणा के अलावा उनम कोई समानता ही नही थी। उनके खिलाफ उनके दोषारोपण ने बडा भाडा स्वरूप ले लिया। जनता पार्टी के नेता उन्ह गाली दिये बिना अपना मुँह ही नही खाल पाते थे। उनके हर काम म यही सनक, यही दुराग्रह नजर आता था और अतत व खुद अपनी भूल म कद हा गये।

केंद्र मे अपनी वडी जीत से सतुष्ट न रहकर जनता पार्टी ने पजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश उत्तर प्रदेश, बिहार बगाल मध्य प्रदेश व राजस्थान की काग्रेस सरकारो को हटान का निणय कर लिया। जीत के नशे म चूर जनता पार्टी की नेताशाही ने जून 1977 मे मन्त्रिमडलो को मनमाने ढँग से बरखास्त कर दिया। काग्रेस ने लोकसभा के चुनाव के मुकाबले म बेहतर सफलता प्राप्त कर दिखायी और राज्य विधानसभाआ मे अनेक सीटें जीत ली। नये शासको न दक्षिण मे भी अपनी किस्मत आजमाने की कोशिश की, पर वहा के नतीजे उनके माफिक नही निकले। वे वहाँ बुरी तरह पराजित हुए।

जनता पार्टी किसी सवसम्मत आर्थिक कायक्रम के आधार पर नही वनी थी। उसकी स्थापना तो राजनीतिक स्वाथ-साधन के लिए हुई थी। राष्ट्र की जटिल समस्याआ को हल करने म अपनी शक्ति लगान की जगह उन्होने अपना शासन कटु प्रतिशोध और विद्वेष से शुरू किया। उनकी परस्पर विरोधी राजनीतिक खाचा-तानी ने लोकतान्त्रिक प्रतिक्रियाओ को एक भोडा मजाक बना दिया। जिस तरह वे साथ आय थे उसी म उनके फिर बिखर जान के बीज मौजूद थे। इससे हर दिन हास्यास्पद दश्य दखन को मिलते थ। नतीजा यह हुआ कि शासन की ससदीय प्रणाली चलाने के लिए उन्हान जो जन-सदभावना पायी थी वह खत्म हो गयी और विकृत हो गयी। उनकी उछल-कूद पर जनता आश्चयचकित थी। स्वय

राष्ट्रपति तक को अक्तूबर 1978 के शुरू मे एक प्रेस वक्तव्य मे स्वीकार करना पडा कि "केवल सत्ता की बाध्यता से सतारूढ दल की एकता बनी हुई थी।" दूसरो ने भी राष्ट्र को हो रही क्षति की ओर ध्यान दिलाना शुरू किया। घनश्यामदास बिडला जिन्होने पहले इन लोगो के पक्ष म बयान दिये थ, जनता पार्टी की सरकार की परस्पर विरोधी नीतिया के परिणामो की ओर ध्यान दिलान को बाध्य हुए। 1 अप्रैल, 1979 को दिल्ली म भारतीय उद्योग व्यवसाय मडलो के सघ के (जिसे सामान्यत फिक्की कहा जाता है) वार्षिक अधिवेशन म तरुण उद्योगपतियो को सबोधित करते हुए वह उन्ह यह सलाह देने को मजबूर थे कि, "नयी दिल्ली म क्या हो रहा है, इसकी परवाह किय बिना आप आगे आकर पूजी लगाते जाइये, उत्पादन बढाते जाइये।"

केंद्र व राज्यो म 30 साल के शासन के दौरान काग्रेस ने बहुत से लोगो को नाराज भी कर दिया था। इसलिए अनेक सरकारी अधिकारी नयी सरकार के लिए नीच काम करन के लिए तयार हो गय। उन्ह छाँटकर उनसे उनके पुरान हाकिमो को परेशान करवाया जाने लगा। लेकिन वे अक्षम-अकुशल तो थ ही, जनता पार्टी के नेतत्व मे उनका अनाडीपन बहुत जल्दी ही सामन आ गया। इसकी एक टकसाली मिसाल थे अवकाशप्राप्त जज, जे० सी० शाह। 1976 म बैंक राष्ट्रीयकरण के मुकदमे मे उनके विवादग्रस्त निणय से उनकी काफी आलोचना हुई थी। तत्कालीन ससद के अनक सदस्यो ने उन पर महाअभियोग लगाने का भी प्रयत्न किया था। श्रीमती गाधी ही न जो सर्वोच्च न्यायालय की गरिमा कायम रखने के लिए उत्सुक थी, महाभियोग प्रस्ताव को दबवा दिया था। लेकिन तब भी शाह के मन मे श्रीमती गाधी के खिलाफ कीना था। विधि व न्याय के आदेश निर्देशो की अव हेलना करके वह एक टटपूजिय राजनीतिज्ञ की भूमिका अदा करने लगे। 'आपात स्थिति की ज्यादतियो की जाच" म उन्होने खुद अपना पर्दाफाश कर दिया। न्यायाधीश ही अभियोक्ता बन गया। उन्होने अभियुक्ता को सफाई देन का मौका ही नही दिया। उन नाटकीय प्रतिक्रियाओ का, जो निष्पक्ष जाच की भावना के ही प्रतिकूल थी व्यापक प्रचार किया जाता था। उनसे न्यायपालिका के विद्वान लोग भी विस्मित व खिन्न थे। जिस तरह उन्होने कारवाही निर्देशित की उसका एक नमूना एक छोटी सी घटना से मिल जाता है।

प्रख्यात उद्योगपति, नवल टाटा, शाह आयोग के सामन जनवरी 1978 म पेश हुए। समाचारो के अनुसार उन्हाने मेरे खिलाफ कुछ सबूत दिये थे। उसकी झूठी खबर अखबारो मे प्रमुखता देकर छापी गयी। मैंन एक वक्तव्य म उस ऊलजलूल आरोप का खडन किया। अधिकाश अखबारो न उसे छापा ही नही। उन्होने पक्षपातपूण रवैया अपना रखा था और खुले आम एकागी व विद्वेषपूण समाचार छापने म उन्ह कुछ भी गलत नही लगता था। 27 जनवरी, 1978 को मैंने शाह को एक खत लिखकर शिकायत की कि उनके समक्ष पेश झूठे आरोप का बहुत ही ज्यादा प्रचार किया गया था। एक साधारण नागरिक की प्रतिष्ठा को लगन वाले इस धक्के की शाह को कोई फिक्र नही थी।

उन्हाने न तो मेरे पत्र की कोइ स्वीकृति ही भेजी और न झूठे प्रचार के मामले मे ही कुछ किया। कई महीन बाद मुझे 1 फरवरी को लिखा गया नवल टाटा का एक पत्र मिला—15 मई को। पत्र स्पष्ट है (और यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है)। इसम स्पष्ट किया गया था कि उनके वक्तव्य का गलत विवरण छापा गया था और यह कि उन्हान मेरे खिलाफ कोई गवाही नही दी थी। शाह

शायद किसी के खिलाफ कुछ भी छपने देते थे जब तक विपक्ष को बुरा भला कहने के लिए सत्तारूढ दल को मसाला मिलता रह। उन्हाने यह जानन की कभी कोशिश नही की कि उनके सामने जो 'सबूत' आता है वह इतना विश्वसनीय भी है कि नही कि उसे मुकदमे मे शामिल किया जाये। मेरे साथ जो कुछ हुआ और जिस तरह उसकी खबर छापी गयी, उससे शाह आयोग की सारी कारवाई मेरे लिए तो लानत के काबिल हो गयी। मैं सोचता था कि अगर एक मामले म इतना झूठ हो सकता था तो उन लोगा के मामले म कितना ज्यादा झूठ भरा गया होगा जिन पर इन नयी शक्तियो का मुझसे ज्यादा गुस्सा था। शाह इस बात पर तुले हुए थे कि उनके सामने जो भी हाजिर हो अपनी वक्र और व्यग्य उक्तियो से उसी का मजाक उडायें, उसके चरित्र पर धब्बा लगायें, और वह अदालत के कमरे मे मौजूद लोगो की गुलगपाडे से भरी प्रतिक्रियाओ पर खुश भी होते थ। न्यायपालिका के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा ऐसे पक्षपातपूण रवय से वह न्याय प्रक्रिया एक भोडा मजाक बन गयी थी, जिसे हम ब्रिटिश पद्धति की अनुकृति बताकर गव करते हैं। फक यह था कि ब्रिटिश जनता इस मजाक पर विद्रोह कर बैठनी, जबकि हमारे लोग वहाँ मिलन वाले चटपटे मसाले का मजा ले रहे थे। आखिरकार, यह भी काम न आया। जनता की न्यायबुद्धि और विवेक बेहतर थे। शाह की कारवाई से जनता की हमदर्दी अभियुक्तो के खिलाफ जाने के बजाय उनके पक्ष मे जाने लगी।

मई से अगस्त 1977 के बीच जनता पार्टी के तत्वावधान म एकाकी व पक्षपातपूण प्रचार का एक और नमूना मिला। जिसे आपातस्थिति की ज्यादतियाँ कहा जाता है, उसके अतगत मेरे बेटे को झूठा फास दिया गया। यह कहा गया कि उसने एक सरकारी कमचारी से नाराज होकर उसे गिरफ्तार करवा दिया। जब मामले की सुनवाई हो रही थी तो विद्वेषपूण ढंग से उसके समाचार छापे गय और अखबारो ने उसका जोर शोर से प्रचार किया। लेकिन जब दिल्ली हाई कोट न मेरे बेटे को निर्दोष पाकर उसे ससम्मान बरी कर दिया तो किसी भी अखबार म वह फसला नही छपा। सचमुच प्रेस की आजादी इसी को कहते हैं!

शाह को मैंने पहले भी उनके सामने रमेश थापर के असत्य बयान के बारे म लिखा था। पर रजिस्टरी स भेजा गया यह पत्र भी शाह की प्राप्ति स्वीकृति का मोहताज रह गया था। नवल टाटा के 'आरोप', मेरा प्रेस वक्तव्य, जिसे अधिकाश पत्रा न नही छापा था, शाह को मेरा पत्र और बहुत बाद म मिली टाटा की माफी को मैं यहाँ गलत खबरें छपने के नमूने के तौर पर दे रहा हूँ ताकि दस्तावेज दुरुस्त रह।

21 जनवरी को टाइम्स ऑफ इंडिया ने 'यूनुस न नवल टाटा को गिरफ्तार करन की धमकी दी" की सुर्खी स निम्नलिखित समाचार छापा

'श्री नवल टाटा और श्री एस० पी० गोदरेज—दो प्रख्यात उद्योगपति कल शाह कमीशन के सामन पश हुए। आयोग के सामने उनकी यह पेशी आपातस्थिति के दौरान विश्व युवक केंद्र की इमारत दिल्ली प्रशासन द्वारा ले लिये जान स सबधित मामल के सिलसिले म हुई थी।

'श्री टाटा न बताया कि तत्कालीन प्रधानमत्री के विशेष दूत, श्री मुहम्मद यूनुस ने उन्हे धमकी दी थी कि यदि वे (केंद्र के ट्रस्टी) नीति के अनुरूप आचरण नही करते तो गिरफ्तार कर लिय जायगे। उन्हान व (केंद्र के) अय ट्रस्टियो

ने इस व्यवहार के विरोध म इस्तीफा देन का निश्चय किया था।"

मुझे अचभा हुआ कि टाटा जसा प्रतिष्ठित नाम रखन वाला व्यक्ति इस तरह का सरासर झूठ बोले। मैं न उनस कभी मिला हूँ और न कभी मैंन उनस बात ही की है।

जनवरी 1976 म रामकृष्ण बजाज न, जिन्हे मैं 40 साल स जानता हूँ, मुझे बबई से टलीफोन किया और मुझस अनुरोध किया कि मैं उनकी ओर स मामले म पडकर दिल्ली प्रशासन से पता लगाऊँ कि उसन केंद्र को क्या हथिया लिया था। मैंन लेफ्टिनेंट गवनर स सपक स्थापित किया। उन्होंने मुझे बताया कि उनक पास इस बात क दस्तावजी सबूत मौजूद हैं कि केंद्र के सदस्य और ट्रस्टी गरकानूनी और राष्ट्र विरोधी कारवाइया म लगे हैं। इसलिए उन्होंने मुझसे इस 'घिनौने' मामले स अलग ही रहन को कहा। जब श्री बजाज न मुझे दूसरी बार टलीफोन किया, तो मैंन यह सब उन्ह बता दिया। उन्होंन मुझे यह कष्ट उठाने के लिए और यह सूचना देन के लिए धन्यवाद दिया। इसके बाद मेरा न तो केंद्र से कोई सबध रहा और न उन लोगो स जो उससे जुडे हुए थे।

जस्टिस शाह को लिखा गया मेरा पत्र इस प्रकार था

18, पश्चिम मार्ग,
बसत विहार,
नयी दिल्ली,
27 जनवरी, 1978

आनरेबिल मिस्टर जस्टिस जे० सी शाह,
कमीशन ऑफ इनक्वायरी,
पटियाला हाउस,
नयी दिल्ली।

श्रीमान

मैं यह सक्षिप्त पत्र आपका ध्यान उस आरोप की ओर केंद्रित करने के लिए लिख रहा हूँ जो कुछ दिन पहले श्री नवल टाटा ने मेरे खिलाफ आपके सामने लगाया था। इस आरोप का समाचारपत्रो, रेडियो व टेलीविजन पर बहुत प्रचार हुआ, जबकि इस गलत बयान का मेरा खडन 'टाइम्स ऑफ इडिया' व 'नशनल हेरैल्ड' के अलावा किसी और अखबार ने नही छापा। मैंन सोचा कि इस मुद्दे की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना उपयोगी होगा। मैं उन दोनो अखबारो की कतरनें भी नत्थी कर रहा हूँ।

सधन्यवाद,

भवदीय
मुहम्मद यूनुस

शाह को लिखने के, कुछ दिन बाद मुझे टाटा का निम्नलिखित पत्र मिला

बाम्बे हाउस,
फोर्ट, बबई 400032
1 फरवरी, 1978

श्री मुहम्मद यूनुस,
नयी दिल्ली

प्रिय श्री यूनुस,

मैं उस पत्र की एक कतरन इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ जो आज के टाइम्स आफ इडिया' मे प्रकाशित हुआ है और जिसम मैंने शाह आयोग के सामने अपनी गवाही के बारे मे अपनी स्थिति साफ की है।

इस पत्र से आप देखेंगे कि आयोग के सामने अपनी गवाही म मैंन सिफ श्री रामकृष्ण बजाज के उस बयान का ज़िक्र किया था जो उन्होने अपने हलफनामे मे दिया था, और मैंने इस सिलसिले म न तो यह कहा था कि मैं आपसे मिला था और न यह कि आपने धमकी दी थी। वास्तव मे, आयोग के सामने श्री बजाज ने खुद दो बार स्पष्ट किया था कि आपने जो कुछ उन्ह बताया था वह एक दोस्त की सलाह भर थी, जिसमे उस समय जो स्थिति थी व उसके तथ्य आपने बताये थे और इसे धमकी नही समझा जाना चाहिए।

आपका
नवल एच० टाटा

जनता पार्टी ने जल्दी ही अपने को स्वार्थी, बेईमान व पूरी तरह निकम्मे लोगो का गुट साबित कर दिया। उनके पूरी तरह दिवालिये होने का सबसे अच्छा सबूत श्रीमती इदिरा गाधी को 3 अक्तूबर, 1977 को गिरफ्तार करन का उनका निश्चय था। विचार यह था कि आपातस्थिति के तथाकथित कुकृत्यो के लिए उन्हे सजा दी जाय। बडी धूमधाम के बाद शाम के पाच बजे पुलिस उन्ह पकडने आयी। श्रीमती गाधी ने उनसे कहा, "आप चाहे तो मुझे हथकडी-बेडी डाल दें, पर आपके पास कागजात तो दुरुस्त होने ही चाहिए।" पुलिस उन्ह वारट के बिना ही पकडने आ गयी थी। वारट मुहैया करने म उसे तीन घटे लग गये। जब उन्हे गिरफ्तार करके हरियाणा की ओर ले जाया जा रहा था, तब मैं वही था। घर और उसका मदान लोगो से खचाखच भरा था। राजीव और सोनिया एक कार मे व सजय और मेनका दूसरी कार मे श्रीमती गाधी के पीछे-पीछे रवाना हुए। मैं पीछे ठहर गया। मुझे यह बडा दुखद लग रहा था कि एक भूतपूव प्रधानमत्री के साथ—और वह भी नेहरू की बेटी के साथ—ऐसा व्यवहार वे लोग करें जो नेहरू की बदौलत ही राजनीतिक जीवन म कायम रह पाये थे।[1] लेकिन मुझे तभी, उसी क्षण, यह विश्वास हो गया था कि श्रीमती गाधी के

1 राज्य विधानसभा के चुनाव म मोरारजी देसाई हार गये थे पर नेहरू ने उनका साथ दिया और उन्ह इस योग्य बनाया कि मतदाता उन्हे स्वीकार लें। बीजू पटनायक के खिलाफ़ एक जाँच आयोग ने सिफारिशें की थी लेकिन नेहरू ने उन्हें बचा लिया था। जगजीवनराम ने अपने आयकर सबधी कागजात दाखिल नहीं किये थे और ससद म यह कहकर उनकी रक्षा की गयी थी कि यह ध्यान से उतर जाने का मामला था।

राजनीतिक पुनर्वास के लिए बेवकूफ नेताओं ने उस गुट की इस बुजदिली की हरकत से बेहतर कुछ और हो नहीं सकता था, जो दूसरों की गलती से सत्ता में आया था, जिसकी अपनी कोई योग्यता-कुशलता नहीं थी। मुझे बड़े गर्व का अनुभव हुआ कि श्रीमती गांधी इस कठिन समय का सामना बड़े साहस और विद्रोह की भावना के साथ कर रही थीं। लोग उनके इन्हीं गुणों की प्रशंसा करते थे और यही कारण था कि अगले दिन सवेरे ही उनके पुराने साथी भाग भाग उनके पास आये। गिरफ्तारी तो व्यर्थ साबित हो ही गयी। जब बच्चे लौटकर आये तो उन्होंने मुझे बताया कि हरियाणा की सीमा पर क्या हुआ। उनके वकीलों ने जो उन्हीं के साथ जा रहे थे, देखा कि जिस वारंट के आधार पर वह पकड़ी गयी थीं, उसमें उन्हें दिल्ली के केंद्रशासित क्षेत्र से बाहर ले जाने की अनुमति नहीं थी। इसलिए उन्हें वापस पुरानी दिल्ली के केंद्रीय पुलिस दफ्तर ले जाया गया। दूसरे दिन सवेरे वह एक मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश की गयी। ठीक उसी वक्त गृहमंत्री चरणसिंह सीना फुलाये अखबार वालों को बता रहे थे कि उन्होंने कितना बड़ा करतब कर दिखाया था। लेकिन मजिस्ट्रेट ने पाया कि उनके खिलाफ कोई मामला ही दर्ज नहीं है, और न पुलिस में कोई 'पहली सूचना' की रिपोर्ट ही ठीक से दर्ज की गयी है। इसलिए उन्हें रिहा करने के अलावा मजिस्ट्रेट के पास कोई और चारा ही नहीं था।

उसी दिन दो भूतपूर्व मंत्रियों और भारत सरकार के दो सचिवों को इसी तरह धांधली से पकड़कर फँसाया गया था। सारा देश इस सरकार के तौर तरीकों से स्तंभित था, सारी दुनिया इससे हैरान थी। दोनों मंत्री भी रिहा कर दिये गये और दोनों सचिव फिर सरकार में तैनात हो गये, हालांकि उनके खिलाफ मुकदमे अदालत में कायम रहे। प्रशासन में इस तरह का छिछोरापन पहले कभी देखने में नहीं आया था। इसकी हर जगह निंदा हुई, जो उचित थी। तब भी प्रधानमंत्री और गृहमंत्री ने मजिस्ट्रेट की आलोचना की। और इस तरह उन्होंने इस जाने परखे सिद्धांत की उपेक्षा की कि उन्हें ऐसा कुछ भी नहीं कहना चाहिए जिससे अदालत का अपमान हो।

झुंझलाहट में सरकार ने दिल्ली हाई कोर्ट में एक अपील भी दायर कर दी। पर उस अपील की पैरवी ही नहीं की गयी कि मामला तय हो सकता।

भारतीय राजनीतिक दृश्य पर एक निगाह डालने से ही पता लग जायगा कि वह किसी एक 'वाद' या प्रणाली का प्रतिरूप नहीं है चाहे वह फासिस्ट हो, लोकतांत्रिक हो, दक्षिणपंथी हो या वामपक्षीय। इसका अपना अलग चरित्र है और इसकी कई शानदार परंपराएँ हैं जिनका आश्रय लिया जा सकता है। लेकिन इधर के कुछ वर्षों में इसमें निरंतर गिरावट आती गयी। मार्च 1977 से ही सत्ताधारी जनता पार्टी की हरकतों से आम स्तर गिरा है और राजनीति बदनाम हुई। जनतांत्रिक संस्थाओं पर बेहद ज्यादा दबाव पड़ा और खुद जनतंत्र बदनाम हुआ। पार्टी अनुशासन एक मजाक बन गया और सदिच्छु लोग चिंतित थे कि उसके शासन में क्या कभी भी काम फिर ढर्रे पर आ सकेगा? ईमानदार पर्यवेक्षकों को इस पर हैरानी हो सकती है। फरवरी 1970 में विदेशियों को भारतीय परिस्थिति समझाने में अपनी भूमिका मुझे याद आयी। कांग्रेस में फूट पड़ चुकी थी और यह भारत में मेरे एक उत्साहवर्द्धक प्रवास के बाद का समय था। प्रधानमंत्री को कांग्रेस पार्टी से निकाल दिया गया था, क्योंकि उन्होंने राष्ट्रपति पद के लिए कांग्रेस द्वारा नामजद व्यक्ति का समर्थन नहीं किया था। श्रीमती गांधी ने

अपनी आर्थिक योजना पेश की थी। उस समय सत्ता की हविस म बहुत से लोगो ने तरह तरह के बयान दिये थे, जिनकी वजह से सभी लोग चकराये हुए थे कि हो क्या रहा है। इसलिए जब मैं भारत के राजदूत की हैसियत से छुट्टी के बाद अल्जीरिया लौटा, तो स्वर्गीय राष्ट्रपति हुएरो बूमदिन[1] ने इसके बारे म पूरी जानकारी चाही। मैंने घटनाओ का सक्षिप्त विवरण दिया और बताया कि पार्टी से निकाली गयी प्रधानमत्री को पार्टी के सामान्य कार्यकर्ताओ का प्रबल समर्थन मिला था जबकि उनके कुछ तत्कालीन साथी उनका साथ छोड गये थे, या दूसरी पार्टियो म जाकर उनका विरोध करने लगे थे। फिर भी, उन सभी ने नव निर्वाचित राष्ट्रपति वी० वी० गिरि को बधाई दी और उनके निर्देशन म काम करने का प्रण किया। मैंने उन्हे बताया कि यह इसलिए सभव हुआ कि भारतीय लोकतन्त्र म इस तरह के धक्के बरदाश्त करने की शक्ति है। इसके बुनियादी ढाँचा या इसके काम करने के बुनियादी ढंग म परिवर्तन आसान नही है। एशिया व अफ्रीका के कई देशो म जिस तरह कुछ कर्नल सरकार बदल देते है, उसके विपरीत भारत म हम किसी न किसी तरह जनतन्त्र की गाडी चलाते रहते है। बूमदिन ने हँसकर स्वीकार किया कि भारतीय प्रयोग म बडा विवेक और शक्ति है और भारत के अनुभव से विकासशील देश बहुत कुछ सीख सकते है।

आपातस्थिति के दौरान जो कुछ हुआ और जो लोग उसके कर्ता धर्ता थे उनकी बहुत आलोचना हुई है। लेकिन हमे यह नही भूलना चाहिए कि यह एक कडवी दवा थी जो सडन रोकने के लिए दी गयी थी। फिर भी, शुरू म सामान्यत इसका बडा स्वागत ही हुआ था। इसकी सकारात्मक भूमिका की सभी ने प्रशसा की थी और इसके अतर्गत बहुत सी अच्छी योजनाएँ चलायी गयी थी। तो फिर उत्तर म मतदाता ने इसे इतनी पूरी तरह क्यो अस्वीकार कर दिया? मार्च 1977 म हिन्दी भाषी क्षेत्र मे काग्रेस की पूर्ण पराजय एक विचित्र घटना थी। पार्टी की हार सेवा की लबी और शानदार परपरा के बाद हुई थी। काग्रेसजन देश की आज़ादी के लिए लडे थे। उन्होने तीन दशक तक इस राष्ट्र की नियति का सचालन किया था। लेकिन, जसाकि पहले ही कहा जा चुका है, आम जनता व उच्च नताओ के बीच की कडी टूट चुकी थी। मई 1976 के बाद स्थिति बिगडने लगी। आपातस्थिति के उत्तरार्ध मे बहुत व्यापक आक्रोश फला। अनेक उपलब्धियो और बढते विश्वास के साथ, कुछ कुरूप विकृतियो से राष्ट्रीय दृश्य बिगड गया था। परिवार नियोजन के लक्ष्य अकसर सख्त तरीको से पूरे किये जाते थे। गदी बस्तियो की सफाई मनमाने ढंग से होती थी। लेकिन इक्का दुक्का इलाको मे हुई इन छिटपुट घटनाओ का बहुत बढा चढाकर प्रचार किया गया। ज्यादतिया रोकने और दोषियो को दड देने वाला कोई था नही। इसलिए कुकर्मियो को अपनी मर्जी और मौज के मुताबिक कुछ कार्यक्रमो को तोडने मरोडने का मौका मिल गया। इसी म सरकार को बदनाम करने के लिए झूठ का सहारा भी जुड गया। उदाहरण के लिए यह अकसर कहा जाता था कि नौजवानो, बूढो और नव विवाहिता की भी नसबदी कर दी गयी। नयी सरकार ने जो जाँच आयोग बिठाये उनके सामने इस तरह की ज्यादतिया साबित की जा सकती थी लेकिन किसी भी आयोग के सामने एक भी अविवाहित या नव विवाहित को पेश नही किया गया जो नसबदी का शिकार हुआ हो, जिससे यह आरोप सिद्ध हो

1 उनकी मृत्यु 27 दिसबर, 1978 को हुई थी।

सके। कांग्रेस को अपने कठिन परिश्रम के फल से वंचित कर दिया गया। लेकिन जनता ने अपेक्षा से जल्दी असलियत समझ ली और जो सजा उसने दी थी, उस पर उसे पछतावा होने लगा।

कहीं-कहीं इस तरह की आशंका व्यक्त की गयी है कि यदि श्रीमती इंदिरा गांधी फिर सत्ता में आयीं तो आपातस्थिति के दिनों की गलतियां फिर दोहरायी जायेंगी। इस तरह के आलोचक किसी विशेष परिस्थिति की बाध्यताएँ नहीं समझते और किसी नेता की यह मजबूरी भी नहीं समझते कि अकसर सही कामों के लिए सही लोग नहीं मिल पाते। श्रीमती गांधी के 11 वर्षों के नेतृत्व की अवधि ही ले ली जाये। कामराज, द्वारकाप्रसाद मिश्र, उमाशंकर दीक्षित, हेमवतीनंदन बहुगुणा व कुछ और लोग शुरू में उनके निकट थे। उनका बड़ा प्रभाव था। फिर आये दिनेशसिंह व वे लोग जिन्हें 'किचेन कबिनेट' कहा जाता था। कुछ दिन तक वे राजनीतिक रंगमंच पर ऐंठते इठलाते घूमे। शक्तिशाली इस्पात मंत्री, मोहन कुमार मंगलम के साये में एक कश्मीरी गुट ने तीन वर्ष तक अपना प्रभुत्व जमाये रखा। उन्होंने उस सब अच्छाई का पूरा श्रेय अपने लिए ले लिया जो राजनीति क्षेत्र में आयी, लेकिन आर्थिक क्षेत्र में अपनी भयंकर भूलों का फल भोगने के लिए वे दूसरों को छोड़ गये। लेकिन यही तो उनकी विशिष्टता समझी जाती थी। 24 फरवरी 1973 को सरकार द्वारा अनाज के थोक व्यापार को अपने हाथ में ले लेना उनकी सबसे बड़ी गलती थी। भंडारों का व अन्य प्रबंध किये बिना इन झूठे विशेषज्ञों ने देश की अर्थ-व्यवस्था को चौपट करने की कोशिश की। इसलिए उन्हें कोई संकोच किये बिना हटा देना पड़ा।

इस कश्मीरी गुट की जगह ली एक राजनीतिक त्रिमूर्ति ने। इसमें थे देवकांत बरुआ, सिद्धार्थशंकर राय व रजनी पटेल। आपातस्थिति के फौरन पहले और उसके दौरान ये लोग ही प्रमुख सलाहकार थे। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है वे आपातस्थिति उस साल की जनवरी में ही लगाने के पक्ष में थे। इन तीनों को इसकी सफलता पर गर्व था और वे इसके प्रमुख स्तंभ बने रहे। उन्होंने उस समय अपने महत्व और प्रधानमंत्री से अपनी निकटता का ढिंढोरा पीटा। बरुआ और राय अक्सर डींग मारते थे कि वे श्रीमती गांधी के बहुत निकट हैं और कहते थे कि 'हम लोग एक परिवार के समान हैं। उनके साथ काम करने का अपना सुख है। ऐसा नेता और कहाँ मिलेगा?' आपातस्थिति लागू होने के बाद राय खास तौर पर कहा करते थे, 'अब हम अपने सपने साकार कर सकते हैं और एक नये भारत का निर्माण कर सकते हैं।" मैं नहीं जानता कि 'नये भारत' से उनका क्या तात्पर्य था, क्योंकि उस समय वह अपनी ज्यादातर होशियारी व शक्ति अपने कुछ बंगाली भाइयों का मुंह बंद करने, उन्हें परेशान करने या जेल भेजने पर खर्च किया करते थे। इसकी एक मिसाल एक स्वतंत्र पत्रकार सुमंत बनर्जी की गिरफ्तारी थी। उनकी बीवी मेरे पास बहुत परेशान हालत में छुटकारे के रास्ते की तलाश में आयी। मैंने इंटेलीजेंस ब्यूरो के निदेशक से पता लगाया तो मालूम हुआ कि सुमंत बनर्जी की गिरफ्तारी पश्चिम बंगाल सरकार के कहने पर हुई है। जब मैंने राय से पूछा तो उन्होंने इसकी जानकारी तक से साफ इंकार कर दिया। इसलिए वह नौजवान भुगतता रहा। बाद में मुझे पता लगा कि हर मुख्यमंत्री—बंगाल में राय, मध्य प्रदेश में शुक्ला, उड़ीसा में नंदिनी सत्पथी और राजस्थान में हरदेव जोशी—अपने पुराने बदले निकालने के लिए बेगुनाह लोगों को पकड़ रहे थे। इससे वे स्वाभाविक रूप से जनता से अलग हो गये। वे इसके लिए बहाना यह

कर देते कि वे ऐसा "प्रधानमन्त्री के निर्देश" पर कर रहे थे। एक मामले म तो कहा जाता है कि राय न एक झूठी 'हौट लाइन' (प्रधानमन्त्री से सीधे सपक वाला टेलीफोन) लगा रखी थी जिससे व शिकायतें रफा करवाने के लिए आये लोगो पर असर डाला करते थे। वे नबर मिलाते और यह जताते मानो सीधे प्रधान मन्त्री स बात कर रह है, उस टेलीफोन पर 'इदु' भी कहते और वहा बठे हुए सुनने वालो से बहाना करते कि शिकायत दूर करने म वह नहीं, प्रधानमन्त्री बाधक है। उस समय वास्तविकता जानना कठिन था। मुख्यमन्त्री राय और दो केंद्रीय मन्त्रियो —चट्टोपाध्याय व प्रणव मुकर्जी—के मतभेदो के कारण दोषी को पकडना और उसे पहचानना भी कठिन था। इससे पश्चिम बगाल म गडबडी बढती जाती थी।

मेरा यही अनुभव दिल्ली प्रशासन के साथ भी हुआ। विदेश विभाग म मेरा ड्राइवर, जिसने जवाहरलाल के साथ भी काम किया था, एक दिन मेरे पास आया और बोला कि उसके चचेरे भाई को झूठे मामले में फासकर गिरफ्तार कर लिया गया है। मैंने तत्कालीन लेफ्टिनेंट-गवनर से बात की तो उन्होने उसे राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का खतरनाक कार्यकर्ता बता दिया। मैंने जब यह बात ड्राइवर को बतायी तो वह ताज्जुब म पड गया, बोला, 'पर, वह तो काग्रेसी है, हमेशा रहा है।" बाद म उसने एक फोटो भी दिखायी जिसम उसका चचेरा भाई श्रीमती गाधी के मन्त्रिमडल के सदस्य एच० के० एल० भगत के साथ बठा था। उसने मुझे उस पैसे की रसीद भी दिखाया जो उसके भाई ने काग्रेस को चदे में दिया था। जब मैंने यह सब उपराज्यपाल का बताया तो उनकी प्रतिक्रिया और भी ज्यादा आश्चयजनक थी 'आप इन लोगो का नही जानते। ये हर तरफ से अपना बचाव कर लेते हैं। मिनिस्टर के पास बठकर उस वक्त अपना उल्लू सीधा किया होगा।" बहुत बहस मुबाहिसे के बाद और उस शख्स के जेल मे बीमार पड जाने के बाद ही मैं आखिरकार उसे छुडा पाया।

'आपातस्थिति की त्रिमूर्ति' किस तरह 'तिगडडे' के नाम से जानी जाने से बच गयी, यह तब साफ हुआ जब उसने अचानक अपनी धुन बदल दी। "आपातस्थिति के ये तीन जनक खतरे को भाप गये और फौरन दामन झिटक कर अलग जा खडे हुए। व राजनीतिक दृश्य मच से बिलकुल गायब हो गये। सारे घपले और चुनाव म करारी हार के लिए वे सारा दोष बसीलाल, विद्याचरण शुक्ल, ओम मेहता, गोखले, चट्टोपाध्याय व कुछ और लोगो पर मढने म सफल हो गये। दो तो कुछ दिन बाद मर गये और ओम महता का लोप हो गया।

हक्सर को, जिन्हे श्रीमती गाधी ने बहुत ऊँचा चढाया था, उनके अधीन बडे प्रतिष्ठित और शक्तिशाली पदो पर काम करने मे कभी कोई हिचकिचाहट नही हुई। सरकारी नौकरी की उम्र खत्म होने पर जब भी उनकी नौकरी बढायी गयी तब वह बहुत खुश हुए। जब तक श्रीमती गाधी सत्ता म रही, हक्सर ने इस्तीफा देने की बात सोची तक नही। उन्होने कभी उस रवये पर भी उँगली तक नही उठायी, जिसे बाद म श्रीमती गाधी का 'तानाशाही ढंग' कहा गया। वह और उनके जमूरे पी० एन० धर उस प्रतिष्ठा से, जो उन्हे श्रीमती गाधी के साथ रहने मे मिली थी, तब तक चिमटे रहे जब तक वह फायदे मद थी। एक बार वह सत्ता से हटी तो उनम इतनी भी भलमनसाहत नही थी कि वह यह ऋण स्वीकार करते और उनसे सपक बनाये रखते। वह सत्ता से चिपके रहे और बाद म सडे फल की तरह टपाटप गिर गये। सिर्फ त्रिलोकीनाथ कौल को छोडकर इस गिरोह म सभी को उन लोगो से इनाम मिले जो श्रीमती गाधी के बाद सत्ता म आये। काव

यह पहले शख्स थे जिन्होंने जनता पार्टी के नेताओं के कान भरे कि श्रीमती गांधी देश छोडकर भाग सकती है और इस तरह उनका, उनके परिवार के लोगों के, मेरा व उनके नजदीक के और लोगों के पासपोर्ट जब्त करा दिये।

प्रधानमन्त्री जल्दी जल्दी जो परिवर्तन करती थी और जिस तरह अपने सलाहकारों को बदल देती थीं, उससे उनके स्वभाव का लचीलापन और यह इच्छा ही प्रकट होती थी कि अलग अलग वक्त नये लोगों को परखा जाये। देश के सामने जो समस्याएँ थी, उन्हें हल करने के लिए वे नये-नये लोगों को जुटा रही थीं। हो सकता है कि उनका चयन कभी गलत भी रहा हो, लेकिन उनमें इतनी क्षमता और दृढ़ संकल्प था कि वह ऐसे गलत लोगों को कभी भी निकाल सकती थीं। अगर मार्च 1977 में वह चुनाव जीत जाती तो मुझे इस बात में संदेह नहीं है कि अपने आसपास के इस गुट को वह बदल देती। ये लोग बहुत विवादग्रस्त बन चुके थे। कोई भी नेता ऐसा बोझ लेकर नहीं चलना चाहता।

पर सवाल यह पूछा जाना चाहिए कि आम आदमी उनकी इतनी करारी हार के बाद इतनी जल्दी क्या उनके समर्थन में आ खड़ा हुआ? इस तथ्य से इकार नहीं किया जा सकता कि चुनाव में हार के छः महीने के भीतर ही वह फिर जन मानस में प्रतिष्ठित हो गयी थी। ऐसा लगता था कि मतदाता ने अपनी गलती महसूस कर ली थी। शायद उसे याद आ गया कि वह उस परिवार और उस परंपरा से संबंध रखती हैं जो देश की आजादी की लड़ाई में सेवा और त्याग का प्रतीक बन चुके थे। वह क्रांति की बेटी थी और उस क्रांति के खतरे उन्होंने साहस से चले थे। उन्होंने 11 वर्ष तक इन मतदाताओं की सेवा की थी और उनके पक्ष में अनेक बड़ी उपलब्धियाँ थीं। मतदाता जानता था कि उन्होंने देश की एकता को मजबूत किया था जैसाकि उनके पहले कोई भी नहीं कर सका था। उनके शासनकाल में भारत ने एक दुश्मन को धूल चटायी थी, यह एक ऐसा महान ऐतिहासिक कृत्य था जो दो हजार साल बाद हुआ था। उन्होंने राष्ट्र को आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थिरता दी थी। उन्होंने मुद्रास्फीति पर उस वक्त काबू पाया था जब वह दुनिया-भर में छायी हुई थी। उन्होंने दुनिया की महाशक्तियों के विरोध के बावजूद अणु परीक्षण किया था और इस तरह भारतीय जनता के अपनी नियति को अपने आप बनाने के अधिकार को प्रतिष्ठित किया था। देश ने यह भी देखा था कि देश की प्रतिष्ठा बढ़ाने के बाद वह पराजय में भी अपने प्रतिद्वंद्वियों के खिलाफ हिम्मत से खड़ी हुई। किसी ऐसे व्यक्ति के उदाहरण से अधिक जन मानस को कुछ भी प्रभावित नहीं करता जिसने कठिनाइयों से जूझकर महत्ता अर्जित की हो और जब भाग्य साथ न देता भी दुर्भाग्य से हिम्मत के साथ टक्कर ली हो। श्रीमती गांधी के सामने यही संकट था। नये शासक गुट का वही ऐसी दुश्मन नंबर एक लगती थी, जिन्हें वह नष्ट कर देना चाहता था। उन्होंने पार्टी की हार की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ली और उनका नाम लेकर जो ज्यादतियाँ की गयी थी, उनके लिए देशवासियों से क्षमा माँगी।

इस साहस और गरिमा की तुलना में उनके पुराने सहयोगियों के पाँव कायरता के कारण लड़खड़ा रहे थे। उन्होंने दिखा दिया कि वे छोटे लोग हैं और उनके दिल दिमाग और भी छोटे हैं। उनके शासन के उत्कर्ष में वे फले फूले थे। उस समय उनकी एक ही महत्वाकांक्षा थी कि वे उनके विश्वासियों में गिन लिये जायें। उस समय उनकी ताबेदारी का रवैया और बाद में अहंवादी अकड़ से उनके घृणित चरित्र का पता चलता था। उन्होंने अपने दल की पराजय की सारी

जिम्मेदारी एक व्यक्ति पर डाल दी और यह भूल गये कि हार के लिए मूलत ये ही जिम्मेदार थे। यह उनकी ही निहित निबलता थी जिसके फलस्वरूप ऐसी विषम परिस्थिति मे व घिर गय। जब कोई कठिनाई सामन नही थी तब उन्होंने अपने पद के सहारे खूब ऐश किय और फिर कष्ट झेलन के लिए अपन नेता को अकेला छोड गये। जिन्होंने अपनी भक्ति साबित करने के लिए कभी मुह तक नही खोला था, अब व ही लोकतांत्रिक ढंग से काम करने के सिद्धात बघारने लगे थे। जिनम इतनी हिम्मत भी नही थी कि कभी अपनी राय जाहिर कर सकें या मतभेद प्रकट कर सकें, क्योकि उन्ह डर था कि कहीं उन्हे गलत न समझ लिया जाये, अब एकाएक तानाशाही और काम करने की अपनी नेता की शैली की आलोचना करने लगे। इसका श्रीमती गाधी का जवाब सीधा था, 'मेरे विरोधी मेरी काय शैली पर आपत्ति करते है। वह मुझसे किसकी काय-शैली अपनाने को कहते हैं ? उनकी अपनी कौन सी शैली है ? उनका न कोई काय है और न शैली।"

उनके कुछ पुराने साथियो के दामन पर ऐसे काले धब्बे थे, जिन्ह वे छिपाना चाहते थे। उन्हे इस बात का डर था कि कही जनता पार्टी उन्ह धर न ले। ऐसी हालत से बचने के लिए, उन्होने नये शासको से सहयोग करने के लिए आश्वासन देन शुरू कर दिय। इन साथियो को जो अभयदान मिले, उनकी खबरो को नजर अदाज करना कठिन था। इन डरपोक लोगो न अपना बचाव इसी म देखा कि श्रीमती गाधी से सपक समाप्त करके उन्ह अलग-थलग करने की कोशिश की जाये। इसलिए उन्होंने सारा दोष उन्ही के मत्थे मढ दिया और खुद अपनी गलतिया कमजोरिया के लिए भी उन्हें ही जिम्मेदार साबित करन की कोशिश करन लगे। यह साफ हो गया कि टी० ए० प, ओम मेहता व चद्रजीत यादव जैसे लोगो को डर था कि पहले वाले शासन म उन्होंने कुकृत्य किये थे और नये शासको को खुश रखन म ही उनकी सुरक्षा थी। कुछ अप्रिय तथ्य उन्ह भयभीत किये हुए थे। उदाहरण के लिए करणसिंह ने अपनी बेशुमार दौलत एक धर्मादा ट्रस्ट मे हस्तातरित कर रखी थी। उनके अधिकाश नौकर-चाकर इसी की आय से गुजारा पाते थे। इस तरह के इतजाम स उनकी आर्थिक आवश्यकताएँ तो बखूबी पूरी होती रहती थी और उन्हें आयकर भी देना नही पडता था। वह उस ट्रस्ट के एकमात्र ट्रस्टी बने रहना चाहते थे।

कुछ भयभीत आत्माएँ जल्दी से एकजुट हो गयी। उन्होने सारा दोष श्रीमती गाधी पर मढ दिया। एक दूसरे गुट न श्रीमती गाधी को सलाह दी कि तूफान गुजर जाने तक आप चुप रहें। इस तरह ब्रह्मानद रेड्डी और यशवतराव चह्वाण जसे राजनीतिक छुटभये काग्रेस अध्यक्ष व लोकसभा मे विपक्ष के नेता बन गये। यह उनकी मौन सहमति के बिना नही हो सकता था। लेकिन नये पद भार सँभालने के बाद दोनो न उन्ही के खिलाफ कीचड उछालन की मुहिम छेड दी। जनता पार्टी के नेता तो उन्ह परेशान करन लिए जमीन-आसमान के कुलाबे मिला ही रहे थे। लेकिन आम लोगो न इनका नीच तरीका भाप लिया था। उन्होने समझ लिया था कि श्रीमती गाधी को अपन अक्षम सहयोगियो के कारण ही उन्ह शम का सामना करना पडा और उनके विरोधी अब जले पर नमक छिडकने मे लग थे। श्रीमती गाधी के पास इन आरोपो का खडन करने के सिवा कोई चारा नही था। उन्होंन लडने का फसला किया। इससे उनके निंदको की चाल विफल हो गयी। व उसी तरह कूडे मे डाल दिये गये जसे पुरान जूते उतार फेंके जाते है। उनकी अवसरवादिता एक बार फिर बडे शमनाक ढंग से जुलाई 1979 म दिखायी

पडी। जब चरणसिंह ने सरकार बनायी तो इन लोगों ने एक बार फिर अपनी असलियत दिखा दी। मंत्रिमंडल में जगह पाने के लिए उनमें भगदड़ मच गयी। पार्लियामेंटरी बोर्ड के सभी सदस्यों ने सिफारिश कर दी कि उन्हें मंत्री बना दिया जाय। उनके अनुयायी गुस्से से लाल-पीले होने लगे और एक दूसरे पर गालियों की बौछार करने लगे। चह्वाण ने भोलापासवान शास्त्री पर ताना कसा कि मंत्री न बनाये जाने से वह परेशान है। इस सुनकर शास्त्री गरज पड़े, "चुप बदमाश! मुझे क्या कहता है, अपना मुंह देख!" उन्होंने किसी शायर की बहुत पहले कही हुई यह बात सही साबित कर दी कि "न खुदा ही मिला, न विसालेसनम, न इधर के रहे, न उधर के रहे।"

कांग्रेस में पहली फूट 1969 में पड़ी थी, दूसरी मई 1977 में पड़ी। यह चुनाव में कांग्रेस की हार की जिम्मेदारी तय करने के सवाल पर थी। जनता पार्टी समझती थी कि वह इस फूट का फायदा उठा लेगी, पर उसकी समझ गलत साबित हुई। तब स्थिति बिलकुल बदल गयी थी। फरवरी 1978 में दक्षिण में होने वाले चुनावों ने यह हालत बदली थी। श्रीमती गांधी ने जमकर और सफलतापूर्वक चुनाव प्रचार किया, आंध्र व कर्नाटक में उनका दल सबसे आगे आया और महाराष्ट्र में नम्बर दो पर। जनता पार्टी और ढुलमुल कांग्रेसियों को गहरा धक्का लगा और उनका सफाया हो गया। हिंदी क्षेत्र के कुछ उपचुनावों ने भी दिखा दिया कि मतदाता का मन बदल चुका है। श्रीमती गांधी के एक पुराने सहयोगी, चंद्रजीत यादव, लंबी चौड़ी बातें कर रहे थे और उन्होंने श्रीमती गांधी के उम्मीदवार के खिलाफ चुनाव लड़ा। उस निर्वाचन क्षेत्र को उन्होंने दस साल तक पोसा था और उन्हें अपनी जीत का भरोसा था। पर उनकी ज़मानत तक जब्त हो गयी।

नवंबर 1978 में श्रीमती गांधी चिकमगलूर निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा का चुनाव लड़ी। सारी जनता पार्टी और उसके नेता उन्हें हराने के लिए जुट गये। जयप्रकाश नारायण ने बीमारी में अपने बिस्तर से उन्हें हराने के लिए अपील जारी की। अपने बुढ़ापे व बीमारी के बावजूद कृपालानी ने पूरे क्षेत्र का दौरा किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने तो सबसे बड़ा कमाल किया, उन्होंने अपील जारी की कि श्रीमती गांधी को 'जम भी वन वैस' हराया जाय। दूसरे 'नेताओं' ने आशंका प्रकट की कि उनकी जीत से जनतंत्र को धक्का लगेगा। इस तरह के अलोकतांत्रिक कृत्यों के बाद उन्होंने भविष्यवाणी की कि "वह एक बार फिर पराजित होंगी।" इसलिए उनकी जीत इन लोगों के मुंह पर करारे तमाचे की तरह पड़ी। इससे पता चला कि वह किस संघर्षशील धातु की बनी हैं, उनमें कितना दम-खम है और उनकी लोकप्रियता किस तेजी से बढ़ी है। अप्रैल के बाद से उनकी पार्टी के साथियों ने उत्तर में भी उप चुनावों में शानदार जीतें हासिल की थी। जनता ने एक साहसी नेता में अपना विश्वास प्रकट करना शुरू कर दिया था। जनता के झूमकर उनके समर्थन में टूट पड़ने और फिर से उनमें निष्ठा प्रकट करने से उनके पुराने दगाबाज साथी जलने फुकने लगे। एक घटना याद आती है। मैं एक अमरीकी दंपत्ति को सितंबर 1979 में उनसे मिलाने ले गया था। इन अमरीकियों ने आम लोगों की भीड़ उनके घर में चारों ओर देखी जो उनसे मिलने या उनके साथ फोटो खिंचवाने आये थे। इन लोगों को देखकर अमरीकियों को हैरत हुई। उन्होंने श्रीमती गांधी से कहा, "आपने इन लोगों के लिए बहुत कुछ किया होगा।" श्रीमती गांधी

थे, व्यक्ति के अधिकारो के एक राजनीतिक महत द्वारा इस प्रकार हनन का बुरा माना। एक राजनीतिक सहयोगी की निश्चित सनक भरी प्राथमिकताओ के कारण—फिर चाहे वह प्रधानमंत्री ही क्यो न हो—वे उसकी बुद्धिमानी और शासन करने के अधिकार को चुनौती देने को मजबूर हुए।

आपातस्थिति के बाद भारतीय राजनीतिक रगमच पर जो अचानक परिवर्तन आया, उससे हमारे समाज म उत्पन्न हुआ नतिक भ्रष्टाचार सामने आ गया। नय शक्ति गुट सत्ता मे आये तो बहुत से लोगो की निष्ठाएँ डाँवाडोल हुई और बालू की दीवालो की तरह भरभराकर गिर पडी। पुरानी दोस्तियाँ सबेरे के कोहरे की तरह छँटने लगी। मैं इन लोगो के नाम नही लेना चाहता, पर एक उर्दू शायर के शब्दो म

इक जरा सी बात पर बरसो के याराने गये,
लेकिन इतना तो हुआ, कुछ लोग पहचान गय।

जून 1977 मे एक वकील, बलराज त्रिखा न, जिन्हे मैं थोडा बहुत जानता था, मुझे मसूरी से टेलीफोन किया। वह घबराये हुए कह रहे थ, "जनता पार्टी की सरकार श्रीमती गाधी को किसी न किसी मामले म फँसाने की साजिशें कर रही है। उन्होन श्रीमती गाधी की तरफ से मुकदमो की पैरवी करने के लिए अपनी सेवाएँ देने की बात कही। बाद मे उन्होन बहुत जोर देकर मुझे ग्रेटर कलाश मे अपने घर पर खाने के लिए बुलाया। वह इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि उन्हे बडा कानूनी पडित मान लिया जाये और जो भी मुकदमे श्रीमती गाधी या सजय के खिलाफ दायर हो उनम बचाव पक्ष की ओर से उन्हे पेश होने का मौका दिया जाये। मैने थोडा-बहुत पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह बहुत मामूली वकील है और बडे भाडे ढँग से अपना प्रचार करने के लिए हमेशा उतावले रहते है। इस लिए इस मामले मे उन्हे कोई प्रोत्साहन नही दिया गया। बाद मे यही त्रिखा जनता पार्टी की सरकार की ओर से आपातस्थिति के दौरान मणिपुर (!) म की गयी ज्यादतियो की जाच के लिए एक सदस्यीय आयोग बनने म सफल हो गय। उन्होने इसका इस्तेमाल श्रीमती गाधी और उनके कुछ समर्थको को बदनाम करने के लिए किया, शायद इस बात का बदला लेने के लिए कि श्रीमती गाधी ने पहले उनकी सेवाएँ स्वीकार नही की थी।

दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर म 24 जुलाई, 1979 को त्रिखा से मेरी फिर मुलाकात हो गयी। अब तक राजनीतिक हवा बहुत बदल चुकी थी। राजनीतिक मच पर फिर से श्रीमती गाधी छा गयी थी और त्रिखा व उनकी तरह के लोग शायद समझ रहे थे कि श्रीमती गाधी और उनके दोस्तो के भले बन रहने म ही उनकी भलाई है। वह बहुत गमजोशी से मुझसे गले मिलने के लिए आगे बढे पर मैंने उन्हे कतई मुह नही लगाया। "आप मुझे नही पहचानते?" उन्होने पूछा। मैने जवाब दिया, "मैंने आपको देखा है, पर पहचानने की कोई ख्वाहिश नही है।" इसका उन पर कोई असर नही पडा। वह बराबर इस बात पर जोर देते रहे कि मैं उन्हे पहचानू ही। उनका व्यवहार इस अवधि म पनपे अवसरवादियो का टकसाली व्यवहार था।

सभी तरह के धोखे और दगाबाजियाँ सामने आयी। कूडा लिखने वालो की एक पूरी नस्ल इसम आगे-आगे थी। उनकी अनोखी नतिकता का बदनुमा चेहरा उभरकर सामने आया। वे आदी थ, 'झुकने के लिए कहने पर रेंगने' के लिए जमीन पर लेट जाने के, जैसाकि जनता पार्टी के एक मंत्री न उनके बारे म कहा

निश्चय ही भारतीय होने पर गव की भावना नही जागती होगी। मुझे ताज्जुब होता है, प्रेम पहले झूठ बोलते थे, या अब? क्या वह तब मेरे पद के कारण मेरी तारीफ करते थे और अब नये आकाओ को खुश करने के लिए मेरी निंदा करते थे? किसी भी शख्स के व्यवहार म किसी न किसी क्षण पर या अवधि म आलोचना के पहलू ढूढे जा सकते है, आप उसकी चाहे जितनी इज्जत करते हो। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ऐसा काया-पलट हो जाये और बिलकुल दिशा पलट दी जाय जैसे पत्रकार जगत के कुछ होनहार सपूत कर रहे थे। या तो उनके निणय विवेक पर सदेह किया जा सकता है, या उनकी ईमानदारी पर। मैं नही जानता कि प्रेम भाटिया जैसे लोगो के बारे म क्या कहा जाय, जिनसे माच 1977 के बाद मेरी मुलाकात नही हुई है। प्रेम भाटिया की तरह ही इदर मल्होत्रा 1953 से मेरे दोस्त ज्यादा थे, पत्रकार जगत के सिफ मामूली जान पहचान वाले कम। वह मुझे 'भाई जान' या 'खान साहेब' कहकर सबोधित करते थे और कहा करते थे कि "आप जसे इसान के बारे म प्रशसात्मक ढँग से लिखा म सुख मिला।" लेकिन डेढ बरस तक वह भी मेरे अस्तित्व से अनभिज्ञ रहे। फिर फरवरी 1978 आयी। दक्षिण के चुनाव के नतीजे श्रीमती गाधी के पक्ष म थे। शायद इसीलिए उन्हे मुझसे मिलने की प्रेरणा हुई। इस तरह के रिश्ते फिर से जोडने मे मुझे कोई तुक नही दिखायी दी।

ऐसे भी अनेक लोग थे जो दोस्त नही थे, पर जिन्होने उस विश्वास का हनन किया जो उन्हे दिया गया था। रमेश थापड थे जो अपने को दिनशसिह स ज्यादा काबिल मानते थे और अतरग गोष्ठी म शामिल होने के लिए लालायित थे। हर साल वषगाठ के अवसर पर वह अपनी पत्नी के साथ श्रीमती गाधी स, जब वह प्रधानमत्री थीं, मिलने जाते थे और चुपके से कुछ सौगात दे आते थे। सजय के लिए भी यही होता था। लेकिन मत्री बनने की कोशिश म विफल रहने पर वह श्रीमती गाधी के खिलाफ हो गये। उन्होने उन लोगो को भी नही बख्शा जो श्रीमती गाधी के निकट बने रहे। दो चार दिन जेल म काटकर कुलदीप नय्यर आत्म ग्लानि से ग्रस्त लौटे। फिर से पकडे जाने के डर से उन्होने राजनीति पर बात करना ही छोड दिया। अपनी नेकनीयती साबित करने के लिए उन्होने मेरा हस्तक्षेप भी चाहा और बोले, 'राजनीति का मूल्याकन करने म मैने गलती की। बहुत सारे तपे मँजे राजनीतिज्ञो ने भी की। यह गलती हमेशा हमेशा के लिए मेरे खिलाफ न मानते रहिये।' लेकिन राजनीतिक परिवतन के साथ ही वह स्थिति से फायदा उठाने म जुट गये। जब उन्होने अपने राजदूत या राज्यपाल बनने की खबरें फैलानी शुरू की तो उनके मारवाडी मालिक ने बुरा माना। मालिक को लगा कि उनका कमचारी अपनी सीमा लाघ रहा है। इसलिए उन्होने नय्यर के साथ रूखा व्यवहार शुरू कर दिया। प्रेस की आजादी के लिए उनकी 'प्रतिबद्धता' कितनी गहरी है, इसके बारे म भी एक शब्द। अप्रल 1971 म, 'स्टेटसमन' के विशेष प्रतिनिधि तरुण भादुडी ने जनरल टिक्का खाँ के खिलाफ बहुत सी सामग्री इकट्ठी की और तत्कालीन पूव पाकिस्तान म उनके जुल्मो के बारे म लिखा। उनका लेख प्रकाशित नही किया गया। दिलचस्प बात यह है कि तब स्टेटसमन के दिल्ली सस्करण के सपादक कुलदीप नय्यर थे। उन्होने उस लेख के न छापे जाने का कारण बताते हुए 19 अप्रल, 1971 को भादुडी को लिखा, 'टिक्का खाँ पर आपका लेख इसलिए प्रकाशित नहीं किया गया कि वह उनके लिए बहुत निंदा से भरा था।" इस तरह नय्यर ने अपने पाठको को यह नही जानने दिया कि बांगला

लेखक का मुस्लिम यूनिवर्सिटी यूनियन का ऑनरेरी सदस्य बनाकर उन पर फूलों की वर्षा की गई। अलीगढ़, 1975।

संजय गांधी और मनका आनंद का विवाह। नयी दिल्ली, सितंबर 1975।
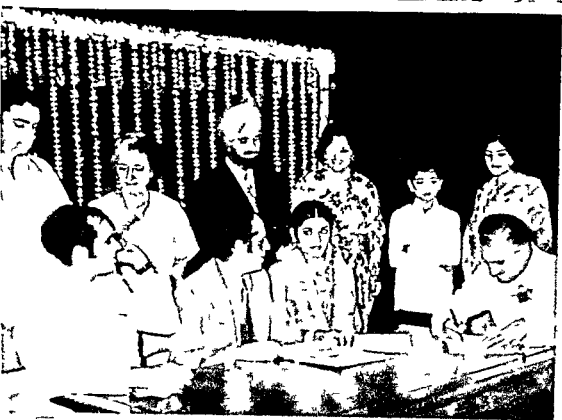
लेखक शाह खालिद बिन अब्दुल अज़ीज़ के साथ। रियाद, नवंबर 1975।

लेखक लीबिया के राष्ट्रपति गद्दाफी के साथ। त्रिपोली, नवंबर 1975।
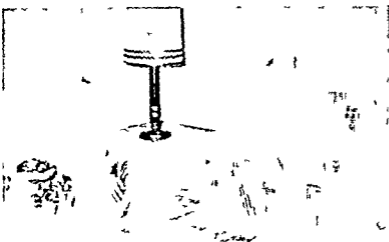
लेखक अनवर सादात के साथ। काहिरा, नवंबर 1975।

रेखक सद्दाम हुसैन क साथ।
बगदाद, नवबर 1975।

फ्राम के प्रधान मत्रा
चिराक ग्रौर उनकी
पत्नी के साथ।
नयी दिल्ली,
फरवरी 1976।

अगोला के राष्ट्रपति
ग्रागस्टिनो नेतो क साथ।
लुग्राडा, अप्रैल 1976।

दोनों गांधी ध्यान मग्न ।

श्रीमती गांधी के नेतृत्व में भारतीय प्रतिनिधिमंडल । कोलंबो शिखर सम्मेलन, सितंबर 1976 ।

श्रीमती इंदिरा गांधी, आर्कबिशप मकारियोस, श्रीमती भंडारनायके तथा अन्य लोगों के साथ । कोलंबो सितंबर 1976 ।

देश का बूचड' वहाँ क्या कर रहा था ! अमरीका का पाकिस्तान की ओर झुकाव सर्वविदित था। इसलिए पश्चिम अभिमुख पत्रकार उसके विपरीत कसे जा सकता था ! भारत के राष्ट्रीय हितों का ध्यान नहीं था। अगर कोई खबर श्रीमती गाधी के खिलाफ होती तो वह जरूर बड़ी प्रमुखता देकर छाप देते। प्रेस की आजादी के इन अलमबरदारों से हमने ऐसे ही बरताव की उम्मीद करना सीख लिया है।

एक दूसरे बुजुर्ग अखबारनवीस जार्ज वर्गीज़ ने अपने एक सरपरस्त के जरिए श्रीमती गाधी के प्रति निष्ठा और भक्ति प्रदर्शित की। इस तरह 1967 में वह प्रधान मन्त्री के प्रेस सलाहकार नियुक्त हो गये। हक्सर को उनकी दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी रुझान पसंद नहीं था और उनके व्यवहार से वर्गीज़ को लगा कि प्रधानमन्त्री के सचिवालय में उनका स्वागत नहीं है। लेकिन एक बार सत्ता से निकटता स्थापित करने के बाद जॉर्ज ने इस जगह का फायदा उठाकर बिड़ला बंधुओं को उन्हें हिंदुस्तान टाइम्स का संपादक बनाने के लिए राजी कर लिया। यह पद पाने के बाद उन्होंने अपने को उस एकमात्र भारतीय संपादक के रूप में प्रदर्शित किया जिसने भारत में सिक्किम के विलय का विरोध किया था। उन्हें भारत की प्रतिष्ठा से डालर अधिक लुभावना लगा। लेकिन इसके बाद भी उन्हें स्वाधीन प्रेस और भारत में उस पर लगे अंकुश के बारे में बात करने में शर्म नहीं आयी। उन्हें अपने बारे में भी गलतफहमियाँ हो गयी और 1977 में वह लोकसभा का चुनाव भी लड़े, लेकिन केरल की जनता ने उन्हें चुनने से इंकार कर दिया, उसने सिक्किम के बारे में उनकी राय के लिए उन्हें सजा दी। इससे उन्हें समझ आ गयी होगी कि राजनीति वह खेल नहीं है जो आसानी से खेला जा सके, या आसानी से जिसकी आलोचना की जा सके। जैसाकि किसी शायर ने कहा है

इतनी न बढ़ा पाकिय-दामाँ की हिकायत,
दामन को जरा देख, जरा बंदे-कबा देख।

स्वाधीन प्रेस के ये कुछ बहादुर प्रवक्ता थे। और किसी से भी उन्हें खुद ज्यादा मालूम होगा कि देश में अगर कभी अखबारों की आजादी छिनी तो यह मुख्यतः स्वयं पत्रकारों के कारण ही होगा। इसकी ठीक तरह से हिफाजत करने की उनकी कोई इच्छा नहीं है। इस महान पेशे की प्रतिष्ठा उन्होंने ही गिरायी है और इसके निरंतर ह्रास के लिए वे ही उत्तरदायी हैं। जो पत्रकार आपातस्थिति के बारे में गला फाड़ फाड़कर चीखें चिल्लाये थे, वे केवल मौन ही नहीं रहे बल्कि स्वतंत्र पत्रकारिता की संस्था को ईंट ईंट करके गिराने में वे मालिकों का हाथ बँटाते रहे। क्या किसी को याद है कि आपातस्थिति से बहुत पहले **स्टेटसमन** के पहले भारतीय संपादक प्रान चोपड़ा को प्रबंध निदेशक, सी० आर० ईरानी ने निकाल दिया था ? क्यों ? इसलिए कि उन्होंने 1967 में पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चे के बारे में अपना स्वतंत्र मत रखा था। चोपड़ा ने ईरानी द्वारा, जो स्वतंत्र पार्टी की बंगाल शाखा के कोषाध्यक्ष व बीमा व्यवसाय में अधिकारी थे, निर्देशित नीति का अनुसरण करने से इंकार कर दिया था। क्या लोगों को मालूम है कि **स्टेटसमन** के वर्तमान संपादक, एस० निहालसिंह, उस घटना से लाभान्वित हुए थे ? क्या उनके किसी सहयोगी या प्रेस जगत में किसी अन्य व्यक्ति ने चोपड़ा की तरफ से आवाज उठायी थी ? अगर ऐसा होता तो 1975 में कोई भी हिरण्मय कर्लेकर जैसे व्यक्ति को **हिंदुस्तान टाइम्स** पर लाद न पाता। कर्ले-

कर अभी तक बचे हुए है, क्योंकि वह तेजी से पक्ष बदलने म माहिर हैं। अपने नय आकाओ को खुश रखने और उन्हे आलोचना स बचाने के लिए कर्लेकर न अपनी सेंसर प्रणाली ही अखबार म चालू कर दी। सपादकीय विभाग के वरिष्ठ सहयोगियो को ठीक से काम ही एलाट नही होता था और इस तरह उन्हे काम नही करने दिया जाता था। 24 सितबर, 1979 को कर्लेकर के पाँच वरिष्ठतम सहयोगियो ने तीन पृष्ठ के एक पत्र मे इसकी शिकायत की थी। ईरानी के ही हुक्म पर निहालसिह न स्टेटसमन के राजनीतिक सवाददाता एस० विश्वम की, जो वरिष्ठता म स्वय सपादक के समकक्ष थ, पदावनति कर दी। सितबर 1976 मे विश्वम को जम्मू म सवाददाता बनाकर तनात किया गया। खीझकर विश्वम न स्टेटसमन की नौकरी छोड दी। विश्वम के कितने सहयोगियो न उनके समर्थन म आवाज उठायी? शोर गुल तो दूसरी किस्म के लोगो के लिए सुरक्षित रहता है। फिर अगर इस समुदाय क लिए लोगो के मन मे सिर्फ नफरत है तो किसी को दोष क्यो दिया जाये?

अखबार के सभी पाठको को निहालसिह का पश्चिम की ओर रुझान मालूम है। काग्रेस की 1969 की फूट पर उन्होने जो लेख लिखे थे, उन्ही को देख लिया जाये। 'नागरिक स्वतत्रताओ के इस महान सूरमा की वस्तुनिष्ठता" आखो मे चुभने लगेगी। जब देश की जनता न विवाद का निर्णय श्रीमती गाधी के पक्ष मे कर दिया तब भी उन्हे यह उम्मीद बाकी थी कि मोरारजी देसाइ सर्वोच्च हो जायेंगे। उस समय जब भारत के तथाकथित स्वाधीन प्रेस मे एसा कुछ लिखने का कोइ फैशन नही था जो श्रीमती गाधी के पक्ष मे पडता हो, स्टेटसमन के लखनऊ स्थित सवाददाता हुमदी बे न 1971 के मध्यावधि चुनाव मे श्रीमती गाधी की विजय की भविष्यवाणी की। किसी अन्य समाज म, जहा प्रेस की आजादी की सचमुच इज्जत की जाती है, ऐसे पत्रकार की पैनी पठ और दूरदर्शिता पर उसका सम्मान किया जाता। पर, इसके विपरीत हुमदी बे को स्टेटसमन से हटा दिया गया और वह एक प्रतिस्पर्धी पत्र म नौकरी करने के लिए बाध्य हुए। ईरानी 1974 स ही सपादक के साथ *मनमानी बरतते रह हैं और भारत व विदेशो म सचार* व्यवस्था के सम्मेलनो मे खुद भाग लेते रहे हैं। सपादक मूक दर्शक बने हुए है। वास्तव म, निहालसिह यही बरताव अपने सहयोगियो के साथ करते रहे है और य सहयोगी भी मौन है। इसलिए अगर प्रेस को स्वाधीनता सचमुच खतरे मे पडती है तो मुझे इसम शक है कि सपादकीय विभाग के लोग सपादक का साथ देंगे या सपादक प्रबध निदेशक का साथ देंगे।

आपातस्थिति के दौरान एक पत्रिका इडिया टुडे का जन्म सरकारी समर्थन से हुआ। विद्याचरण शुक्ल और मैं दोनो एक ऐसी पत्रिका की सहायता करना चाहते थे, जो हमारे देश के *जीवन के सकारात्मक पक्ष को उजागर करे और* विदेशो मे भारत दया और सहायता के लिए हाथ पसारे एक भिखारी देश की जो छवि बनी है उसका प्रतिकार करे। पश्चिमी अखबार हमारा ऐसा स्वरूप पेश करके खुश होते ह और मुझे हमेशा लगता था कि हमारे बडे प्रेस मालिको या पत्रकार जगत के अन्य लोगो न कभी इतने साहस या दूरदृष्टि का परिचय नही दिया कि उनका चिंतन राष्ट्रोन्मुख हो।

हर शख्स जानता है कि उस जमाने म कैसी "रहनुमाई" की गयी थी। वी०वी० पुरी और उनका बेटा अरुण 1975 के शुरू म कई बार मुझसे मिलने आये। ज्यादातर बातचीत पिता न ही की जो "मेरी दूरदर्शिता और मुस्तैदी" व ऐसे ही

अन्य गुणों की तारीफ़ करते नहीं थकते थे। हमारा इरादा यह था कि विदेशों में उनकी पत्रिका की बिक्री सुनिश्चित कर दी जाये। मैंने कई भारतीय राजदूतों को लिख दिया कि वे इस सिलसिले में जो कुछ मुमकिन हो, करें। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय ने देश के भीतर उन्हें ग्राहक संख्या बढ़ाने में मदद दी। मैंने पुरी परिवार के लोगों से कहा कि सिर्फ राजनीतिज्ञों, अफसरशाहों, उद्योगपतियों या कुछ धनी व्यक्तियों पर ही ध्यान केंद्रित करने की जरूरत नहीं है। यह तो उस विशाल संख्या का अपमान है, जो भारत की रीढ़ है। मुझे इसमें कतई दिलचस्पी नहीं थी, जो मैंने पुरी को बहुत साफ और कड़े शब्दों में बता भी दिया था, कि किसी व्यक्ति, राजनीतिक नेता या पार्टी का गुणगान किया जाये। मुझे भारत की जनता, विभिन्न पेशों में लगे हुए व्यक्तियों और उन लोगों में दिलचस्पी थी जिनके अथक परिश्रम ने सदियों से इस देश को कायम रखा है।

इसके बाद आया अप्रैल 1977। पत्रिका ने अचानक अपना रुख बदल दिया और पिछली सरकार से संबंधित लोगों की निंदा शुरू कर दी। 'पुराने हितैषी' लोगों के विरुद्ध उसका अभियान एक घिनौनी कहानी है। उन दिनों के ऐसे ही एक दोस्त के लिए ऐसी ज़बान का इस्तेमाल किया गया जिससे वफादारी और कृतज्ञता के सिद्धांत मानने वाले किसी भी व्यक्ति का सिर शर्म से झुक जाय, ऐसी पत्रिका को क्या कहा जाये जो इन्हीं लोगों की बदौलत प्रकाशित हुई थी! अपने नये रुख के अनुरूप, पत्रिका ने यह खबर प्रकाशित की कि अमुक व्यक्ति के हाथों में सत्ता सौंपना ऐसा ही है जैसे "सुअर के सामने हीरे डालना।" उनकी कायापलट और निंदा के अभियान की तीव्रता पर, देखकर ही यकीन किया जा सकता था। नया मुखौटा लगाने के लिए प्रबंधकों ने मनमाने ढंग से संपादकों को बर्खास्त किया। सैयद नकवी को नियुक्ति पत्र दिया गया, लेकिन एकतरफा तौर पर करार रद्द कर दिया गया। उसके बाद जो सज्जन आये, वह कोई अधिक सुरभित जगह ढूंढ रहे हैं। यह जाहिर है कि पुरी-परिवार के लोग चाहते हैं कि उनका कोई निकट संबंधी यह पद सँभाले। 1979 के अगस्त में लोकसभा के मध्यावधि चुनाव की घोषणा के बाद परिवर्तन की संभावना से पुरी एक बार फिर परेशान हो गये। सबसे पहले उन्होंने विभिन्न पार्टियों के बारे में जनता की प्रतिक्रिया जानने के लिए जनमत-संग्रह किया। जनमत ने श्रीमती गांधी को शीर्ष स्थान पर रखा और पुरी को बेचैन कर दिया। इसलिए अरुण माफी मांगने और सहयोग देने के लिए भागे भागे संजय की चौखट पर पहुँचे।

अखबार की आज़ादी के कितने 'अलमबरदारों' ने इस बात की जांच की है कि लंदन के फाइनेंशियल टाइम्स के अंग्रेज स्टाफ करेसपांडेंट (संवाददाता) केविन रेफ़र्टी 'एक्सप्रेस समाचार समूह' के सलाहकार संपादक कैसे बन गये? यह 1979 की बात है। खुद मोरारजी देसाई ने इसके लिए विदेशी मुद्रा विनिमय अधिनियम से छूट दी जिसके अंतर्गत किसी विदेशी को नियुक्त करने पर पाबंदी लगी है। और इस पेशे के लिए बिलकुल अजनबी अरुण शौरी इसी पत्र समूह में कैसे प्रभावशाली हैसियत पर पहुँच गये? एक विदेशी अथवा विश्व बैंक के एक कर्मचारी को, जिसे पत्रकारिता का जरा भी अनुभव नहीं था, वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियों का खामोश रहना इन लोगों के लिए कितनी बड़ी बेवकूफी की बात थी। हुकूमत बदलेगी तो शौरी एक बार फिर विश्व बैंक के लब्धप्रतिष्ठ पद पर नियुक्त हो जायेंगे। ऐसे लोगों पर एहसान करने की इच्छुक ताकतों की सरपरस्ती में चलने वाला कोई दूसरा संगठन किसी दूसरे व्यक्ति के लिए भी यही काम कर देगा। जो बेचारे

रिपोर्टर और विशेष सवाददाता पीछे रह जायेंगे उन्हे इन लागो की बाता पर लीपा पोती करनी पडेगी। ये सारे सूरमा मिटटी के शेर है। महान राम जेठमलानी न, जो एक मामूली वकील थे, आपातस्थिति का पूरा फायदा उठाकर अमरीका म दोनो हाथो खूब डालर बटोरे, वह 'चाचा सैम' (अमरीकिया) के कधे पर सर रखे बिलखते रहे कि "स्वदेश म तानाशाही मुझे सता रही है।" महान लेखिका नयनतारा सहगल न रडक्लिफ से फेलोशिप हथिया ली और टेक्सास से भी एक इससे भी घटिया छात्रवत्ति पा ली और घर का कथित वीरान अँधेरा छोडकर विदेश के स्वग म जा बसा। यदि उन लोगा म अपने सिद्धाता म आस्था का साहस होता तो व यही रहकर सघष करत। इन शब्दो को याद रखियगा कि जब ऐसी हुकूमत आयगी जिसके ये हिस्सा नही है ता ये भाति भाति के अवसरवादी भाग खडे होगे। विश्व बैंक की नौकरिया और कालजिया की छात्रवृत्ति पर नजर रखिये, क्योकि भारत म ऐसी स्थिति कायम होन पर, जब उनके लिए हर सुख सुविधा की गारटी न हो जिसके वे आदी हो गये हैं समाचार पत्रा की स्वाधीनता और प्रजातन के इन समथका म स कितने ही सूरमा आपको वहीं मिलेंगे। राजनीति म भी उनके साथी, साझीदार हैं जिनके दिल भारत म नही है। उनका दिल भारत म नही है। इनमे स ज्यादातर बिकाऊ लोग है। उन्ह कौडिया के मोल खरीदा जा सकता है। ये कठपुतलिया अपन मालिक की मर्जी की खबरे दती है। वे हर राजनीतिक दौर व अपने हित क अनुसार सिद्धात प्रतिपादित करती है। इस प्रकार के कुछ पत्रकार ता इमानदारी स यह बात मानत भी है और उन लोगा के नाम बताते है जिनम इस काली कमाई क लिए होड लगी रहती है। व जल्दी जल्दी ज्यादा से ज्यादा पैसा बटोरने म लगे रहने है जो उनकी निष्ठा की कमी का सबूत है। यह एक ऐसी कमजोरी है जो हमारे वरिष्ठ बुद्धिजीविया म भी आम है। पश्चिमी समाचारपत्र इनमें से कुछ का 'भारत म अपना कलम का भाडे का टटटू बना लेत है। उन्ह बहुत अच्छी तनख्वाह दी जाती है। कभी कभी ता यह रकम राष्ट्रीय दनिक पत्रा के सपादक या वरिष्ठ सवाददाता क वतन स भी ज्यादा होती है। उनके आश्रित भी एसी ही नियुक्तियाँ चाहते हैं। यही कारण है कि हमारे कुछ अखबारो म वञ्चिमक पश्चिमवाद का समथन होता है। इनम जो ईमानदार बाइज्जत लोग होते है, वे हक्का बक्का रह जात है। उन्हे एसी हरकता स घिन आती है। यह उनकी जिम्मेदारी है कि व एक होकर इन बुल कलको का पदाफाश कर। पत्रकारिता की दुनिया मे कही भी अमरीकी या ब्रिटिश समाचारपत्रा के स्ट्रिगर (भाडे के टटटू) रखन का चलन नही है। क्या लदन म सडे टाइम्स गार्जियन या यूयाक टाइम्स का सवाददाता दुनिया के किसी अखबार का स्ट्रिगर बनन की बात भला ख्वाब म भी सोचेगा? वे इसे अपनी प्रतिष्ठा से नीची चीज मानेंगे। लेकिन हमारे यहाँ राष्ट्रीय सम्मान की भावना तो ऐसे गायब हो गयी है जस गधे के सिर स साग। कम स कम कुछ मामला म तो एसा ही है। *1979 के प्रारभ म जब यह पता चला कि कुछ पत्रकार सी० आई० ए०* (अमरीकी गुप्तचर विभाग) के वेतनभोगी हैं तो हरएक दग रह गया।

कुछ प्रमुख पत्रकारा की *व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा न उन्ह हरएक सत्तावान* के हाथ की कठपुतली बना दिया है। यही वजह है कि उन्ह न खबर के सही होन की परवाह रहती है और न ही असली खबर भजन म दिलचस्पी होती है। इसका पत्रकारिता की प्रवत्तियो पर विनाशकारी प्रभाव पडा है। स्वाभाविक रूप स इस प्रकार के बौद्धिक छिछोरेपन न एस पेशा को बदनाम किया है, कलकित कर दिया

है जिनमे किसी समय महान साहित्यिक विभूतियाँ थी। कुछ विख्यात सपादक, जिन्होने इस शताब्दी के प्रारभ से राष्ट्र की सेवा की है स्वतत्र चितन के रक्षक और साहसिक अभिव्यक्ति के सरक्षक थे। उन्होने अपने विचारो के लिए मुसीबते झेला, लेकिन धमकी के आगे झुके नही। लेकिन उनके बाद आने वाले कुछ लोग सुरा सुदरी के लिए अपनी आत्मा तक बेच देने के लिए तयार थे। वे राजनयिक दावता मे शराब के लिए लाइन लगाये, सुन्दरिया की ओर टकटकी बाधे और जायकेदार खाने की चीजो के लिए हाथ फैलाये दिखायी देते है।

इस पेशे की एक प्रमुख हस्ती एस० मलगाँवकर ने एक अदालत मे मजूर किया था कि उन्हे नही मालूम कि उनके पिता कौन थे। उनकी पदाइश उनकी गलती नही है और न वे इसके लिए जिम्मेदार है लेकिन उन्होने अपनी जिंदगी जसी बनायी, उसके लिए जरूर उन्हे जिम्मेदार माना जा सकता है। बताया जाता है कि बेईमानी से कमाया धन ले लेने मे उन्हे कोई झिझक नही थी। आरोप लगाया जाता है कि कश्मीर मे मुर्गी पालन के फाम की स्थापना के लिए उन्होने डी० पी० धर की साठगाठ से लाखो रुपये हडप कर लिये थे। मुर्गी पालन का यह फाम कभी कायम ही नही किया गया। इस बिरादरी के एक दूसरे सदस्य ने बबई मे फ्लट लेने के लिए अपने मालिक को धौस देकर धोखेधडी से रुपया ऐंठ लिया। लगभग 70 साल के लेखक व पत्रकार मुल्कराज आनद, जो वामपथी माने जाते थे 25 माच 1978 को जनसघ आर० एस० एस० के सूचनामत्री लालकृष्ण आडवाणी के साथ होली खेलते हुए देखे गये। एसा खयाल किया जाता है कि सभावित अनुग्रह पाने के लिए यह होली खेली गयी थी, वरना एक वामपथी लेखक और जनसघी लोकाचार मे क्या समानता हो सकती है? मुल्कराज आनद की अनुग्रह पाने की इस पशकश को देखकर एक जनसघी कायकर्ता को मजा आया और बताया जाता है कि उसने कहा, "इस साले को शम भी नही आती?" मालूम हुआ है कि दूसरो ने भी ऐसी ही चापलूसी की। सदेहास्पद लोगो के प्रति निष्ठा दिखाकर बहुत से दूसरे लोग विदेश यात्रा कर लेते है। ऐसे लोग जब बारी बारी से प्रशस्ति गान करते है और फिर घृणा का राग अलापते हैं तो फिर उसे क्या महत्व दिया जाय?

इस वग के बारे मे तभी सही मूल्याकन किया जा सकता है जब उसके साथ छोटी छोटी महफिलो मे बीयर, व्हिस्की, चाय या कॉफी पी जाय और एक दूसरे के बारे मे उनकी राय मालूम की जाये। बबई से प्रकाशित एक सचित्र साप्ताहिक पत्रिका के सपादक से कहा गया कि वह आपातस्थिति के दौरान पत्रकारो के आचरण के बारे मे राय दें तो उन्होने कहा "भारतीय पत्रकारो के बारे मे मेरी राय बहुत खराब है। इनमे से अधिकाश अँग्रेजी का एक जुमला सही नही लिख सकते हैं। कुछ लोग जिनमे लिखने की क्षमता है, वे अपने-आपको मुनासिब कीमत पर बेचने के लिए तयार हैं। इन लोगो का सिद्धात और समाचारपत्रो की स्वाधीनता का राग अलापना ऐसा ही है जसे कोई रडी सतीत्व का गुणगान करे। आपातस्थिति से इन लोगो की नतिक मजबूती आकने का बहुत अच्छा मौका मिला। मुश्किल से मुटठी भर लोगो ने सेसर के खिलाफ विरोध का दिखावा किया। फिर वे बहुत जोश से, जो कुछ हो रहा था, उसकी तारीफ करने मे शामिल हो गये। इसकी बेशुमार मिसालें हैं। शामलाल ने आपातस्थिति के दौरान उसकी तारीफ मे अग्रलेख लिखे और आपातस्थिति के हटते ही अपने अग्रलेखो मे जोर शोर से उसकी निदा की। हिरण्मय ने आपातस्थिति के मुखपत्र के रूप मे हिंदुस्तान टाइम्स का उपयोग किया और फिर उनका कायापलट हो गया। यह अखबार

जनता पार्टी का मुखपत्र बन गया और आपातस्थिति की ज्यादतियो का दुखडा रोने लगा। समाचारपत्रो की स्वाधीनता के स्वयभू सेनानी इडियन एक्सप्रेस ने भी आर० डी० गोयनका के आगे घुटने टेक दिये। कुलदीप नय्यर ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं सरकार से मामला तय करा दू। अजित भट्टाचार्य ने मनेका गाधी की सूर्या पत्रिका के लिए अपनी खिदमत पेश की। चचल सरकार ने भी ऐसा ही किया। ब्लिट्ज के रूसी करजिया और करेंट के अय्यूब सयद की कलाबाजियो का क्या कहना! उनकी चुस्ती देखकर दातो तले उँगली दबानी पडती है।"

बाकी कबीला कैसा था? 1976 के दौरान दिल्ली मे तैनात एक विदेशी पत्रकार ने "भारतीय पत्रकारो के सरासर निकम्मे और नाकारा गिरोह" के सिलसिले मे कडवी सच्चाई बयान की। एक दूसरे स्थानीय पर्यवेक्षक के अनुसार "इस गिरोह की हवा के रुख के मुताबिक उडने वाली खास चिडिया ने सत्तारूढ लोगो के प्रशस्ति गान और सत्ताच्युत लोगो की निंदा करने मे दक्षता प्राप्त कर ली है।" उन्ह सत्ता के केंद्रो मे घुस आने और वहाँ से चले जाने मे, पिछली निष्ठाओ का परित्याग करने और नयी निष्ठा अपना लेने मे कोई हिचक ही नही होती। गरीबो की तरफ से लडनेवाले स्वयभू मुजाहिद कम्युनिस्ट भी पीछे नही रहे। दिल्ली मे उनके साप्ताहिक पत्र के सपादक कई साल से मुझे जानते थे। अपनी आत्मीयता दिखाने के लिए वे अकसर नाश्ता करने मेरे यहा आ जाते थे। लेकिन हालात बदलने पर वह दोस्ती की भावना भूल गये। उनके पत्र ने मेरे बारे मे एक बहुत विद्वेषपूर्ण खबर प्रकाशित की, लेकिन एक दोस्त के घर पर मुलाकात होने पर उन्होने माफी मागी और कहा कि पत्र मे प्रकाशित झूठी खबर का वह प्रतिवाद कर देंगे। उन्होने कहा, "मेरी गैर मौजूदगी मे यह छप गयी थी।" जिम्मेदार पत्रकारिता की यह कहानी है। उनके दूसरे साथियो मे से किसी की जो पिछले तीस साल से 'हमारा यूनुस' कहकर मेरा उल्लेख करते थे, मार्च 1977 के बाद मुझसे सपर्क कायम करने की हिम्मत नही पडी। साँपो की तरह मौसम बदलने के साथ वे अपनी भावनाएँ और कचुलें बदल लेते थे। यह अजीब बात थी कि ये इनके जैसे लोगो ने ही व्यक्तिगत सबधो को राजनीतिक रग देने के लिए श्रीमती गाधी की निंदा की थी।

अच्छी हैसियत और मान्यता प्राप्त करने के लिए इन पत्रकारो की कार्य प्रणाली और निराली बातें सचमुच आश्चर्यजनक हैं। मद्रास मे 12 नवबर 1976 के एक हलचल-भरे सवाददाता सम्मेलन के बाद मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव हुआ। मुझसे सभी तरह के सवाल पूछे गये और मैंने स्पष्टता व हास्य के साथ उनके जवाब दिये। उन्होने प्रजातत्र के बारे मे मेरी राय पूछी। अनुशासन के अस्थायी दौर मे गुजरने के कारण ही मैने इसके बारे मे अपनी राय बदली नही थी। मैंने उन्हे बताया और मैं इसमे विश्वास भी करता हूँ। मैं प्रजातत्र को मूल्यवान समझता हूँ इसलिए नही कि वह इगलैड, अमरीका या फ्रांस मे प्रचलित है बल्कि इसलिए कि वह जीवन की आदर्श प्रणाली है। हमारी आस्था इस दृढ विश्वास पर आधारित है कि केवल प्रजातात्रिक प्रणाली ही भारत जैसे राष्ट्र को एकताबद्ध और समाजवाद व धर्मनिरपेक्षता के मार्ग पर अडिग रख सकती है। दूसरी प्रणालियो की खामियाँ और व्यर्थता सिद्ध हो चुकी है। तथाकथित प्रजातात्रिक देशो ने भी बहुत सी गलतियाँ की हैं। इगलैड ने एक सदी से अधिक तक दूसरो पर बेरहमी से हुकूमत की है। अमरीकी मतदाताओ ने वियतनाम मे अपनी

सरकार की निममता बर्दाश्त की है। इसी तरह से फ्रास ने अल्जीरिया मे अपने हाथ गदे किये है। जमनी तो इस क्षेत्र म नौसिखुआ है। प्रजातत्र स उसका नाता जुम्मा जुम्मा आठ दिन का है, फिर वह इसके बारे मे क्या डीग हाकेगा ' मैंने जब यह सब कहा तो एक अमरीकी पत्रकार न पूछा कि मैंने सिफ पश्चिमी समाचारपत्रो की आलोचना क्या की और कम्युनिस्ट अखबारो के बारे म एक भी शब्द क्यो नही कहा, तो मैंने जवाब दिया म सिफ पश्चिमी अखबार पढता हूँ। मुझे नही मालूम कि सोवियत सघ या पूर्वी यूरोपीय अखबारो मे क्या छपता है। अगर वे भारत विरोधी कोई भी खबर छापते है तो आप मुझे बतायें। मैं वादा करता हूँ कि मै उनकी खबर लूगा।" इस पर कहकहा लगा। इससे हौसला पाकर मैंने इस मौके पर मौजूद विदेशी पत्रकारो को यह भी बताया कि पश्चिमी समाचारपत्रो की किस चीज स हम चिढ लगती है, यानी वे झूठी और विद्वेषपूण रिपोर्टें जो उनके स्थायी विषय ह। मन उन्ह बताया "आपकी 'दादागीरी', आपके द्वेष और आपके घमड से हम चिढ होती है। आप हमारी गलतिया पकडने के लिए आजाद है, लेकिन अपनी बुराइयो को भी भूल न जाइय।" मैंने उनसे कहा कि "हम न सिफ उनकी जिंदगी के तौर तरीको से परिचित है, बल्कि उनके जीवन के अनक मूल्यो को हम भी मानते है। वाशिंगटन जेफरसन और लिकन के लिए हमारे दिल मे भी इज्जत है लेकिन निक्सन या फोड के लिए नही। बहुत से अच्छे अमरीकी भी ऐसा ही महसूस करते हैं। फिर हमको दोष क्या देते हैं?" मैंने उन्ह याद दिलाया कि अक्तूबर 1928 म जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "हमारा दुश्मन इगलैण्ड नही ह हमारा दुश्मन साम्राज्यवाद है और जहा साम्राज्यवाद है, वहाँ हम स्वेच्छा से नही रह सकते।"

मुझे यह जानकर बहुत ताज्जुब और दुख हुआ कि **इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इडिया** के भूतपूर्व सपादक खुशवतसिह न मेरे सवाददाता सम्मेलन का टेप प्रधानमत्री के पास भेज दिया और लिखा "आपके दूत बदजबानी के लिए बदनाम है। यह टेप आपको यकीन दिला देगी कि वह भारत अमरीकी और भारत ब्रिटिश सबधो को कितना नुक्सान पहुँचा रहे है।" उनकी पत्नी, पुत्री और पुत्र ने उनस ऐसा न करने का आग्रह किया था, लेकिन उन्होने टेप सुनने की तकलीफ उठाये बिना ही उसे प्रधानमत्री के पास भेज दिया। इस एक घटे के टेप मे एक भी अपशब्द नही था लेकिन जिस ढँग से खुशवतसिह न अपनी बात कही थी उसकी वजह से उन्होन उसे सुना और उन्ह यह भी मालूम हो गया कि मैंने दरअसल किसी को कोई गाली नही दी थी।

पत्रकारो के बारे म सबसे ज्यादा निराशा मुझे नेहरूजी के अखबार नेशनल हेरॅल्ड' के सपादक एम० चलपतिराव से हुई।

मैं एम० सी० स, जसाकि वह आमतौर पर मशहूर हैं कई साल पहले मिला था और उनसे काफी प्रभावित भी हुआ था। लेकिन **नेशनल हेरॅल्ड** के साथ मेरे औपचारिक सबधो के दौरान, जो 1974 से शुरू हुए थे, मुझे बिलकुल दूसरा ही तजुर्बा हुआ। पहले पष्ठभूमि बता दू। नेशनल हेरॅल्ड का दिल्ली सस्करण राजधानी मे अच्छी तरह स स्थापित राष्ट्रीय दनिक पत्रो से प्रतिद्वद्विता म बुरी तरह असफल रहा। दस साल से ज्यादा समय तक उसके मुह म निवाला दिया जाता रहा और किसीने भी उसे पढने योग्य अखबार बनाने की परवाह नही की। यह बिलकुल बेजान अखबार था और इसे पढने की तबीयत नहीं होती थी।

इसके लिए स्वाभाविक रूप से सपादकीय विभाग जिम्मेदार था। मुझे शक

है कि कभी सपादक ने अपने गरेबान म मुह डालकर नही देखा कि इस पत्र की ग्राहक सख्या क्यो नही बढ रही है ? वह पाठको को अपने कूडे को अनमोल खजाना समझने के लिए मजबूर नही कर सकते थे। खुद उनके अलावा कोई दूसरा नजर उठाकर भी इस अखबार को नही देखना चाहता था। और सिर्फ उन्ही के लिए कई बरस तक यह अखबार प्रकाशित किया जाता रहा। यह भी एक ताज्जुब की बात है कि एक सत्तारूढ दल ने अपने मुख्य प्रचार माध्यम को इतना प्रभावहीन बना रहने दिया। मत्रिमडल के अनेक काग्रेसी मत्रियो को इसमे कोई दिलचस्पी नही थी। उन्हे यह भी पता नही था कि समाचारपत्र का कोई दिल्ली सस्करण निकलता भी है या नही। पार्टी के एक स्तभ करण सिंह को जो सगठन और पार्टी के अदरूनी कामकाज के बारे मे बात करते थे, यह जानकर अचभा हुआ कि नेशनल हेरॅल्ड के पास 'दिल्ली म एक शानदार इमारत है।'

नेशनल हेरॅल्ड के दिल्ली सस्करण म एक दशक से ज्यादा समय से घाटा हो रहा था। एसोसिएटेड जर्नल्स के प्रबंध निदेशक का पद सँभालने के बाद मैंने महसूस किया कि दिल्ली सस्करण जारी रखने से मूल सस्था के लिए खतरा पैदा हो जायगा जो लखनऊ से अँग्रेजी, हिंदी और उर्दू दैनिकपत्र प्रकाशित कर रही थी। एसोसिएटेड जर्नल्स के अध्यक्ष और बचे हुए एकमात्र निदेशक इस निर्णय से पूरी तरह सहमत थे। लखनऊ से प्रकाशित पत्र मुनाफे पर चल रहे थे लेकिन वे दिल्ली म होने वाले घाटे को पूरा नही कर सकते थे। यह भी महसूस किया गया कि दिल्ली सस्करण को अगर कुछ दिन के लिए बन्द कर दिया जाये तो हम ऐसे निकम्मे और अयोग्य सपादकीय कर्मचारियो के अलग करने म सहायता मिल जायेगी, जैसे अयोग्य कर्मचारी कही और नही मिल सकते थे। उन्होने अखबार को अच्छा और पढने योग्य बनाने के मामले म अपनी सामूहिक अयोग्यता का सबूत दिया था। दूसरे अखबारो के पत्रकार उनमे से अधिकाश का मजाक उडाते थे। अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करके समाचार-पत्र की सर्वांगीण देख रेख करने की जगह, जो एक सपादक का दायित्व है प्रतीत होता था कि एम० सी० का एकमात्र उद्देश्य अपने अग्रलेख छपाना है। वे किसी दूसरे को अखबार को बेहतर बनाने का मौका नही देते थे। वह अनुपयोगी पुराना पड चुकी पत्रकारिता पर भरोसा करते थे। वह तकनीकी सुधार या अखबार की सजावट म परिवर्तन के भी विरुद्ध थे और उसे नापसद करते थे।

जब एम० सी० 1976 म बीमार पडे तो मुझे असली धक्का लगा। प्रबधको ने एक नर्सिंग होम म उनके लिए पूरे वक्त देखभाल करने वाली एक नर्स रख दी। उनके इलाज, विमान से हैदराबाद भेजने और वहाँ राजकीय अतिथिगृह म उनके आराम लाभ का पूरा खर्च प्रबधको ने उठाया। उन्होने इस देखभाल और इतजाम के लिए धन्यवाद का एक शब्द भी नही कहा। लेकिन जब 1977 के प्रारभ मे उनके वेतन के भुगतान म दो दिन भी देर हो गयी तो उन्होने अध्यक्ष को अत्यत कटु पत्र लिख दिया। नेशनल हेरॅल्ड से एम० सी० के सबध के 30 साल पूरे होने के अवसर पर 30 जून 1976 को नेहरू स्मारक पुस्तकालय म एक शानदार समारोह किया गया। श्रीमती गाधी ने समारोह की अध्यक्षता की। मत्री विधायक, पत्रकार व अन्य सभ्रात व्यक्ति भारी सख्या म इसम शरीक हुए। यादगार के तौर पर उन्हे एक कीमती उपहार दिया गया। इसके कुछ दिन बाद एक प्रमुख पत्रकार ने मेरे पास आकर कहा कि 'केवल जवाहरलाल

नेहरू का अखबार ही एक अवकाश ग्रहण करने वाले सपादक को ऐसी शानदार बिदाई दे सकता है।" हरएक यह समझता था कि कम से कम अब तो वह ऐसे अखबार को छोड देंगे जो लोकप्रिय बनने मे नाकामयाब रहा था और जिसमे घाटा हो रहा था। लेकिन एम० सी० तो हर एक को गलत साबित करने पर तुले हुए थे। उनकी गिरती हुई सेहत भी उन्हे खराब काम करते रहने से नही रोक सकी। वह बताते कि कई मौका पर उन्होने इस्तीफा देना चाहा था। लेकिन मुझे तो सिर्फ एक अवसर की जानकारी है जब उन्होने अपना इस्तीफा भेजा था और उसे मजूर कर लिया गया था। तब इस महान योद्धा ने क्या किया? उन्होने श्रीमती गाधी को लिखा, "प्रबधको को मुझसे छुटकारा पाने की इतनी जल्दी क्यो है?" फिर भी अपने मुह मियाँ मिट्ठू बनते हुए हेरॅल्ड से अपने सबध विच्छेद को उन्होने 'जवाहरलाल नेहरू की दूसरी अत्योष्टि' कहा था। वह जाहिरा तौर पर भूल गये थे कि उनके बारे मे खुद नेहरू की क्या राय थी जब 1950 के दशक मे उन्होने कहा था, 'स्वाधीनता के प्रभात से पहले ही एम० सी० ने अपनी उपयोगिता खत्म कर ली थी।" एम० सी० जब अतत अगस्त 1978 मे हटाये गये तो उन्होने जो शोर गुल मचाया या इससे पहले 1,25,000 रुपये से अधिक की अनुग्रह राशि, भविष्य निधि व दूसरे देय धन के लिए जो हाय-तोबा मचायी वह शोभनीय नही था। वह कम वेतन लेने पर फख्र करते थे—मैं सोचता हूँ कि कौन अखबार उन्हे इससे ज्यादा वेतन देता—लेकिन जब वह समझ गये कि उन्हे जाना ही पडेगा तो उनका सारा आदर्शवाद गायब हो गया। उन्होने माँग की कि उनकी तनखा उन्हे आजीवन पेंशन के रूप मे दी जाय, उनके यातायात की व्यवस्था की जाये, उनका टेलीफोन व क्लर्क आदि बरकरार रखे जायें और प्रबधक उनके मकान के खर्च मे हिस्सा बँटायें। यह सब-कुछ और साथ ही वह प्रधान-सपादक के पद पर बने रहे। पेंशन और उन्हे भुगतान की गयी रकम पर बैंक का सूद मिलाकर 2800 रुपये मासिक होता है। इस तरह से एक व्यक्ति ने, जो नेशनल हेरॅल्ड की असफलता के लिए जिम्मेदार था, खजाना मार लिया जबकि मूलसस्था डूब रही थी। मैं नही समझता कि उन्हे इसकी कोई परवाह थी।

कलकत्ता के एक साप्ताहिक ने 27 अगस्त, 1978 के अपने अक मे हेरॅल्ड के प्रबधको और सपादकीय विभाग के पारस्परिक सबधो के बारे मे एक लेख लिखा था। लेख मे कहा गया था कि मालिको को सपादको से, जो अपने पद से चिपके थे, सिर्फ एक उचित शिकायत थी कि वे पत्र की ग्राहक सख्या बढाने मे असमर्थ रहे। लेकिन यह कारण तो शायद ही कभी वास्तविक कारण रहा हो। इसलिए लेख के लेखक ने एम० सी० को अनुचित तरीके से बर्खास्त करने के लिए प्रबधको को दोष दिया। मैं पूरी जिम्मेदारी के साथ यह कह सकता हूँ कि एम० सी० के मामले मे यही एकमात्र कारण था। हरियाणा और पजाब को छोडकर जहाँ गाव पचायतें या पेट्रोल पप कुछ हजार कापिया खरीदते थे, समाचारपत्र का दिल्ली सस्करण कभी 2500 से अधिक की पाठक सख्या का दावा नही कर सका। क्या कही भी ऐसा निकम्मा अखबार बर्दाश्त किया जाता? ऐसे सपादक को तो बरसो पहले ही निकाल देना चाहिए था।

इन बहुरुपियो के पदचिन्हो पर चलते हुए एक दूसरे महाशय एम० ओ० मथाई ने उस जमाने के उच्च बुद्धिजीवियो के 'गप व अफ़वाह' पढने के शौक का फायदा उठाया। लेकिन नेहरू के बारे मे उनके वृतात प्रत्येक सभ्य नागरिक

के दिल पर आघात लगा। मैं शुरू मे कुछ कहने म हिचकिचाया और मैं मूक घणा से उसे ठुकरा देना चाहता था। लेकिन मुझसे बार-बार यह पूछा गया कि मथाई जैसा आदमी कसे राजनीतिक मच पर आ गया? मैंने उन्हे सबसे पहले अप्रल 1946 म देखा था। वह जवाहरलाल नेहरू के पास नौकरी की तलाश मे आये थे। उनके सहमे हुए हताश आचरण की याद अब भी मेरे दिमाग म ताजा है। सिलवटें पडा हुआ धोती कुर्ता, और बेढगे सडिल, नौकरो की उन कोठरियो के परिवेश से मेल खाती थी, जहाँ मथाई ठहराये गये थे। उन्होने यह हिसाब लगा लिया होगा कि नेहरू के मातहत काम करन म वह हारन वाली बाजी पर नही, बल्कि जीतने वाली बाजी पर दाँव लगा रहे थे। 1946 के मध्य मे जब वह आय, तो भारत की आजादी क्षितिज से बहुत दूर नही थी। यह भी साफ हो गया था कि आजादी का वभव और उसका बोझ उठाने की किस व्यक्ति से सबसे ज्यादा आशा की जाती है। इसलिए मथाई सही वक्त पर सही दरवाजा खटखटा रहे थे।

उन्होने उस समय यह डीग मारी थी कि उनके पास 1 00,000 रुपया है जो उन्होंने किसी अमरीकी प्रतिरक्षा प्रतिष्ठान से हथिया लिया था, जहाँ वह इससे पहले काम करते थे। इसीके बारे म 1950 के दशक के शुरू मे सदेह व्यक्त किये गये थे। उन्होने कहा कि इस रकम के सूद से वह अपना खच उठा लेंगे। मुफ्त रहने-खाने के इतजाम के बदले वह काम करने लगे। जो खाना दूसरे लोग खाते, वही वह खाते। उन्हे अपनी रहने की जगह से भी कोई शिकायत नही थी। अतरिम सरकार के उपाध्यक्ष की हैसियत स जब नहरू दिल्ली गये तब भी मथाई की हालत मे कोई फक नही पडा। नयी दिल्ली मे नहरू के मकान मे मथाई को रहने के लिए नौकरो के ऊपर जाने की सीढी की बगल मे एक छोटी सी कोठरी मिली थी, जो मुश्किल से चार-फुट चौडी थी। उसमे मुश्किल से एक चारपाई आ पाती थी, उन्हे अपना बक्स चारपाई के नीचे रखना पडता था। नित्यकम के लिए कोई सुविधा नही थी।

मथाई का काम शुरू म शिथिल शरीर के स्टेनोग्राफर ए० डी० उपाध्याय की जगह सँभालना था। उपाध्याय न बहुत निष्ठा से काम किया था, लेकिन उनका काम अच्छा नही था। मथाई बहुत साफ सुथरा टाइप करते थे कागजात और खत कितावत बहुत कायदे करीने से दुरुस्त रखते थे। नेहरू उनके काम से प्रभावित थे। मथाई क्लक रह चुके थे, इस पृष्ठभूमि की वजह से वह सरकारी कायदे कानून अच्छी तरह जान गये। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्हे और काम दिया जाने लगा। बढती हुई जिम्मेदारी की वजह से उन्हे मालिक के और करीब आने का मौका मिला। इसी वजह से वह यह भी जान गये कि वे कौन से दूसरे आदमी हैं जिन्हे विभिन्न कारणो से ऐसी ही सुविधाएँ मिली हुई हैं। मथाई न इन मर्दो और औरतो से जान पहचान बढा ली और उनकी जी हुजूरी शुरू कर दी। उन्हाने प्रधानमत्री के घनिष्ठ सहयोगियो की सूची बनायी और उन्हे खुश करने मे लग गये। नहरू उनकी लगन से प्रभावित हुए और उन्हाने इसका जिक्र मिलने के लिए आने वाले लोगो से भी किया। इस कारण वे लोग मथाई का रोब मानने लगे। कुछ राजदूतो को मालूम हुआ कि मथाई का 555 स्टेट एक्स प्रेस सिगरेट बहुत पसद है। इसलिए वे इस सिगरेट के डिब्बे लेकर आते। व्हिस्की बहने लगी जिसक बाद उनकी रँगीली खातिरें होती।

जब मथाई न यह सुझाव दिया कि प्रधानमत्री का निवास स्थान शानदार

होना चाहिए तो मैं समझता हूँ कि उनके दिमाग म अपने आवास की बेहतर व्यवस्था की आवश्यकता थी। उन्होंने सरदार पटेल से आग्रह किया कि सुरक्षा कमचारियो को मातीलाल नेहरू माग पर स्थित मकान के चारो ओर लगे हुए खेमो से ज्यादा जगह की जरूरत थी। लॉड माउटबैटेन को भी उन्होने प्रभावकारी तक दिया कि विदेशी अतिथियो के आदर सत्कार के लिए और अधिक जगह की जरूरत है। इन सब बाता का नतीजा यह हुआ कि प्रधानमत्री अपनी जानकारी और सहमति के बिना ही उस शानदार भवन के अनिच्छुक निवासी बन गये, जिसम पहले ब्रिटिश प्रधान सेनापति रहते थे। यह तीनमूर्ति भवन कहलाने लगा। मथाई को रहने की जगह का अपना हिस्सा मिल गया। एक बार उन्होने मुझे अपन रहने के कमरे दिखाये और बडे गव से उसमे लगा हुआ बिजली का सामान भी दिखाया। अलमारियाँ खोलकर विदेश यात्राओ के दौरान खरीदे गये सेवील रो से खरीदे गये सूट दिखाने म उन्ह बच्चा जैसा मजा आ रहा था। उन्होन पशमीने की कुछ अचकनें भी इकट्ठा कर ली थी जो उन्होने नेहरू के पुरान दर्जी से सिलवायी थी। इस आदमी पर अपने जमाने के सबसे खूबसूरत आदमी की नकल करने की धुन सवार हो गयी थी। उन्ह देखकर उस गाधीवादी की याद आती थी जिसे महात्माजी की तरह लगन के चक्कर म सिफ लँगोटी बाधने स ही सतोष नही हुआ, बल्कि उन्होने गाधीजी की तरह की सूरत बनाने के लिए अपना एक दात भी निकलवा दिया। 1950 के दशक म एक केंद्रीय मत्री थे जो नेहरू की तरह लगना चाहते थे। उन्होने वसी ही अचकनें भी जमा कर ली थी और, बताया जाता है कि, उन्होन नेहरू के निजी नौकर को इस बात के लिए राजी कर लिया था कि रोज सुबह टेलीफोन करके वह उन्ह बता दिया करे कि प्रधानमत्री उसदिन किस रग की अचकन पहनेंगे। वह भी फिर उसी रग की अचकन पहनते।

मथाई हर एक का धौंस दत थे। लेकिन जो लोग उन्ह उनकी औकात बता सकते थे उनके सामन वह भीगी बिल्ली बने रहते थे। 1952 म विदेश स काम निबटाकर लौटने पर मैं तीनमूर्ति भवन म टिक गया। मथाई को यह अनुचित लगा। उन्होने सुझाव दिया कि मैं अपन पद के अनुरूप सरकारी मकान ले लू। मैने यह सुझाव मान लिया और मैंने उनसे मकान ले लेने के लिए कहा और अपना सामान बाध लिया। जब यह खबर श्रीमती इदिरा गाधी के पास पहुँची तो वह तूफान की तरह मथाई के कमरे म पहुँची और उन्ह इतनी जोर से डाँटा कि वह खडे-खडे कापने लगे। "अगर यूनुस को अपनी हैसियत के मुताबिक जगह पर जाना है तो तुमको भी बहुत पहले ही इस मकान से निकलकर किसी मुनासिब जगह पर चला जाना चाहिए था," उन्होने चिल्लाकर कहा, 'इस मकान के इतजाम मे तुम दखल मत दो। बेहतर हो कि तुम यह समझ लो कि मैं दोबारा इसे बर्दाश्त नही करूँगी। इसके फौरन बाद ही मथाई भागते हुए मेरे कमरे म पहुँचे और बिना मागे सलाह देन की ग़लती के लिए माफी मागी। बाद म मैंने उसी इलाके मे मकान लिया और अगस्त 1958 म स्पेन को तबादला होन तक वहीं रहा। इसके बाद से मथाई बहुत सावधान होकर मुझसे बातचीत करते और उन्होन मुझे शिकायत का कोई मौका नही दिया।

प्रधानमत्री के निजी सहायक के रूप म बढती हुई हैसियत ने मथाई को बहुत घमडी बना दिया। शराब से बढते हुए लगाव की वजह से यह घमड और बढ गया। एक बार व्हिस्की के नशे म उनकी हिम्मत इतनी बढ गयी कि उन्होने नयनतारा सहगल के चाँटा मार दिया। दूसरा की मौजूदगी म यह काड हुआ था

और वह एकदम हक्का बक्का रह गयी। उनके लिए फायदे की बात यह होती कि वह इस पागलपन के बारे म अपन मामा को बता देती, लेकिन उन्होंने आँसू पोछ डाले और बाहर चली गयी। मथाई से होने वाले फायदा को बनाये रखने के लिए उन्होंने इस अपमान को चुपचाप पी जाना बेहतर समझा। अच्छे बुजुर्ग 'मक' कई लोग उन्हें इसी ढँग से पुकारते थे, मुफ्त विदेश-यात्रा का बंदोबस्त करा सकते थे, कस्टम्स से महँगे पार्सल छुड़ा देते थे, या जो भी उनका साथ देता उसे ऐसी ही दूसरी सुविधाएँ पहुँचाते थे।

समय आने पर उनकी असलियत खुल गयी, जिससे उनके विगत के बारे म भी मालूम हो गया। औरतो की तलाश म वह अकसर वाई० डब्लू० सी० ए० के होस्टल के चक्कर लगाते थे। वह किसी औरत को कार पर लवी सैर के लिए ले जाते, या अगर नेहरू बाहर होते, तो तीनमूर्ति भवन म अपने कमरे म ले जाते। 1950 के दशक मे "बोतल" उनकी संगिनी बन गयी। ज्यादा शराब पीने की वजह से वह बेहूदा जबान का इस्तेमाल करने लगे। वह भोग विलास म अधिकाधिक लीन रहने लगे और मालिक की आँख बचाने की कला मे वह पारगत हो गये। आमोद प्रमोद के इस दौर म उनका वजन बढ गया लेकिन सिर्फ शारीरिक तौर पर। धीरे धीरे वह एक टुच्चे और ओछे हाकिम बन गये।

नेहरू अत्यधिक क्षमाशील व्यक्ति थे। फिर भी उन्हें बीच म सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार करना पडा कि "मथाई मामूली मामलो म अकसर बेवकूफी करते थे, और कभी-कभी अपनी टाग अडाते व धौंस देते थे।" सबसे पहले इस बात पर फीरोज गांधी की नजर पडी कि मथाई जी० डी० बिडला से घनिष्ठता बढाने के लिए बडी होशियारी से तिकडम कर रहे हैं। एक वक्त के स्टेनोग्राफर का ऐसा इसान बनने मे ज्यादा वक्त नहीं लगा जिसकी ससद म खुले आम निंदा की गयी और फिर जिसे घूरे पर फेंक दिया गया। 1959 मे नौकरी से निकाले जाने के बाद उन्होंने मुझे स्पेन म एक खत लिखा और कहा, "काश, तुम यहा होते तो मुझे बताते कि मैं अपने खिलाफ मचे हुए इस हुल्लड का कैसे मुक़ाबला करूँ। इस हुल्लड से चिढकर मैंने समाचारपत्रो म एक असयत बयान भेज दिया। इस पर हाय तोबा मच गयी और मेरे पास नौकरी छोड देने के अलावा और कोई चारा न रहा।" उन्होंने "अनर्गल आरोप लगाने और लोगो की प्रतिष्ठा गिराने के लिए' ससद सदस्यो की आलोचना की थी।

नौकरी से निकाल दिये जाने के बाद मथाई फीरोजशाह रोड पर एक ससद-सदस्य के साथ रहने लगे बाद मे वह राष्ट्रपति भवन मे राजकुमारी अमृत कौर के बँगले म रहने के लिए चले गये। राजकुमारी अमृत कौर को यह मकान मत्री की हैसियत से रहने के लिए दिया गया था। 6 फरवरी, 1964 को उनका देहात हो गया लेकिन उनका परिवार अगले 11 वर्षों तक इस बँगले को अपने पास रखने म सफल रहा। सभी अच्छी चीजो का एक दिन अत होता है लेकिन मथाई का खयाल कुछ दूसरा ही था। जून 1975 मे उन्होंने लार्ड माउटबटेन से अनुरोध किया कि वह राष्ट्रपति से उन्हें उसी मकान मे रहने की अनुमति दिला दें जो राजकुमारी अमृत कौर को मत्री की हैसियत से रहने के लिए मिला था। हालाकि जिन्हें वह मकान दिया गया था और जिनकी तरफ से वह रखवाले थे उनका देहात हो चुका था। बहाना यह बनाया कि वह लेडी एडविना माउटबटेन के नाम पर बने न्यास की देखभाल कर रहे है। जब माउटबटेन ने सचमुच इसके बारे म कहा तो राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद को इगलैड म रहने वाले लार्ड को साफ

भावना होनी चाहिए थी, गडबडा गया।

शीला भाटिया की एक नाट्य-मडली थी, जो चाहती थी कि हमेशा सरकारी खर्च पर अपने नाटको का प्रदशन करें। एलिजियस म 1973 म उनका आचरण, जहा उ होने अपने दल के टिकने की व्यवस्था पर हगामा खडा कर दिया, बेहद निदनीय था। कालज के दो छात्रावासो मे इन अतिथियो के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी, लेकिन शीला भाटिया पाँच स्टार वाले होटल म ठहरना चाहती थी। वास्तविक व्यवहार मे उनके वामपथ के दाव की असलियत मालूम पड गयी। उनके दल का एक सदस्य बाद मे भारतीय राजदूतावास मे चोरी करत पकडा गया। वह तत्कालीन सत्ता के केंद्र के करीब होन का ढाग करती थी, लेकिन जब सत्ता न रही तो उ होने मुह फेर लिया। रजनी पटेल ने, एम० एफ० हुसेन को, जि हान कभी सरकारी सरक्षण नही मागा था, राजी कर लिया कि आपातस्थिति के दौरान अपने तीन चित्र तत्कालीन प्रधानमत्री को समर्पित कर दे। इससे वह उन लोगो की आलोचना के पात्र बन गय, जिन्होने स्वय कई फायदे उठाये थे। हुसेन की अपनी प्रतिक्रिया थी, "मैंने अच्छी नियत से यह काम किया है। एक कलाकार के रूप म उस पर समय की प्रतिक्रिया होनी चाहिए।" एक और सज्जन थे सतीश गुजराल। श्रीमती गाधी वर्षों से उनकी सरपरस्ती कर रही थी। उन्ही की कृपा दृष्टि से वह धनवान भी हो गय थे। उनके भाई इदर गुजराल ने भी, जब वह आवास मत्री थे, उन्ह दौलत इकट्ठा करने म मदद दी थी। किसी को भी उनके दौलत जमा करने पर एतराज नही था। लेकिन यह चित्रकार और उनकी पत्नी उपकार करने वाले की परेशानी मे, उसके प्रति थोडा सा आभार तो व्यक्त कर सकते थे। उन्होने पीठ फेर ली और श्रीमती गाधी की व उनके परिवार की निंदा करन म आनद लेन लगे। श्रीमती गाधी ने जब सतीश गुजराल की टीका के बारे म सुना तो उन्होने एक दोस्त से कहा, 'अब हर आदमी पर से मरा विश्वास उठ गया।" *सोनल मानसिंह ने सत्तारूढ व्यक्तियो से फायदा उठाया है और उठाती* हैं। वह समझती हैं कि ऐसा करना उचित है। शायद यामिनी कृष्णमूर्ति उन्ह बता सकती थी कि वह भी उन्नति करना चाहती है, लकिन हर एरे गैरे की खुशामद करके नही। कभी कभी योग्यता भी काम देती है और सोनल म इसकी कमी रहा है।

कई दूसरे लोगो म तो राजनीतिक निष्ठा का और अधिक अभाव पाया गया। केवल पत्रकार और कलाकार ही दोषी नही हैं। कितने ही बुद्धिजीविया ने, जिन्होन श्रीमती इदिरा गाधी के अधीन पदो पर काम किया था और जब वह प्रधानमत्री थी तो उनकी तारीफ म जमीन-आसमान के कुलावे मिला दिय थ, उनकी निंदा करने मे भी कोई कोर-कसर नही छाडी। कुछ तो कहन लगे कि उन्हान भारत म तानाशाही कायम की है और प्रजातत्र को खतरे म डाल दिया है। यशवतराव चव्हाण ने एक बार पार्टी की एक बैठक म कहा था, "उन पर जो बीतती है, वह भारत के साथ बीतती है, और जो भारत पर बीतती है, वह उन पर बीतती है।" वह इस बात के लिए मशहूर हैं कि वह आखिर तक तय करत रहत हैं कि बाजी किसके हाथ रहेगी और फिर वह जीतन वाल क साथ हो जात हैं। अब वह अपनी भूतपूर्व नेता के विरुद्ध विषवमन कर रहे हैं। एक ही व्यक्ति के रवय म ऐसा जमीन-आसमान का फ़र्क ! डो० के० बरुआ तो एक क़दम और आगे बढ़ गय। उन्होंने यह वाक्य गढ़ा था 'भारत इदिरा है।' एस० के० दास की पुस्तक **चेन्जिंग इमेज ऑफ़ इंडिया** (भारत के बदलत रूप) का आमुख लिखत हुए बरुआ न कहा था, "अगर आपातस्थिति की घोषणा न राष्ट्र के और श्रीमती इदिरा

व्यक्तिगत दुश्मनो और आलोचको को स्तभित, पस्तहिम्मत और
[illegible] के व्यक्तिगत दुश्मनो और आलोचको को स्तभित, पस्तहिम्मत और
[illegible] कर दिया तो उसके फौरन बाद ही घोषित 20-सूत्री आर्थिक कायक्रम न
[illegible] के अदर के शकालुओ और विदेशा म उनका मजाक उडाने वालो के होश उडा
[illegible] जा अपनी दुर्बुद्धि और अज्ञानता मे आपातस्थिति को जनता पर प्रधानमत्री
[illegible] व्यक्तिगत हमला मानते थे और समझते थे कि इसमे सामाजिक रूपातरण की
[illegible] कारवाई की झलक भी नही है। हमे आतरिक आलोचना और विदेशी निंदा
[illegible] विचलित नही होना चाहिए। परिणाम सब लोगो की आँखो के सामने है।"
[illegible] हाण के करतबो को मात देते हुए बरुआ ने सजय का दामन पकडा, और किस
[illegible] से। काग्रेस के गोहाटी अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए उन्होने सजय को
[illegible] शकराचाय जैसे विद्वान गुरु, महाराजा रणजीतसिंह जसे शासक और स्वामी
विवेकानद जसे दार्शनिक के समान बताया।

सजय पर इस प्रशस्ति गान का कोई असर नही पडा। इससे बरुआ हताश हो गये
थ। उन्होने अक्तूबर 1976 मे मुझसे रात्रि भोजन का आयोजन करने के लिए
कहा ताकि "अपने प्यारे मित्र के पुत्र के साथ कुछ मसले सुलझा लिये जायें।" उनका
तात्पय फीरोज गाधी से था जिन्हे वह बहुत अच्छी तरह जानते थे। लेकिन कोई
"मसला सुलझाया नही' गया। मेरे मकान पर हम सब लोग मिले। इधर उधर
की कुछ बातें होती रही। बरुआ ने पहले ही मुझसे कहा था कि सजय को स्वय
युवक काग्रेस का अध्यक्ष या वर्किंग कमेटी का सदस्य बन जाना चाहिए।
लेकिन रात मे खाने के वक्त उन्होने मतलब की कोई बात नही की। कुछ समय
बाद उन्होने फिर मुझसे कहा कि अनौपचारिक बातचीत का इतजाम कर दीजिय।
इस बार भी मतलब की कोई बात नही हुई। सजय ही इस चाल को ताड गये और
बोले, "आप अपना समय क्यो बरबाद करते है? उन्हे मुझसे कुछ नही कहना है।"
बरुआ का असली मकसद तो अपने जी हुजूरियो को यह बताना था कि वह न
सिर्फ माता के विश्वासपात्र है बल्कि इस नौजवान (सजय गाधी) के साथ भी
उनकी आत्मीयता है। वह इन जी हुजूरियो को मेरे घर के बाहर जमा कर लेते
ताकि वह सारी चीज अपनी आँखो से देख ले। मार्च 1977 के बाद इन्ही बरुआ
ने इन्ही इदिरा का मखौल उडाया। उन्होने, बताया जाता है कि, फरवरी 1978
मे एक रात्रिभोज म कहा, "मैंने इन्दिरा को भारत के तुल्य बताया था।
मैने यह कभी नही सोचा था कि वह इटरनेशनल (अतरराष्ट्रीय) है।" वह इदिरा
इटरनेशनल नाम की एक निर्यात फम के बारे म छपी खबर की हवाला दे रहे थे।
इस टीका म अश्लीलता का पुट था और यह हद से ज्यादा भद्दी और बेहूदा थी,
थी, खासतौर पर जबकि उन्होने अपने विगत से नाता बिलकुल तोड लिया था।
न जाने कितनी बार उन्होने मुझसे कहा था 'जब 1935-36 के [illegible]
काग्रेस मे शामिल हुआ था तो मैंने स्वप्न मे भी नही सोचा था कि एक दिन मैं
उसकी अध्यक्षता करूँगा। यह सब कुछ उन्ही की बदौलत है। मैं यह [illegible]
भूल सकता हूँ कि मुझे काग्रेस-अध्यक्ष, या आज मैं जो कुछ भी हूँ, [illegible]
बनाया।" इसलिए यह मरे लिए नामुमकिन था कि मैं ऐसे आदमी [illegible]
कायम रखू जो मेरी नजरो म इतना गिर चुका हो।

बगाल के तत्कालीन मुख्यमत्री सिद्धार्थशकर रे और उनके [illegible]
बरुआ और रजनी पटेल तो दरअसल चाहते थे कि आपातस्थिति [illegible] 1975
मे उसकी वास्तविक घोषणा से छ महीने पहले ही लागू कर [illegible]
आपातस्थिति की घोषणा हो गयी तो रे अपनी उमग नही [illegible]

[illegible]

एक पत्र म लिखा, "अब मैं जिस किसी को चाहूँ, गिरफ्तार कर सकता हूँ।" अपनी राष्ट्रवादी और शक्षिक पष्ठभूमि के बावजूद, वह यह रोब जमाते जैसकि हुकूमत उन्ही क इशारे पर चल रही है। फरवरी 1976 म सजय और उनकी पत्नी मनका कलकत्ता की पहली यात्रा पर गय। इस अवसर के लिए बहुत शानदार व व्यस्त कायक्रम बनाया गया। बुद्धिजीविया की एक बैठक म जिनक साथ वह स्वय मच पर बठे हुए थे, सिद्धाथ ने कहा, "यह मरी खुशकिस्मती है कि मैं भविष्य के साथ हूँ।" उन्होने पेंसिल स 'नौजवान हीरो' का एक रेखाचित्र वनाया जिसम सजय को सीजर के रूप म दिखाया गया था, उनक सिर पर जतून की पत्तिया का ताज भी बना हुआ था। उन्होंने इस 'युवती के प्रति सम्मान' के रूप म मेनका को भेंट कर दिया जिन्होने चित्र म बनी आकृति को टेढा मढा कर दिया जिससे वह हास्यास्पद लगने लगी और चिढान के लिए सिद्धाथ स कहा कि वह अपने पति से कहगी कि यह सब उनका किया धरा है। इसे मजाक मानन की जगह, वह घबरा गये और उन्होन सशोधित चित्र के पीछे सफाई दे दी कि यह उनका किया हुआ नही है। गभीरता के स्तर पर उन्होने सजय की यात्रा के प्रभाव के बारे म हाथ स लिखकर एक पत्र प्रधानमत्री को भेजा और कहा कि यह अद्वितीय चमत्कारी घटना थी।" ऐस दोस्ता की शेखी भरी य बातें जसाकि उन्होने बाद म शाह आयोग को बताया था कि आपातस्थिति के दौरान उस बदतमीज नौजवान के चाँटा मारने की तबियत होती थी" गले से नीचे नही उतरतीं। वह श्रीमती गाधी पर भी कीचड उछालन स नही हिचकिचाय, जिनकी बदौलत उन्हे अधिकार और हैसियत मिली थी।

करणसिंह भी कहानी की जिक्र करने के काबिल है। एक अँग्रेज युवती न उनके पिता जम्मू एव कश्मीर के महाराज सर हरीसिंह को 1920 के दशक के प्रारभ मे ब्लकमेल किया था। लदन की एक अदालत म मुकदमे क दारान उनके अँग्रज वकील ने महाराज को 'विवण, सहमा हुआ, दयनीय काँपता हुआ प्राणी' बताया था। हरीसिंह की हमशा यह उत्कट अभिलाषा रही कि उनके एक पुत्र हो लकिन उनके पुत्र नही हो रहा था। अतत करणसिंह का प्रादुर्भाव हुआ और उनके जन्म के बारे म तरह तरह की अफ़वाह उडी। एसा लगता है कि वह अतर्विरोधो के सहारे पल कर बडे हुए हैं। शुरू म उन्ह खराब सहत और कमजोर पैर का सामना करना पडा। फिर उन्ह चुनना पडा कि वह विदश म अध्ययन करें या भारत म। वह अपनी पढाई मुश्किल से खत्म कर पाय थ कि उनक सामन यह समस्या आ गयी कि अपने पिता को कश्मीर म सदरे रियासत वन जाने दें या खुद यह पद सँभालें। करणसिंह न अपने चारित्रिक लक्षण के अनुसार खुद ही यह सम्मान ले लेना बेहतर समझा। बताया जाता है कि हरीसिंह न बबई म अपन विश्वासपात्रा स कहा, अगर करणसिंह मरा असली बटा होता तो वह मेरे बजाय जवाहरलाल नेहरू या शेख अब्दुल्ला को खुश करन के लिए कभी राजी न होता।'

1966 म श्रीमती गाधी के मत्रिमडल म शामिल होन क साथ ही उनक मन म यह डर बठ गया कि एक दिन उनका विभाग उनस छिन जायगा। वह यह डर कभी दूर नही कर पाय, हालाकि उनकी आकाक्षाएँ बढती रही। उनकी मृदु व आकपण वाक्पटुता उनकी जबान पर हर वक्त मौजूद सस्कृत क उद्धरण और कविता की पक्तियाँ उनके दष्टिकाण और चरित्र म दृढता की कमी को पूरा नही कर सकती। प्रधानमत्री क विशेष दूत के पद पर मरी नियुक्ति पर

जब वह मुझे बधाई देने आये तो बोले, 'मैं समझता था कि आप विदेश मन्त्री बनने वाले है, लेकिन अब चूंकि आपको यह शानदार पद मिल गया है, इसलिए अब मेहरबानी करके कोशिश कीजिये और मुझे विदेश मन्त्री बनवा दीजिये। हम दोनो मिलकर इंदिराजी की प्रतिष्ठा आसमान पर पहुँचा देंगे।' इसी तरह से चरणसिंह संजय से घनिष्ठता दिखाने के लिए व्यग्र थे। उनकी पुत्री मेनका के साथ पढी थी, इसलिए वह अकसर यह कोशिश करते कि उन्हे संजय के दोस्त की हैसियत से मित्रों के यहां बुलाया जाये। मार्च 1977 में जब श्रीमती गांधी चुनाव हार गयी तो उन्होंने देखा कि वही इंदिराजी अब प्रधानमन्त्री नही बन सकती और इसलिए उन्हे पद का लाभ भी नही दे सकती तो उन्होंने इतने भाडे, भद्दे और घृणास्पद ढंग से उसी प्रतिष्ठा को बदनाम करने की चेष्टा की जिसे वह आसमान तक पहुँचा देना चाहते थे। उनकी इस हरकत से उन लोगो को अचंभा हुआ जो उनका पहले का रुख जानते थे। अनिवार्य नसबंदी का पक्ष लेने और उसे कार्यान्वित करने के बाद भी उनकी यह जुर्रत हुई कि उन्होंने जून 1978 में[1] उसका प्रतिवाद किया। वह यह प्रभाव डालना चाहते थे कि उन्होंने दबाव डालने का कभी सुझाव नहीं दिया। उन्होंने अपनी भूतपूर्व स्वामी को अकड और ऐंठ दिखायी और कांग्रेस में ऐसे गुट से मिल गये जिसके अनुयायियो व समर्थकों की संख्या नही के बराबर थी। वहां से भी वह जनवरी 1979 के शुरू में निकाल फेंके गये। लेकिन कुछ समय बाद वापस ले लिये गये।

ऐसे ही कुछ और व्यक्तियों के बारे में लिखने का मुझे लालच हो रहा है। उन्होंने कभी 'अंदरूनी गुट' में होने का दावा नही किया और न कभी परिवार के सदस्य की तरह होने' की शेखी मारी, लेकिन उन्होंने ऐसी कमजोरियाँ दिखायी और ऐसी अजीब हरकतें की कि ताज्जुब होता था कि उन्होंने इतना नाम कैसे कमा लिया कि उन्हे वे पद मिल गये जिन पर वे थे। यह कहा जा सकता है कि आपातस्थिति ने आदमियों को मिट्टी का लोंदा बना दिया। लेकिन क्या यह कहना ज्यादा सही नहीं होगा कि आपातस्थिति ने यह बता दिया कि कौन आदमी किस मिट्टी का बना है? आदमी की परीक्षा तभी होती है जब वह किसी चुनौती का सामना करता है। लेकिन ये तो वर्षों के अनुभवी चोटी के राजनीतिज्ञ थे जो सबसे महत्वपूर्ण क्षण में अपने देश के लिए, अपने नेता के लिए और स्वयं अपने लिए निष्ठावान नही रहे। उन्होंने भीषणतम अवसरवादिता दिखायी। यह बात नहीं कि वे डरे हुए थे। वे जब तक मुमकिन हो, हुकूमत का मजा लूटना चाहते थे और वे एक भी ऐसा लफ्ज नही बोलना चाहते थे, या कोई ऐसा काम नहीं करना चाहते थे जिससे उनकी गद्दी पर आँच आये। के० ब्रह्मानंद रेड्डी ने, जो उस समय गृहमन्त्री थे, बाद में कहा कि मैं तो "झील में कमल के समान था। इस दौर पर टीका करते हुए एक लेखक ने व्यंग्य में कहा, लगता है कि यही हालत कांग्रेस के शेष नेतृत्व की थी, सिर्फ इतनी बात है कि कुछ की पिछाडी भी गंदी हो रही थी।" एक दूसरे मन्त्री राजबहादुर सिर्फ नाम के ही बहादुर थे। प्रधानमन्त्री के कर्मचारी दल के क्लर्क तक को 'सर" कहकर संबोधित करते, या अगर उन्हे मालूम हो

---

1 करणसिंह ने 16 अप्रैल 1976 को मुख्यमन्त्रियो व स्वास्थ्य मन्त्रियों के सम्मेलन को संबोधित किया था और लक्ष्य प्राप्त करने के लिए दबावमूलक कारवाई करने की आवश्यकता पर जोर दिया था। सभी समाचारपत्रों में सम्मेलन की कार्यवाही प्रकाशित हुई थी। उन्होंने तब कोई खंडन जारी नहीं किया था कि वह अनिवार्य नसबन्दी के पक्ष में नहीं हैं।

जाता कि उनके बारे मे श्रीमती गाधी से कोई बुरी बात कह दी गयी है तो वह बेचनी मे रातो को सो नही पाते थ। 1970 के दशक के शुरू म, फिजी की एक यात्रा के दौरान, बताया जाता है, उ होने भूतपूव भारतीय प्रवासिया स कहा, "कभी कभी मुझे श्रीमती गाधी का चमचा कहा जाता है। मुझे चमचा होन पर गव है।"

भूतपूव ससद सदस्य और पजाव प्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष मोहिंदर-सिंह गिल चाहते थे कि उनका नाम अखबारो मे मोटे शीषको म छप और सजय की प्रायोजनाओ के लिए उनका उत्साह साबित हो। कई दूसरे लागो की तरह उ होन भी अपनी नसबदी कराने का फसला किया। लेकिन अपन निणय का प्रचार करके वह सबसे बाजी मार ले गये। उ हान दिल्ली टेलीविजन स यह बदोवस्त कर लिया कि टेलीविज़न पर उनका आपरेशन होते दिखाया जाय। एक परेशान टेलीविज़न-अधिकारी के सामयिक हस्तक्षेप से करोडो लोग टेली विज़न पर यह अश्लील प्रदशन देखने से बच गये। यही वे उत्साही थे, जा श्रीमती गाधी के हार जान पर सबसे पहले साथ छोडकर भाग खडे हुए थे। मध्यावधि चुनाव की घोषणा के बाद उनके विचार फिर बदले। मध्यप्रदेश म सयुक्त विधायक दल के मुख्यमत्री गोविदनारायण सिंह ने जे० पी के बारे म एक किताब लिखी, क्योंकि उस समय उनका खयाल था कि जे० पी० से जान-पहचान बढाना फायदेमद है। 1976 मे गोविदनारायण सिंह ने निष्ठा बदलने का फसला किया। वह श्रीमती गाधी के नेतत्व मे काग्रेस म शरीक हो गय। उ हाने हिसाब लगाया होगा कि सत्ता पर श्रीमती गाधी का ही नियत्रण है इसलिए उनसे जान पहचान बढाना लाभकारी है। उ हान अपनी ईमानदारी साबित करन के लिए अनोखा तरीका अपनाया। उ हाने फौरन ही जे० पी० के बार मे अपनी पुस्तक का आवरण बदलकर उसे इदिरा गाधी की जीवनी बना दिया। लेकिन वह जिस बात म चूक गये वह यह थी कि उ हाने जे० पी० वाली पुस्तक के कुछ पराग्राफ बरकरार रखे जिनमे उनकी प्रशस्ति गायी गयी थी। ये हिस्से जिस किसी की चापलूसी करना हो, उसी के लिए सटीक हो सकते थे, लेकिन गोविदनारायण सिंह कई जगहो पर पुल्लिग शब्दो को स्त्रीलिंग शब्दो म बदलना भूल गये।

यह तथाकथित मद उनकी प्रशसा के गीत गाते और अपनी जिंदगी के आखिरी क्षण तक उनकी खिदमत करन का दम भरते थे, लेकिन जसे ही हालत बदली कि यहाँ किसी पी० सी० सेठी, वहा किसी रजनी पटेल और कही किसी टी० ए० पै ने अपना रग बदल दिया। वे सिद्धात और सामूहिक नतृत्व का बखान करने लगे। क्या व यह नही जानते थे कि सयुक्त उत्तरदायित्व की धारणा प्रजातत्र म अतर्निहित है? जो कुछ होता है उसके लिए पूरा मत्रिमडल जिम्मेदार होता है। बाद मे किसी चीज का विरोध करके कोई इस जिम्मदारी से बच नही सकता है। वे विरोध प्रकट करने के लिए बहुत आसानी से इस्तीफा दे सकते थे। ऐसा करके वे कुछ आदर के हकदार हो जाते। लेकिन यह स्वीकार किये बिना कि उनमे मसलो पर निणय लेने की राजनीतिक समझ या हिम्मत की कमी थी, व किस मुह से आपातस्थिति के दौरान हुए किसी गलत काम स अपना सबध विच्छेद कर सकते हैं? ऐसे लोग अपने दुर्भाग्य के प्रमुख निर्माता स्वय थे।

श्रीमती गाधी न भी इसी पहलू को उजागर किया है। शाह आयोग के सामन 21 नवबर, 1977 को अपने बयान म श्रीमती गाधी न कहा था

' कोई भी राष्ट्र, अपने नतिक ताने-बाने को खतरे मे डाले बिना, राजनीतिक पाखड और नतिक कायरता का गुणगान गवारा नही कर सकता। राजनीतिक निष्ठा और सामूहिक उत्तरदायित्व कोई अधूरा रास्ता नही है जो राजनीतिक भाग्य बदलन के साथ ही खत्म हो जाता हो, अन्यथा वे कपटाचार के अडडे बन जायेंगे जिससे इस देश की मन्त्रिमडलीय शासन प्रणाली के लिए विनाशकारी परिणाम होगे। मेरे सहयोगिया को अपने निर्धारित क्षेत्र मे काम करने की पूरी आजादी थी। मन्त्रिमडल मे पूण विचार विमश या स्वीकृति के बिना कोई भी राष्ट्रीय नीति नही बनायी गयी और न कोई निर्णय लिया गया। मैंने यदा-कदा ही हस्तक्षेप किया था। मेरी सरकार का काम करन का तरीका उस हालत स बिलकुल भिन्न था जिसका वणन ब्रिटेन के भूतपूव मत्री रिचड कासमन न किया है और जो ब्रिटेन मे कायम था। उनके अनुसार प्रधानमत्री के हाथ म सत्ता इतनी अधिक केंद्रित थी कि उन्हान दरअसल मन्त्रिमडल को ताक पर रख दिया था और मन्त्रिमडलीय प्रणाली की सरकार को प्रधानमत्रीय प्रणाली मे परिवर्तित कर दिया था। फिर भी ब्रिटेन मे किसी ने भी, यहाँ तक कि क्रॉसमन न भी, यह नही कहा कि प्रधानमत्री के हाथ मे सत्ता के इतना अधिक केंद्रित हो जाने का उद्देश्य प्रजातत्र को समाप्त करना या व्यक्तिगत तानाशाही कायम करना है।"

सत्तारूढ लोग श्रीमती गाधी को लगातार तग कर रहे थ और सता रहे थे और उनके लिए तरह-तरह की मुसीबते पैदा कर रहे थे। मगर इन समस्याओ के बावजूद श्रीमती गाधी म राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय मसला म सक्रिय रूप से भाग लेने की हिम्मत और दूरदर्शिता थी। इगलड आन और अपने स्वर्गीय पिता की स्मृति के सम्मान मे आयोजित समारोह मे भाग लेने के लिए उनको आग्रहपूण आमत्रण मिल रहे थे। सरकार ने अनिच्छा और बेमन से अतत उन्हे जाने की इजाजत दे दी। वह एक सप्ताह के लिए 12 नवबर 1978 से 19 नवबर तक गयी और उनका वहाँ बहुत शानदार स्वागत किया गया। उन्हान एक अतर राष्ट्रीय नेता के योग्य मर्यादा, गरिमा और ओज से अपना दष्टिकोण रखा। भारत लौटन पर उन्हाने एक पडोसी देश के एक अलोकप्रिय मसले का समथन किया। भुट्टो का भाग्य अधर मे लटक रहा था। उन्होने जनता का ध्यान आकर्षित करने और भुट्टो की सभावित फासी रुकवाने के लिए सावजनिक सभाएँ सबोधित की। उनकी पार्टी के सदस्या न इस सभाव्यता के विरुद्ध प्रदशन किये। इसके बाद उन्होने अनेक अरब, एशियाई, अफ्रीकी और यूरोपीय देशो के प्रधानो को व्यक्तिगत पत्र लिखे जिनके बहुत अनुकूल प्रत्युत्तर मिले। भुट्टो के बारे म अपने विचारा और उनके तौर-तरीको को नापसद करने के बावजूद मैं भी यह समझता था कि पाकिस्तान की सरकार जो माग अपनाने का इरादा कर रही थी, उससे तनाव व अस्थायित्व और बढेगा। इसके गभीर परिणाम हो सकते थे। ऐसी आशा की जाती थी कि श्रीमती गाधी द्वारा शुरू किया गया उच्चतरीय

---

1 भूतपूव मत्री और श्रीमती गाधी के घोर आलोचक टी० ए० प को श्रीमती गाधी और उनके पुत्र की तारीफ़ मे दिये गये अपने भाषणो को पढना चाहिए। 1977 की फरवरी के मध्य मे उनके अपने समाचारपत्र ने इन भाषणो को छापा था। उन्हें इन भाषणो की तुलना बाद मे शाह आयोग के सामने दिये गये अपने बयान से करना चाहिए। जिस आदमी म जरा भी दम हो वह न तो इतना बदल सकता है और न इस तरह की बातें कर सकता है।

हस्तक्षेप ज़िया को यह घातक कदम उठान से रोकेगा। इत्तफाक स यह सब काम ऐसे वक्त किय जा रहे थे जब लग रहा था, कि उनका अपना भाग्य अँधेर म है। ससद मे उनके विरुद्ध विशेषाधिकार का सवाल उठाया गया है। उनम हमेशा की तरह सिर उठाकर इसका सामना करन की हिम्मत थी। इस पर आमादा होकर कि उनकी राजनीतिक वापसी हर कीमत पर रोकी जाये, जनता पार्टी के बहुमत वाले सदन ने उनकी सदस्यता रद्द कर दी, उन्ह जेल भेज दिया गया। मुह बद करने की यह कोशिश भी उन्ह भुट्टो का मसला उठाने से नहो रोक सकी, खास तौर पर जबकि भारत सरकार सारी दुनिया मे अकेली सरकार थी जो उन बबर इरादो के बारे म खामोश रही थी। यह बताना मुमकिन नही है कि उन्होने क्या कदम उठाय और कितने दिल से वह इस काम मे लगी हुई थी, लेकिन मुझे जेल से उनका जो खत मिला, उससे इस विषय पर कुछ रोशनी पडती है। इससे निर्लिप्त भाव से अच्छाई और बुराई दानो को स्वीकारने की उनकी क्षमता का पता चलता है। शायद यही उनकी असली शक्ति है।

तिहाड जेल
20 12 78

प्रिय यूनुस,
मुझे उम्मीद है कि आप चश्मा लिये हुए है। सिर्फ यह बताना है कि मै आराम स हूँ और अच्छी तरह हूँ। ज़िदगी म हर चीज का कोई मकसद होता है, मै कुछ अर्से स इसकी बहुत जरूरत महसूस करती रही हूँ कि अकेली रहकर अपने बारे मे सोचू, कुछ पढ पाऊँ और अगर मुमकिन हो तो लिखने का मूड बनाऊँ। अभी तक मै खत लिखन से आगे नही बढ पायी, खैर! इस खत का मकसद दर्शन बघारना नही, बल्कि आपसे यह अनुरोध करना है कि उन व्यक्तियो की सूची पर एक बार फिर नज़र डाल लें जिनको भुट्टो के बारे मे पत्र गये है। मैने सिर्फ कुवतके राजदूत को खत लिखने की बात सोची थी, लेकिन अत मे कुवत की सलाह और सुझाव का इतज़ार किये बिना कई सरकारो के प्रधानो को खत लिख डाले। लेकिन क्या मैने कुवत के शेख व खाडी के अन्य देशो को भी लिख दिया था? अगर नही, तो मुझे खत लिख देना चाहिए। मै चाहती हूँ कि आप राजदूत को समझा दें कि इस जानकारी ने कि मेरी गिरफ्तारी होन ही वाली है, मुझे हर एक को खत लिखन के लिए प्रेरित किया। दरअसल मुझे श्रीमती बदारनायके के बार म भी लिखना चाहिए, जो आजकल बेहद मुश्किलो का सामना कर रही है, हालांकि इस समय उनकी अपनी जान का कोइ ज़िदगी को खतरा नही है।

खरियत से रहिये, खुश रहिये और जरा मेरे घर का, खासतौर पर सजय का, खयाल रखियगा। ऐसे समय म जब उसे पूरे तौर पर आराम[1] की जरूरत है, शारीरिक और मानसिक तौर पर अदालत जाना बहुत बडा बोझ होगा। राजीव और सोनिया ने बहुत मदद की और वे बेहद स्नहपूर्ण हैं। ईश्वर उन सबका और आपका भला करे।

इदु

---

1 उस समय अखिल भारतीय मेडीकल इस्टीटयूट म संजय का बहुत बडा ऑपरेशन हुआ था।

राष्ट्रपति ज़िया ने अंतर्राष्ट्रीय नेताओ की अवना की और 4 अप्रल, 1979 को भुट्टो को फासी दे दी गयी। श्रीमती गाधी के शिविर मे यह भावना थी कि उन्होंने भरसक चेष्टा की। उन्होंने अक्तूबर 1979 के शुरू म श्रीमती नुसरत भुट्टो और उनकी पुत्री बेनजीर के समथन म भी अपनी आवाज बुलद की। लेकिन ईरान की घटनाओ के सबध मे श्रीमती गाधी ने ही दीघकालीन दृष्टिकोण की क्षमता दिखायी। उस प्राचीन देश म पुरानी व्यवस्था पर प्रहार किया जा रहा था और नयी व्यवस्था का अभ्युदय होन ही वाला था। जबकि, जनता पार्टी के अधीन भारत सरकार ने फौरन ही शाह द्वारा नियुक्त प्रधानमत्री को हालांकि उनका कोई भविष्य नही था, शुभ कामना भेज दी, हालाकि बाद म उन्हें झेंपकर दबी जबान से इस कारवाई की सफाई देनी पडी। इदिरा गाधी मे ईरान के भाग्य-निर्णायक अयातुल्ला खुमैनी को, जबकि वह फास म निर्वासन मे थे, व्यक्तिगत सदेश भेजन की दूरदर्शिता थी।

12 विलिंगडन क्रिसेंट,
नयी दिल्ली,
जनवरी 2, 1979

आदरणीय मौलाना साहब,

कई साल की अनुपस्थिति के बाद आपकी ईरान वापसी के पूव मैं आपका अभिवादन करती हूँ।

भारत के इरान से घनिष्ठ सपक और सबध प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। हाल ही म हमने इन सबधो को फिर से मजबूत बनाया है और उन्ह पुन-र्जीवित किया है। हमारा विश्वास है कि हमारे क्षेत्र की शाति और प्रगति के लिए यह महत्वपूण है।

मैं गहरी दिलचस्पी और चिंता के साथ ईरान की घटनाएँ देख रही हूँ। अनक आपदाओ से ईरानी जनता के जान माल की अपार क्षति हुई है। मैं आशा करती हूँ कि वे इन कठिनाइयो पर विजय पायेंगे और एशिया व अफ्रीका म अपन पडोसी तथा अन्य देशा से सौहाद के साथ मिलकर शाति और समद्धि की प्राप्ति म सफल होगे।

सस्नेह अभिवादन के साथ मैं जनता की सेवा मे आपके दीघ जीवन की दुआ मागती हूँ।

भवदीया
इदिरा गाधी

इसी बीच भारत का सकट देश से अपना पावनावमूल कर रहा था। जनता पार्टी की बागडोर ऐसे असतुष्ट लोगा के हाथ मे थी जिनकी साख और प्रतिष्ठा खत्म हो चुकी थी। इनमे से कुछ लोग अपनी मूल सस्था काग्रेस छोडकर आये थे, जबकि दूसरे राजनीति म हमेशा विफल रहे थे। उनमे से ज्यादातर को लबे अरसे तक राजनीतिक क्षितिज पर से लुप्त रहने के बाद अजीब परिस्थितियो के सयोग से सत्ता सौंप दी गयी थी। उन पर अचानक महानता थोप दी गयी थी और व नही जानते थ कि इसे क से निभाये। इन व्यक्तियो और पार्टियो के सिद्धाता म अत्य-धिक भिन्नता थी और यही भिन्नता उनके वर्गीय चरित्र म भी थी। माच 1977 म सत्ता ग्रहण करत समय उन्हान लबी चौडी बातें की थी, लेकिन फौरन ही व

एक दूसरे से लड़ने लगे। एक बार सत्ता म पहुँच जाने पर उन्होंने नक़ाब उतार कर अपने सच्चे रूप म आ जाने म देर नहीं लगायी। उनके हास्यास्पद आचरण से न सिर्फ उनके आलोचक बल्कि उनके पक्के समर्थक भी दंग रह गये। जयप्रकाश नारायण और जे० बी० कृपालानी उनके दो 'पितामह' थे। दोनों ने उन्हें राष्ट्र का उद्धारक बताया था, लेकिन दोनों को भी फौरन ही उन्हें डाँटना पड़ा। अगर एक ने उनके कामों पर निराशा प्रकट की तो दूसरे ने बार बार उन पर अवसरवादिता का इल्ज़ाम लगाया। जे० पी० को मन मारकर कहना पड़ा, 'मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र निर्माण का महान काय उनके बूते का नहीं है। न मोरारजी के, न चरणसिंह के और न किसी दूसरे के बूते का। कीमती वक्त गँवाया जा रहा है।" जो लोग जे० पी० से बंबई में और फिर बाद म पटना म मिले, उन्होंने बताया कि वह जनता पार्टी की हालत से बहुत निराश है। उनका दिल टूट गया है। आचाय कृपालानी ने मद्रास म *गांधी जयंती पर भाषण किया था* जो 3 अक्तूबर, 1978 को समाचारपत्रों म छपा था, उन्होंने केंद्र के अंदरूनी झगड़ों की बहुत कटु आलोचना की थी। उन्होंने कहा था

"इसका विचारों, आदर्शों और सिद्धांतों से कोई ताल्लुक़ नहीं है। इसका उद्योगों के विकेंद्रीकरण के गांधीजी के आर्थिक कायक्रम से कोई ताल्लुक़ नहीं है। दिल्ली में जो लोग हैं, वे इन बातों को जानना ही नहीं चाहते, क्योंकि उनको पद मिल चुके हैं। एक बार सत्ता मे पहुँच जाने के बाद वे बड़ी से-बड़ी जगह पाना चाहते हैं। यह जानते हुए भी कि सही क्या है, व ग़लत काम करते हैं और फिर भी व जनता को गांधीजी के सद्गुणों के बारे मे बताने की जुरत करते हैं वे खुद गांधीजी के सद्गुणों पर कभी अमल नहीं करते। हर मंत्री यह सोचता है कि सत्तारूढ़ होना उसका अधिकार है, क्योंकि उसी ने विजय दिलायी है। सब अपनी अपनी फिक्र म लगे हैं। व यह भूल गये हैं कि ईश्वर की कृपा ने विजय दिलायी है। हरएक मंत्री यह सोचता है कि यह उसी की विजय है क्योंकि व जेल गये थे या उनके खानदान ने कष्ट सहे थे। देश के हित भूलकर व घमंडी और स्वार्थी हो गये हैं। वे यह भी भूल गये हैं कि यह उनका धन या उनका संगठन नहीं था जो विजयी हुआ है। उन्होंने सिर्फ गड़बड़ी पैदा की है। दरअसल आज लोग कह रहे हैं कि श्रीमती इंदिरा गांधी की तानाशाही जनता पार्टी के शासन से बहुत बेहतर थी।"

मोरारजी देसाई और चरणसिंह के मतभेद, हालांकि शुरू मे उनका खंडन किया गया था, मई 1978 मे उभरकर सामने आ गये। उनके प्रतिवाद से *बिस्मार्क के प्रसिद्ध शब्दों की याद आ गयी 'जब तक सरकारी तौर पर खंडन न* किया जाय, कोई बात सच नहीं होती।" खैर, 30 जून 1978 को वे अंतत अलग हो ही गये। चरणसिंह मंत्रिमंडल से हटा दिये गये। एक दूसरे के प्रति उनकी घृणा की तीव्रता से राष्ट्र चकित रह गया। उनके आरोपों प्रत्यारोपों मे उनके उच्चपदों की प्रतिष्ठा गिरी और बदनामी हुई। उनके राजनीतिक झगड़ों की तरह ही उनके फिर आपस म मिल जाने से उनकी साख गिर गयी। आठ महीने बाहर रखे जाने के बाद चरणसिंह, फ़रवरी 1979 मे फिर मंत्रिमंडल म शरीक हो गये। लेकिन व एक दूसरे के खिलाफ खींचातानी म लगे रहे।

दूसरे सदस्यों के बीच भी ऐसे ही मतभेद और विवाद उभर रहे थे। हरएक राजनीति म अपनी-अपनी डफली पर अपना-अपना राग अलाप रहा था। जनता *पार्टी के एक महामंत्री मधु लिमये ने नेताओं के एक वर्ग पर आरोप लगाये और*

इस्तीफा दे दिया, जबकि एक दूसरे महामंत्री रामकृष्ण हेगडे ने कहा, "जनता पार्टी मे सबसे बडी बुरी और अफसोस की बात यह है कि पिछले डेढ साल मे वह जनता के दिमाग पर यह असर डालन मे नाकाम रही है कि उसका शासन पिछले काग्रेस शासन से भिन्न है। जनता पार्टी न जिन बिलकुल ही भिन्न मूल्य कायम करने की शपथ ली थी, व मूल्य कहाँ गायब हो गये ? सारी चीज अदर से सड गयी है।" राजनारायण की अजीबो ग़रीब, हास्यास्पद और कभी-कभी अश्लील हरकतो का तो कोई अत ही नही था। जनता पार्टी की कार्यकारिणी से जून 1978 मे उन्हे बर्खास्त कर दिया गया। जून 1979 म उन्होने पार्टी ही छोड दी। एक महीने बाद आखिर मे जनता पार्टी के टूटने के वह आशिक रूप से जिम्मेदार थे।

अटलबिहारी वाजपेयी, बीजू पटनायक और जार्ज फर्नांडीज जसे जनता पार्टी के कुछ दूसरे मत्रियो को भी कुढन और बेचनी हो रही थी। उन्होने इस्तीफा देने की धमकी दी। उन्होने अल्टीमेटम दे दिये कि अगर कुछ महीनो के अदर मामले दुरुस्त न किये गये या फलाँ वक्त तक फलाँ काम न किया गया तो वे सरकार छोड देंगे। कुछ भी नही बदला, फिर भी व बने रहे। राष्ट्रपति नीलम सजीव रेड्डी का मजबूर होकर कठोर वक्तव्य देना पडा, "उनका यकीन मत करो। ये उस मिट्टी के नही बने हैं जो पायी हुई चीज छोड दें। ये कभी इस्तीफा नही देंगे।"

सत्तारूढ दल मे प्रतिद्वद्विता केंद्र तक ही सीमित नही थी, यह तो उन प्रदेशो के कामकाज की एक विशेषता बन गयी थी, जहाँ उनका शासन था। पार्टी मतभेदो से बुरी तरह ग्रस्त थी और उसके कायकलापो का मजाक उडने लगा था। भाग्य के परिवतन न गर जिम्मेदार राजनीतिज्ञो के गिरोह का जिंदगी का सुनहरा मौका दे दिया था। लेकिन उन्होने सिफ अपनी हविस और लालच को ही पूरा करन की कोशिश की। उन्होने शम को उठाकर ताक पर रख दिया। पूरा नेतत्व आरोप लगान, बेकार की बेमतलब बातो पर प्रवचन करने और गुत्थिया पदा करन म जुटा हुआ था। आतरिक झगडे इस हद तक पहुँच गय कि जब नयी दिल्ली म 4 अक्तूबर, 1978 को पार्टी के ससदीय पक्ष की बैठक हुई तो पार्टी के अध्यक्ष चद्रशेखर की गर मौजूदगी नुमायाँ थी। जब उनसे इसके बारे म पूछा गया तो उन्होन कहा, "आप गालियाँ देन मे व्यस्त है और मैं गालियाँ सुनन के लिए वहाँ नही आ सकता। अगर कार्यक्रम के बारे मे विचार होता तो दूसरी बात थी।" उसके बाद शुरू हुआ—जमकर झगडो और एक दूसरे पर कीचड उछालन का कभी खत्म न होन वाला दौर। जसाकि बाल्डविन न एक दूसरे प्रसग मे कहा था 'नयी नरभक्षिता दूसरे की इज्जत खराब करने के लिए अपनी इज्जत बचान की प्रक्रिया देख रही थी।" जनता पार्टी के लोग ही अपन नेताओ के कुकृत्यो का सुराग दे रहे थे। राजनीतिक दश्य डरावना और घिनौना होता जा रहा था। फरवरी 1979 मे टीकाकार मेरविन जोस न यू स्टेटसमन मे ठीक ही कहा था कि 'मोरारजी देसाई के बेजान हाथो से सचालित दिल्ली की सरकार अवास्तविक आशाएँ पदा करन के अलावा और कुछ नही करती।"

मई 1979 के बाद से और भी अजीब नजारा दिखायी दिया। जनता पार्टी के अधिकाश मत्री और मुख्यमत्री अपनी ही पार्टी के लोगो की आलोचना के शिकार बन रहे थे। ससद म या समाचारपत्रो के जरिए भ्रष्टाचार के आरोपो की बौछार हो रही थी। जाहिर था कि इसन सरकार के हाथ पर बाध दिये। वह कोई कारगर कार्यक्रम शुरू नही कर सकती थी। फूट और विभाजन के कारण वह साधक रुख नही अपना पा रही थी। लगता था कि विभिन्न राज्यो के शासनो

को तो इतना ज्यादा लकवा मार गया है कि वे अपने नागरिको की जान माल की रक्षा करने म भी असमर्थ थे। रोज सवेरे अखबारा मे चोरियो, बलात्कार और हत्याओ की खबरें पढ़ने का मिलता। बेलछी मे सितबर 1977 मे जिस निमम ढँग से हरिजनो की हत्याएँ की गयी, अलीगढ मे अक्तूबर 1978 म जो अभूतपूव भीषण साप्रदायिक दगा हुआ और कई महीन तक दग की विभीपिका जारी रही, अप्रल और अगस्त 1979 मे जमशेदपुर और जून मे नादिया के दग और उपद्रव ने कानून व व्यवस्था भी गिरती हुई स्थिति को स्पष्ट कर दिया।

फिर आयी खबर कई राज्यो म होने वाले पुलिस आदोलन की। उनकी शिकायतो का औचित्य था, लेकिन जिस ढँग से उससे निपटा गया उससे सरकारी अनाडीपन सिद्ध होता था। मइ और बाद म जून 1979 म पुलिस व अन्य अध सनिक सगठनो पर गोलियाँ चलाने के लिए फौजें बुलायी गयी। जब फौज न एक राज्य मे पुलिस शस्त्रागार पर कब्जा किया तो कुछ दिलजलो न कहा, "पुलिस शस्त्रागार पर कब्जा करने के लिए तो फौज बुलायी गयी और अगर फौज ने सडको पर आदोलन शुरू कर दिया तो फिर यह काम कौन करेगा ?" इन सबके अलावा आर्थिक तवाही हो रही थी, हडतालें, तालाबदी व ऐसी ही कारवाइयाँ बढ रही थी जिनमे आवश्यक वस्तुओ का उत्पादन अस्त-व्यस्त हो गया था। मूल्य सूचकाक एकदम से वढ गया था। खाने की चीजें और उपभोक्ता वस्तुएँ मँहगी हो गयी और बाजार से गायब हो गयी। फिर भी सरकारी प्रवक्ता इसकी उलटी तसवीर पेश करने के लिए आँकडे प्रस्तुत करते रहे। बढती हुई कुनबा परवरी और भ्रष्टाचार से सत्तारूढ दल पर से जनता का भरोसा उठ गया।

भारतीय वाणिज्य और उद्योग महासघ के अध्यक्ष एच० एम० सिहानिया को सावजनिक रूप से कहना पडा, "देश मे अतर सरचनात्मक सुविधाएँ वस्तुत अस्त व्यस्त हो गयी, जिसमे उत्पादन और विदेशी व्यापार पर प्रभाव पडा।" उन्होंने बताया कि प्रमुख बदरगाहा म काम ठप पडा हुआ है। छह माह से अधिक से रेल के डिब्बो की सप्लाई माँग से बहुत कम है। पूर्ति मे 13 प्रतिशत की कथित वद्धि के बावजूद कई राज्या म ऊर्जा की स्थिति सकटपूण है। भारतीय विमान सेवा की काय-कुशलता का ह्रास हुआ है। टेलीफोन प्रणाली खस्ता हो रही है डाकतार प्रणाली, जिसका शानदार रिकाड था, खराव हो रही है। रिजव वक म भी 'नियमानुसार काय' का बुखार चढ रहा है। कई राज्या म पुलिस कानून के रक्षक की हैसियत से काम करन की जगह खुद कानून तोड रही है।[1]

जून 1979 के प्रारभ म चरणसिह ने निराशा व्यक्त करते हुए कहा कि वह इस दुदशा को रोकने में असमय हैं जबकि चद्रशेखर ने कहा कि देश में 'विश्वास का सकट" पैदा हो गया है। कुछ दिन बाद अपनी पार्टी के केंद्रीय ससदीय बाड को सबोधित करते हुए उन्होन राजनीतिक व आर्थिक स्थिति और बेचैनी का जिक्र किया कि इससे देश की सपूण राजनीतिक प्रणाली को खतरा पैदा हो गया है। बाद में तो उन्होन और भी कटु आलोचना करते हुए कहा, 'अपनी असफलताओ और देश में व्याप्त सामान्य स्थिति के लिए जनता पार्टी के नता श्रीमती गाधी या अन्य विपक्षी लोगा को जिम्मेदार नही ठहरा सकत।'[2] महाराष्ट्र जनता पार्टी के प्रमुख नता एस० एम० जाशी ने, बबई के एक प्रमुख पत्र के 31 मई,

---

1 टाइम्स ऑफ़ इंडिया दिल्ली, 9 जून 1979

2 स्टेटसमन, दिल्ली, 23 जून 1979 और 27 जून 1979

1979 के अक के अनुसार, कहा, "आजकल कोई भी नैतिक अधिकार नही मानता। पार्टी में ज़रा भी अनुशासन नही है, लेकिन हम किसी को भी अनुशासनहीनता के लिए पार्टी से निकाल नही सकते है।" उनके मुताबिक जे० पी० भी इस समस्या से बहुत तग आ गये थे और बेबसी से पूछते थे कि पार्टी का भविष्य क्या होगा ? उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमत्री और जनता पार्टी के कोषाध्यक्ष चद्रभानु गुप्त ने मजबूरी में यह स्वीकार किया कि, "राजनीतिज्ञो की वतमान पौध ने देश में गडबडी और अनिश्चितता का बढिया जाल बुन दिया है और देश को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है।"

सभी जानते थे कि पार्टी मे कोई भी किसी कायदे-कानून को नही मानता था। सरकार के शीपस्थ नेताओ का आचरण इतना गिर गया था कि उस पर यकीन नही आता था। मुख्य मत्रियो से जल्दी जल्दी विश्वास प्राप्त करने के लिए कहा जाता था। गुटबाजी का बोलबाला था। सपूण राष्ट्र सामाजिक अव्यवस्था के वातावरण मे डूबा हुआ था। इन सबसे औसत आदमी की प्रतिक्रिया यह होती थी कि 'जाको प्रभु दारुण दुख देही, ताकि मति पहले हर लेही'। सत्ता मे ह्रास व तेज़ी से विघटन के कारण अधिकाश लोगो को यह यकीन हो गया था कि किसी भी वक्त पार्टी का पूरा पतन हो जायेगा। उसके नेता अपनी ही प्राथमिकताओ के जाल मे फँस गय थे। उन्होने एक राष्ट्र को मँझदार मे छोड दिया था और असतोप के उफनते सागर मे डूब उतरा रहे थे। कानून व व्यवस्था की विगडती हुई स्थिति और कामकाज के अस्त व्यस्त होने पर जन रोप उभर रहा था। मजदूरो के बढत हुए असतोप और उत्पादन म रुकावटो के परिणामस्वरूप अभाव और मँहगाई बढ रही थी जिससे आबादी के अधिकाधिक लोग त्राहि त्राहि कर रहे थे। ऐसे सकट के सामने जनता पार्टी की सरकार राष्ट्रीय असतोप के सुलगते हुए ज्वालामुखी के ऊपर बैठी थी। चूकि उन्होने शतरज की बाज़ीखत्म करने से इकार कर दिया था और नये मोहरो की तलाश मे थे, इसलिए उनका पूण पतन निश्चित हो गया था।

9 जुलाई, 1979 को ससद का वर्षा कालीन अधिवेशन शुरू हुआ। उसी दिन अविश्वास का प्रस्ताव विचाराथ स्वीकार कर लिया गया। चह्वाण मडली के नेतत्व म पस्तहिम्मत काग्रस ने बहुत चालाकी से कदम उठाया था, वह इससे सावित करना चाहते कि वह वास्तविक विरोधी दल है, लेकिन दरअसल इसका मकसद झगडने वाले गुटो को मुसीबतो मे घिरे प्रधानमत्री के पीछे एकतावद्ध करने म जनता पार्टी की सहायता करना था। लेकिन यह चाल नाकाम हो गयी और और बिलकुल अप्रत्याशित घटनाएँ घटो। सभी दलो के दाव-पेंच तय करने वाले हक्का बक्का रह गये। सत्तारूढ दल से इस्तीफो का ताता लग गया। 16 जुलाई को मतदान होना था। मोरारजी देसाई 15 जुलाई को सवेरे दहाडे कि पार्टी पूरे तौर पर एकताबद्ध है, पार्टी छाडने वाले मुसीबत म पडेंगे और वह सौ वोटो स जीतेंगे। लेकिन उसी शाम चार बजे तक इतने लोग जनता पार्टी छोड गय थे कि ससद का सामना करने की उनकी हिम्मत ही नही पडी और उन्होन इस्तीफा दे दिया। इसलिए अविश्वास का प्रस्ताव वापस ले लिया गया और 16 जुलाई को अधिवेशन स्थगित कर दिया गया।

जनता पार्टी से इतने लोगो ने इस्तीफा दिया कि देखकर दाता तले उँगली दबानी पडी। जिन लागो ने य दावपेंच तय किये थे, उन्ह भी नतीजो पर हैरत हुई। इससे जनता पार्टी के नेता इतना घबरा गये कि सारा ढांचा ताश के पत्ता

के महल की तरह ढह गया। इसके परिणामस्वरूप 1977 मे जो जनता पार्टी बनी थी वह चरमरा कर बिलकुल टूट गयी। इस परिवर्तन का एक ठोस नतीजा यह निकला कि जनसघ, जिसमे आर० एस० एस० हावी था, सबसे कटकर बिलकुल अलग पड गया जबकि इसके पहले सरकार पर वह हावी था और रोज व रोज उसका शिकजा कसता जा रहा था।

लोग यह सोचते थे कि इतने अपमानित होने और भाग्य की ठोकरें खाने के बाद मोरारजी देसाई राजनीतिक मच से हट जायेंगे और जैसीकि परपरा है, जनता पार्टी ससदीय दल के नेता पद से इस्तीफा दे देंगे और छिन्न भिन्न पार्टी को अपने किये की सजा भुगतने देंगे। लेकिन वह अपने पद से चिपके रहे और नये नेता के लिए जगह खाली करने से उन्होंने इकार कर दिया। इसी बीच चरणसिंह ने अगला प्रधानमत्री बनने के वास्ते अपना दावा करने भर को पर्याप्त समर्थन हासिल कर लिया था। राष्ट्रपति ने उनसे और देसाई से अपने-अपने समर्थकों की सूची देने के लिए कहा। देसाई ने अपने समर्थकों की सख्या बढा चढाकर सूची पेश की जिसमे कई जाली नाम थे। फौरन ही इसका पता चल गया और स्वय भू गाधीवादी को यह बात मजूर भी करना पडी जिसे बहुत से लोग उन्हीं का रचा हुआ जाल मानते थे। उनमे इतना सौजन्य भी नही था कि वह अपने बाद आने वाले प्रधानमत्री को शुभ कामनाएँ देते।

इस तरह एक अवसरवादी का राजनीतिक जीवन खत्म हुआ, जिसके बारे मे बताया जाता है कि ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक रुझान के कारण 1921 म उन्हें बर्खास्त कर दिया था। उनकी यह खास प्रवृति जारी रही। वह कांग्रेस म घुस आये और होशियारी से उन्होंने अपने परिवार को सपन्न बनाया। वह अपनी जिद, प्रतिशोध की भावना, घमड और सदाचार की झूठी भावना के लिए मशहूर हो गये। जनता म इस पर बहुत शोर शराबा हुआ और टिक्का टिप्पणी की गयी कि उन्होंने अपने भ्रष्ट पुत्र को शरण दे रखी है और कुख्यात सरकारी अफसरों को अपने इर्द गिर्द इकट्ठा कर लिया है और एक अवैध सतान का पिता कहलाने व उसकी माता को पाकिस्तान भाग जाने देने म मदद देने के कारण उनके मन म कोई कचोट नही है। बताया जाता है कि इस बेगम को मजबूरी म 1960 के दशक के शुरू मे एक पाकिस्तानी फौजी ब्रिगेडियर से शादी करनी पडी। गत वर्ष वह भारत म कुछ महीने व्यतीत करने के लिए आयी थी। उनके ठहरने के लिए दिल्ली म एक सरकारी होस्टल वेस्टन कोर्ट मे एक कमरा तय कर दिया गया था। हालाकि पाकिस्तान फौजी कर्मचारियों व उनके परिवार के लोगो को सामान्य वीसा की इजाजत नही दी जाती लेकिन इस महिला को खुला वीसा दिया गया जिसके बल पर वह दिल्ली, भोपाल, हैदराबाद, बबई आदि घूमने मे समर्थ हुई। ब्लिट्ज ने कुछ साल पहले के इस काड का बहुत अच्छा विवरण छापा था।

क्या मोरारजी इनमे से किसी भी तथ्य का खडन कर सकते है? उन्होंने 1978 मे अब्दुल गफ्फार खाँ की बीमारी की खबर सुनी और उन लोगो का आग्रह अनुरोध अनसुना कर दिया जो चाहते थे कि मोरारजी हस्तक्षेप करें और भारत की ओर से बीमार पठान नेता का इलाज कराने का प्रस्ताव रखे। चूकि मोरार जी को 1969 के दौरान भारत म बादशाह खाँ के भाषण पसद नही आये थे, इसलिए उन्होंने महानतम जीवित गाधीवादी को उसके भाग्य के भरोसे छोड देना बेहतर समझा। उनकी प्रतिक्रिया से बहुतो को आघात लगा, लेकिन मुझे

जरा भी ताज्जुब नही हुआ। यह उनके स्वभाव के अनुरूप ही था। किसी भी दूसरी कारवाई से सच्चाई पर परदा पड जाता। बताया जाता है कि उन्होंने कहा, "वह दूसरे देश के नागरिक हैं। वह देश उनके साथ चाहे जैसा सलूक कर सकता है। हम उनसे क्या मतलब ?"

राजनीति से अवकाश ग्रहण करने की मोरारजी की घोषणा पर लोगो को यकीन नही हो रहा था। उनके दोस्त और दुश्मन दोनो यह समझते थे कि एक चालाक बुड्ढी लोमडी की तरह वह वक्त का इंतजार करेंगे और हुआ भी यही। जल्दी ही वह अपनी पार्टी का प्रचार करने के लिए मैदान म उतर आये। एक उच्चपद पर दो साल तक आसीन रहने के कारण उनकी असलियत खुल गयी थी। वह अभी तक अपने को युवा आकाक्षी मानते हैं। बात भी ठीक है। वह लौंद के साल (लीप इयर) मे पैदा हुए थे और अभी उनके सिर्फ 22 जन्मदिन मनाये गये हैं।

देश म गडबडी और अव्यवस्था का बोलबाला था और जिनके हाथ म देश की बागडोर थी व भी इन मुसीबतो से घिरे हुए थे, ऐसी हालत मे विदेश म भी भारत की छवि धूमिल हो गयी। हमारी खिल्ली उडायी जाने लगी और हम अंतर्राष्ट्रीय समाज के उपहास का पात्र बन गये। अटलबिहारी वाजपयी ने, जिनकी पहले की विदेश यात्राओ का खर्च इसराइल और फारमोसा ने उठाया था, नयी हैसियत को और ज्यादा लाभकारी पाया। उन्हे इतना बढिया मौका कभी नही मिला था। उन पर यात्रा करने की सनक सवार थी। विदेश विभाग म यह आम मजाक बन गया था कि क्षेत्रीय अधिकारियो को दिल्ली म तैनात राजनयिको को खुश रखना पडता है, ताकि वे अपने राजनीतिक आका के वास्ते विदेश यात्रा के लिए अमत्रण पा सकें। इसलिए स्वाभाविक था कि भारत का पक्ष प्रस्तुत करने की तैयारी पर ध्यान नही दिया जा सका। इसी कारण से चीन और पाकिस्तान मे हम मुह की खानी पडी। नेपाल भी तत्कालीन विदेशमंत्री की गरदन दबा सकता था।

अटल ने क्या किया और अपने दल मे किन लोगो को साथ ले गये, इस पर बहुतो की निगाहे उठी। अब वह हाकिम नही रह गये है, इसलिए उनके भूतपूर्व सहकारी उनकी असली तसवीर पेश कर सकते हैं। उन्होंने यूरोप और अमरीका से जो टेलीफोन किये, उसकी वे खिल्ली भी उडाते है। अपने अंध हिंदी प्रेम के कारण उन्होने सयुक्त राष्ट्र मे दिये जाने वाले अपने भाषण के हिंदी अनुवाद की व्यवस्था कराने म लाखो रुपये बरबाद कर दिये। लेकिन उन्हे खाली सभा भवन को सबोधित करने का दुर्लभ गौरव प्राप्त हुआ। इस प्रसग म 1979 के शुरू मे ससद मे की गयी एक टीका मुझे याद आ गयी। यह बिलकुल सही कहा गया था कि "प्रधानमंत्री देसाई नीति बनाते है, विदेश-सचिव मेहता उसे कार्यान्वित करते है और अटलबिहारी वाजपेयी उसका हिंदी म अनुवाद करते हैं।"

पहले दो वर्षो म जो दुर्दशा की गयी थी उसका नतीजा जुलाई 1979 मे लुसाका मे राष्ट्रकुल के प्रधानमंत्रियो के सम्मेलन मे सामने आ गया। किसी भी सदस्य देश ने महामंत्री के पद के लिए भारत की उम्मीदवारी का समर्थन नही किया, यह किसी भी देश के अलगाव की चरमसीमा थी, जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती थी। विदेशमंत्री के बार बार यह दोहराने से कि "ठीक प्रक्रिया नही अपनायी गयी" पराजय और भी अपमानजनक बन गयी। एस० एन० मिश्र शायद यह समझ रहे थे कि वह दिल्ली या पटना मे किसी जिला स्तर की बैठक

मे भाग ले रहे हैं, इसीलिए उन्होने धमकियाँ भी दी। उनमे न तो सूझबूझ थी और न वह यह विश्वास कर पा रहे थे कि वह शासनाध्यक्षो के सम्मेलन म भाग लेंगे न उन्हे ऐसे सम्मेलन मे भाग लेने के कायदे मालूम थे। ऐसे सम्मेलन अपनी काय प्रणाली स्वय निर्धारित करते हैं और बाद म दूसरे उनका अनुकरण करते हैं। ऐसे नौसिखुए को भारत जसे देश का प्रतिनिधित्व करन के लिए भेज दिया दिया गया।

अभी तक भारत ने ऐसी जगहो पर रहनुमाई की थी, लेकिन अब एक अफ्रीकी शासनाध्यक्ष ने बुजुर्गों के ढंग से भारतीय प्रतिनिधि से कहा कि चूंकि वह ऐसे सम्मलन के लिए नये हैं, इसलिए उनकी गलतियो को अनदेखा किया जा सकता है। ऐसी घोर विफलता के परिणामस्वरूप तो मत्री को हटा ही दिया जाना चाहिए था। लेकिन अभी तो उनके हाथो हवाना मे एक बार और हमारा मान मदन होना था। छठे गुट निरपक्ष सम्मेलन मे तो हमारी और दुदशा होना बदी थी। पाकिस्तान इस आदोलन म नया नया शरीक हुआ था, उसने कश्मीर का मसला उठा कर एक कामयाबी हासिल कर ली और भारत न उसका जवाब भी नही दिया और न अपना पक्ष प्रस्तुत किया। दूसरो ने भी अपनी बात कही, जबकि भारतीय मत्री ने बहुत इतमीनान स सिफ इतना कह कर इतिश्री कर दी कि ऐसे सम्मेलनो मे द्विपक्षीय मसलो पर गौर नही किया जाता। मित्र अपने होटल के कमरे म दड लगाने और अधिकारियो को अपन शयनकक्ष के चक्कर कटवान म व्यस्त थे। मत्री को शिष्टमडल के साथ यात्रा करन वाले भारतीय पत्रकारो को सिफ यह बताने मे दिलचस्पी थी कि वह शिष्टमडलो के नताओ के लिए आरक्षित बंगले म क्यो नही ठहरे। वह दिल्ली मे आवास समस्या से परिचित थ, इसलिए मैं समझता हूँ कि यही अकेला विषय था जिसकी सभी बारीकियो के बार म वह बातचीत कर सकते थे।

अगर उन क्षेत्रो मे, जो अभी तक नतृत्व के लिए हमारी ओर देखते थे, हमारी हैसियत गिर कर इतनी बदतर हो गयी तो पश्चिमी देशो का क्या हाल होगा जो हमारे लिए हिकारत का रवैया अपनाने की कोशिश करते थे। अब तो वे जितना चाहे, अकड सकते थे और बदतमीजी कर सकते थे। छुट्टी या तबादले पर स्वदेश लौटने वाले हमारे अधिकारी अपनी दुदशा और हमारी गिरी हुई हैसियत की करुण कहानी सुनाते।

1979 के जून के मध्य तक राजनीतिक दृश्य और घिनौना हो गया। "राजनीति" शब्द गाली माना जान लगा। जनता पार्टी म फूट डालन वालो की आकाक्षाओ ने सकट पदा कर दिया। मोरारजी भी अब और ज्यादा चिपके नही रह सके। उनसे भी ज्यादा हताश व्यक्ति जगजीवनराम न पार्टी मे उनकी जगह ली। लेकिन नेतृत्व मे परिवतन से स्थिति और ज्यादा अनिश्चित हो गयी। हावी होने के लिए भाडी होड और भी अरुचिकर तथा हास्यास्पद हो गयी। राजधानी म ओछी और घटिया क़िस्म की सौदेबाजी होन लगी। समाचारपत्रो म खबरें छपी कि ढुलमुल ससद सदस्यो को खरीदन के लिए रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा था। किसी सदस्य विशेष की माग के उतार चढाव के साथ कीमतें घटती-बढती रहती। इसस जनरोष बढा। जनता पार्टी के नताओ ने राजनीतिज्ञ की औकात इतनी गिरा दी जितनी कि वह पहले कभी नहीं गिरी थी। एक समाचार समिति न "270 के युद्ध मे धन" का जिक्र किया। यह ससद-सदस्यो की वह न्यूनतम सख्या थी, जो सरकार को गिराने के लिए जरूरी थी।

श्रीमती गाधी ने बहुत खूबी और सावधानी से अपनी कायनीति तय की। उन्होंने इतनी होशियारी से पत्ते चले कि एक माह के अदर ही उनकी पार्टी के लोगो न एक के बाद एक करके मोरारजी देसाई और चरणसिंह दोनो का पतन करा दिया। जगजीवनराम ने भी उनकी मदद मागी तब तक बहुत देर हो चुकी थी, क्योकि खुद उनके दल के लोगो, विशेषकर मोरारजी देसाई ने उनके साथ धोखा किया। उन्होंने एक हरिजन को पार्टी का नेता नही बनने दिया। जब जगजीवनराम को नेता बनने का मौका दिया गया तब तक उनके समथन म कमी आना शुरू हो गयी थी।

टाइम्स पत्रिका ने 3 सितबर 1979 के अपने अक म भारत के घटनाक्रम को बहुत अच्छे ढँग से पेश करते हुए लिखा, "श्रीमती गाधी एक बार फिर राजनीतिक शक्ति की धुरी के रूप म उभरकर सामने आयी ह यह राजनीतिक भाग्यो मे आश्चयजनक परिवतन का द्योतक है।" उन्होने यह ज़ोरदार अभियान चलाया कि वह बेबस अबला ह और बदला लेन को आतुर सरकार भारत की बहुत समस्याओ को नजरदाज़ करके भी उन्हे व उनके पुत्र सजय का नेस्तनाबूद और बर्बाद करने पर तुली हुई है। आशिक रूप से इसी अभियान न राजनीति के क्षेत्र म उन्ह एक बार फिर शिखर पर पहुँचा दिया। एक कुशल राजनीतिज्ञ की हैसियत से श्रीमती गाधी न विरोधिया को बुद्धू बनाया, हर मार्चे पर उन्ह मात दी और उन्ह ऐसी हालत म पहुँचा दिया जहा से उन्ह भागने को गुजाइश न रही। एक बार फिर वह "राष्ट्र की पुत्री अपन पिता जवाहरलाल नेहरू की उत्तराधिकारी और राजनीतिक राजवश की प्रधान हो गयी जिसन 50 वष से अधिक से भारत के भाग्य को सँवारने म सहायता दी है।'

जनता पार्टी दो हिस्सो म बँट गयी। बूढे लोगा के एक गरोह न दूसरे गरोह की जगह ले ली। वे एक दूसरे की निंदा करते ये जो श्रीमती इन्दिरा गाधी के नेतत्व म चलने वाली कांग्रेस की साख बढान के लिए काफी था। मोरारजी ने अपन विरोधियो को चोर बताया, जबकि चरणसिंह न भी ऐसी ही जबान का इस्तेमाल करके उन्हे नपुसक बताया। जिन लोगो ने 'राजनीति मे सजय गाधी की दखलदाजी' के विरुद्ध हाय-तोबा मचायी थी उन्ह अपना मकसद पूरा करने के लिए सजय गाधी के सदभाव का सहारा लेन मे कोई बुराई नज़र नही आयी। राजनारायण मामला तय करन के लिए उनसे कई बार मिले, जगजीवनराम भी पीछे नही रहे और श्रीमती गाधी का समथन सुनिश्चित करने के लिए उन्होने सजय गाधी के पास अपने दूत भेजे। और यह सब करते हुए भी ये लोग श्रीमती गाधी की उपेक्षा करने का ढोग करते रहे। इसलिए श्रीमती गाधी को मजबूर हाकर इन लोगो को बेनकाब करना पडा। उन्होन कहा, "राष्ट्र के य उद्धारक आकर मुझसे समथन देने का अनुरोध करते हैं, लेकिन सावजनिक रूप से यह बात मानना नही चाहते हैं।"

खोखले और घिसे पिटे नारे राजधानी म गूजते है। कुछ नारे सुनन मे सद्धातिक है तो कुछ को सुनकर तरस आता है। कुल मिलाकर एक ही नतीजा निकलता है कि हरएक अपना हिस्सा पाने को बेताब है। पद-लोलुप और पद के दावेदार ज्यादा से ज्यादा भीड इकटठा करना चाहते थे। आम लोगा न भारत के चोटी के राजनीतिज्ञो को 'चिराग गुल, पगडी गायब' का खेल खेलत देखा। यह खेल ज्यादा दिन नही चल सकता था। अधिकाधिक लोग मध्यावधि चुनाव की भविष्यवाणी कर रहे थे। मध्यावधि चुनाव की माँग जार पकड रही

थी। राष्ट्रपति ने 22 अगस्त, 1979 को लोकसभा को भंग करने की घोषणा करके इस दुर्दशा ग्रस्त हालत को खत्म कर दिया। समाचारपत्रों में इस आशय की खबरें छपीं कि चंद्रशेखर व जनता पार्टी के दूसरे नेताओं ने राष्ट्रपति की उस दिन की कारवाई की जिन शब्दों में निंदा की, व प्रकाशन योग्य नहीं है। जनता पार्टी के एक समर्थक को मजबूरी में अगर यह कहना पड़ा कि यह 'उजड्ड गँवारों का जत्था है" तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है।

श्रीमती गांधी के अनुयायियों को तोड़ने व उनमें अलग करने के लिए हर तरह के लालच दिये गये। लेकिन वे दृढ़तापूर्वक अपने नेता के साथ रहे और उन्होंने जनता पार्टी के विशाल बहुमत को छिन्न भिन्न कर दिया। उन्हें किसी पद का लालच नहीं था। उनका मुख्य उद्देश्य जनता पार्टी का कुशासन खत्म करना था। इस प्रक्रिया में राजनीतिक अखाड़े के सभी मुख्य पहलवान उद्धार के लिए उनकी (श्रीमती गांधी) ओर देखते थे। वह असली शक्ति बन गयी थी और किसी की भी किस्मत का फैसला कर सकती थी। उनके बिना शर्त समर्थन के बल पर चरणसिंह 28 जुलाई को मोरारजी देसाई को हराने में कामयाब हो गये थे। इस तरह से वह पाँचवें प्रधानमंत्री बने। लेकिन उन्होंने राजनीतिक मलबा साफ करने के लिए अपने रास्ते खुले रखे थे। चरणसिंह के मंत्रिमंडल के अधिकांश सदस्य उनके मातहत काम कर चुके थे। उनकी बदौलत ही वे फिर सत्ता में वापस आये, लेकिन उनमें इतनी सौजन्यता नहीं थी कि वे इस बात को स्वीकार करते। चरणसिंह में भी सौजन्यता नहीं थी, और चूंकि वह संसद का सामना करने की हिम्मत नहीं बटोर पाये इसलिए उन्हें 20 अगस्त को इस्तीफा देना पड़ा। इस तरह से उस कार्यकाल का अंत हुआ जो सिर्फ 24 दिन चला। बाद में उनसे कामचलाऊ सरकार बनाने के लिए कहा गया। लेकिन एक टीकाकार ने सही ही कहा था कि "यह हर मायने में तलछट है।"

मध्यावधि चुनाव की घोषणा से राजनीतिज्ञों ने नये सिरे से जोड़ तोड़ शुरू कर दी। श्रीमती गांधी और उनके निष्ठावान कांग्रेस जन के अलावा बाकी राजनीतिज्ञ डर गये। वे अपनी किस्मत जानते थे और घबराये हुए थे। वे लंबी चौड़ी डींगें हाँकते थे लेकिन मन ही मन जानते थे कि उनका राजनीतिक काल आ गया है। भाग्य का लिखा साफ दिखायी दे रहा था। जनता के रोष का चक्र पूरा घूम गया था। श्रीमती गांधी के प्रति समर्थन बढ़ रहा था नया वातावरण उनके अनुकूल हो रहा था। अधिकाधिक लोग समझ रहे थे कि इंदिरा लहर आ रही है और बरसाती मेढ़कों की तरह अवसरवादी लोग उनकी छत्रछाया में आ जाने की होड़ करने लगे। जिन लोगों ने 1977 में उनका साथ छोड़ दिया था वे संगठन में वापस लौट आयें और उन्होंने पार्टी पर तन मन धन न्योछावर करने का ऐलान किया। जो बच गये थे वे पार्टी में घुस आने के लिए मौके की तलाश में थे। एक ने तो जबरदस्ती घुस आने की धमकी दी।

जगजीवनराम प्रतिपक्ष के नेता निर्वाचित हो गये। चरणसिंह की तरह उन्हें भी प्रतिपक्ष के नेता की हैसियत से संसद में बैठने का एक मौका न मिला। एक ऐसे प्रधानमंत्री को, जिसने एक लम्हे के लिए भी संसद का सामना नहीं किया, शासन की बागडोर सौंप दी गयी। जगजीवनराम, जो मोरारजी द्वारा समय रहते पद छोड़ने से इंकार कर देने के कारण, प्रधानमंत्री-पद की दौड़ में शरीक होने से वंचित हो गये थे, दुविधा में पड़ गये। जनसंघ-आर० एस० एस० तत्वों पर उनकी लगातार बढ़ती हुई निर्भरता ने उनके रास्ते और सीमित

कर दिये थे। उन्होंने हरिजन होने का फायदा उठाना चाहा, लेकिन बात कुछ बनी नही। उन सबने सबसे घटिया क़िस्म की अवसरवादिता का परिचय दिया था। अपने दोष को छिपाकर सुदर तसवीर पेश करने की उनकी कोशिशें बुरी तरह नाकाम रही थी। इसलिए इस सारी राजनीतिक नौटकी पर जनता की प्रतिक्रिया जानने की व्यग्रता से प्रतीक्षा की जा रही है।

मेरे एक दोस्त ने मुझे सलाह दी कि मैं अपनी किताब 1961 की एक घटना के ज़िक्र के साथ खत्म करूँ। मैंने उन्हे बताया था कि एक बार जब मैं विदेश म काम खत्म करके दिल्ली वापस लौटा तो मैंने एक दिन की छुट्टी ले ली और मैं कनाट प्लेस मे घूम रहा था। एक पुरान मुलाकाती बहुत तपाक से मुझसे मिले, और सलाम दुआ के बाद उन्होने पूछा, "आजकल क्या कर रहे हैं?" मेरी तबीयत उनसे जरा मजाक करने की हुई तो मैंने जवाब दिया, "मैं तो रिटायर हो चुका हूँ। बस जरा टहल रहा था।" यह सुनकर मेरे मुलाकाती की सारी दिलचस्पी खत्म हो गयी। ज़ाहिर था, उन्होन सोचा होगा कि उन्हे ऐसे शख्स के साथ अपना कीमती वक्त नही बर्बाद करना चाहिए जो किसी ओहदे पर नही है। यह कहते हुए कि "अच्छा तो मैं चलता हूँ। फिर कभी मिलूगा" वह विदा हो गये।

उनके इस तरह अचानक चले जाने से 18 साल पहले मैं हक्का-बक्का रह गया था। लेकिन मार्च 1977 के बाद से यह घटना लोगो के बर्ताव की बानगी बन गयी है। आपातस्थिति के बाद के दौर म दोस्त, दुश्मन और राजनीतिक सहयोगी रोज़मर्रा इसी तरह का व्यवहार करते। अगर आप कुर्सी पर नही हैं तो आपकी कीमत कुछ नही है। यही नया दस्तूर है, कायदा है और मूल्य है। मध्यावधि चुनाव की घोषणा के बाद फिर एक परिवतन आया। सदस्यो की खरीद फरोख्त और पार्टी के अदरूनी झगडो का खात्मा हो गया। मसला अचानक फिर जनता के सामने आ गया—जो प्रजातत्र मे असली स्वामी है। ससद म जनता पार्टी के अधिकाश सदस्यो म आत्म तुष्टि की भावना आ गयी थी। उन्ह इसकी कतई उम्मीद नही थी कि 1977 की शानदार विजय के बाद इतनी जल्दी उन्हें मतदाताओ का सामना करना पडेगा। जनता के इसाफ की अदालत मे वे बिलकुल बेनकाब खडे थे, उनका पर्दाफाश हो चुका था और उनकी साख मिट्टी म मिल चुकी थी। स्वाभाविक था कि इससे व और दूसरे ढुलमुलयकीन *लोग काप उठे। बहुत से एसे लोग, जो दो साल स ज्यादा समय से श्रीमती गाधी* के शिविर से अलग हट गये थे, फिर दोस्ती बढाने लगे।

पाकिस्तान जाकर बस जाने वाले एक शायर हिमायत अली 'शायर' ने शायराना अदाज म इस रवैय को इस तरह बयान किया है

देखते ही देखते कितन बदल जाते है लोग,
हर कदम पर इक नये साचे मे ढल जाते है लोग
कीजिय किसके लिए गुमगश्ता जन्नत की तलाश,
जबकि मिट्टी के खिलौनो से बहल जाते है लोग।

लेकिन मुझे खुशी है कि इस तरह अपन आप कचरे से पीछा छूट जाता है। जो बच जाता है, वह शुद्ध सोना होता है। ऐसी भी हस्तिया है, जो वक्त की कसौटी पर खरी उतरी है और तप हुए सोन की तरह दमक रही है। ऐसे सिद्धात है जो खरे साबित हुए है। और साथ ही है भारतीय जनता के अतिम निणय मे वह आस्था जो अडिग है। जय हिंद!

तमाम शुद।